इतिहास-प्रवेश

[भारतीय इतिहास का दिग्दर्शन]

प्रारम्भिक काल से १८वीं शती तक

स्वर्गीय डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल



प्रकाशक

सरस्वती पब्लिशिङ्ग हाउस,

इलाहाबाद



१६३६

पहली बार] [मूल्य २॥)

प्रकाशक—
सरस्वती पब्लिशिङ्ग हाउस,
जार्ज टाउन, इलाहाबाद

मुद्रक—
परशोतम सहाय,
सरस्वती प्रेस,
जार्ज टाउन; इलाहाबाद

पिछले बारह बरस के आँधी-पानी में
जिनके स्नेह का सहारा बना रहने से
इस कृति को पूरा कर पाया हूँ,

उन्हीं

श्रद्धेय

बाबू राजेन्द्रप्रसाद

के कर-कमलों में

वस्तु-कथा

भारतीय पुरातत्त्व सम्मेलन (ओरियंटल कान्फ्रेन्स) के छठे अधिवेशन के सभापति-पद से स्वर्गीय रावबहादुर हीरालालजी ने कहा था, 'इस समय विशेष कर एक बड़ी आवश्यकता उत्कट रूप से अनुभव होती है, और वह है भारतीय दृष्टि से लिखे हुए एक इतिहास की।'

ये शब्द सन् १९३० में कहे गये थे। उसके नौ बरस पहले मुझे भी इस आवश्यकता ने बेचैन किया था, जिससे सन् १९२६ में मैंने "भारतीय इतिहास की रूपरेखा" लिखनी शुरू की। सन् १९३३ में उसकी १०८० पृष्ठों की पहली दो जिल्दें प्रकाशित हुईं, जिनमें हमारे इतिहास की कहानी सातवाहन युग के अन्त (लगभग २०० ई०) तक पहुँची है। उसी पैमाने पर भारतवर्ष का पूरा इतिहास लिखने के लिए काफ़ी साधनों और सुविधाओं की ज़रूरत थी; पर मेरे पास उनका अत्यन्त अभाव था। उस दशा में मेरे एक मित्र ने मुझे यह सुझाया कि जब तक वे सुविधाएँ मुझे नहीं मिलतीं, मैं भारतीय इतिहास का एक दिग्दर्शन लिख दूँ, जिससे भारतीय दृष्टि के अनुसार भारतीय इतिहास का स्वरूप दुनिया के सामने आ जाय।

यह सलाह मुझे जँच गयी, और एप्रिल सन् १९३२ में, जब कि "रूपरेखा" की पाँडुलिपि प्रकाशक के पास थी, मैंने इस छोटी पोथी में हाथ लगा दिया। इसका जो अंश आज प्रकाशित किया जा रहा है, अर्थात् आरम्भ से मराठा युग के अन्त तक, वह एक अरसे से तैयार था। शेष अंश अर्थात् ब्रिटिश युग ने मेरे कई बरस ले लिये हैं, और वह अब भी पूरा तैयार नहीं है। इस दशा में मराठा युग तक के अंश को रोके रखना उचित नहीं जान पड़ा और वह पाठकों को भेंट किया जा रहा है।

रा० ब० हीरालाल के इस कथन में कि आज भारतीय दृष्टि से लिखे हुए एक इतिहास की आवश्यकता है, एक विशेष तत्त्व है। विन्सेन्ट स्मिथ के इतिहास

की आलोचना करते हुए आधुनिक भारत के प्रमुख समाजशास्त्री प्रो० विनय-कुमार सरकार ने लिखा था, "स्मिथ ने जिस सामग्री को बरता है, एक भारतीय विद्वान उसी का उपयोग करता तो एक सिरे से दूसरे सिरे तक बिलकुल दूसरी कहानी पेश करता।"* आज १६ बरस बाद प्रो० सरकार की वह भविष्यवाणी सफल हो रही है।

डा० हीरालाल ने जिसे "भारतीय दृष्टि" कहा था, उसकी कुछ व्याख्या मैं अपने नागपुर, आरा और शिमला के अभिभाषणों† में कर चुका हूँ। जैसा कि मैंने आरा के अभिभाषण में कहा था, "राष्ट्रीय दृष्टि से अपने इतिहास का मनन करने का यह अर्थ हर्गिज़ नहीं कि हम अपने राष्ट्र की कमज़ोरियों को नज़रअन्दाज़ करें। उल्टा उन्हीं को समझने के लिए हमें अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। और हमीं उन्हें ठीक समझ सकते हैं, क्योंकि अपने इतिहास को समझने के लिए जो अन्तर्दृष्टि हममें हो सकती है वह विदेशियों में नहीं हो सकती।" सर यदुनाथ सरकार ने उसी बात को दूसरे शब्दों में कहा है, "किसी राष्ट्र के अतीत इतिहास के पुनर्ग्रथन में उस राष्ट्र की सन्तानों को ऐसी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं जिन्हें कोई भी विदेशी······नहीं पा सकता।···राष्ट्रीय इतिहास घटनाओं के वर्णन में सच्चा और उनकी व्याख्या करने में तर्कसंगत होना चाहिए···। वह राष्ट्रीय होगा इस अर्थ में नहीं कि वह हमारे देश के अतीत की किन्हीं लज्जास्पद घटनाओं को छिपाने या लज्जास्पद चरित्रों पर सफेदी पोतने की कोशिश करेगा।···"‡

इस दृष्टि से अपने इतिहास के पुनर्ग्रथन के कार्य में पिछले ३०-३५ बरस से अनेक भारतीय विद्वान लगे हुए हैं। भारतीय इतिहास के विभिन्न अंशों

* पोलिटिकल साइन्स क्वार्टरली, न्यु यार्क, दिसम्बर १९१६, पृ० ६४७।

† इतिहास-परिषद् के सभापति-पद से अभिभाषण, अखिल-भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, नागपुर, २५ एप्रिल १९३६, तथा शिमला, १८ दिसम्बर १९३८; बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, आरा, २५ दिसम्बर १९३७।

‡ भारतीय इतिहास परिषद्, आरम्भिक अधिवेशन के सभापति-पद से अभिभाषण; बनारस, ३० दिसम्बर १९३७।

या पहलुओं पर उनके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और उनसे मुझे भरपूर सहायता मिली है। किन्तु मोहन जो दड़ो से गान्धी तक समूचे भारतीय इतिहास को आधुनिक खोज की रोशनी में भारतीय दृष्टि से कहने का काम शायद पहले-पहल मेरे ही हिस्से में पड़ा है।

हमारे इतिहास की धारा में जो अनेक विवाद के भँवर हैं, इस छोटी पोथी में, मैंने उनसे भरसक बच कर खेने की कोशिश की है। इसके साथ ही, जहाँ तक बन पड़ा है, मैंने इतिहास के मूल लेखों के शब्दों को उद्धृत किया है। उन उद्धरणों से विद्वान पाठकों को संकेत मिल जायगा कि कौन सी बात किस आधार पर लिखी गयी है।

पिछले सात बरस में इस पोथी की तैयारी में मुझे अपने गुरुजनों और मित्रों की सहायता जिस प्रकार मिलती रही है, उसके अनेक प्रसंगों की पर्यालोचना आज अनेक मधुर और करुण स्मृतियों को जगा देती है। मेरे श्रद्धेय गुरु स्व० काशीप्रसाद जायसवालजी कैसे स्नेह और चाव से इसकी प्रगति में रुचि लेते और इसके प्रकाशित होने की राह देखते रहे! काश कि आज वे इसे देख पाते! इसके पहले सात प्रकरणों की पांडुलिपि को उन्होंने और भदन्त राहुल सांकृत्यायन ने ध्यान से पढ़ा और सुधारा था। जायसवालजी के हाथ की लिखी हुई तीन-चार पंक्तियाँ भी इसमें हैं।

पुस्तक के चित्रों के चुनाव में प्रामाणिकता का पूरा ध्यान रक्खा गया है। एक-एक चित्र को सम्मिलित करने से पहले उसके सम्बन्ध में मैंने अपने मित्र राय कृष्णदास जी और डा० मोतीचन्द्र जी के साथ बैठ कर विवेचना और आलोचना की है। अधिकांश चित्र वस्तुओं के मूल फोटोग्राफ़ हैं, और उनमें से अनेक ख़ास तौर से इसी पोथी के लिए लिये गये हैं। प्रत्येक चित्र के प्राप्तिस्थान और कापीराइट के स्वत्वाधिकारी का भी उल्लेख किया गया है। पृ० ६१, १६२ और १६७ के ताम्र-पत्र और मुहरें भी भारतीय पुरातत्त्व-विभाग की हैं। जिन चित्रों के नीचे स्वत्वाधिकारी का नाम नहीं दिया गया, उनमें से अधिकांश प्रकाशक या लेखक के हैं। बनारस के श्री दुर्गाप्रसाद जी और श्री श्रीनाथसाह का मैं विशेष अनुगृहीत हूँ। उन्होंने न केवल अपने

सिक्कों के संग्रह का मुझे उपयोग करने दिया, प्रत्युत जिन सिक्कों के चित्रों की मुझे ज़रूरत थी, उनके पैरिस-प्लास्टर के ढार स्वयम् तैयार करा के मुझे दे दिये। पुरातत्व-विभाग के चित्र जल्दी प्राप्त करने में भारतीय पुरातत्व-विभाग के विद्वान अध्यक्ष रावबहादुर काशीनाथ नारायण दीक्षित से जो सहायता मिली है, उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

नक्शे तैयार करने में श्री रजनीकान्त दास ने मेरे साथ बैठ कर जो मेहनत की है, उसके लिए वे मेरे धन्यवाद के पात्र हैं।

पुस्तक के प्रकाशक श्री शालिग्राम वर्मा और उनके सहकारी श्री मदन मोहन अग्रवाल का हार्दिक सहयोग और श्रम भी उल्लेखनीय हैं।

इस पोथी का उर्दू और अँगरेज़ी अनुवाद भी हो रहा है, तथा मराठी और गुजराती अनुवाद के लिए बातचीत चल रही है। अन्य भाषाओं में जो सज्जन अनुवाद करना चाहें, अथवा इसके नक़्शों, चित्रों या अन्य सामग्री का किसी भी प्रकार उपयोग करना चाहें, वे लेखक या प्रकाशक से इजाज़त लेना न भूलें।

प्रो॰ विनयकुमार सरकार, डा॰ हीरालाल और सर यदुनाथ सरकार का भारतीय दृष्टि से लिखे हुए इतिहास से जो अभिप्राय था, यदि उसका इस "इतिहास-प्रवेश" से कुछ आभास मिल सके, यदि इसके द्वारा भारत के नव-युवक अपने "राष्ट्र के आत्मपर्यवेक्षण, आत्मानुचिन्तन, आत्मस्मरण और आत्मानुध्यान"* का रास्ता देख सकें, तो मैं अपने श्रम को सफल मानूँगा।

काशी विद्यापीठ, बनारस

कार्तिक पूर्णिमा, १९९५ वि॰

जयचन्द्र

---

* नागपुर अभिभाषण, पृ॰ २

विषय-सूची

पहला प्रकरण—हमारा देश और उसके निवासी

अध्याय १

अध्याय २

अध्याय ३

दूसरा प्रकरण—आरम्भिक आर्यों का ज़माना

अध्याय १

अध्याय २

तीसरा प्रकरण—महाजनपदों का युग

[लगभग १४२५-३६६ ई० पू०]

अध्याय १

अध्याय २

चौथा प्रकरण—नन्द-मौर्य्य साम्राज्य

[३६६—२११ ई० पू०]

अध्याय १

अध्याय २

अध्याय ३

पाँचवाँ प्रकरण—सातवाहन-युग

[लगभग २१० ई० पू० से १७५ ई०]

अध्याय १

अध्याय २

अध्याय २

अध्याय ३

अध्याय ४

अध्याय ५

अध्याय ६

आठवाँ प्रकरण—दिल्ली की पहली सल्तनत

[११९४ – १५०९ ई०]

अध्याय १

अध्याय २

अध्याय ३

अध्याय ४

अध्याय ५

अध्याय ६

अध्याय ७

नवाँ प्रकरण—मुग़ल साम्राज्य
[१५०६-१७२० ई०]

अध्याय १

अध्याय ३

अध्याय ४

अध्याय ५

मुग़ल साम्राज्य का अन्तिम विस्तार [१६६७—१७२० ई०]

दसवाँ प्रकरण—मराठा प्रमुखता

[१७२०-१७६९ ई०]

अध्याय १

पेशवा बाजीराव (१७२०—४० ई०)

अध्याय २

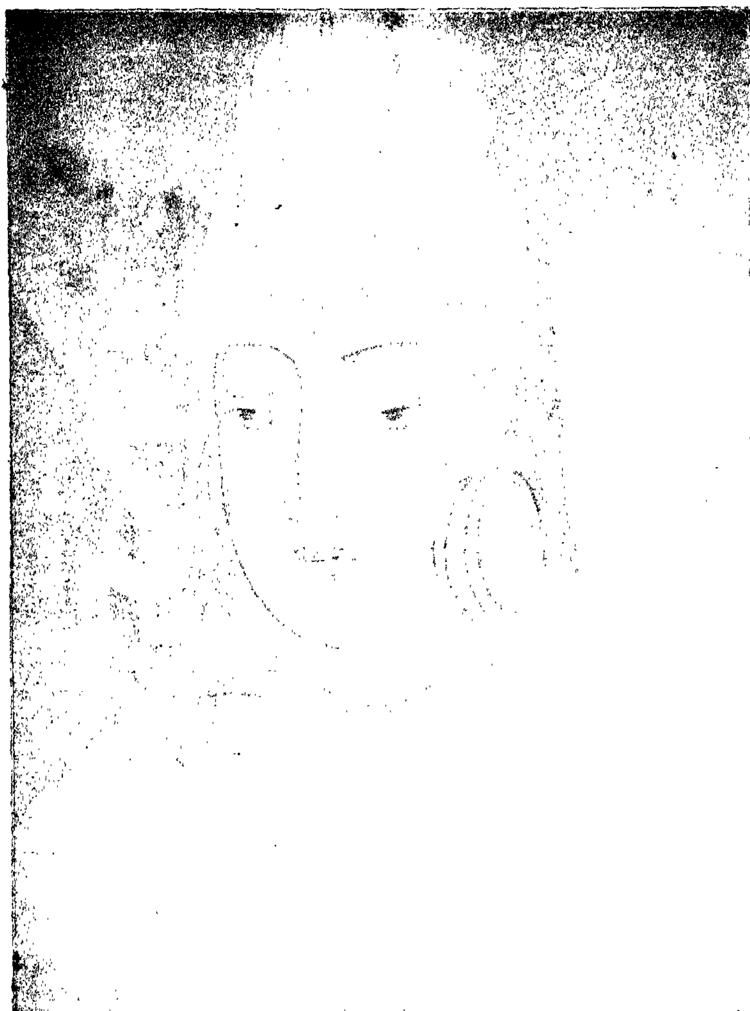
अध्याय ३

अध्याय ४

नाना फड़नीस [१७७३—१७६६ ई०]

अध्याय ५

अठारहवीं शती का भारतीय समाज



सित्तनवासल की गुफा में महेन्द्र वर्मा का समकालीन चित्र

(एक आधुनिक चित्रकार द्वारा प्रतिलिपि)

[राय कृष्णदास के सौजन्य से]

[राजा की बायीं तरफ रानी का चित्र है, जिसकी मुख-रेखा मात्र इस प्रतिलिपि में आया है।]

इतिहास-प्रवेश

——::o::——

पहला प्रकरण

हमारा देश और उस के निवासी

अध्याय १

हमारा देश

§१. **सीमाएँ**—प्रकृति ने हमारे देश भारतवर्ष की बड़ी सुन्दर और स्पष्ट हदबन्दी कर दी है। संसार भर में सबसे ऊँचा पर्वत हिमालय उसके उत्तर लगातार चला गया है। उत्तर-पच्छिम तरफ़ पामीर और हिन्दूकुश पहाड़ तथा अफ़ग़ानिस्तान और कलात पठार, और उत्तर-पूरब तरफ़ नामकिउ, पतकोई, नागा और लुशेई के पहाड़ हिमालय के साथ मिल कर हमारे देश का परकोटा बनाते हैं। पूरब, दक्खिन और पच्छिम की बाक़ी आधी चौहद्दी समुद्र ने पूरी की है।

§२. **उत्तर भारत का मैदान**—हिमालय और पूरबी पच्छिमी समुद्र के बीच, उत्तर भारत का खुला और विस्तृत मैदान है। हिमालय से उतरने वाला सब पानी इस मैदान को सींचता हुआ समुद्र में बह जाता है। उस पानी के दो प्रस्रवण-क्षेत्र यानी बहाव के रास्ते हैं। सिन्ध का पानी हिमालय से निकल कर दक्खिन-पच्छिम बह जाता है; गङ्गा के पानी का रुख़ दक्खिन-पूरब है।

उत्तर भारत की वर्षा अधिकतर पुरवा चलने पर होती है। पुरवा जिन बादलों को लाती है वे बंगाल की खाड़ी से उठने वाली भाप के बने होते हैं। इससे उन बादलों का ज़ोर गङ्गा के काँठे* पर अधिक होता है, सिन्ध के काँठे में कम रह जाता है। इसी कारण गङ्गा का काँठा सिन्ध के काँठे से अधिक हरा-भरा और आबाद है। यह दुनिया भर के सब से अधिक उपजाऊ और आबाद प्रदेशों में गिना जाता है।

सिन्ध और गङ्गा के पानी का रुख एक तरफ़ नहीं है। इससे प्रकट है कि दोनों के बीच एक ऊँचा जलविभाजक है, जिसके कारण सतलज और जमना एक दूसरे से हटती गयी हैं। नदियों के काँठों की उपजाऊ ज़मीन को 'खादर' कहते हैं और नदियों की पहुँच से बची सूखी ऊँची ज़मीन को 'बाँगर'। सतलज के खादर को जमना के खादर से ऊपर तो कुरुक्षेत्र का बाँगर अलग करता है, और नीचे जा कर उन दोनों के बीच राजपूताना के पहाड़ और जंगल तथा थर की मरुभूमि आ गयी है। सिन्ध के काँठे से गङ्गा के काँठे तक जाना हो तो इस थर और इन पहाड़ी जंगलों को लाँघना बहुत कठिन होता है। उनके बीच एकमात्र सुगम रास्ता कुरुक्षेत्र-पानीपत के तंग बाँगर में से ही है। इसी कारण यह बाँगर सिन्ध और गङ्गा के काँठों के बीच एक भारी नाका है। भारतवर्ष के इतिहास की अनेक भाग्य-निर्णायक लड़ाइयाँ इसी बाँगर में हुई हैं।

नक्शे पर देखने से सिन्ध और गङ्गा के काँठे के कई स्पष्ट हिस्से दिखाई पड़ते हैं। सिन्ध नदी ने ऊपर जहाँ अपनी पाँचों बाहें फैला रक्खी हैं वह पंजाब है। जहाँ उसका समूचा पानी सिमट कर एक धारा में आ गया है वह सिन्ध प्रान्त कहलाता है। गङ्गा-जमना का रुख शुरू में जहाँ दक्खिन-पूरब है, वही ठेठ हिन्दुस्तान या अन्तर्वेद है। बीच में जहाँ गङ्गा लगभग सीधी पूरब बहती है वह बिचला गङ्गा का काँठा बिहार कहलाता है। फिर जहाँ गङ्गा ने समुद्र

---

* कांठा = मैदान में किसी नदी के दोनों तरफ़ की भूमि। किसी नदी का काँठा यदि पहाड़ में घिरा हो तो उसे दून (द्रोणी) कहते हैं। अंग्रेजी में दोनों के लिए valley शब्द है।

की तरफ़ मुँह फेर कर अपनी बाहें फैला दी हैं और ब्रह्मपुत्र भी उसमें आ मिली है वह बङ्गाल प्रान्त है। ब्रह्मपुत्र का उपरला अकेला काँठा आसाम है।

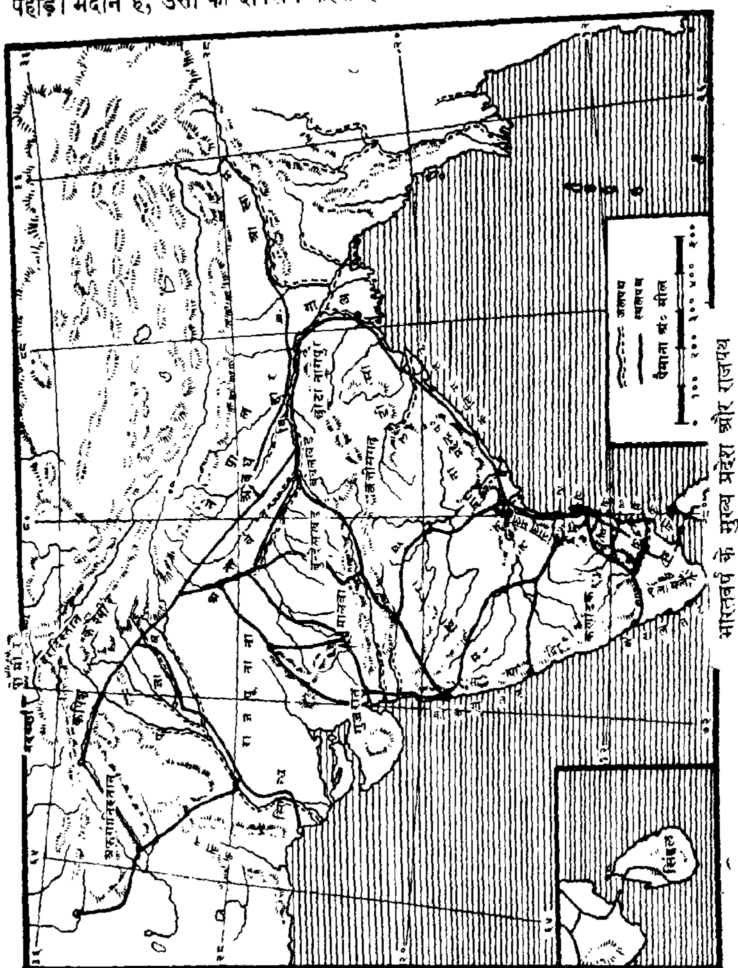
§३. **विन्ध्य-मेखला**—जमना और गङ्गा में बहुत सी नदियाँ दक्खिन तरफ़ से भी आ मिलती हैं। इन नदियों का निकास ज़मीन के उठान को सूचित करता है। गङ्गा के काँठे के दक्खिन यह जो उठान लगातार चला गया है, वह विन्ध्याचल की शृङ्खला या विन्ध्य-मेखला के कारण है। राजपूताने का प्रसिद्ध पहाड़ आड़ावला* तथा नर्मदा और तापी (ताप्ती) के बीच का सातपुड़ा पहाड़ भी विन्ध्यमेखला के ही बढ़ाव हैं। उस मेखला के उत्तरी अञ्चल को बनास, चम्बल, बेतवा, केन, सोन आदि नदियाँ धोती हैं। पच्छिमी अञ्चल को लूनी, साबरमती और मही; दक्खिनी अञ्चल को नर्मदा, तापी, वर्धा, वेणगङ्गा, महानदी और वैतरणी; तथा पूरबी अञ्चल को सुवर्णरेखा और दामोदर। इन नदियों के बीच आबू से पारसनाथ पहाड़ तक विन्ध्य-मेखला है।

इस मेखला के कई स्पष्ट टुकड़े हैं। पच्छिम से पूरब चलें तो सबसे पहले गुजरात-काठियावाड़ का हरा-भरा मैदान है जो विन्ध्य-मेखला की बग़ल में रह जाता है। उस के उत्तर-पूरब आड़ावला के चौगिर्द राजपूताना का प्रान्त है। फिर चम्बल और सिन्ध की दूनें मालवा के प्रसिद्ध पठार को सूचित करती हैं, जिस के दक्खिनी अञ्चल को नर्मदा और तापी धोती हैं। आगे बेतवा और केन के काँठों तथा नर्मदा के उपरले काँठे वाला टुकड़ा बुन्देलखण्ड है। उसके पूरब सोन का उपरला काँठा बघेलखण्ड है; और सोन के समानान्तर दक्खिन तथा नर्मदा-काँठे के पूरब, महानदी का उपरला काँठा छत्तीसगढ़ है। बघेल-खण्ड-छत्तीसगढ़ के पूरब विन्ध्य-मेखला का बाकी हिस्सा झाड़खण्ड या छोटा नागपुर है।

§४. **दक्खिन**—तापी, वर्धा, वेणगङ्गा, महानदी और सुवर्णरेखा के उपरले काँठों के दक्खिन, समुद्र की तरफ़ बढ़ा हुआ, जो तिकोना पठार यानी

* अंग्रेज़ी में इसे 'आड़ावला' लिखते हैं, जिसे अशुद्ध पढ़ कर लोगों ने 'अरवली' बना डाला है।

पहाड़ी मैदान है, उसी को दक्खिन कहते हैं। इस तिकोने के पच्छिमी किनारे



भारतवर्ष के मुख्य प्रदेश और राजपथ

के साथ-साथ पच्छिमी घाट या सह्याद्रि चला गया है, और पूरबी किनारे पर पूरबी घाट अथवा महेन्द्र और मलय पर्वत हैं। दक्खिन की सब बड़ी नदियाँ

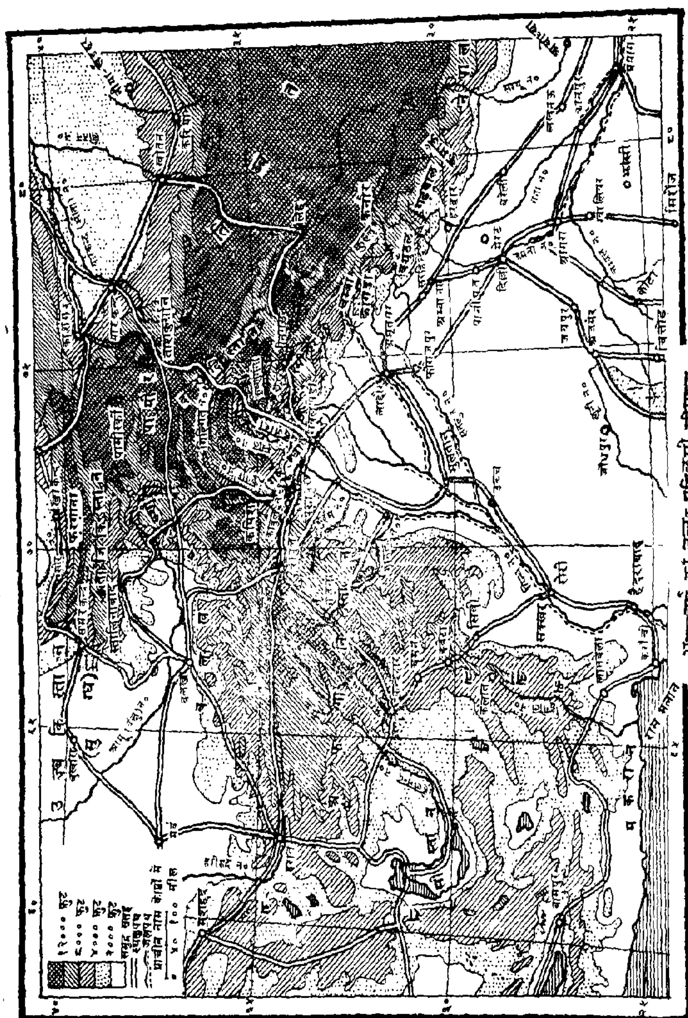
पच्छिम से पूरब बहती हैं। इस का यह अर्थ है कि पच्छिमी घाट के पूरब तरफ़ ढाल है, और पूरबी घाट की शृंखला बीच-बीच में ऐसी टूटी हुई है कि उस में से बड़ी नदियाँ लाँघ सकती हैं। पच्छिमी और पूरबी दोनों घाटों और समुद्रों के बीच मैदान की एक एक हरी किनारी है। पच्छिम तरफ़ की किनारी बहुत सँकरी है; पूरब का हाशिया अच्छा चौड़ा है। पच्छिमी मैदान की किनारी को, उत्तर वाले हिस्से में कोंकण और दक्खिन वाले हिस्से में केरल या मलबार कहते हैं। पूरबी किनारे का दक्खिनी अंश चोलमण्डल* और उत्तरी अंश कलिंग है।

कृष्णा नदी दक्खिन के पठार को दो हिस्सों में बाँटे हुए है। उस के उत्तर के हिस्से का पच्छिमी अंश महाराष्ट्र और पूरबी अंश कृष्णा-गोदावरी के मुहानों सहित तेलंगाना है। तेलंगाना के उत्तर-पूरब महानदी का निचला काँठा उड़ीसा है। कृष्णा के दक्खिन, पच्छिमी और पूरबी घाट एक दूसरे के निकट आते-आते नीलगिरि पर मिल गये हैं। उन के मेल से बना ऊँचा पठार मैसूर या कर्णाटक है। कर्णाटक के पूरब तट का मैदान चोलमण्डल या तामिल-देश है। नीलगिरि के दक्खिन और केरल तथा चोलमण्डल के बीच मलय पर्वत है। वह भी तामिल देश में है। समुद्र पार सिंहल द्वीप भी भारतवर्ष का एक हिस्सा है।

दक्खिन में मैदान के जो तंग फ़ीते हैं, वे उत्तर भारत के विशाल मैदान के मुकाबले में बहुत छोटे हैं। तो भी उनमें से कई बड़े उपजाऊ हैं। कोंकण और केरल तो मानो भारतवर्ष के बाग़ ही हैं। नारियल और केले के सिवाय लौंग, इलायची आदि मसालों के हरे-भरे पौधे भी केरल में ही होते हैं, और उस के पड़ोस का मलय-पर्वत अपने चन्दन और कपूर के जङ्गलों के लिए प्रसिद्ध है। चोलमण्डल का तट उपज और आबादी में गङ्गा के काँठे से कम नहीं है। तापी और वर्धा के उपरले काँठों—यानी बराड़ और खानदेश—की काली मिट्टी अत्यन्त उपजाऊ है, और उन में भारतवर्ष की सब से अच्छी

---

* अंग्रेज़ी कॉरोमंडल इसी का बिगड़ा हुआ रूप है।



भारतवर्ष का उत्तर-पच्छिमी सीमान्त

कपास पैदा होती है। इस के अलावा दक्खिन और विन्ध्य-मेखला के पहाड़ों में अनेक क़ीमती खानें हैं। पुराने ज़माने में तेलंगाना के इलाक़ों में गोलकुण्डा की हीरे की खान दुनिया भर में मशहूर थी। आजकल मैसूर रियासत में कोल्हार की सोने की खान वैसी ही प्रसिद्ध है।

§५. **हिमालय-हिन्दूकुश**—भारतवर्ष की उत्तरी सीमा पर जो बड़े-बड़े पहाड़ हैं, उन की शृंखलाओं के फैलाव के बीच भी अनेक आबाद बस्तियाँ और इलाक़े हैं। सिन्ध और ब्रह्मपुत्र दोनों नदियाँ हिमालय की पीठ पीछे कैलाश पर्वत के पास से निकलती हैं। दोनों उलटी दिशाओं को रवाना होतीं, और ७-८ सौ मील का सफ़र कर एकाएक भारत के मैदान की तरफ़ घूम पड़ती हैं। उन दोनों नदियों के उन मोड़ों को आजकल के विद्वान् हिमालय की पच्छिमी और पूरबी सीमा मानते हैं। हिमालय की गोद में पच्छिम से पूरब, हज़ारा, कश्मीर, काँगड़ा, कुल्लू, क्युंठल, गढ़वाल, कुमाऊँ, नेपाल, भूटान आदि रमणीक प्रदेश हैं।

भारतवर्ष के उत्तर-पूरब जो पहाड़ हैं उन की पच्छिमी तलैटी ही हमारे देश की सीमा है। इस कारण उनके अन्दर के प्रदेशों से हमें मतलब नहीं। उत्तरी बंगाल के आगे ब्रह्मपुत्र का और पूरबी बंगाल के आगे सुरमा नदी का काँठा उत्तर-पूरबी सीमान्त पहाड़ों के अन्दर तक मैदान को बढ़ा ले गया है। वैसे तो हाल तक भारतवर्ष के ब्रिटिश साम्राज्य में बरमा भी शामिल रहा है, किन्तु असल में वह परले हिन्द का एक देश है, भारतवर्ष का नहीं।

उत्तर-पच्छिम के पहाड़ी इलाक़े बड़े महत्त्व के हैं। सिन्ध नदी में पच्छिम तरफ से गिल्गित, स्वात, कुनार, काबुल, कुर्रम, गोमल आदि नदियाँ हिन्दूकुश और अफ़गानिस्तान का धोवन लाती हैं। भूमि की बनावट की दृष्टि से इन की दूनें भी भारतवर्ष का भाग हैं। आजकल भारतवर्ष और अफ़गानिस्तान के राज्य अलग-अलग हैं, किन्तु पिछले ज़मानों में वे प्रायः इकट्ठे रहे हैं। पामीर और अफ़गानिस्तान के पठारों के उत्तरी छोर असल में भारतवर्ष की उत्तर-पच्छिमी सीमा है। पामीर का पठार—जिसे दुनिया की छत कहा जाता है—हमारे देश के मस्तक पर मुकुट के समान है। उस के पच्छिमी धोवन को

लिये हुए, हिन्दुकुश के उस पार, आमू दरिया बहता है। उसी का पुराना नाम वंक्षु है। पामीर का पूरबी पानी रस्कम या यारक़न्द दरिया में जाता है, जिस का पुराना नाम सीता है। सीता नदी आगे चल कर तारीम में जा मिली है। आमू दरिया पामीर में से निकल कर बदख़्शाँ और बलख़ प्रदेशों की उत्तरी सीमा बनाता गया है। पामीर के पच्छिम बदख़्शाँ है और फिर बलख़। तीनों हिन्दूकुश के उत्तर सटे हुए हैं। वंक्षु, सीता और तारीम के काँठों से हमारे देश का बड़ा सम्बन्ध रहा है। हिन्दूकुश के इस तरफ़, उसके और काबुल नदी के बीच, काफ़िरिस्तान और यागिस्तान (गान्धार) प्रदेश हैं। फिर हिन्दूकुश, पामीर और कृष्णगङ्गा*-दून के बीच दरद-देश या दरदिस्तान। काबुल नदी के दक्खिन, हेलमन्द नदी के बिचले काँठे और सुलेमान पहाड़ तक ठेठ अफ़ग़ानिस्तान है। सुलेमान के किनारे से सिन्ध के मैदान की एक नोक—जिस में सिबी की बस्ती है—पहाड़ों में पच्चर की तरह बढ़ी हुई है। उसी नोक के ऊपर बोलान दर्रा है। सिन्ध के मैदान के पच्छिम, पहाड़ों में, कलात और लासबेला प्रदेश हैं। वे प्रदेश तथा उनके पच्छिम ठेठ बिलोचिस्तान का पूरबी अंश मिला कर आजकल भारतीय साम्राज्य का बिलोचिस्तान प्रान्त बनता है। ठीक-ठीक कहें तो कलात-लासबेला के पच्छिम का प्रदेश हमारे देश का हिस्सा नहीं है। इस तरफ़ हिंगोल नदी और रास (अन्तरीप) मलान हमारे देश की सीमाएँ रही हैं।

यदि हम भारतवर्ष के उत्तरी और उत्तर-पच्छिमी सीमान्त पर ध्यान दें तो दोनों में एक स्पष्ट भेद दिखाई देता है। हिमालय के उस पार तिब्बत है, जो एक लम्बा-चौड़ा और बीहड़ पठार है। किन्तु इधर हिन्दूकुश के उस पार आमू और सीर दरिया के काँठे गङ्गा-जमना के काँठों की तरह हैं। पामीर के पूरब सीता और तारीम का काँठा भी खुला मैदान है। आमू-सीर और तारीम के मैदानों तथा सिन्ध के मैदान के बीच जो पहाड़ी बाँध है वह तिब्बत के पहाड़ी बाँध से बहुत कम चौड़ा है। इसी कारण हिमालय और तिब्बत के आरपार

* जेहलम में उत्तर-पच्छिम से आ कर मिलने वाली नदी।

भारतवर्ष का दूसरे देशों के साथ वैसा सम्बन्ध नहीं रहा, जैसा कि हिन्दूकुश-पामीर के रास्ते से।

§६. **समुद्र**—भारतवर्ष को तीन तरफ़ से घेरने वाला समुद्र बड़े महत्त्व का है। उस के द्वारा विदेशों से भारतवर्ष का सम्बन्ध बहुत पुराने समय से रहा है। आजकल के जहाज़ महासागरों में भी चलते हैं, पर पुराने समय का समुद्री व्यापार-पथ प्रायः तट के साथ-साथ था। एशिया के नक्शे पर ध्यान देने से मालूम होगा कि भारतवर्ष के एक तरफ़ आफ्रिका, अरब और ईरान हैं, तो दूसरी तरफ़ हिन्दचीन, सुमात्रा-जावा और चीन। अमेरिका को हम नयी दुनिया कहते हैं। इधर पुरानी दुनिया के लोगों को उस का पता कोई साढ़े चार सौ बरस से मिला है। लेकिन जो पुरानी दुनिया के सभ्य देश थे, उनके समुद्री रास्तों के ठीक बीचोंबीच भारतवर्ष पड़ता था। इसी कारण वह सभ्य जगत् के समुद्री व्यापार का सदा केन्द्र रहा।

§७. **भौमिक परिस्थिति का जीवन पर प्रभाव, भारतवर्ष की विविधता में एकता**—हमारा देश विशाल है, और उसमें अनेक प्रकार के प्रदेश हैं। कहीं खुले विस्तृत मैदान हैं तो कहीं तंग पहाड़ी दूनें; कहीं हरे-भरे खादर हैं तो कहीं बंजर मरुभूमि, इत्यादि। विविध प्रदेशों की भौमिक परिस्थिति का प्रभाव वहाँ के निवासियों के जीवन पर भी पड़ता है। किन्तु हमारे देश की बनावट में कुछ बातें ऐसी भी हैं जो इस की विविधता में गहरी एकता पैदा कर देती हैं। समुद्र और हिमालय, जो कि इस की सीमाएँ हैं, इसे स्पष्ट एक देश बना देते हैं। फिर वही समुद्र और हिमालय मानो हमारे समूचे जीवन को भी चलाते हैं। समुद्र से गर्मी में जो भाप के बादल उठते हैं, वे हिमालय को नहीं लाँघ पाते। वे या तो लौट कर भारत के मैदानों पर बरसते हैं, या हिमालय की गोदी में बरफ़ बन कर बैठ जाते और फिर नदियों के रूप में उन्हीं मैदानों को सींचते हुए समुद्र में वापिस जा पहुँचते हैं। समुद्र और हिमालय के बीच पानी उछालने का जो यह खेल लगातार चलता है, इसी से हमारी सर्दी-गर्मी और बरसात की ऋतुएँ होती हैं, हमारी खेती-बारी होती है और हमारी नदियों के तथा उन के द्वारा हमारे वाणिज्य-व्यापार के रास्ते

निश्चित होते हैं। समूचे भारत की ऋतु-पद्धति इसी कारण एक है। सच कहें तो उत्तर भारत का विशाल खादर हिमालय की ही देन है। वह नदियों द्वारा बहा कर लाई हुई उसी की मिट्टी से बना है। नदियों के किनारे ही प्रारम्भिक बस्तियाँ बसीं और नदियों के द्वारा ही उन में परस्पर व्यापार चलता रहा है। स्थल के रास्ते भी मनमानी दिशा में नहीं जा सकते, वे नदियों, पहाड़ों आदि की बनावट देख कर चलते हैं। इसी कारण हमारे देश में बहुत पुराने समय से कई एक प्रमुख रास्ते चले आते हैं, और उन की सामान्य दिशा सदा एक सी रही है।

§८. **उत्तर भारत के मुख्य राजपथ**—उनमें सब से मुख्य वह रास्ता है जो उत्तर-भारतीय मैदान को आरपार पच्छिम से पूरब लाँघता है। अटक (सिन्ध नदी) के पच्छिम से चल कर, पंजाब की नदियों को उथले घाटों पर लाँघता हुआ, कुरुक्षेत्र के बाँगर में से हो कर, वह गङ्गा के काँठे में पहुँचता है और फिर बनारस के पास गङ्गा के दक्खिन उतर कर उसके दाहिने किनारे के साथ-साथ बंगाल के बन्दरगाहों तक जा निकलता है। कुरुक्षेत्र के बाँगर के अतिरिक्त उस रास्ते के दो और बड़े नाके हैं। एक तो सिन्ध और जेहलम नदी के बीच, जहाँ वह नमक-पहाड़ियों की शृंखला को लाँघता है; दूसरे बिहार और बंगाल की सीमा पर मुंगेर से राजमहल तक, जहाँ गङ्गा तक बढ़ी हुई झाड़खंड की पहाड़ियाँ उसे तंग दर्रों में से गुज़रने को बाधित करती हैं।

अन्तर्वेद से इस राजपथ की एक बड़ी शाखा हिमालय के नीचे-नीचे अवध से आसाम तक चली गयी है। उसी प्रकार एक बड़ी शाखा पंजाब से सिन्ध की तरफ़ पंजाब की नदियों की दिशा में गयी है। इस मुख्य राजपथ से उत्तर तरफ़ अनेक छोटे रास्ते हिमालय की ओर बढ़ते हैं।

§९. **सीमान्त के रास्ते**—उत्तर-पच्छिमी और उत्तर-पूरबी सीमान्तों के रास्ते उत्तर भारत के राजपथ के ही बढ़ाव हैं। जेहलम और अटक के बीच से उस राजपथ में से फट कर एक हिमालय-गामी रास्ता, जेहलम-दून के द्वारा, कश्मीर में घुसता है। उसी के पड़ोस से रास्तों का एक समूह सीधा सिन्ध-दून के ऊपर को, अथवा सिन्ध पार कर स्वात या कुनार की दून में चढ़ता है, और

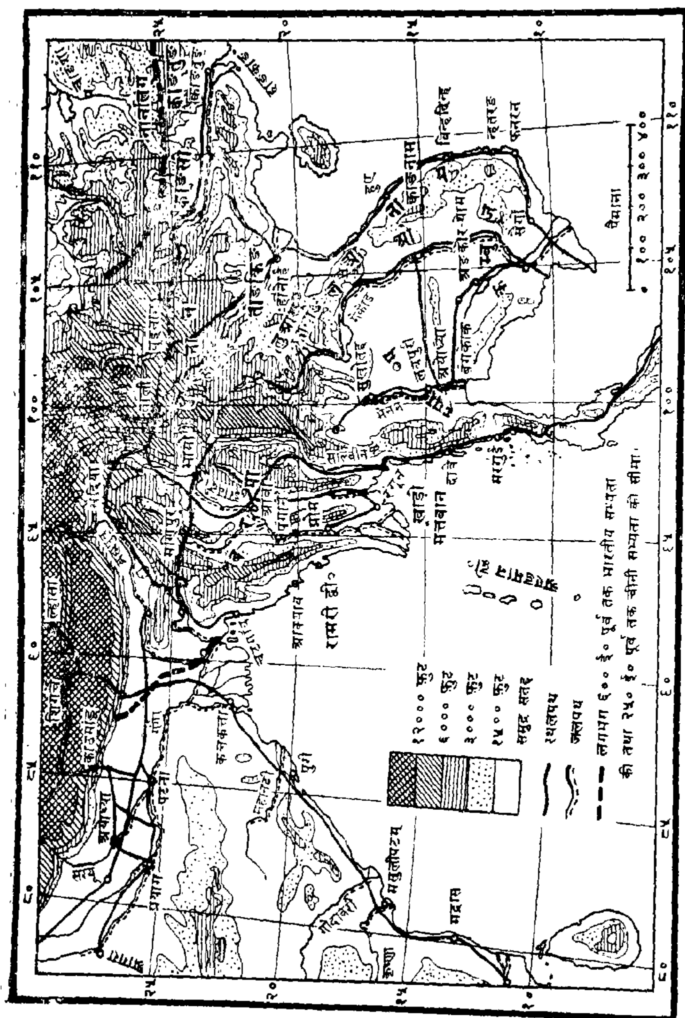
आगे बढ़ कर हिन्दूकुश के घाटों को लाँघता हुआ बदख़्शाँ या पामीर में जा पहुँचता है। उस की शाखाएँ बदख़्शाँ से आमू के काँठे में और पामीर में से पूरब उतर कर सीता और तारीम के काँठों में चली जाती हैं। जेहलम से कुनार तक के पहाड़ी-प्रदेश का पुराना नाम गान्धार है, इसलिए इन रास्तों को गान्धार के रास्ते कहना चाहिए।

सीमान्त के रास्तों का दूसरा बड़ा समूह अफ़ग़ानिस्तान में से गुज़रता है। उनमें से एक प्रसिद्ध रास्ता काबुल नदी का है। आजकल वह अटक से काबुल नदी के दक्खिन—पेशावर और ख़ैबर हो कर—बढ़ता है। पुराने समय में वह काबुल नदी के ठीक साथ-साथ जाता था। आगे काबुल के उपरले स्रोतों से हिन्दूकुश पर चढ़ कर वह आमू के स्रोतों के साथ बलख़ और आमू-मैदान में उतर जाता है। कुर्रम की दून से भी अफ़ग़ानिस्तान में घुसने का रास्ता है। एक और व्यापार-पथ वह है जो डेरा-इस्माइलख़ाँ से गोमल के रास्ते ग़ज़नी और कन्दहार की तरफ़ बढ़ता है। और नीचे एक रास्ता सक्खर, सिबी, और दर्रा बोलान के निर्जल प्रदेश में से हो कर कन्दहार को, और कन्दहार से हरात को, अफ़ग़ान पहाड़ों के दक्खिन-दक्खिन चला गया है। सिन्ध के मैदान के ठीक पच्छिम क़लात और खीरथर पहाड़ों में से लाँघने वाले रास्ते बड़े विकट हैं। कराची से तट के साथ-साथ भी मकरान द्वारा पच्छिम जाने का एक रास्ता है।

उत्तर-पूरबी सीमान्त पर रास्तों के तीन स्पष्ट समूह हैं। पहला उपरले ब्रह्मपुत्र काँठे से पतकोई पहाड़ों को पार कर चिन्दविन, इरावती, सालवीन या मेकौङ की उपरली दूनों में पहुँचता, और उन नदियों के साथ हिन्दचीन के हरे-भरे खुले मैदान में उतर जाता है। दूसरा सुरमा के काँठे से मणिपुर के पहाड़ लाँघ कर चिन्दविन और इरावती के काँठों में पहुँचता है और फिर उन के साथ, अथवा और पूरब बढ़ कर सालवीन या मेकौङ के साथ, दक्खिन उतरता है। तीसरा चटगाँव से समुद्र-तट के साथ-साथ जाता है।

§१०. **विन्ध्य-मेखला के रास्ते**—उत्तर भारत को गुजरात और दक्खिन से मिलाने वाले रास्ते सब विन्ध्य-मेखला को लाँघ कर जाते हैं। सिन्ध से सीधा

गुजरात भी जा सकते हैं; पर बीच में थर का दक्खिनी छोर और कच्छ का रन



भारतवर्ष का पूरबी सीमान्त

पड़ने से वह रास्ता बहुत कठिन है। कच्छ का रन असल में उथला कीचड़ है जिसे झाड़-झंखाड़ ने और भी बीहड़ बना दिया है। इसी कारण पंजाब से यदि गुजरात या महाराष्ट्र जाना हो तो दिल्ली और राजपूताना या दिल्ली और मालवा के रास्ते जाना होता है। इस प्रकार कुरुक्षेत्र-पानीपत का नाका जैसे पंजाब से गङ्गा-काँठे के रास्ते पर काबू करता है, वैसे ही वह पंजाब और दक्खिन के बीच के रास्तों को भी दबाये हुए है।

अजमेर का नाका, ठीक बीच में, राजपूताना के रास्ते पर काबू करता है। वहीं वह रास्ता आड़ावला को पार कर उसके पच्छिम जा निकलता है, और वहीं से उसकी एक शाखा सीधे दक्खिन मालवा को चली जाती है। मालवा का रास्ता, ठेठ हिन्दुस्तान और दक्खिन के ठीक बीच पड़ने से, विन्ध्य-मेखला के रास्तों में सब से मुख्य रहा है। मालवा से निकल कर उस रास्ते की एक शाखा पच्छिमी तट के बन्दरगाहों को चली जाती है। और दूसरी नर्मदा और तापी को उपरले घाटों पर लाँघ कर बराड़ पहुँचती है, और फिर वर्धा नदी के साथ पूरबी तट को जाती है। प्रयाग के पास से दक्खिन जाना चाहें तो बुन्देलखण्ड लाँघ कर जाते हैं। किन्तु यदि उस के और पूरब, बिहार से दक्खिन जाना हो तो छोटा नागपुर को लाँघने के बजाय उस का चक्कर लगा कर, बङ्गाल-उड़ीसा हो कर, जाना सुगम होता है। इसी कारण छोटा नागपुर या झाड़खंड को उत्तर से दक्खिन या दक्खिन से उत्तर जाने वाले विजेताओं ने बहुत कम लाँघा है, और उसके जंगलों में आज तक भी बहुत सी जंगली जातियाँ आराम से रहती आ रही हैं। बङ्गाल से उड़ीसा होता हुआ समुद्रतट के साथ-साथ जाने वाला रास्ता बहुत सुगम है।

§११. **दक्खिन के रास्ते**—पूरबी तट के इस रास्ते के सिवाय दक्खिन भारत के सब प्रमुख रास्ते उस की नदियों के बहाव के साथ-साथ पच्छिम से पूरब जाते हैं। एक तापी के घाटों को गोदावरी के मुहाने से, दूसरा उत्तरी महाराष्ट्र को कृष्णा के मुहाने से, तीसरा दक्खिनी महाराष्ट्र और कर्णाटक को कावेरी के मुहाने से, तथा चौथा केरल को कावेरी या वैगै के मैदान से

मिलाता है। यह अन्तिम रास्ता नीलगिरि और मलयगिरि के बीच पालक्काड* से गुज़रता है।

गोदावरी और कृष्णा के रास्तों के बीच पड़ने से गोलकुण्डा-हैदराबाद-पठार का बड़ा महत्त्व है। उसी प्रकार कृष्णा-तुंगभद्रा का दोआब महाराष्ट्र और कर्णाटक के रास्तों पर बीचोंबीच काबू करने से बड़े महत्त्व का है। यह दोआब तो दक्खिन का कुरुक्षेत्र है। इस हिसाब से महाराष्ट्र दक्खिन भारत का अफ़ग़ानिस्तान है, और चोलमण्डल उसका गङ्गा का मैदान। महाराष्ट्र के पठार से कोंकण तट के बन्दरगाहों तक जाने को सह्याद्रि के ऊँचे घाट लाँघने पड़ते हैं। घाटों के वे तंग रास्ते भी महत्त्व के हैं और उनकी तुलना हिन्दूकुश और आमू-काँठे के बीच के घाटों से हो सकती है।

§१२. **भू-परिवर्तन**—भूमि-सम्बन्धी अवस्थाएँ मनुष्यों के जीवन पर प्रभाव डालती हैं, किन्तु वे अवस्थाएँ स्वयं भी बदलती रहती हैं। पहाड़ की बनावट में भूकम्प आदि के बिना परिवर्तन नहीं होते, पर नदियों के रास्तों और समुद्रतट की शकल प्रायः बदला करती है। बङ्गाल में तामलूक, ताम्रपर्णी के मुहाने पर कोरकई, और सिन्ध में ठट्ठा पिछले युगों में बन्दरगाह थे; पर अब वे सब सूखे में हैं। बहुत पुराने समय में राजपूताने का थर उथला समुद्र था और सरस्वती नदी उसी में मिलती थी।

नदियाँ भी प्रायः अपने रास्ते बदला करती हैं। बाईस सौ वर्ष पहले पटना शहर गङ्गा और सोन के संगम पर था। आज सोन उस के बारह मील पच्छिम खसक गया है। ब्यास नदी बहुत पुराने समय में आजकल की तरह सतलज में मिलती थी; फिर बहुत समय तक वह अपनी धारा बदल कर मुलतान के नीचे चिनाब में मिलती रही। मनुष्य अपने हाथों भी भूमि-सम्बन्धी अवस्थाओं को बहुत-कुछ बदल लेता है। जङ्गल काट कर, नहरें निकाल कर, तालाब बाँध कर और दलदलें सुखा कर वह ज़मीन की शकल बदल डालता और वर्षा के परिमाण को भी बहुत-कुछ घटा-बढ़ा देता है। भारतवर्ष के सब उपजाऊ मैदान पहले घने जङ्गल थे, और हमारे पुरखों ने शताब्दियों मेहनत करके उन्हें साफ़ किया था।

* अंग्रेज़ी रूप—पालघाट।

अध्याय २

भारतवर्ष के निवासी

§१. **भारतवर्ष की भाषाएँ**—भारतवर्ष बहुत बड़ा देश है। उस में कई जातियों के लोग रहते हैं। भिन्न-भिन्न जातियों के लोगों को उन की बोलचाल से पहचाना जा सकता है। कहावत है कि "कोस-कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी।" किन्तु बोलचाल की वाणी चाहे चार कोस पर बदल जाय, लिखने-पढ़ने की भाषा बहुत दूर तक एकसी रहती है। हमारे अन्तर्वेद (युक्त प्रान्त) यानी ठेठ हिन्दुस्तान में लिखने-पढ़ने की भाषा हिन्दी-उर्दू है। हिन्दी और उर्दू असल में एक ही भाषा के दो नाम हैं। नागरी अक्षरों या लिपि में लिखने से वह हिन्दी कहलाती है, फ़ारसी लिपि में लिखने से उर्दू। बिहार, राजपूताना और बुन्देलखण्ड-छत्तीसगढ़ (मध्य प्रान्त) में भी हिन्दी-उर्दू का चलन है। बङ्गाल के लोग बंगला पढ़ते-लिखते हैं, और आसाम के असामिया। गुजरात में गुजराती चलती है और महाराष्ट्र में मराठी। भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इस प्रकार कुल जो भाषाएँ जारी हैं उन्हें अगले नक़्शे में दिखलाया गया है। भारतवर्ष की सब बड़ी-बड़ी भाषाओं में दो साधारण सी बातें किस प्रकार कही जाती हैं, उस का एक नमूना परिशिष्ट १ में दिया गया है।

इन नमूनों की ध्यान से तुलना करने पर प्रकट होगा कि भारतवर्ष की बहुत सी भाषाओं का एक दूसरी पर बड़ा सम्बन्ध है। हिन्दी, बङ्गला, उड़िया, असामिया, गुजराती, पहाड़ी, मराठी, सिंहली, सिन्धी, पंजाबी, कश्मीरी और पश्तो भाषाएँ एक ही माँ की बेटियाँ हैं। जहाँ आजकल ये भाषाएँ बोली जाती हैं, वहीं पहले ज़मानों में संस्कृत, पालि और कई प्राकृतें बोली जातीं थीं। वे इन सब की पूर्वज थीं और उन की जड़ भी शुरू में एक थी। इन सब भाषाओं के समूह को हम आर्य भाषाएँ कहते हैं।

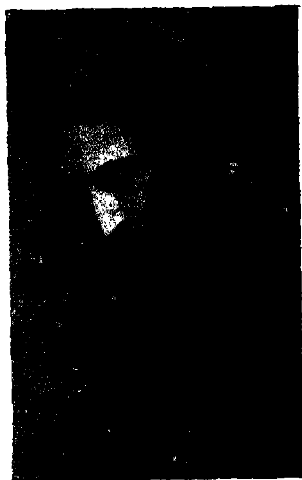
भारतवर्ष की भाषाएँ

आर्य भाषाएँ
द्राविड भाषाएँ
मुंड भाषाएँ
किरात भाषाएँ
अन्य भाषाएँ
भाषा सीमा
—x—x—x— दरद भाषा की प्राचीन पूर्वी सीमा

["भारतभूमि और उसके निवासी" के आधार पर]

टिप्पणी—दक्खिन की द्राविड भाषाओं के अतिरिक्त कलात में ब्राहूई नामक एक द्राविड बोली है, तथा गंगा और गोदावरी के बीच कई जगह एक द्राविड बोली—गोंडी—है। पामीर की गल्चा बोलियाँ आर्य हैं।

§२. **आर्य और द्राविड जातियाँ**—आर्य और द्राविड भाषाएँ बोलने वालों के पुरखा अलग-अलग जातियों के थे। उन जातियों के रंग-रूप में भी फ़रक़ था। आर्यों के ख़ास चिन्ह हैं—रंग गोरा या गेहुँआँ, क़द ऊँचा, माथा उभरा हुआ, नाक लम्बी और नुकोली, दाढ़ी-मूंछ भरपूर। काला रङ्ग, क़द कुछ कम और चौड़ी नाक द्राविडों की विशेषताएँ हैं। किन्तु ऐसा न समझना चाहिए कि आज जो लोग आर्य भाषाएँ बोलते हैं, वे सब पुराने आर्यों की ही सन्तान हैं, और जो द्राविड भाषाएँ बोलते हैं वे द्राविडों की ही। दोनों जातियों में परस्पर मिश्रण भी खूब हुआ है। दोनों की भाषाओं का भी एक दूसरे पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। बहुत लोगों ने अपनी असल भाषा छोड़ कर, जहाँ बस गये, वहाँ की प्रधान भाषा अपना ली। आज भारतवर्ष में ७६·५ फ़ी सदी आर्यभाषी, और २०·५ फ़ी सदी द्राविडभाषी हैं। बाकी ३ फ़ी सदी और जातियाँ हैं।



आर्यावर्ती आर्य

[श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के सौजन्य से]



द्राविड

[श्री आ० अय्यप्पन के सौजन्य से]

द्राविड भाषाओं का भारतवर्ष के बाहर और किसी भाषा से रिश्ता-नाता नहीं दिखायी देता। किन्तु आर्य भाषाओं का परिवार बहुत बड़ा है। ईरान और युरोप की सब मुख्य-मुख्य भाषाएँ इसी

वंश की हैं। इन सब भाषाओं को बोलने वाली जातियों के पुरखा शुरू में कहीं एक जगह रहते होंगे। आर्य जाति का वह आदिम घर कहाँ था, इस पर अनेक अटकलें लगायी गयी हैं। मध्य एशिया, पच्छिमोत्तर युरोप, उत्तरी ध्रुव, गङ्गा-काँठा, आमीनिया, युराल, दान्यूब-काँठा या साइबेरिया को—विभिन्न विद्वानों ने आर्यों का मूल अभिजन होने का अन्दाज़ लगाया है। फ़िलहाल इस विषय का निपटारा नहीं हो सकता।

§३. **किरात जाति**—भारतवर्ष की जन-संख्या की तीन फ़ी सदी गौण जातियों के विषय में भी हमको कुछ जानना आवश्यक है। इन में से आधे से कुछ अधिक एक ऐसी जाति के लोग हैं, जो हिमालय के उत्तरी अंचल में और आसाम के कुछ हिस्सों में पाये जाते हैं। इनकी भाषाएँ तिब्बत और बरमा की भाषाओं से मिलती हैं; उन भाषाओं और उन के बोलने वालों को आजकल के विद्वान् तिब्बती-बर्मी कहते हैं। उन का पुराना नाम किरात है। किरात और चीनी जाति मिला कर मनुष्य जाति का एक बड़ा वंश बनता है, जिसे चीन-किरात (Tibeto-Chinese) कहते हैं। चीन-किरात वंश की मुख्य पहचान यह है कि उन की नाक की जड़ कुछ चपटी, गालों की हड्डियाँ उभरी हुई, दाढ़ी-मूंछ न के बराबर तथा चेहरा चपटा होता है। हमने भारतीय किरातों की जो संख्या बतलायी है उस में केवल उनकी गिनती की है जो अब भी किरात भाषाएँ बोलते हैं। किन्तु आसाम और बङ्गाल और पहाड़ की जनता में बहुत से आर्य-भाषी भी हैं जिन की नसों में अंशतः चीन-किरात खून बहता है।



भारतीय किरात
[रिज़्ली के आधार पर]

§४. **मुंड या कोल जाति**—दूसरी गौण जाति का नाम मुंड है। मुंड भाषाएँ बोलने वाले विशेष कर उड़ीसा के पास झाड़खण्ड में रहते हैं।

सन्थाल, मुंडा, शबर आदि उन में से मुख्य हैं। उन्हें बहुत लोग कोल भी कहते हैं। शकल-सूरत में वे लोग द्राविड़ों के से हैं, पर उन की बोली बिलकुल



मुंडा [पटना म्यूज़ि०]

अलग है। भारतवर्ष में वे थोड़े हैं, किन्तु बाहर उन का परिवार बहुत दूर-दूर तक फैला है। आज भी हिन्दचीन में उनका बड़ा अंश मौजूद है, पर किसी ज़माने में तो वहाँ उन्हीं का परिवार फैला था। प्रशान्त महासागर के द्वीपों में भी उसी वंश के लोग हैं। उस परिवार के लोग संसार के आग्नेय अर्थात् दक्खिन-पूरबी कोण में रहते हैं, इसलिए आजकल के विद्वानों ने उन का नाम आग्नेय (Austric) वंश रक्खा है*। मुंड जाति इसी वंश की एक शाखा है। भारतवर्ष में उस के बहुत से लोग आर्य और द्राविड भाषाएँ बोलने वालों में मिल गये हैं। भारतवर्ष के सब से पुराने निवासी शायद वही हैं।

§५. **भारतवर्ष की लिपियाँ और भारतीय वर्णमाला**—हमने अभी तक अपने देश की भाषाओं पर ध्यान दिया है। वे भाषाएँ किन लिपियों में लिखी जाती हैं, यदि हम इस ओर ध्यान दें तो हमें कई काम की बातें मालूम होंगी।

हिन्दी, मराठी, पर्वतिया और कश्मीरी की लिखावट बिलकुल एक सी है। वे चारों अब नागरी लिपि में लिखी जाती हैं। नागरी और बङ्गला तथा नागरी और गुजराती में थोड़ा-थोड़ा अन्तर दिखायी देता है। असल बात यह है कि तीनों के अक्षर बिलकुल एक हैं। नागरी में जैसे अ, आ, इ, ई,……क, ख, ग,…हैं, ठीक वैसे ही गुजराती में और वैसे ही बङ्गला में। दक्खिन की भाषाओं की लिखावट तो नागरी से बहुत भिन्न दिखाई देती है, पर वर्णमाला

* यह विषय अब कुछ विवाद-ग्रस्त है।

उनकी भी वही है। बात यह है कि पहले सारे भारत में एक ही लिपि थी और विद्यमान सब लिपियाँ उसी से निकली हैं। वर्णमाला उन सब की अब भी वही एक है। वह वर्णमाला पहले आर्य भाषाओं की थी, पीछे द्राविड भाषाओं

नागरी	अ	इ	उ	ए	क	का	कि	कु	के
गुजराती	અ	ઇ	ઉ	એ	ક	કા	કિ	કુ	કે
गुरमुखी	ਅ	ਇ	ਉ	ਏ	ਕ	ਕਾ	ਕਿ	ਕੁ	ਕੇ
बंगला	অ	ই	উ	এ	ক	কা	কি	কু	কে
उड़िया	ଅ	ଇ	ଉ	ଏ	କ	କା	କି	କୁ	କେ
तेलुगु	అ	ఇ	ఉ	ఎ	క	కా	కి	కు	కె
कनाडी	ಅ	ಇ	ಉ	ಎ	ಕ	ಕಾ	ಕಿ	ಕು	ಕೆ
तामिल	அ	இ	உ	எ	க	கா	கி	கு	கெ
मलयालम	അ	ഇ	ഉ	എ	ക	കാ	കി	കു	കെ
सिंहली	අ	ඉ	උ	එ	ක	කා	කි	කු	කෙ
तिब्बती	ཨ	ཨི	ཨུ	ཨེ	ག		གི	གུ	གེ
म्यम्म (बरमी)	အ	ဣ	ဥ	ဧ	က	ကာ	ကိ	ကု	ကေ
स्यामी	อ	อิ	อุ	เอ	ก	กา	กิ	กุ	เก

ने भी उसे अपना लिया। आर्य और द्राविड जातियों में एक दूसरे से किस प्रकार मेल-जोल हुआ है उस का यह भी एक नमूना है। भारत के बाहर बरमा, तिब्बत, स्याम और कम्बुज (कम्बोदिया) आदि की भाषाओं ने भी हमारी वर्णमाला को अपना रक्खा है। यह कैसे हुआ, सो हम आगे चलकर देखेंगे।

अध्याय २

सभ्यता का विकास और उसका इतिहास जानने के साधन

§१. **हमारे पुरखों की विरासत**—हमारा देश कैसा है, और उसमें रहने वाले लोग कौन-कौन हैं, यह हम ने देखा। हमारे पुरखा अधिकतर दो जातियों के थे—एक आर्य, दूसरे द्राविड। हमारे पुरखों का ब्यौरेवार वृत्तान्त ही हमारे देश का इतिहास है। ज़रा विचार कर देखें—हमारे पुरखों का हम पर कितना एहसान है! आज जिन खेतों से हमें खाने को अनाज मिलता है, उन्हें दो चार बरस ख़ाली छोड़ दें तो उन की क्या हालत हो? जङ्गली झाड़ उन्हें घेर लें और जङ्गली जानवर उनमें मँडराने लगें! भारतवर्ष के सब उपजाऊ प्रदेश शुरू में वैसे ही डरावने जङ्गल थे और हमारे पुरखों ने बड़ी मेहनत कर उन्हें आबाद किया था। अनेक बार अपना ख़ून बहाकर उन्होंने उन की रक्षा की थी। जिन कुओं, तालाबों, झीलों और नहरों से आज हमारे खेतों और बग़ीचों की सिँचाई होती है, वे सब उन्हीं की मेहनत का फल हैं। जिन रास्तों से हमारा आना-जाना और वाणिज्य-व्यापार होता है, जिन क़िलों और गढ़ों से देश की रक्षा होती है और जिन बस्तियों में हम आराम से रहते हैं, वे सब उन्हीं की रचनाएँ हैं। इन बाहरी चीज़ों का क्या कहना, हमारी जो बोल-चाल, रहन-सहन और रीति-रिवाज हैं, वे सब भी हमारे पुरखों के चलाये हुए हैं। जो ज्ञान पाकर हम शिक्षित कहलाते हैं, वह भी अधिकांश हमारे पुरखों की खोज और मेहनत से संचित हुआ था। आज हमारी जो मानसिक निधि है वह भी बहुत-कुछ उन्हीं की विरासत है।

हमारे देश की चप्पा-चप्पा भूमि हमारे पुरखों के महान् कार्यों की याद दिलाती है। उन के उन कार्यों का वृत्तान्त हमें अपने इतिहास में मिल

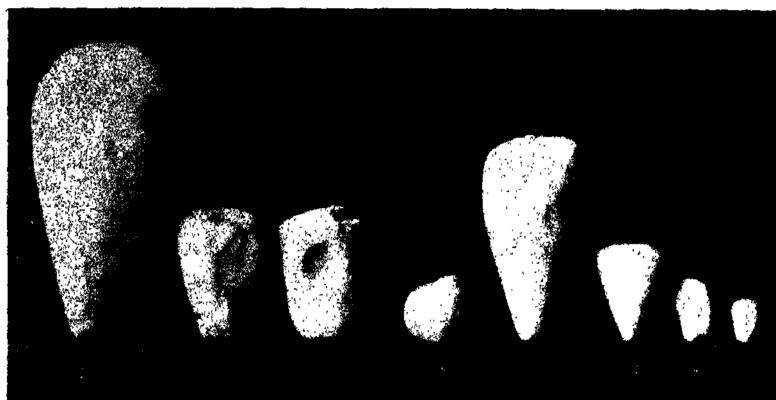
सकता है। सच्चे इतिहास से हमें न केवल उनकी खूबियाँ प्रत्युत उनकी ग़लतियाँ भी मालूम होंगी। और यदि हममें बुद्धि है तो हम उनके अनुभव से लाभ उठा कर उनकी ग़लतियों से बचेंगे और उनके गुणों का अनुसरण करेंगे। मनुष्य का मनुष्यत्व इसी में है कि वह अपने पुरखों के ज्ञान से लाभ उठाता और उसे आगे बढ़ाता है। इसी प्रकार मनुष्य की सभ्यता में उन्नति होती चली आती है।

§२. **मानव सभ्यता का विकास**—मनुष्य सब प्राणियों में श्रेष्ठ कहा जाता है। उसकी श्रेष्ठता इस बात में है कि उसमें सोचने-विचारने की शक्ति है। इसके अलावा दूसरे बहुत से जानवरों से उसमें एक और भी विशेषता है। वह यह कि वह दोपाया है। मनुष्य सामूहिक प्राणी है, और बड़ा अनुकरणशील है। एक मनुष्य जो काम करता है उसे दूसरा भी जल्द सीख लेता है। सामूहिक प्राणी होने के कारण मनुष्य अकेले-अकेले नहीं रहते। उनके झुंड या गिरोह शुरू से रहे हैं जो बाद में जातियाँ बन गये। संसार के सब जन्तुओं में और जन्तुओं के झुंडों में लगातार जीवन की जद्दोजहद चल रही है, जिसमें प्रबल और योग्य की विजय होती है और कमज़ोर और निकम्मे मारे जाते हैं।

मनुष्य जिन बातों के कारण जीवन की कशमकश में दूसरे प्राणियों से आगे बढ़ा, वे हैं उसका दिमाग़, उसकी सामूहिक शक्ति और उसके हाथ। मनुष्य-जातियाँ आपस की कशमकश में भी अपने ज्ञान, अपने सामूहिक संगठन और अपने हाथों के हथियारों और उपकरणों को लगातार उन्नत कर रही हैं। हाथ होने के कारण मनुष्य हथियार बना और चला सकता तथा अस्त्र फेंक सकता है। दुनियाँ की लड़ाई में इससे उसे बड़ी शक्ति मिली।

शुरू में उसने लकड़ी, पत्थर और हड्डी के हथियार बनाये। बाद में जब धीरे-धीरे उसे धातों का ज्ञान हुआ तो उसने खानें खोदना और धातें साफ़ करना सीखा। तब वह काँसे, ताँबे और लोहे के हथियार बनाने लगा।

किन्तु हथियार किस लिए थे ? अपनी रक्षा के लिए और अपनी जीविका के लिए। मनुष्य अपनी जीविका में भी लगातार उन्नति करता गया है। पहले मनुष्यों के झुंड दूसरे जानवरों की तरह शिकारी थे—अर्थात् वे प्रकृति से अपना भोजन सीधे ले लेते थे, जङ्गल में फल-मूल जमा कर या शिकार कर गुज़ारा करते थे। जानवरों का आखेट करते-करते धीरे-धीरे उन्होंने जानवर पालना सीखा। यह एक बड़ा भारी आविष्कार हुआ। इसने मनुष्य का तमाम जीवन बदल दिया। एक जानवर मार कर खाने से जितने दिन

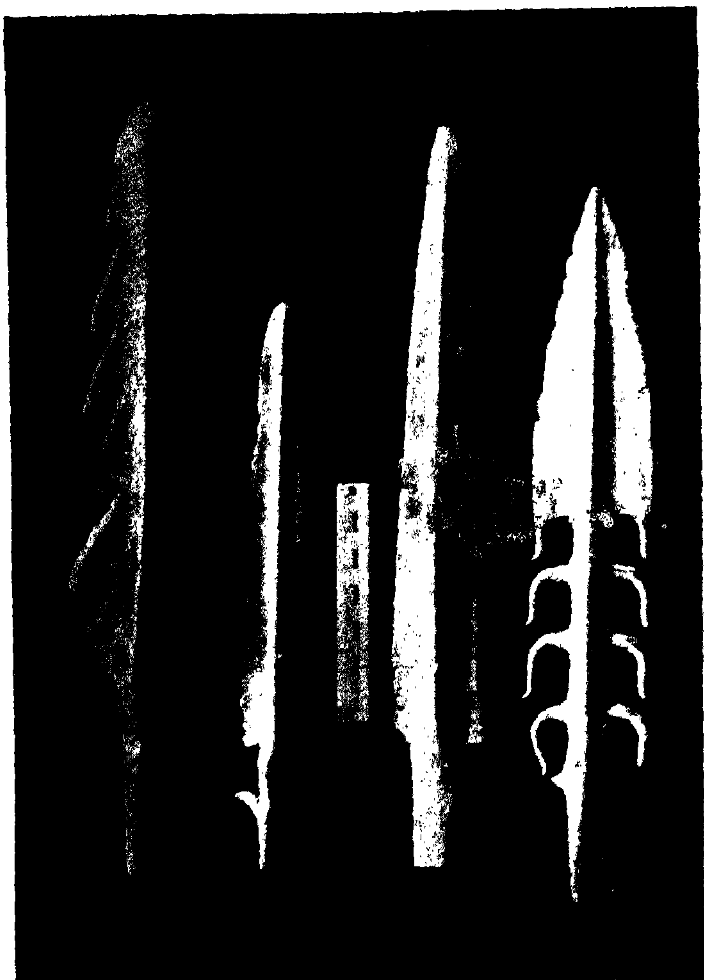


पत्थर के हथियार—बाँदा ज़िले में [लखनऊ म्यूज़ियम]

गुज़ारा हो सकता था उसके दूध से उससे कहीं अधिक दिन काम चलने लगा। इस प्रकार एक वर्ग-मील जङ्गल के शिकार से जितने मनुष्यों का गुज़ारा हो सकता था, एक वर्गमील चरागाह में चरने वाले जानवरों से उससे कहीं अधिक मनुष्यों का काम चलने लगा। फिर पैदल और घुड़सवार की लड़ाई में क्या कोई मुक़ाबला है ? इस प्रकार पशुपालक मनुष्य कोरे शिकारियों से आगे बढ़ गये और जीवन के क्षेत्र में फूलने-फलने लगे।

शिकारी मनुष्य भी जब फल बीन कर लाता था तो अपने अस्थायी डेरे के पड़ोस में कई बार गुठलियों या बीजों से पौदे उगते देखता था। इस प्रकार पौदे

उगाने का ज्ञान शायद उसे शिकारी दशा में ही हो गया था। किन्तु असल



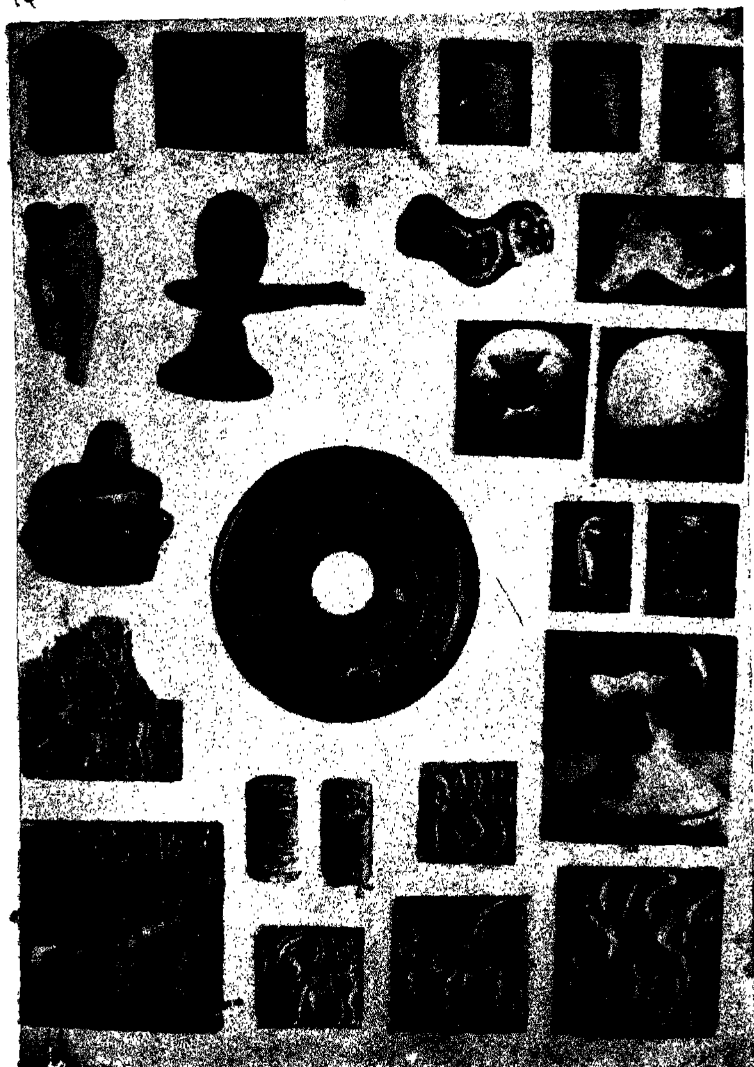
ताँबे के हथियार—बिठूर, सरथौली (ज़ि० शाहजहाँपुर) तथा राजपुर (ज़ि० बिजनौर) से
[लखनऊ म्यू०]

खेती तब शुरू हुई जब उस ने जानवरों को पाल कर उन से हल जोतना शुरू किया। कृषि सीख जाने से मनुष्यों की जीविका में बड़ी उन्नति हुई और उन के समाज और भी बढ़ने लगे।

शिकारी और पशुपालक खानाबदोश होते हैं। कृषकों ने जहाँ खेत बोया वहाँ कमसे कम फसल काटने तक उन्हें रहना चाहिए। फिर जहाँ सिँचाई का सामान किया गया, बगीचे लगाये गये, वहाँ तो हमेशा के लिए बस जाना होता है। इस प्रकार कृषि शुरू होने पर मनुष्यों के समूह टिक कर रहने लगे, और तब उन में असली सभ्यता का उदय हुआ। तब उन के बाकायदा राज्य और समाज स्थापित तथा संगठित होने लगे। खानाबदोश दशा में भी कुछ ज्ञान-विचार और शिक्षा रह सकती है; किन्तु लिखने की रीति का आविष्कार मनुष्यों के एक जगह बस जाने के बाद ही हुआ। और लिखने का आविष्कार होने से शिक्षा पाने की रीति चली; ज्ञान और साहित्य चमका।

कृषि के बाद मनुष्य ने अनेक प्रकार के शिल्प निकाले। कई शिल्प—जैसे ऊन कातने-बुनने का—शायद खानाबदोशों में भी थे। किन्तु टिक कर बस जाने के बाद शिल्पों को बहुत उन्नति हुई, यहाँ तक कि आजकल तो कल-कारखानों के ज्ञान के बिना कोई जाति ज़िन्दा नहीं रह सकती।

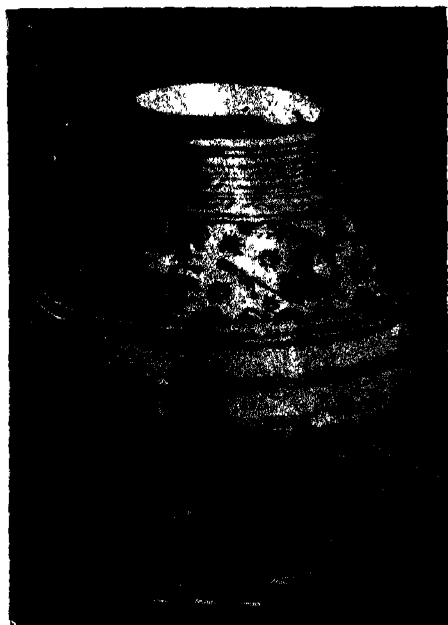
§३. **सभ्यता के चिन्ह—इतिहास के उपकरण**—सभ्यता अपने चिन्ह पीछे छोड़ती जाती है। पुराने लोगों के बनाये हुए पत्थर और हड्डी के हथियार अब तक दबे हुए निकल आते हैं। ताँबे, काँसे, और लोहे के पुराने किस्म के हथियार भी पुरानी बस्तियों की खुदाई में पाये जाते हैं। सभ्य मनुष्यों के अनेक प्रकार के उपकरणों और उनकी बनायी हुई इमारतों से उन का हाल जाना जाता है। मकान बनाने का शिल्प चलने पर भी, लकड़ी की बहुतायत के कारण, बड़े अरसे तक हमारे देश में लकड़ी की इमारतें बनती रहीं। ये सुरक्षित न रह सकतीं थीं। किन्तु बाद की पत्थर की इमारतों से हमें उन युगों की हालत का बहुत कुछ पता मिलता है। फिर हमारे पूर्वज अपने पीछे जो



मोहनजोदड़ो की खुदाई में पायी गयी मुहरें, मूर्त्तियाँ आदि
(दूसरी पंक्ति में एक आधुनिक शिवलिङ्ग तुलना के लिए रक्खा है ।)

साहित्य और लेख छोड़ गये हैं—वे लेख चाहे पत्थर पर हों, चाहे सिक्कों पर, चाहे पुस्तकों में—उन से तो उनका वृत्तान्त जानने में बड़ी सहायता मिलती है। सभ्यता के वे सभी चिह्न हमारे इतिहास के उपकरण हैं।

§४. **भारत और संसार की पहली सभ्यताएँ**—हमारे देश में जो पत्थर के पुराने हथियार पाये गये हैं, वे आर्यों के नहीं हैं। क्योंकि आर्य लोग जब पहले-पहल इस देश में प्रकट हुए, उनमें एक साहित्य का उदय हो चुका था, और उस साहित्य से हम जानते हैं कि वे तब कृषि और धातों का प्रयोग जानते थे। पुराने पत्थर के हथियार बर्तने वाले जो लोग उत्तर-भारत के जङ्गलों में रहते थे, वे प्राचीन द्राविड हों, मुंड हों, या उन सब से भी भिन्न कोई जाति हों। आर्यों ने जब उन के जङ्गल काट कर साफ़ किये, तो वे झाड़खण्ड जैसे दूर प्रदेशों में भाग गये, नष्ट हो गये, या कुछ अंश में आर्यों में मिल गये।



शव दफ़नाने का मटका—हड़पा से [भा० पु० वि०]

कृषक जातियाँ पहले-पहल नदियों के उपजाऊ काँठों में बसीं। संसार भर में नदियों के चार काँठे, जिन में सब से पहले सभ्यता का विकास हुआ, बहुत ही प्रसिद्ध हैं। एक चीन की याङ्चेक्यांग् और होआंग-हो नदियों का काँठा, दूसरे हमारे गङ्गा-जमना और सिन्ध-सतलज के काँठे, तीसरे ईरान की खाड़ी में गिरने वाली दजला और फ़रात नदियों का

काँठा, और चौथे मिश्र की नील नदी का काँठा। नील के काँठे में पहले-पहल मिश्र के पुराने निवासी हामी या हैमेटिक लोगों की सभ्यता का उदय हुआ; दजला-फ़रात के तटों पर पहले अक्काद और सुमेर नाम की और फिर बाबुल और खल्द नाम की बस्तियाँ थीं। अक्काद और सुमेर के लोग न जाने कौन थे। उनके द्राविड़ या तूरानी होने की अटकल लगायी गयी है, पर वे किसी और जाति के भी हो सकते हैं। बाबुली लोग सामी या सैमेटिक जाति के थे, जिसमें अब अरब और यहूदी हैं। हमारे उत्तर भारत में आर्य जाति थी और चीन में चीनी। प्राचीन जगत् में यही सभ्य जातियाँ थीं और यही सभ्यता के केन्द्र थे।

हाल में हमारे सिन्ध प्रान्त के लारकानो ज़िले में मोहनजोदड़ो नामक स्थान की खुदाई से एक बड़ी पुरानी सभ्यता के अवशेष मिले हैं। उस स्थान पर एक सुन्दर नगरी थी जिसकी इमारतें ईंट और पत्थर की थीं, और जिसके मकान, नालियाँ, गलियाँ और बाज़ार बड़े सिलसिले से बने थे। उस नगरी के सभी मकान प्रायः एक सी हैसियत के हैं—ऐसा नहीं कि प्रजा के छोटे-छोटे मकानों के बीच कोई एक बड़ा राजमहल हो। इस से जान पड़ता है कि वहाँ प्रजातन्त्र राज्य था। वहाँ के लोग खेती करना, धातों का प्रयोग करना, कपास के कपड़े बनाना और लिखना भी जानते थे। उस नगरी के खँडहरों में बटखरे भी पाये गये हैं, जिस से सिद्ध होता है कि वहाँ व्यापार-विनिमय भी चलता था। वह बस्ती अन्दाज़न पाँच हज़ार बरस पुरानी है। उसी तरह के अवशेष हड़पा (ज़िला मन्टगुमरी), नाल (बिलोचिस्तान) आदि स्थानों में भी पाये गये हैं। और उनमें तथा सुमेर-अक्काद के अवशेषों में बड़ी समानता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पाँच हज़ार बरस पहले पच्छिम एशिया से सिन्ध-काँठे तक एक ही सभ्यता फैली थी। वह सभ्यता किस जाति की थी सो अभी कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता। मोहनजोदड़ो की मुहरों के लेख अभी तक पढ़े नहीं जा सके; उन के पढ़े जाने पर इस प्रश्न का फ़ैसला हो सकेगा।

———

दूसरा प्रकरण

आरम्भिक आर्यों का ज़माना

अध्याय १

राजनीतिक वृत्तान्त

१. **पौराणिक ख्यातें**—आर्य लोग भारतवर्ष में कब, कैसे और किधर से आये, इन प्रश्नों पर बड़ा विवाद है। वे समूचे उत्तर-भारत और महाराष्ट्र में कैसे फैल गये इसका ब्यौरेवार वृत्तान्त हमारे पुराण नाम के ग्रन्थों से मिलता है। पुराण का अर्थ था पुराना वृत्तान्त या पुरानी ख्यात। शुरू में उन ग्रन्थों में उन ख्यातों के सिवा और कुछ न था। किन्तु बाद के लोगों ने पुराणों में धर्मोपदेश की और अन्य अनेक विषयों की भी बातें मिला दीं, और उन ख्यातों को भी अनेक कल्पित कहानियों में उलझा दिया, जिससे आज उनमें से सच को बीनना बहुत कठिन हो गया है। तो भी पिछले चालीस वर्ष में कुछ विद्वानों ने उनकी छानबीन कर उनमें से सच्चे अंश को उभारने की कोशिश की है।

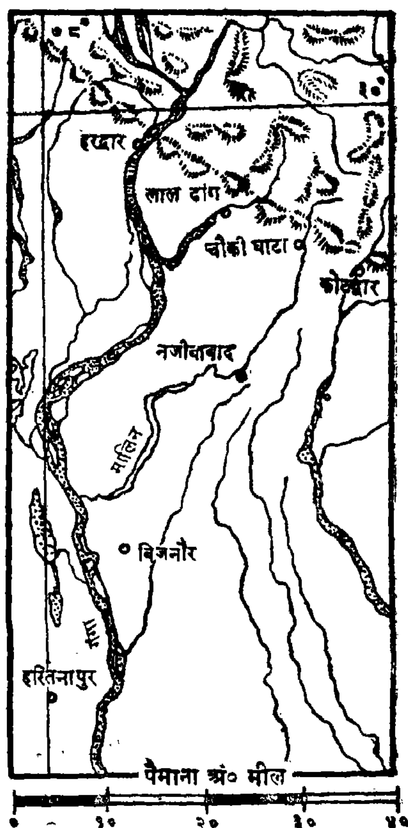
हमारे पुराणों में आर्य राज्यों के आरम्भ से ले कर गुप्त राजाओं—जिनकी आगे चर्चा की जायगी—तक की ख्यातें हैं। उन ख्यातों में महाभारत का युद्ध बहुत प्रसिद्ध है। उस युद्ध पर आर्य इतिहास का पहला प्रकरण समाप्त होता है। हमारे देश में बहुत लोगों का विश्वास है कि वह युद्ध आज से पाँच हज़ार बरस पहले हुआ था, जब कि कलियुग का संवत् चला। किन्तु वह विक्रम-संवत् से ३०४४ बरस पहले चला, यह बात पीछे की बनी हुई है। पुरानी ख्यातों के अनुसार महाभारत का युद्ध विक्रम-संवत् से प्रायः १४ शताब्दी पहले हुआ था।

हममें से बहुत लोग यह माने हुए हैं कि महाभारत युद्ध से भी लाखों बरस पहले हमारा इतिहास शुरू होता है। किन्तु पुराणों की ख्यातों में राजा इक्ष्वाकु के समय से उस युद्ध के समय तक राजाओं की कुल ९४-९५ पीढ़ियाँ लिखी हैं। एक पीढ़ी का समय औसतन १६ बरस मानने से उस इतिहास का आरम्भ महाभारत-युद्ध से प्रायः १५०० बरस पहले होता है। शायद किसी का यह ख़्याल हो कि एक पीढ़ी के लिए १६ बरस बहुत कम समय है, हमारे पुरखा बहुत बरसों तक जिया करते थे। यदि हम मान भी लें कि हमारे पुरखा औसतन १५० बरस जीते थे, तब भी एक राजा जब मरा, उसके बेटे की आयु १२५ या १३० बरस की हुई; फिर वह तो केवल २५ या २० बरस ही राज्य कर सकेगा और उसके मरने पर उसका बेटा भी बूढ़ा हो चुकेगा। इस तरह औसत प्रायः वही निकल आवेगा।

§२. **मानव और ऐल वंश**—पुरानी ख्यातों के अनुसार हमारे देश में पहले दो वंशों के राजा थे—एक मानव या सूर्य वंश के, दूसरे ऐल या चन्द्र वंश के। हमारे इतिहास का आरम्भ वे मानव वंश के राजा इक्ष्वाकु और ऐल वंश के राजा पुरूरवा से करते हैं। राजा पुरूरवा के वंश में चौथी पीढ़ी पर राजा ययाति हुआ। उसके पाँच बेटे थे—यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और पुरु। इन भाइयों के नाम से अलग-अलग वंश चले; यदु के वंशज यादव कहलाये, पुरु के पौरव आदि।

राजा इक्ष्वाकु के वंश में २०वीं पीढ़ी पर राजा मान्धाता और ३२वीं पीढ़ी पर राजा हरिश्चन्द्र हुए। मान्धाता आर्यावर्त्त यानी आर्यों के देश का सब से पहला सम्राट् था। उसके बाद की पुरानी ख्यातों में तीन उपाख्यान या वृत्तान्त सब से अधिक प्रसिद्ध हैं—एक पौरव वंश के राजा दुष्यन्त के पुत्र भरत का, दूसरा इक्ष्वाकु वंश के राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्र का, और तीसरा महाभारत युद्ध का। भरत का समय पुरूरवा से ४२वीं पीढ़ी पर और रामचन्द्र का इक्ष्वाकु से ६४वीं पर है। इस हिसाब से भरत हुए अन्दाज़न २२५० ई० पू० में और रामचन्द्र अन्दाज़न १६०० ई० पू० में।

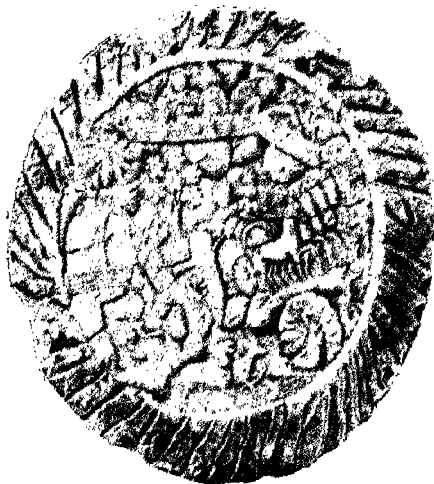
§३. **राजा भरत का वृत्तान्त**—पौरव वंश में राजा दुष्यन्त के पुरखा अपना राज खो चुके थे। दुष्यन्त ने फिर से एक नया राज्य स्थापित किया। वह राज्य गङ्गा-जमना-दोआब के उत्तरी हिस्से में प्रायः आजकल के मेरठ-बिजनौर ज़िलों में था। दुष्यन्त अपनी जवानी के दिनों में एक बार हिमालय की तराई में शिकार खेलने गया। दो बीहड़ जङ्गल पार कर उसकी सेना खुले सुनसान मैदान में जा निकली, जिसके आगे एक मनोरम वन दिखायी दिया। उस वन के परले छोर को मालिनी नदी धोती थी, जिसके किनारे एक ऋषि का आश्रम बसा जान पड़ता था। मालिनी आजकल मालिन कहलाती है, और गढ़वाल में तराई के पहाड़ों से निकल कर नजीबाबाद के पच्छिम बहती हुई गङ्गा में जा मिलती है। उसके तट पर जो आश्रम था वह कण्व ऋषि का था। गढ़वाल में चौकीघाटा नामक स्थान के



मालिनी नदी और उसका पासपड़ोस

उत्तर आज भी लोग किनकसोत नाम का एक कुंज दिखलाते, और उसे कण्व के आश्रम का स्थान कहते हैं। आश्रम को देख राजा दुष्यन्त ने सेना वहीं छोड़ दी और कुछ एक साथियों के साथ आगे बढ़ा। ऋषि के स्थान की तरफ़ जाते

हुए वह अकेला रह गया। वहाँ उसे "सूखे पत्तों में खिली कली के समान" तापसी वेष में एक युवती दिखायी पड़ी। कण्व फल लाने को बाहर गये हुए थे और दो दिन बाहर ही रहे। उनकी अनुपस्थिति में उनकी पुत्री शकुन्तला ने ही राजा का आतिथ्य किया। दुष्यन्त और शकुन्तला का परस्पर प्रेम और विवाह भी हो गया। कण्व के लौट आने पर शकुन्तला संकोच में बैठी थी, उनका बोझा उतारने को आगे नहीं बढ़ी। सब हाल जान लेने पर पिता ने उसे आशीर्वाद दिया।



कण्व के आश्रम में दुष्यन्त का आगमन!—भीटा (जिला इलाहाबाद) की खुदाई से पाये गये शुंग-युग के एक मिट्टी के खिलौने पर अङ्कित इस सुन्दर चित्र में शकुन्तला की कहानी अङ्कित जान पड़ती है।

[भा० पु० वि०]

शकुन्तला की कोख से एक बड़ा पराक्रमी बालक पैदा हुआ। वही प्रतापी भरत था। बड़ा होने पर उसने थानेसर के पास की सरस्वती नदी से गङ्गा तक और गङ्गा से अवध की सीमा तक अन्तर्वेद (ठेठ हिन्दुस्तान) का समूचा पच्छिमी भाग जीत लिया। वह 'चक्रवर्त्ती' (यानी जिसके रथ का चक्र समूचे आर्यावर्त्त में चले) और 'सम्राट्' कहलाता है। भरत के वंशज भारत कहलाये, और उन भारतों में बड़े-बड़े राजा और ऋषि हुए। भरत के वंश में उससे छठी पीढ़ी पर राजा हस्ती हुआ, जिसने हस्तिनापुर नाम की बस्ती बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। मेरठ ज़िले के उत्तर-पूरबी

कोने में अब भी, गङ्गा के पाँच मील पच्छिम, हसनापुर नाम के कस्बे में उस बस्ती के अवशेष हैं।

भरत के राज्य में अवध के पच्छिम का ठेठ हिन्दुस्तान का समूचा इलाका था। किन्तु पीछे हस्तिनापुर के राज्य से उसका पूरबी हिस्सा अलग हो गया। वह पञ्चाल देश कहलाने लगा। उसके भी दो टुकड़े हुए। गङ्गा-जमना दोआब का निचला हिस्सा दक्षिण पञ्चाल कहलाता। उसकी राजधानी काम्पिल्य थी, जिसका नाम आज तक फ़रुख़ाबाद ज़िले के काँपिल गाँव के नाम में ज़िन्दा है। उसके उत्तर गङ्गा पार उत्तर पञ्चाल देश था। उसकी राजधानी अहिच्छत्रा थी, जिस की जगह पर आज बरेली ज़िले का रामनगर कस्बा है।

§४. **चक्रवर्ती राम दाशरथि**—अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकु के वंशजों का राज्य चला आता था। अयोध्या के ही नाम से वह इलाका अब अवध कहलाता है। उसका पुराना नाम कोशल था। इक्ष्वाकु के वंश में ६१वीं पीढ़ी पर रघु हुआ; रघु के पोते राजा दशरथ हुए। दशरथ के तीन रानियाँ थीं—कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा। "कौशल्या" का अर्थ है कि वह कोशल देश की थीं और "कैकेयी" केकय देश की;—उनके असली नाम हम नहीं जानते। केकय देश उत्तर-पच्छिमी पंजाब में चिनाब नदी के पच्छिम नमक की पहाड़ियां तक था। आजकल के गुजरात, शाहपुर और जेहलम ज़िले उसे सूचित करते हैं। उन ज़िलों के वीर और सुन्दर स्त्री-पुरुष आज भी प्रसिद्ध हैं। कैकेयी वैसी ही वीर और सुन्दर स्त्री थी। एक बार युद्ध में राजा दशरथ के रथ का पहिया धुरी से निकल गया, तब कैकेयी ने अपना हाथ लगाकर उसे सँभाला। उस आपत्ति में उनको बचाने के कारण दशरथ ने कैकेयी को मुँह-माँगे दो वर देने का वचन दिया।

राजा दशरथ की रानियों से चार बेटे हुए—कौशल्या से राम, कैकेयी से भरत, सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न। कोशल देश की पूरबी सीमा सदानीरा यानी गण्डक नदी थी। उसके पूरब विदेह देश था, जिसे आजकल तिरहुत कहते हैं। वहाँ भी इक्ष्वाकुओं के सम्बन्धियों की एक शाखा का राज्य बहुत पहले से स्थापित हो चुका था, और उसके सब राजा 'जनक'

कहलाते थे। राजा सीरध्वज जनक की बेटी सीता जब युवती हो गयीं, तब उन्होंने उनके लिए स्वयम्वर रचा। एक भारी कड़ा धनुष उन्होंने स्वयम्वर-मण्डप में रखवा दिया, और जो कोई राजकुमार उसे उठाकर चढ़ा ले और उसमें बाण तान ले, उसके साथ सीता का विवाह करने की प्रतिज्ञा की। राम उस परीक्षा में सफल हुए, तब सीता ने उन्हें अपना पति चुना।

राजा दशरथ ने रामचन्द्र को युवराज-तिलक दे बुढ़ापे में राज-काज से छुट्टी पाने का विचार किया। उनकी प्रजा ने राम का अभिषेक करने की स्वीकृति दे दी। उस समय के आर्यावर्त्त में नये राजा को जब राज्य मिलता, तब उसका एक बाकायदा संस्कार होता था, और उसे प्रजा के साथ कई प्रतिज्ञाएँ करनी पड़तीं थीं। उसी समय उसका 'अभिषेक' यानी सींचने या शुद्ध करने की रस्म होती थी, जिसके लिए गङ्गा सरस्वती आदि पवित्र नदियों का पानी लाया जाता, और जिस देश का वह राजा होता, उसके एक तालाब का पानी भी उन पानियों में मिलाया जाता। जब राम के अभिषेक की सब तैयारी हो चुकी, तो कैकेयी रूठ बैठीं। उन्होंने राजा से ये वर माँगे कि भरत को गद्दी दी जाय, और रामचन्द्र को चौदह बरस का बनवास मिले! दशरथ लाचार हो गये।

राम बन को चले गये, सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ गये। उधर भरत अपनी ननिहाल केकय देश में थे। उन्हें बुलाया गया तो वे अपनी माता के काम पर बहुत लज्जित हुए। दशरथ भरत के पहुँचने से पहले चल बसे थे। अयोध्या में पहुँच कर भरत अपने भाई के पास बन में गये, और भाई की आज्ञानुसार उनके प्रतिनिधि की हैसियत से कोशल का राज्य करने लगे।

राम प्रयाग पर गङ्गा पार कर (आधुनिक बुन्देलखण्ड में) चित्रकूट पहुँचे। वहाँ से बन ही बन वे 'गोदावरी' के किनारे दण्डक बन में पञ्चवटी नामक स्थान पर गये, और वहाँ कुछ समय काटा। पञ्चवटी का स्थान आजकल के नासिक तीर्थ में माना जाता है। पञ्चवटी से वे गोदावरी के निचले काँठे में गये, जहाँ जनस्थान नाम की राक्षसों की एक बस्ती थी। उन्हीं राक्षसों का एक राज्य 'लंका' में भी था। रामचन्द्र अपने बनवास के दस बरस बिता चुके थे,

जब कि उनकी जनस्थान में राक्षसों के साथ छेड़-छाड़ हो गयी, और राक्षसों



रामचन्द्र अहिल्या का उद्धार करते हुए (?)

देवगढ़ (जि० झाँसी) के गुप्तकालीन मन्दिर का एक मूर्त्त दृश्य

[भा० पु० वि०]

का राजा दशग्रीव रावण सीता को लंका ले भागा। राम सीता की तलाश में दक्खिन-पच्छिम तरफ़ पम्पा सरोवर पर पहुँचे, जहाँ उनकी सुग्रीव और उसके मन्त्री हनुमान से भेंट हुई। वहाँ किष्किन्धा नाम की वानरों की बस्ती थी, और सुग्रीव उसी के राजा बाली का निर्वासित भाई था। हैदराबाद रियासत में अनगुंडी नामक बस्ती को पुरानी किष्किन्धा की जगह पर माना जाता है। राम ने बाली को मार कर सुग्रीव को वानरों का राजा बनाया, उसकी तथा हनुमान की सहायता से वानरों और ऋक्षों की एक बड़ी सेना के साथ 'लंका' में प्रवेश किया, और रावण को मार कर सीता को वापिस लिया। 'लंका' से सिंहल द्वीप समझा जाता है और वहाँ आजकल की पोलननारुव (पौलस्त्य-नगर) नाम की बस्ती को लंका की पुरानी राजधानी बताया जाता है।

काव्य-कल्पना ने रामचन्द्र के वृत्तान्त पर रङ्ग चढ़ा दिया है। हम को उसे इतिहास की दृष्टि से देखना चाहिए। प्रामाणिक विद्वानों का कहना है कि 'लंका' विन्ध्यमेखला में अमरकण्टक की चोटी पर थी; किष्किन्धा जनस्थान और पञ्चवटी बस्तियाँ उसके उत्तर थीं, तथा 'गोदावरी' भी चित्रकूट और अमरकण्टक के बीच कोई छोटी नदी थी। किन्तु यदि लंका को प्रचलित विश्वास के अनुसार सिंहल द्वीप में भी मानें तो भी यह स्पष्ट है कि विन्ध्य-मेखला में और उसके दक्खिन रामचन्द्र के समय तक आर्यों की कोई बड़ी बस्ती न थी। वहाँ राक्षस और वानर लोग रहते थे। कल्पना ने राक्षसों और वानरों के भी विचित्र रङ्ग-रूप बना दिये हैं। असल में वे दक्खिन की दो पुरानी मनुष्यजातियाँ थीं। आर्यों के साथ राक्षसों के विवाह-सम्बन्ध भी होते थे। रामचन्द्र से पहले और बाद भी बहुत बार आर्य युवक राक्षस कन्याओं पर मुग्ध हो उन्हें ब्याह लेते और बहुत बार आर्य लोग उन्हें अपनी कन्याएँ भी ब्याह देते थे।

वानर और ऋक्ष भी दक्खिन की कोई पुरानी जातियाँ थीं। जङ्गली जातियाँ प्रायः पशुओं, पेड़ों आदि की पूजा किया करती हैं, और जिस चीज़ को पूजती हैं, उसके चित्र से अपने देह को आँकती हैं और उसी के नाम से उनका नाम पड़ जाता है। वानर और नाग प्राचीन भारत की ऐसी ही जातियाँ थीं। एक मत

यह है कि वानर शब्द ओराँव नामक जङ्गली जाति के नाम का संस्कृत रूपान्तर है। रामचन्द्र की ख्यात से यह सार निकलता है कि उस समय तक आर्य लोग दक्खिन में न पहुँचे थे, और रामचन्द्र ने पहलेपहल दक्खिन का रास्ता खोला।

चौदह बरस बाद घर लौट कर राम ने कोशल का राज्य सँभाला। उनका शासन इतना समृद्ध और न्यायपूर्ण था कि अब भी जिस शासन में प्रजा बड़ी सुखी हो उसे रामराज्य कहा जाता है। वे अपने समय के चक्रवर्त्ती राजा थे। उनके भाई भरत को अपने ननिहाल का केकय देश का राज्य मिला। केकय देश के साथ लगा हुआ सिन्धु देश था जिस में आजकल के सिन्धसागर दोआब का नमक-पहाड़ियों के दक्खिन का अंश और डेराजात (अर्थात् सिन्ध काँठे के डेराइस्माइलखाँ, डेरागाज़ीखाँ ज़िले) शामिल थे। वह भी भरत के राज्य में था। पच्छिम के ईरानी लोग इसी सिन्धु देश को 'हिन्दु' बोलते थे। बाद में इसी के नाम से उन्होंने हमारे सारे देश का नाम 'हिन्द' डाल दिया। यूनानी और युरोपियन लोग उसी को 'इन्द' बोलने लगे।

भरत के पुत्र तक्ष और पुष्कर थे। कहते हैं उन्होंने गान्धार देश जीत कर तक्षशिला और पुष्करावती बस्तियाँ बसायीं थीं। गान्धार देश केकय के उत्तर-पच्छिम और सिन्धु देश के उत्तर सटा हुआ था। तक्षशिला* रावलपिण्डी से २० मील उत्तर-पच्छिम थी, और पुष्करावती काबुल (कुभा) और स्वात (सुवास्तु) नदियों के संगम पर। तक्षशिला का इलाक़ा पूरबी गान्धार था, और पुष्करावती का पच्छिमी गान्धार। आगे चलकर हम को इन प्रदेशों और नगरियों से बहुत वास्ता पड़ेगा।

६५. **यादव और कौरव वंश—महाभारत-युद्ध**—महाराज राम से पहले यादव वंश की बड़ी वृद्धि हुई थी, और पीछे और भी हुई। यादवों के कई राज्य थे जो मथुरा से गुजरात तक फैले हुए थे। मथुरा के चौगिर्द का प्रदेश शूरसेन कहलाता था। जमना के दक्खिन का प्रदेश जिसे आजकल बुंदेलखण्ड

---

* तक्षशिला के खँडहर बहुत दूर-दूर तक फैले हैं। उसकी सब से पुरानी बस्ती वह थी जहाँ आजकल भीर गाँव है, तथा पुरातत्व-संग्रहालय (आर्कियोलौजिकल म्यूज़ियम) बना है।

कहते हैं चेदि कहलाता था; वहाँ भी यादव बसे हुए थे। आजकल के मालवा के पच्छिम भाग को अवन्ति और पूरब को दशार्ण देश कहते थे। दशार्ण देश में दशार्णा नदी बहती थी, जो अब भी धसान कहलाती है। अवन्ति और दशार्ण में तथा आजकल के गुजरात-काठियावाड़ में भी यादव लोग बसे थे। अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी (उज्जैन) के दक्खिन, नर्मदा नदी में एक टापू है जिसे आजकल मान्धाता कहते हैं। वहाँ माहिष्मती नाम की यादवों की एक प्रसिद्ध नगरी थी। मालवा से दक्खिन जाने वाले रास्ते को वह सब से बड़े नाके पर काबू करती थी। उसके दक्खिन विदर्भ देश था जिसे आजकल बराड़ कहते हैं। वह भी एक यादव राज्य था।

इधर भारत वंश में, भरत से प्रायः २८वीं पीढ़ी पर, कुरु नाम का एक राजा हुआ। उसी के नाम से सरस्वती का काँठा कुरुक्षेत्र कहलाने लगा। कुरु के वंशज कौरव कहलाये। उस वंश की एक छोटी शाखा में आगे चलकर वसु नाम का राजा हुआ। वसु ने चेदि, कौशाम्बी और मगध को जीत लिया। आजकल के प्रयाग का इलाका तब वत्स देश कहलाता था। उसकी राजधानी कौशाम्बी प्रयाग से ३२ मील ऊपर जमना किनारे थी, जहाँ अब कोसम का ढहा हुआ शहर और गढ़ है। मगध दक्खिनी बिहार का नाम था, जिसमें अब पटना और गया ज़िले हैं। वसु के समय से पहले वह निरा जङ्गल था, और उसमें आर्य्यों की बस्ती नाम को ही थी। किन्तु वसु के पीछे उसके जो वंशज मगध में रहे, उन्होंने उसे एक बड़ा राज्य बना दिया। मगध का राजा जरासन्ध और चेदि का राजा शिशुपाल वसु के वंशज थे।

कौरव वंश की बड़ी शाखा हस्तिनापुर में राज्य करती रही। उस वंश में धृतराष्ट्र और पाण्डु दो भाई हुए। धृतराष्ट्र अन्धा था। उसकी रानी गान्धारी अर्थात् गान्धार देश की राजकुमारी से उसके बहुत से बेटे हुए, जिनमें दुर्योधन, दुःशासन आदि मुख्य थे। पाण्डु की दो रानियाँ थीं—कुन्ती और 'माद्री'। पंजाब में रावी और चिनाब के बीच मद्र देश था जिसकी राजधानी शाकल (आजकल का स्यालकोट) थी। मद्र की स्त्रियाँ हमारे प्राचीन इतिहास में अद्वितीय सुन्दरियाँ प्रसिद्ध थीं। पाण्डु की छोटी रानी मद्र की होने से माद्री

कहलायी। विवाह होने से पहले कुन्ती के एक बेटा हो चुका था, जिसे उसने शर्म के मारे बहा दिया था। एक सूत ने उसे उठाकर पाल लिया था। उसका नाम कर्ण था। कर्ण को दुर्योधन ने शरण दी। पाण्डु के पाँच बेटे हुए। कुन्ती से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन; और माद्री से नकुल, सहदेव। वे पाँच पाण्डव कहलाये। धृतराष्ट्र के बेटे कौरव ही कहलाते रहे। कौरवों और पाण्डवों में बचपन से बड़ी डाह थी।

जरासन्ध ने मगध के राज्य को एक साम्राज्य बना लिया। सब पड़ोसी राजा उसे अपना बड़ा मानते थे। चेदि का शिशुपाल उसका मित्र था। मथुरा के अन्धक-यादवों का राजा कंस भी, जो जरासन्ध का दामाद था, उसे अपना अधिपति मानता और उसके सहारे प्रजा पर ज़ुल्म करता था। अन्धकों ने उसके विरुद्ध अपने पड़ोसी वृष्णि-यादवों से मदद माँगी। वृष्णियों के नेता वासुदेव कृष्ण थे। कृष्ण ने कंस को मार डाला। किन्तु जरासन्ध का मुकाबला वे लोग न कर सकते थे। अन्धक और वृष्णि द्वारका की तरफ़ चले गये, जहाँ उनका एक 'सङ्घ' अर्थात् पञ्चायती राज्य स्थापित हुआ। इस सङ्घ के दो 'सङ्घ-मुख्य' अर्थात् मुखिया (प्रेसीडेंट) एक साथ चुने जाते थे। उग्रसेन एक मुखिया थे और वासुदेव कृष्ण दूसरे।

इधर कौरव-पाण्डवों की डाह बढ़ती गयी। पाण्डवों ने दक्खिन पञ्चाल के राजा द्रुपद यज्ञसेन की लड़की कृष्णा को स्वयम्वर में प्राप्त कर उससे विवाह किया। उन्होंने राज्य में अपना हिस्सा माँगा, पर कौरव उन्हें कुछ न देना चाहते थे। अन्त में यह ठहरा कि जमना पार कुरुक्षेत्र के दक्खिन के जंगल को वे बसा लें। वह जंगल तब खांडव वन कहलाता था। इसे जला कर पांडवों ने वहाँ इन्द्रप्रस्थ नगर बसाया जिसके नाम की याद अब दिल्ली के पुराने क़िले के पास इन्दरपत बस्ती में है। इन्द्रप्रस्थ की समृद्धि जल्द बढ़ने लगी। पाण्डव महत्वाकाँक्षी थे, चुपचाप न बैठ सके। उनके नये राज्य के दक्खिन सटा हुआ शूरसेन देश था, जहाँ जरासन्ध की तूती बोलती थी। इसी कारण जरासन्ध से उनका बैर और वासुदेव कृष्ण से मैत्री हो गयी। कृष्ण की सहायता से भीम और अर्जुन ने जरासन्ध को मार डाला। उसका साम्राज्य

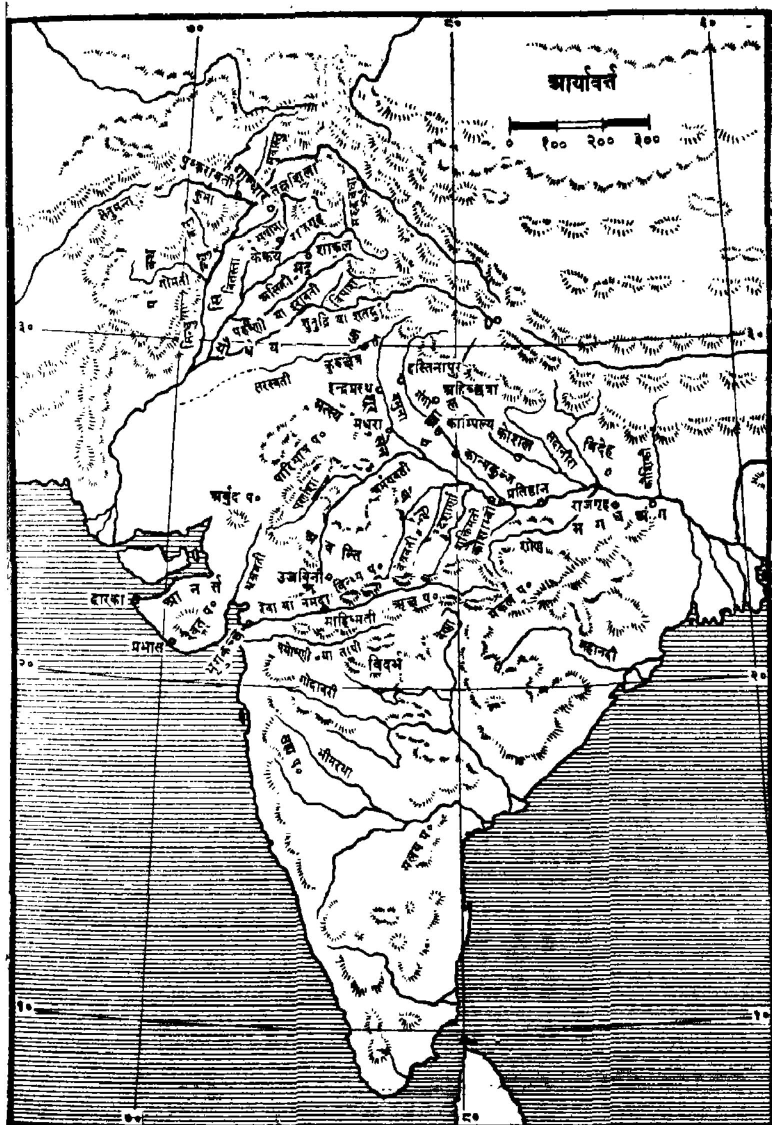
टूट गया। मगध के ठीक पूरब सटा हुआ अंग देश (मुंगेर-भागलपुर) पहले उसके अधीन था। अब दुर्योधन की सहायता से कर्ण वहाँ का राजा बना। इधर चेदि का राजा शिशुपाल अपने पड़ोसियों में प्रबल हो गया।

आर्यों के महत्वाकाँक्षी राजा दिग्विजय करके राजसूय या अश्वमेध यज्ञ किया करते थे। पाण्डवों ने भी राजसूय किया। कई पड़ोसी राजाओं ने खुशी से, कई एक ने डर और दबाव से, उनकी सत्ता मानी और उनके यज्ञ में भाग लिया। धृतराष्ट्र के बेटों को अपने भाइयों के विजयोत्सव में आना पड़ा। पर उनका दिल जला जाता था। जरासन्ध के मित्र शिशुपाल को कृष्ण से विशेष चिढ़ थी। उनकी स्पर्धा यहाँ तक बढ़ी कि उसी यज्ञ में कृष्ण ने उसे मार डाला। यों पाण्डवों के एक और पड़ोसी प्रतिद्वन्द्वी का अन्त हुआ।

कौरवों के मामा गान्धार देश के शकुनि ने उन्हें पाण्डवों के पराभव का एक उपाय सुझाया। उस युग के आर्यों में जुआ खेलने का बड़ा व्यसन था। जुए की चिनौती से मुँह मोड़ना वैसा ही लजास्पद समझा जाता था जैसा युद्ध से। शकुनि और दुर्योधन ने पाण्डवों को जुए का निमंत्रण दिया। उसमें वे अपना राज्य तक हार बैठे, और उन्हें बारह बरस बनबास और एक बरस के अज्ञात वास का दण्ड मिला।

उनके पीछे दुर्योधन ने अपना पक्ष दृढ़ किया। पाण्डव तेरहवें बरस, अपने राज्य के पड़ोस में, मत्स्य देश (आजकल के अलवर) के राजा विराट् के यहाँ आ गये। उनका तेरहवाँ बरस बीतने को था कि कौरवों ने अपने पड़ोसी त्रिगर्त्त देश (जलन्धर-हुशियारपुर-कांगड़ा ज़िलों) के राजा के साथ मिल कर, मत्स्यों पर धावा किया और उनके ढंगर लूट ले चले। पाण्डवों की सहायता से विराट् ने उन्हें हराया।

उसके बाद पांडवों ने अपना राज्य वापिस माँगा, पर दुर्योधन ने कहा— मैं युद्ध के बिना सुई की नोक बराबर भूमि भी न दूँगा। दोनों पक्षों में युद्ध ठन गया और घरेलू आग की वह चिनगारी भभक कर भारत के सब राज्यों तक पहुँची। त्रिगर्त्त देश का राजा दुर्योधन का मित्र था, और गान्धार का शकुनि उसका मामा था। इनके अतिरिक्त सिन्धु देश का राजा जयद्रथ भी


आर्यावर्त
० १०० २०० ३००
हस्तिनापुर
इन्द्रप्रस्थ
मथुरा
काम्पिल्य
कोशल
विदेह
राजगृह
उज्जयिनी
माहिष्मती
द्वारका
प्रभास
विदर्भ
गोदावरी
महानदी
सरस्वती
कुरुक्षेत्र
शाकल
केकय
तक्षशिला
अर्बुद प०
मलय प०

उसका बहनोई था। इन तीनों के दबाव से पञ्जाब के प्रायः सभी राज्य कौरवों की तरफ़ हो गये। इसी तरह कर्ण के दबाव से पूरब के राज्य भी उनमें आ मिले। ठेठ हिन्दुस्तान और गुजरात के राज्य दोनों तरफ़ बँटे थे। पांडवों की सेनाएँ मत्स्य की राजधानी उपप्लव्य पर जुटने लगीं; कौरव सेनाएँ पञ्जाब के पूरबी छोर और हस्तिनापुर पर जमा होने लगीं। सन्धि की बातचीत विफल होने पर पांडव सेना उनके बीच उत्तर को बढ़ी, और कुरुक्षेत्र पर दोनों तरफ़ के प्रवाह आ टकराये। अठारह दिन के घमासान युद्ध के बाद पाण्डवों की जीत हुई। वे कुरुदेश के राजा और आर्यावर्त्त के सम्राट् हुए।

रामायण की ख्यात से यदि हम महाभारत की ख्यात की तुलना करें तो यह स्पष्ट होता है कि इस बीच आर्य्यों की बस्तियाँ काफ़ी फैल गयी थीं। वे पूरब की तरफ़ मगध और अङ्ग तक, और दक्खिन की तरफ़ माहिष्मती और विदर्भ तक जा पहुँची थीं। यों तो महाभारत में और आगे पूरब और दक्खिन के राजाओं के भी नाम दिये हैं, पर छानबीन से पाया जाता है कि वे पीछे जोड़े गये हैं। विदर्भ और अङ्ग इस युद्ध के समय तक आर्यावर्त्त की अन्तिम सीमाएँ थीं।

———

अध्याय २

वैदिक आर्यों का जीवन

§१. वेद—आर्यावर्त्त के आर्य्यों में वेद नाम का साहित्य प्रचलित था। वेद का अर्थ है जानकारी। हमारे आर्य्य पुरखों का वह वेद संसार भर में सब से पुराना साहित्य है। वेद का बड़ा अंश कविता में है। उसमें जो एक-एक साधारण पद्य होता है उसे ऋच् या ऋचा कहते हैं। जो ऋचाएँ गाने लायक़ हैं, अर्थात् जो गीतियाँ हैं, उन्हें साम कहते हैं। वेद का कुछ अंश गद्य भी है, और उस गद्य के एक-एक सन्दर्भ को यजुष् कहते हैं। ऋचाओं, सामों और यजुषों को मंत्र भी कहते हैं।

विश्वामित्र ऋषि (२री शताब्दी ई० पू० के औदुम्बर गण के एक सिक्के पर से)

प्रत्येक वेदमंत्र अर्थात् प्रत्येक ऋचा, साम और यजुष् के साथ किसी न किसी ऋषि का नाम जुड़ा हुआ है। अधिकांश हिन्दू वेदों को अपौरुषेय मानते हैं। उन का कहना है कि वेद अनादि हैं, और ऋषियों के द्वारा परब्रह्म की प्रेरणा से प्रकट हुए हैं। ऋषियों ने वेदों का दर्शन पाया था; वे 'मन्त्र-द्रष्टा' थे। आधुनिक और कुछ प्राचीन विवेचक वेद-मन्त्रों को बनाने का श्रेय ऋषियों को ही देते हैं। उनका कहना है कि ऋषि वे प्रतिभाशाली कवि थे, जिन्होंने ऋचाएँ (और साम तथा यजुष् भी) रचीं।

आर्य्य लोग निरे योद्धा ही नहीं थे। उनमें अपने चारों तरफ़ की वस्तुओं को ध्यान से देखने और उन के विषय में सोचने-विचारने की उत्कट प्रवृत्ति थी। अपने विचारों को उन्होंने बड़ी सुन्दर भाषा में प्रकट किया है। सब से पहले

प्रसिद्ध ऋषि विश्वामित्र थे जो इक्ष्वाकु से २६वीं पीढ़ी के समय अर्थात् अन्दाज़न २४७५ ई० पू० में थे। ऋषियों का सिलसिला तभी शुरू हुआ और प्रायः सात सौ बरस चला।

ऋचाएँ, साम और यजुष् पहले फुटकर रूप में थे। भिन्न-भिन्न ऋषियों के परिवारों या शिष्यपरम्पराओं में धीरे-धीरे उन का संग्रह होता गया। इस प्रकार उनकी संहिताएँ बनने लगीं। संहिता का अर्थ है संकलन या संग्रह। महाभारत युद्ध के समय कृष्ण द्वैपायन मुनि हुए। उन्होंने अन्तिम बार अपने समय तक के समूचे 'वेद' की अर्थात् समूचे ज्ञान की बाक़ायदा संहिताएँ बना दीं, जो आज तक चली आती हैं। उन्होंने कुल ऋचाओं की एक संहिता बनायी जिसमें उन ऋचाओं को छाँट कर ऋषि-वार और विषय-वार विभाग कर दिया। इसी तरह सामों और यजुषों की अलग-अलग संहिताएँ कर दीं।

ऋक्-संहिता, साम-संहिता और यजुः-संहिता मिल कर "त्रयी" कहलायीं। त्रयी हमारे साहित्य का सब से पुराना और पवित्र संग्रह है। ऋक्-संहिता में कुल १०१७ सूक्त या कविताएँ हैं जो दस मंडलों में बँटी हैं। 'सूक्त' का अर्थ है अच्छी उक्ति, सुभाषित। प्रत्येक सूक्त में ३-४ से ले कर ५०-१०० तक ऋचाएँ हैं। साम-संहिता ऋक्-संहिता की क़रीब तिहाई है, और उसमें बहुत से साम ऐसे हैं जो ऋक्-संहिता में आ चुके हैं। यजुः-संहिता और भी छोटी है, और वह कुल ४० अध्यायों में बँटी है। दूसरे प्रकार के कुछ विविध मंत्रों को कृष्ण द्वैपायन ने त्रयी से अलग अथर्व-संहिता में संग्रहीत किया, और फिर उसी तरह सूतों की ख्यातों की भी एक संहिता बनायी, जिस का नाम हुआ पुराण-संहिता। त्रयी के साथ अथर्ववेद और पुराणवेद (अथवा इतिहास-वेद) को मिला कर पाँच वेद कहा गया। वेद अर्थात् ज्ञानकोश का इस प्रकार बँटवारा करने के करण कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास अर्थात् वेद-विभाजक कहलाये।

आजकल जिसे हम उर्दू-हिन्दी की खड़ी बोली कहते हैं, वह उसी इलाके की ठेठ बोली है, जहाँ हस्तिनापुर और उत्तर पञ्चाल के प्राचीन राज्य थे। ऋग्वेद भी उसी इलाके की पुरानी भाषा में है। अधिकतर ऋषि भारत वंश के और उत्तर पञ्चाल तथा हस्तिनापुर राज्यों के ही थे।

§२. **वैदिक समाज की बनावट**—आर्य लोग ख़ास कर पशुपालक, कृषक और योद्धा थे। वे ऐसे छोटे-छोटे समूहों में रहते थे जो परिवार के नमूने पर बने हुए थे। उन समूहों को वे 'जन' कहते थे, और एक 'जन' के सब आदमी 'सजात' यानीएक ही वंश के कहे जाते थे। एक जन के सब सजात मिला कर 'विशः' अर्थात् प्रजा कहलाते। कृषक होने के कारण प्रत्येक जन की विशः किसी न किसी इलाके में प्रायः बस चुकी थीं, किन्तु कोई-कोई विशः 'अनवस्थित' अर्थात् खानाबदोश भी थीं। प्रत्येक जन की कई खाँपें या टुकड़ियाँ होतीं थीं जो 'ग्राम' कहलातीं थीं। ग्राम शब्द का असल अर्थ है जत्था या समुदाय। बाद में एक-एक ग्राम जहाँ बस गया, वह ज़मीन भी ग्राम कहलाने लगी। कई घूमते-फिरते ग्रामों का हाल भी मिलता है। ग्राम का नेता 'ग्रामणी' कहलाता था। लड़ाई के लिए जन के सब लोग ग्रामवार जमा होते थे; उन का वह ग्रामवार जमाव 'सं-ग्राम' कहलाता था। उसी से 'संग्राम' का अर्थ युद्ध हो गया। संग्राम में प्रत्येक जवान अपने शस्त्रास्त्र लेकर और कवच पहन कर आता था; साधारण लोग पैदल और नेता लोग रथों में आते थे। रथ प्रायः बैल के चमड़े से मढ़े होते थे। संग्राम में घुड़सवारों का उल्लेख नहीं मिलता। धनुष, भाला, बर्छा, कृपाण और फरसा मुख्य शस्त्र थे। बाण या शर प्रायः सरकण्डे के होते थे और उनकी अनी, सींग हड्डी या धातु की।

युद्ध आर्यों के जनों में परस्पर भी होते थे और 'दासों' अर्थात् पुराने निवासियों के साथ भी। 'दास' आर्य्यों से भिन्न रङ्ग के, काले, होते थे और उनकी नाक नुकीली और उभरी न होती थी। इस कारण आर्य्य लोग उन्हें 'अनासः' अर्थात् बिना नाक के कहते थे।

एक-एक ग्राम का मुखिया जैसे ग्रामणी कहलाता था, वैसे ही सारे जन का राजा। वह जन या विशः का राजा होता था न कि भूमि का। उस का राज्य 'जान-राज्य' अर्थात् जन का मुखियापन कहलाता था और वह एक किस्म का "ज्यैष्ठ्य" यानी जेठापन या नेतृत्त्व था, न कि मिलकियत।

§३. **वैदिक आर्यों का आर्थिक जीवन**—पशुपालन और कृषि आर्यों की मुख्य जीविकाएँ थीं। कृषि के लिए सिंचाई भी होती थी। खादों का

प्रयोग शायद न होता था, उस समय बाग़बानी भी शुरू न हुई थी। खेती की उपज मुख्य कर अनाज थे। आर्य लोग कपास को न जानते थे। उस समय संसार की दूसरी जातियों को भी प्रायः उसका पता न था। लोगों का धन मुख्यतः उनके पशुओं के रेवड़ और दास-दासियाँ होती थीं। भूमि भी पारिवारिक सम्पत्ति में शामिल होती थी, पर उसके ख़रीदने-बेचने का रिवाज नहीं के बराबर था। दाय-भाग से, जङ्गल साफ़ करने से या नये देश खोजने या जीतने से नयी भूमि पायी जा सकती थी। युद्ध में जीती भूमि राजा की न होती, वह सारे जन में बँट जाती थी। जङ्गम सम्पत्ति का क्रय-विक्रय काफ़ी था। गाय तो प्रायः सिक्के का काम देती थी; चीज़ों के दाम गौवों में गिने जाते थे।

निष्क नाम का एक सोने का सिक्का भी चलता था; पर शुरू में तो वह भूषण था और बाद में प्रायः दान या खंडनी (ransom) देने में उसका अधिक ज़िक्र आता है, व्यापार में नहीं। ऋण देने-लेने की भी प्रथा थी, और प्रायः जुए में हारना ऋण लेने का कारण होता था। ऋण न चुकाने से दास बनना पड़ता था। दास-दासियाँ ज़रूर थीं, पर लोग उन पर निर्भर न थे; सब साधारण काम जन के स्वतन्त्र गृहस्थ स्वयं करते थे। कुछ शिल्प भी थे। बढ़ई या रथकार का काम बहुत ऊँचा माना जाता था क्योंकि युद्ध और खेती के लिए रथ, हल और गाड़ियाँ वही बनाता था। उसी तरह लोहार ("कर्म्मार") की बड़ी हैसियत थी; पर कई विद्वानों का कहना है कि वह ताँबे के ही हथियार बनाता था, अर्थात् आर्य लोग तब लोहे को न जानते थे। चमड़ा रंगने और ऊन, सन, क्षौम (अलसी के रेशे) आदि का कपड़ा बुनने के काम भी ऊँचे गिने जाते थे। स्त्रियाँ चटाइयाँ भी बुनती थीं। प्रत्येक ग्राम में कृषकों के साथ सूत, रथकार, कर्म्मार (लोहार) आदि भी होते थे, जिनकी हैसियत साधारण लोगों से ऊँची—प्रायः ग्रामणी के बराबर—मानी जाती थी। थोड़ा व्यापार भी था। नदियों में तो नावें ख़ूब चलती ही थीं, शायद वे ईरान की खाड़ी में भी किनारे के साथ-साथ जातीं थीं।

§४. **राज्य-संस्था**—राजनीतिक रूप से संगठित जन को "राष्ट्र" कहते थे। राजा राष्ट्र का मुखिया होता था। वह मनमानी न कर सकता था। विशः

अर्थात् प्रजा राजा का "वरण" करतीं थीं। वरण का यह अर्थ था कि या तो वे उसे चुनतीं थीं, या यदि वह पिछले राजा का बेटा हो तो उस के राजा बनने की स्वीकृति देतीं थीं। वरण होने पर राज्याभिषेक होता था, जिसमें राजा विशः के साथ 'प्रतिज्ञा' अर्थात् इक़रार करता था, उसे राज्य की थाती सौंपी जाती और किरीट (मुकुट) पहनाया जाता था। वरण उस की आयु भर के लिए होता था, पर यदि वह 'प्रतिज्ञा' तोड़ दे, तो उसे निकाला जा सकता था। निर्वासित राजा का कभी-कभी फिर भी वरण हो जाता था।

राजा एक 'समिति' की सहायता से राज्य करता था। राज्य की असल बागडोर उसी समिति के हाथ में रहती थी। समिति समूची विशः की संस्था थी। उसमें कौन-कौन जाते थे सो कहना कठिन है। ग्रामणी, सूत, रथकार और कर्म्मार उसमें अवश्य शामिल होते थे। राजा का वरण, निर्वासन, पुनर्वरण सब समिति करती थी। उसका एक 'पति' या 'ईशान' होता था। राजा भी समिति में जाता था। समिति के अतिरिक्त 'सभा' नाम की एक संस्था भी थी, जो शायद समिति से छोटी थी। सभा ही राष्ट्र का मुख्य न्यायालय थी। प्रत्येक ग्राम में भी शायद अपनी-अपनी सभा होती थी। उन सभाओं में जवान लोग भी भाग लेते थे। आवश्यक कार्य्यों के बाद सभा में विनोद की बातें भी होतीं थीं और तब वह गोष्ठी का काम देती थी। समिति के सदस्य 'राजकृतः' अर्थात् राजा के कर्ता-धर्ता होते थे, वे राजा भी कहलाते थे। कई राष्ट्र ऐसे भी थे जिन में एक राजा न होता था; समिति के सदस्य मिल कर ही राज्य करते थे।

§५. **धर्म-कर्म**—आर्य्यों का धर्म-कर्म आरम्भ में बहुत सरल था। पीछे पुरोहितों की चेष्टाओं से कुछ पेचीदा हो गया। देव-पूजा और पितृ-पूजा उसके मुख्य चिन्ह थे। वह पूजा यज्ञ में आहुति देने से होता था। यज्ञों के लिए प्रत्येक गृहस्थ के घर में सदा अग्नि उपस्थित रहता था। नित्य की पूजा में देवताओं की मूर्त्तियाँ तब नहीं थीं। इन्द्र मुख्य देवता था। प्रकृति की बड़ी-बड़ी शक्तियों में आर्य्य लोग दैवी अभिव्यक्ति देखते थे, और उन्हीं शक्तियों की उन्होंने भिन्न-भिन्न देवताओं के रूप में कल्पना की थी। उदाहरण के लिए द्यौः अर्थात्

आकाश एक देवता है; उसी तरह पृथिवी भी; और 'द्यावापृथिवी' का जोड़ा प्रायः इकट्ठा गिना जाता है। वरुण भी द्यौः का एक रूप है, जो उस की ज्योति का सूचक है। वह धर्मपति है; लोगों के अन्तरात्मा की बात जानता है। उसके हाथ में पाश रहता है। वही नदियों और समुद्र का भी देवता है। द्यावापृथिवी और वरुण की अपेक्षा इन्द्र की महिमा बहुत बड़ी है। वैदिक देवताओं में वही मुख्य है। वह वृष्टि का अधिष्ठाता है, और उस के हाथ में बिजली का वज्र है जिससे वह वृत्र अर्थात् अनावृष्टि के दैत्य को मारता है।

सूर्य के भिन्न-भिन्न गुणों से कई देवताओं की कल्पना हुई है। प्रभात समय उषा एक सुन्दरी के रूप में प्रकट होती है, उसका प्रेमी सूर्य उस के पीछे-पीछे आता है। उदय होता हुआ सूर्य्य ही मित्र है, वह मैत्रीपूर्ण देवता मनुष्यों को नींद से उठाता और काम में जुटाता है। सूर्य पूरा उदय हो कर अपनी किरणों से जब जगत् को जीवन देता है, तब वही सविता है। जैसे मित्र उसके तेज का सूचक है और सविता जीवन-शक्ति का, वैसे ही पूषा उसकी उत्पादक शक्ति का और विष्णु उसकी क्षिप्र गति का, इत्यादि। अग्नि और सोम की महिमा केवल इन्द्र से कम है। अग्नि के तीन रूप हैं, सूर्य्य, विद्युत् और अग्नि। सोम वनस्पति भी है, और चन्द्रमा भी। प्रकृति में जो कुछ भयंकर और घातक है, उस सब की जड़ में रुद्र है। किन्तु रुद्र भी शान्त होने पर शिव अर्थात् मङ्गल रूप धारण कर लेता है। आर्य्यों की देव-कल्पना मधुर और सौम्य थी; घिनौने, डरावने या अश्लील देवताओं को उस में जगह न थी। उसमें कवि के स्निग्ध हृदय और अन्तर्दृष्टि की झलक है।

देवताओं की तृप्ति यज्ञ में आहुति या बलि देने से होती थी। दूध, घी, अनाज, मांस और सोमरस (एक लता का बृंहण रस) इन सभी वस्तुओं की आहुति दी जाती थी। आहुतियों के साथ ऋचाएँ पढ़ी जातीं थीं और साम गाये जाते थे। ऐसी ख्यात है कि राजा वसु के समय ऋषियों का एक सम्प्रदाय उठा, जिसका यह मत था कि यज्ञ में मांस के बजाय अन्न की ही आहुति दी जाय। वह सम्प्रदाय भक्ति पर भी ज़ोर देता था। बाद में यज्ञों का आडम्बर बहुत

बढ़ गया, और धनी लोग बड़े-बड़े यज्ञ पुरोहितों से कराने लगे। किन्तु साधारण आर्य अग्नि में अपनी दैनिक आहुति स्वयम् दे लेता था। देवों के अतिरिक्त वह पितरों का तर्पण भी स्वयम् करता था।

§६. **सामाजिक जीवन, खान-पान, वेष-भूषा, विनोद आदि**— आर्यों का सामाजिक जीवन भी उनके जीवन की अन्य बातों की तरह सरल था। राजा भरत के समय दीर्घतमा नाम का एक ऋषि था। कहते हैं उस से पहले विवाह-संस्था प्रायः नहीं थी; उसने उसे स्थापित किया। तब से विवाह एक पवित्र और स्थायी सम्बन्ध माना जाने लगा। स्त्रियों को पूरी स्वतंत्रता थी; वे हर काम में पुरुषों का साथ देती थीं। वेद के ऋषियों में भी लोपामुद्रा आदि अनेक स्त्रियों की गिनती है। युवक-युवती को अपना साथी या संगिनी चुनने की पूरी स्वतंत्रता रहती थी। विनोद के कार्यों और स्थानों में उन्हें परस्पर मिलने के यथेष्ट अवसर मिलते थे। राजपुत्रियों के स्वयम्वर होते थे। विधवाएँ फिर विवाह कर लेतीं थीं।

समाज में ऊँचनीच कुछ ज़रूर थी; पर विशेष भेद न थे। रथी और महारथी की हैसियत साधारण योद्धा से कुछ ऊँची थी। तो भी रथियों के वे 'क्षत्रिय' परिवार साधारण विशः का ही अंश थे। आर्य और दास का बड़ा भेद था; पर आर्यों और दासों में भी परस्पर सम्बन्ध हो ही जाते थे।

खान-पान बहुत सादा था। दूध, दही, घी, अनाज, मांस मुख्य भोजन थे। वेष भी बहुत सादा था। ऊपर नीचे के लिए उत्तरीय और अधोवस्त्र होता था। उष्णीष अर्थात् पगड़ी का रिवाज था, जिसे स्त्रियाँ भी पहनतीं थीं। पुरुष स्त्री दोनों सोने के हार, कुण्डल, केयूर आदि पहनते थे। पुरुष प्रायः केशों का जूड़ा बनाते या काकपक्ष (कानों पर लटकते केश) रखते थे। स्त्रियाँ वेणी बनातीं थीं। मिलजुल कर विनोद और व्यायाम ख़ूब होते थे। रथों और वाजि यानी घोड़े की दौड़ का विशेष प्रचार था। उस पर बाज़ी भी लगाते थे। जुआ खेलने का व्यसन काफ़ी था। संगीत, वाद्य और नृत्य का शौक़ भी बहुत था। आर्य लोग सत्य का बहुत मान करते थे और झूठ से उन्हें बड़ी चिढ़ थी। जब छोटा बड़े के सामने जाता तो अपना नाम लेकर प्रणाम करता था। बड़ों के नाम का ज़िक्र उनके गोत्र से किया जाता और बोलने में अदब-क़ायदे की बड़ी पाबन्दी रक्खी जाती थी।

तीसरा प्रकरण

महाजनपदों का युग

[लगभग १४२५—३६६ ई० पू०]

अध्याय १

राजनीतिक वृत्तान्त

§१. **जनपदों का उदय**—महाभारत युद्ध के बाद हस्तिनापुर का भारत राजवंश वहाँ से उठ कर वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी में चला गया। आर्य लोग अब गोदावरी के काँठे में विदर्भ (बराड़) से और आगे बढ़ने लगे। वहाँ उनके दो नये राज्य मूलक और अश्मक स्थापित हुए। मूलक की राजधानी प्रतिष्ठान (आधुनिक पैठन) उपरले गोदावरी काँठे में थी; अश्मक और नीचे था। उसके पूरब कलिंग (उड़ीसा) था। विदर्भ, मूलक और अश्मक मिल कर बाद का महाराष्ट्र बना। मूलक और अश्मक के परे आन्ध्र, शबर और मूचिक (मूषिक) नाम की अनार्य जातियाँ रहती थीं, जिनसे आर्यों का सम्पर्क था। आन्ध्र लोग तब आजकल के आन्ध्र देश (तेलंगाना) के उत्तरी छोर पर तेल नदी पर रहते थे। बस्तर की शबरी और हैदराबाद की मूसी नदी शबरों और मूचिकों की याद दिलाती हैं।

इसी समय आर्य राज्यों के अन्दर ही अन्दर एक भारी परिवर्तन हुआ। पहले जो राज्य जनों के थे, अब वे जनपदों के हो गये। जिन प्रदेशों पर जन बस गये थे, वही उनके जनपद कहलाये। जैसे कुरु जन जहाँ बसा वह कुरु जनपद और मद्र जन जहाँ बसा वह मद्र जनपद हुआ। अब 'जान-राज्य' के बजाय 'जानपद राज्य' होने लगे। मद्र जनपद में अब जो कोई बस जाता वह मद्रक कहलाता और मद्र राज्य की प्रजा हो सकता था। यही बात

और जनपदों में भी थी। उन जनपदों में अब शिल्प-व्यापार भी बढ़ने लगा, जिससे नगरियाँ स्थापित होने लगीं।

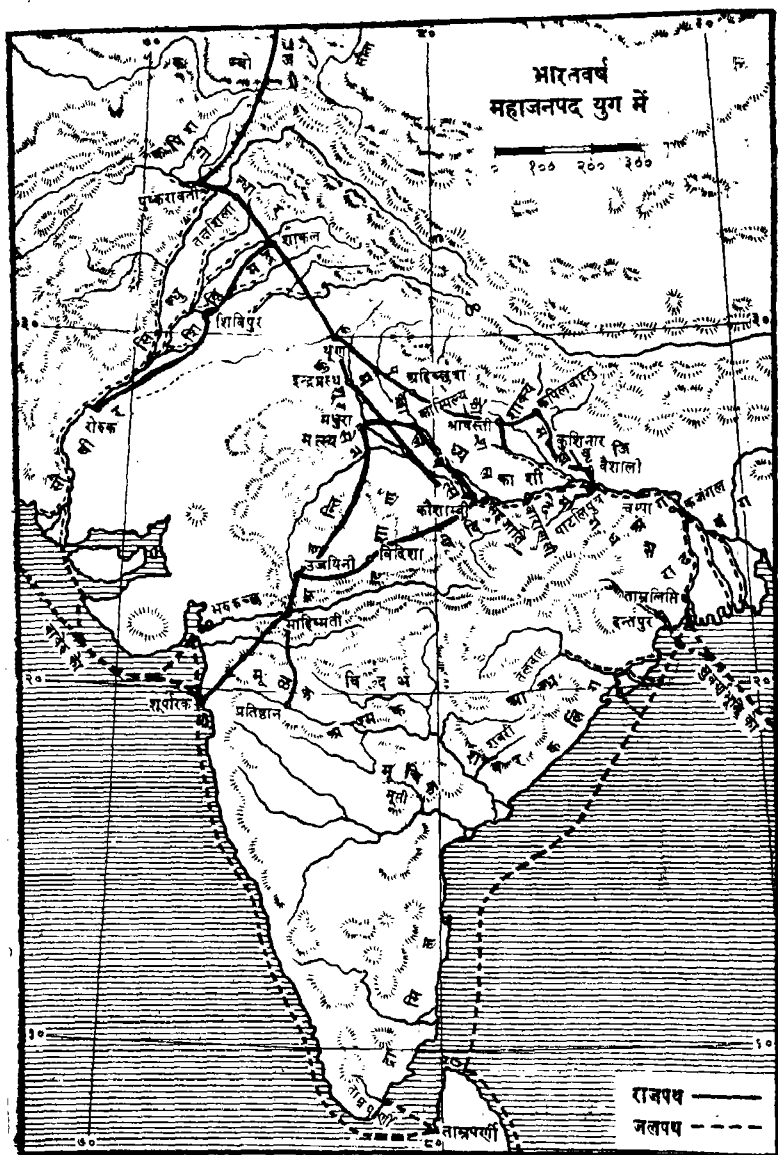
§२. **सोलह महाजनपद**—कुछ समय बाद कुछ जनपदों ने दूसरों का प्रदेश जीत कर और कुछ ने आपस में मिलकर अपनी भूमि बहुत बढ़ा ली। वे महाजनपद कहलाये। इन महाजनपदों का आरम्भ-काल आठवीं-सातवीं शताब्दी ई० पू० का है; वे पाँचवीं शताब्दी ई० पू० तक जारी रहे। इनका हाल हम विशेष कर बौद्ध और जैन ग्रन्थों से जानते हैं। भगवान् बुद्ध और महावीर स्वामी ने छठी शताब्दी ई० पू० में प्रकट हो कर धार्मिक सुधार की एक प्रबल लहर चला दी। उस लहर की प्रेरणा से बहुत से नये ग्रन्थ भी रचे गये, जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे। इन ग्रन्थों में सोलह महाजनपदों के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं; यहाँ तक कि सोलह महाजनपद उस समय में एक मुहावरा सा बन गया था। उन सोलह में आठ जोड़ियाँ यों थीं—(१) अंग-मगध, (२) काशी-कोशल, (३) वृजि-मल्ल, (४) चेदि-वत्स, (५) कुरु-पञ्चाल, (६) मत्स्य-शूरसेन, (७) अश्मक-अवन्ति, (८) गान्धार-कम्बोज।

यह गिनती पूरब से शुरू होती है। अंग की राजधानी चम्पा या मालिनी उस समय भारत की बड़ी समृद्ध नगरियों में से थी। भागलपुर शहर का पच्छिमी हिस्सा चम्पानगर, जो चम्पा नाला या चम्पा नदी के किनारे बसा है, ठीक उसी जगह है। मगध की राजधानी राजगृह थी। वहाँ उस समय काशी से निकले शिशुनाक वंश के राजा राज्य करते थे।



कोशल महाजनपद का एक आहत सिक्का (दुर्गाप्रसाद-संग्रह से)

काशी राष्ट्र की राजधानी वाराणसी भारतवर्ष भर में सबसे समृद्ध और शिल्प-व्यापार का सबसे बढ़ा-चढ़ा केन्द्र थी। कोशल का साकेत (अयोध्या) नगर भी प्रसिद्ध था; पर इस युग में कोशल की राजधानी अचिरावती (राप्ती) नदी के तट पर श्रावस्ती थी। उसके खँडहर अब गोंडा-बहराइच ज़िलों की सीमा पर सहेठ-महेठ गाँवों में हैं।



भारतवर्ष
महाजनपद युग में
१०० २०० ३००
पुष्करावती
तक्षशिला
शाकल
शिविपुर
रोरुक
स्थूण
इन्द्रप्रस्थ
मथुरा
मत्स्य
काम्पिल्य
श्रावस्ती
कपिलवस्तु
कुशिनार
वैशाली
का शी
कौशाम्बी
पाटलिपुत्र
चम्पा
कजंगल
उज्जयिनी
विदिशा
भरुकच्छ
माहिष्मती
ताम्रलिप्ति
दन्तपुर
शूर्पारक
प्रतिष्ठान
मूती
ताम्रपर्णी
राजपथ
जलपथ

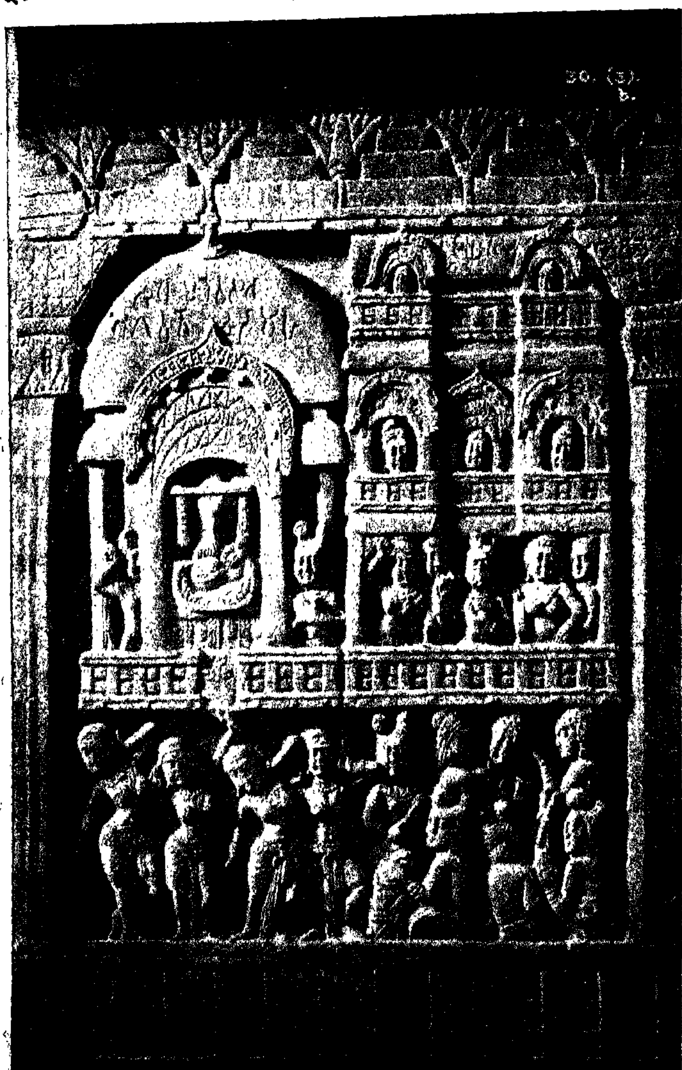
मल्ल और वृजि-राष्ट्र क्रमशः कोशल के पूरब थे। ये दोनों संघ-राष्ट्र अर्थात् पंचायती राज्य थे। मल्लों का संघ आधुनिक गोरखपुर ज़िले में था। पावा और कुशिनार उनके नगर थे। कुशिनार (कुशिनगर) का अवशेष अब कसिया है।

वृजि-संघ में दो जातियाँ शामिल थीं—विदेह और लिच्छवि। विदेह राष्ट्र में जनकों का पुराना राजवंश ख़तम हो कर पंचायती राज्य स्थापित हो चुका था। वृजि-संघ की राजधानी वैशाली थी, जिसके खँडहर अब मुज़फ्फ़रपुर ज़िले के बसाढ़ नामक बड़े गाँव में हैं। उसके चौगिर्द तिहरा परकोटा था, जिसमें जगह-जगह द्वार और गोपुर (पहरा देने के मीनार) बने थे। वह बड़ी सुन्दर नगरी थी। कहते हैं वृजियों के ७,७०७ राजा होते थे जो सब एक परिषद् में राजकीय मामलों पर विचार करते थे। भगवान् बुद्ध वैशाली नगरी के और वृजि-संघ के संगठन को बहुत पसन्द करते थे। एक बार उन्होंने अपने शिष्यों को वृजियों की परिषद् दिखा कर कहा था, "तुम में से जिन्होंने देवताओं की परिषद् न देखी हो वे इस परिषद् को देखें!" वैशाली नगरी के बीच एक पोखरनी थी, जिस में उन ७,७०७ राजाओं और उनकी रानियों का अभिषेक होता था। इस पर लोहे का जंगला और जाली इसलिए लगी रहती थी कि दूसरा कोई न नहा सके।

वत्स देश काशी के पच्छिम था, और चेदि (आजकल का बुन्देलखण्ड) उसके पच्छिम और जमना के दक्खिन था। वत्स की राजधानी कौशाम्बी में बुद्ध के समय राजा उदयन राज करता था। भारत वंश का होने के कारण उसका बड़ा आदर था। महाकवि भास ने अपने एक नाटक में कहलाया है—'यह वह भारत वंश है जिसका नाम आम्नाय (वेदों) में प्रविष्ट है।'

कुरु और पंचाल पुराने राष्ट्र थे, जिनकी अब कोई विशेष राजनीतिक शक्ति न रही थी। पर इस युग में भी "कुरुधर्म" यानी कुरु देश के लोगों का चरित्र सारे भारतवर्ष के लिए आदर्श माना जाता था। मत्स्य और शूरसेन का भी विशेष राजनीतिक महत्त्व न रह गया था।

अवन्ति बड़ा राज्य था; उसकी राजधानी उज्जयिनी व्यापार की बड़ी मंडी थी। दक्खिनी रास्ते का नाका माहिष्मती भी उसी के अधीन था।



देवताओं की सभा 'सुधर्मा'—भारहुत-स्तूप (शुङ्ग-युग) का एक मूर्त्त-दृश्य

[इंडियन म्यू० कलकत्ता; भा० पु० वि०]

भरुकच्छ (भरुच) आदि पच्छिमी बन्दरगाहों और दक्खिन से आने वाले व्यापार-पथ उज्जयिनी पर मिलते थे; वहाँ से एक रास्ता विदिशा (भेलसा), कौशाम्बी हो कर काशी और श्रावस्ती की तरफ़ और दूसरा मथुरा हो कर कुरु और गान्धार की तरफ़, चला जाता था। अश्मक की सीमा अवन्ति से लगती थी, क्योंकि बीच का मूलक राष्ट्र अब उसी में शामिल था।

गान्धार देश की राजधानी तक्षशिला इस युग में विद्या का सब से बड़ा केन्द्र थी। वहाँ बड़े-बड़े "दिशाप्रमुख" अर्थात् जगत्प्रसिद्ध आचार्य रहते थे, और "तीन वेद तथा अठारह विद्याएँ" पढ़ायी जाती थीं। आयुर्वेद के प्रसिद्ध आचार्य आत्रेय का गुरुकुल तक्षशिला में ही था। काशी, कोशल, मगध आदि देशों के राजकुमार, सेठों के लड़के और ग़रीब किसानों के बेटे—सभी तक्षशिला पढ़ने पहुँचते थे। वहाँ के आचार्यों के चरणों में बैठे बिना उस समय भारतवर्ष में कोई आदमी पण्डित न कहला सकता था। कश्मीर भी गान्धार के अधीन था। पामीर और बदख़्शाँ का नाम कम्बोज था, वह भी तब भारतवर्ष में शामिल था।

इन महाजनपदों के अलावा कुछ छोटे जनपद भी थे। कोशल के उत्तर शाक्यों का संघ था जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी। पच्छिम-दक्खिनी पंजाब में शिवि और सिन्धु राष्ट्र प्रसिद्ध थे। आधुनिक सिन्ध का नाम तब सौवीर राष्ट्र था। उसकी राजधानी रोरुक (आजकल की रोरी) उस युग की सुन्दर नगरियों में गिनी जाती थी।

दक्खिन की तरफ़ आन्ध्र राष्ट्र, द्रामिल (तामिल) राष्ट्र और ताम्रपर्णी द्वीप (लंका) से अब आर्यों का सम्पर्क बढ़ा हुआ था। उनमें आर्य मुनि और दूसरे आर्य लोग जा जाकर अपने आश्रम और उपनिवेश बसाते थे, और भरुकच्छ और वाराणसी के व्यापारी जहाज़ लेकर पहुँचते थे। दूर के नये देशों के विषय में कहानियाँ बन जाती हैं। ताम्रपर्णी के विषय में यह प्रसिद्ध था कि वहाँ यक्षिणियाँ रहतीं थीं, जो वहाँ भटक कर पहुँचने वाले व्यापारियों को लुभा ले जातीं थीं। चम्पा के व्यापारी, पूरब तरफ़, बरमा के तट से व्यापार करते थे और उसे वे सुवर्णभूमि कहते थे, क्योंकि उधर से सोना

आता था और उसके व्यापार में बड़ा नफ़ा था। भरुकच्छ से बावेरु अर्थात् बाबुल (Babylon) को भी लोग व्यापार करने जाते थे। वहाँ मोर न होता था, और भारत के व्यापारियों ने पहले-पहल मोर ले जाकर एक-एक हज़ार कार्षापण* में बेचा था ! भारत-वासियों की पहुँच की इस युग में प्रायः यही सीमाएँ थीं।

इन जनपदों और महाजनपदों की चढ़ा-ऊपरी का वृत्तान्त भी मनोरञ्जक है। सब से पहले, सातवीं शताब्दी ई० पू० के शुरू में, काशी राष्ट्र ने अपना एक बड़ा साम्राज्य बना लिया। काशी के बाद कोशल के बढ़ने की बारी आयी। दोनों में खूब लड़ाई चलती रही। अन्त में कोशल के एक राजा ने काशी को जीत लिया (अन्दाज़न ६२५ ई० पू०)†। उस राजा को महाकोशल कह कर याद किया जाता है। उसका बेटा प्रसेनजित् बुद्ध का समकालीन था। उसने तक्षशिला में शिक्षा पायी थी। प्रसेनजित् का बहनोई मगध का राजा बिम्बिसार था। मगध भी इस समय तक अंग को जीत चुका था। वत्स का राजा उदयन और अवन्ति का राजा प्रद्योत भी बुद्ध के समय में थे। प्रद्योत को उसके सब पड़ोसी "चण्ड" (डरावना) कहते थे। मगध, कोशल, वत्स और अवन्ति ये चार बड़े राज्य बुद्ध के समय 'मध्यदेश' यानी भारत के बीच के हिस्से में थे। पाँचवाँ बड़ा राज्य गान्धार का था।

मगध की गद्दी पर राजा बिम्बिसार के बाद उसका बेटा अजातशत्रु बैठा (५५२ ई० पू०)। उसके बैठते ही मगध और कोशल में युद्ध ठन गया। तीन युद्धों में अजातशत्रु ने प्रसेनजित् को हराया; पर चौथी बार बूढ़े प्रसेनजित् ने उसे क़ैद कर लिया और उसे अपनी लड़की व्याह में देकर छोड़ दिया।

इधर चण्ड प्रद्योत भी आर्यावर्त्त का चक्रवर्ती होना चाहता था। उसका राज्य मथुरा तक फैला था। उसके और मगध के बीच वत्स का राज्य पड़ता था। राजा उदयन को हाथी पकड़ने का शौक़ था। वह संगीत में

---

* एक सिक्का जो आजकल के १२ आने के बराबर था।

† इस प्रसंग में जितनी तिथियाँ दी गयी हैं, सब बुद्ध के निर्वाण की प्रचलित तिथि ५४४ ई० पू० मान कर हैं।

अत्यन्त निपुण था और 'हस्ति-कान्त वीणा' बजा कर हाथियों को काबू में कर लेता था।

एक बार प्रद्योत ने सीमा पर के जंगल में चिथड़े लपेट कर रंगा हुआ काठ का एक हाथी छोड़वा दिया। उदयन उसे पकड़ने पहुँचा। वीणा बजाने पर हाथी उल्टी तरफ़ दौड़ा। उदयन ने घोड़े से पीछा किया। उसके साथी पिछड़ गये। प्रद्योत के कुछ सैनिक हाथी के पेट में और कुछ जंगल में छिपे हुए थे, उन्होंने उसे पकड़ लिया। प्रद्योत ने अपने कैदी से अपनी लड़की वासवदत्ता को संगीत सिखाने का काम लिया। कुछ दिन बाद युवक और युवती षड्यन्त्र कर भाग निकले! पर कैदी उदयन की अपेक्षा दामाद उदयन प्रद्योत के लिए अधिक उपयोगी हुआ और इसी कारण मगध को अब अवन्ति के लिए अधिक सतर्क होना पड़ा (५५० ई० पू०)। किन्तु पाँच बरस बाद प्रद्योत की मृत्यु हो जाने पर मगध को अवन्ति का डर जाता रहा (५४५ ई० पू०)।

कोशल में प्रसेनजित् के बाद उसका बेटा विरूढक राजा हुआ। जब वह युवराज था तो उसके रिश्तेदार और पड़ोसी शाक्यों ने उसका अपमान किया था; और विरूढक ने उन्हें जड़ से मिटा देने की ठान ली थी। शाक्य वे लोग थे जिनमें बुद्ध ने जन्म लिया था। विरूढक तीन बार उन पर चढ़ाई करते-करते बुद्ध के समझाने से रुक गया, पर अन्त में बुद्ध ने भी दखल देना व्यर्थ समझा। विरूढक ने कपिलवास्तु पर चढ़ाई कर उसे घेरा और शाक्यों का संहार किया।

उसी तरह अजातशत्रु भी अपना राज्य बढ़ाने के लिए वृजि-संघ पर घात लगाये हुए था। जब बुद्ध अपने जीवन में अन्तिम बार राजगृह आये, तो उसने अपने मन्त्री वर्षकार को उनके पास भेज कर जानना चाहा कि बुद्ध इस बारे में क्या कहते हैं। बुद्ध ने वृजियों की बाबत सात प्रश्न पूछे और तब अपनी सम्मति दी।

उनके कहने का सार यह था कि जब तक वृजि लोग अपनी परषदों में नियम से इकट्ठे होते हैं, जब तक वे एक साथ बैठते, एक साथ उद्यम करते, और एक साथ वृजि-कार्यों (राष्ट्रीय कार्यों) को निबाहते हैं, जब

तक वे बाक़ायदा कानून बनाये बिना कोई आज्ञा जारी नहीं करते और बने हुए नियम का उल्लंघन नहीं करते, जब तक वे अपने 'वृजि-धर्म' (राष्ट्रीय नियम और संस्थाओं) के अनुसार मिल कर आचरण करते हैं, जब तक वे अपने वृद्धों (मुखियों) का आदर करते और उनकी सुनने लायक़ बातें सुनते हैं, जब तक वे अपनी कुल-स्त्रियों और कुल-कुमारियों पर किसी किस्म की ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं करते, जब तक वे अपने वृजि-चैत्यों (राष्ट्रीय मन्दिरों) का आदर करते और अपने अरहतों (त्यागी विद्वानों) की रक्षा करते हैं, तब तक उनका अभ्युदय और बढ़ती ही होगी, उनकी हानि नहीं हो सकती।

अजातशत्रु ने समझ लिया कि वह अपनी सैनिक शक्ति से वृजि-संघ को नहीं तोड़ सकता। तो भी उसने निश्चय किया, "मैं इन्हें अनीति-मार्ग में फँसा दूँगा"। उसने अपने गुप्तचरों के षड्यन्त्रों और रिशवत द्वारा उनमें फूट डालना शुरू किया और बुद्ध के निर्वाण के चार बरस पीछे वैशाली को जीत लिया (५४० ई० पू०)।

§३. पारसी साम्राज्य में गान्धार का सम्मिलित होना—भारतवर्ष के पच्छिम में भी आर्यों की कई शाखाएँ रहती थीं। जैसे हमारे पुरखा अपने देश को आर्यावर्त कहते थे, वैसे ही अफ़ग़ानिस्तान के पच्छिम में जो आर्य रहते थे, वे अपने देश को ऐर्यान अर्थात् ऐर्यों या आर्यों का देश कहते थे। उसी से ईरान शब्द बना है। और आगे पच्छिमी एशिया और यूनान में भी आर्य लोग थे। किन्तु इन सभी देशों में अभी तक आर्यों की शक्ति चमक न पायी थी; अभी तक वहाँ बावेरु, मिस्र आदि के सामी (सैमिटिक) और हामी (हैमिटिक) राज्यों की तूती बोलती थी। छठी शताब्दी ई० पू० में उन सभी देशों में एक आर्य साम्राज्य स्थापित हो गया। ईरानी आर्यों में पार्स नाम की एक जाति ईरान की खाड़ी पर रहती थी, उसके कारण उस देश का नाम पारस पड़ गया था।

हमारे यहाँ, इस युग में, जैसे बुद्ध भगवान् हुए, वैसे ही ईरान में ज़रथुस्त नाम के धर्मसुधारक हुए। पारस में हखामनि नाम के एक पुरुष

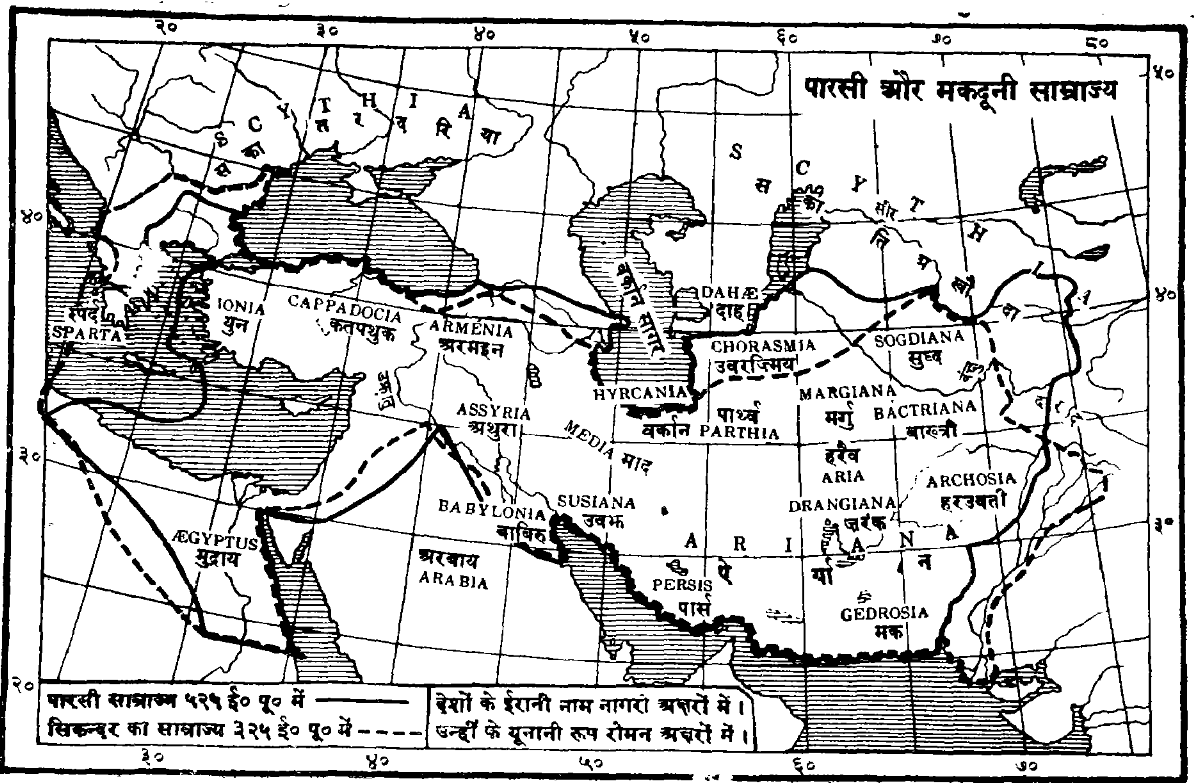
ने सातवीं शताब्दी ई० पू० में एक राजवंश स्थापित किया। उस वंश में दिग्विजयी सम्राट् कुरु (Cyrus)* हुआ (५५९–५२९ ई० पू०)। उसके अधीन समूचा ईरान था। बावेरु और मिस्र आदि के सेमिटिक और हैमिटिक राज्यों को भी उसने जीत लिया। अरब और समूचा पच्छिमी एशिया भी उसके साम्राज्य में आ गया। यूनान देश पर भी उसका आधिपत्य हुआ। पूरब की तरफ़ उसने आमू दरिया के काँठे में बलख के इलाके को तथा शकों और मकों के देश को जीत लिया। बलख को हमारे पुरखा बाह्लीक तथा ईरानी लोग बाख्त्री कहते थे। वह भारत और ईरान के साझे का प्रदेश था। शकों की तब तीन बस्तियाँ थीं—एक कास्पियन के तट पर, दूसरी सीर दरिया के काँठे में, और तीसरी शकस्थान में, जिसे अब सीस्तान कहते हैं। मकों का देश मकरान था। शकस्थान और मकरान भारत और ईरान की सीमा के देश थे। इन्हें जीतने के बाद कुरु ने हिन्दूकुश के दक्खिन उतर कर भारत पर चढ़ाई की। आजकल जो इलाक़ा काफ़िरिस्तान कहलाता है, उसकी राजधानी तब कापिशी थी। कुरु ने कापिशी नगरी उजाड़ दी। उसने पक्थों का देश भी जीत लिया। कापिशी और पक्थ-देश तब भारत के अन्दर गिने जाते थे। पक्थ लोग आजकल के पख़्तो या पश्तो बोलने वाले पठानों के पुरखा थे और झोब नदी की दून उनका ख़ास देश था। मकरान के रास्ते कुरु ने सिन्ध पर भी चढ़ाई करनी चाही, पर उधर से हार कर वह केवल सात साथियों के साथ जान बचा कर वापिस गया।

कुरु के बाद इस वंश में विश्तास्प† का बेटा दारयवहु (Darius) प्रसिद्ध है (५२१–४८५ ई० पू०)। उसने भारत के कम्बोज, गान्धार और सिन्धु

---

* कुरु का नाम यूनानी लोग जैसे लिखते थे उसका अंग्रेजी रूप Cyrus है। उसका मूल उच्चारण कुरुष् है। "कुरुष्" का अन्तिम ष् प्रथमा एकवचन का सूचक है, जैसा संस्कृत में भी होता है।

† विश्त = विंशत्, बीस; अस्प = अश्व, घोड़ा। पुराने ईरानी शब्द संस्कृत से कितने मिलते-जुलते हैं!


पारसी और मकदूनी साम्राज्य
SCYTHIA
SCYTHIA
IONIA
युन
CAPPADOCIA
कतपथुक
ARMENIA
अरमइन
SPARTA
स्पर्द
ASSYRIA
अथुरा
MEDIA माद
HYRCANIA
वर्कान PARTHIA
पार्थ्व
वर्कान सागर
DAHÆ
दाह
CHORASMIA
उवरज्मिय
SOGDIANA
सुघ्व
MARGIANA
मर्गु
BACTRIANA
बाख्त्री
ARIA
हरैव
ARCHOSIA
हरउवती
DRANGIANA
जरंक
BABYLONIA
बाबिरु
SUSIANA
उवज
ARIANA
अरबाय
ARABIA
ÆGYPTUS
मुद्राय
PERSIS
पार्स
GEDROSIA
मक
पारसी साम्राज्य ५२९ ई० पू० में ———
सिकन्दर का साम्राज्य ३२५ ई० पू० में - - - -
देशों के ईरानी नाम नागरी अक्षरों में।
उन्हीं के यूनानी रूप रोमन अक्षरों में।

(यानी डेराजात और सिन्धसागर दोआब) प्रदेश भी जीत लिये। तक्षशिला की तब से अवनति हुई। दारयवहु ने अपना वृत्तान्त पत्थर की चट्टानों पर खुदवाया है। वह बड़े अभिमान से अपने को "ऐर्य ऐर्यपुत्र" (आर्य आर्यपुत्र) कहता है। उसके अधीन २१ प्रान्त थे, जिनमें से प्रत्येक का शासक क्षथ्रपावन् या क्षथ्रप (क्षत्रप) कहलाता था। सिन्धु प्रान्त से उसे सबसे अधिक आमदनी होती थी, जो उसके यहाँ सोने के रूप में पहुँचती थी।

पारसी साम्राज्य के बराबर बड़ा कोई साम्राज्य इससे पहले संसार में स्थापित न हुआ था। भारत के जो इलाके उसके अधीन हुए, वे लगभग ४२५ ई० पू० तक स्वतन्त्र हो गये। बाकी साम्राज्य प्रायः सौ बरस और बना रहा।

§४. मगध का पहला साम्राज्य (५५०–३६६ ई० पू०)—जिस हिस्से में आजकल पढ़ने-लिखने की भाषा हिन्दी है, प्रायः उसी को प्राचीन लोग 'मध्यदेश' कहते थे। छठी शताब्दी ई० पू० के उत्तरार्ध में उसमें मगध की तूती बोलने लगी। अजातशत्रु के समय तक मगध, अंग को हज़म कर चुका, कोशल को नीचा दिखा चुका और वृजि-संघ का राज्य छीन चुका था। उसके मुकाबले में अब केवल अवन्ति बाकी थी। अजातशत्रु का पोता राजा अज उदयी था (अन्दाज़न ४८६–४६७ ई० पू०)। मगध के राज्य में मिथिला भी शामिल हो जाने से उसकी पुरानी राजधानी राजगृह एक कोने में पड़ गयी थी। इसलिए उदयी ने गंगा और सोन के संगम पर पाटलिपुत्र नगरी की स्थापना की, जो आगे चल कर संसार भर में प्रसिद्ध हुई। पाँडर (पाटलि) के पेड़ वहाँ अधिक होने से उसका यह नाम पड़ा। वही आजकल का पटना है। उदयी ने अवन्ति का भी पराभव किया और उसे अपने अधीन कर लिया। मध्यदेश के और सब जनपद इससे पहले या पीछे मगध की छत्रछाया में आ गये। उदयी के बेटे नन्दिवर्धन (अन्दाज़न ४५८–४१८ ई० पू०) और पोते महानन्दी (अन्दाज़न ४०६–३७४ ई० पू०) के समय यह साम्राज्य और भी बढ़ गया। नन्दिवर्धन ने कलिंग (उड़ीसा) को भी जीत लिया था।

§५. पाण्ड्य, चोल, केरल और सिंहल राष्ट्रों की स्थापना—इधर एक और बड़ी प्रक्रिया इस समय जारी थी। दक्खिन में अश्मक के और आगे,

भारत के अन्तिम छोर तक, आर्य बस्तियाँ और राज्य स्थापित हो गये। पाण्डु नाम की जाति पंजाब या मधुरा (मथुरा) में रहती थी। उसकी एक शाखा ने भारत के अन्तिम दक्खिनी कोने में जाकर एक नयी मधुरा



मगध का एक रथी योद्धा

सन् १९३४ में पटना की नाली की खुदाई में जिस गहराई पर काली मिट्टी का यह खिलौना पाया गया है, उससे सिद्ध होता है कि यह मगध के पहले साम्राज्य के समय का है। असल साइज़। [पटना म्यूज़ियम]

नगरी बसायी, जो अब मदुरा कहलाती है। वह नया राज्य पाण्ड्य कहलाया। पाण्ड्य के पच्छिम, समुद्र-तट पर, चेर राज्य था, और पाण्ड्य के उत्तर चोल।

चेर का ही दूसरा रूप केरल है। चेर और चोल राज्य आर्य प्रवासियों ने स्थापित किये या द्राविडों ने सो नहीं कहा जा सकता।

लंका या ताम्रपर्णी द्वीप में भी उत्तर से आर्यों ने जाकर एक नया उपनिवेश बसाया था। उसका वृत्तान्त एक मनोरञ्जक कहानी में गुँथ गया है। वह कहानी यों है। कलिंग देश की एक राजकुमारी वंग (पूरबी बंगाल) के राजा को व्याही थी। उनके एक अत्यन्त रूपवती कन्या हुई जो बड़ी निडर भी थी। वह एक बार घर से अकेली भाग कर व्यापारियों के एक सार्थ (क़ाफ़िले) के साथ वंग से मगध को चल दी। रास्ते में लाड देश (राढ़ अर्थात् पच्छिमी बंगाल) के जंगल में एक सिंह उसे उठा ले गया। उस युवती से उस सिंह के सिंहबाहु नाम का एक पुत्र और सिंहवल्ली नाम की कन्या हुई। सिंहबाहु ने बड़े होकर सिंहपुर बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। उस का बेटा विजय बड़ा क्रूर था; प्रजा के कहने से पिता ने उसे देशनिकाला दे दिया। सात सौ साथियों के साथ नाव पर बैठा कर उन्हें छोड़ दिया गया। "दिशामूढ" होकर उनकी नाव कोंकण में शूर्पारक पट्टन (आजकल के सोपारा) पर जा लगी। वहाँ के लोगों ने उन का स्वागत किया, पर वे भी विजय के साथियों से ऊब गये। उसी नाव पर वह मंडली फिर रवाना की गयी और लंका पहुँची। वहाँ तब यक्ष लोग राज्य करते थे। विजय ने यक्ष राजकुमारी कुवेणी से विवाह किया, पर पीछे उसे त्याग दिया। तब उसने मदुरा के पाण्ड्य राजा की कन्या को ब्याहा और ताम्रपर्णी नगरी बसा कर अड़तीस बरस धर्म से राज्य किया। उस के साथियों ने वहीं अनुराधपुर, उज्जयिनी आदि नगरियाँ बसायीं। ये लोग सिंहपुर से आये थे, इस कारण इस द्वीप का नाम भी सिंहल पड़ा, जो अब तक चला आता है।

इस कहानी में चाहे जितना अंश सच का हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पाण्ड्य आदि बस्तियों की अपेक्षा सिंहल में आर्यों की बहुत बड़ी संख्या पहुँची, क्योंकि पुराने पाण्ड्य, चेर और चोल राष्ट्रों में जहाँ अब द्राविड भाषाएँ बोली जाती हैं, वहाँ सिंहल की भाषा आर्य है। इस प्रकार ४०० ई० पू० के करीब तक आर्य सत्ता भारतवर्ष के अन्तिम छोरों तक पहुँच गयी और दूसरी जातियाँ पूरी तरह उसके प्रभाव में आ गयीं थीं।

अध्याय २

बुद्ध, महावीर और उनके समय का भारतीय जीवन

§१. **बुद्ध से ठीक पहले का समाज और धर्म**—वेद-संहिताएँ बनने के बाद यज्ञों में उनके मन्त्रों का प्रयोग करने के लिए 'ब्राह्मण' नाम के गद्य-ग्रन्थ बने। उनके ज़माने को उत्तर वैदिक काल अर्थात् पिछला वैदिक ज़माना कहते हैं। आर्यों का समाज और धर्म तब पहले से अधिक परिपक्व हो चला था। उस समाज में भिन्न-भिन्न दर्जों का थोड़ा-थोड़ा भेद प्रकट होने लगा था। जो रथ में बैठने वाले क्षत्रिय सरदार थे, वे पहले ही साधारण लोगों से कुछ ऊँचे गिने जाते थे। उन्हीं के नमूने पर ब्राह्मणों की भी (जो मंत्र पढ़ने वाले थे) अब एक अलग सी श्रेणी दिखायी देने लगी। बाकी जो साधारण 'विशः' बचे, वे वैश्य अर्थात् जनसाधारण कहलाने लगे। बहुत से दास लोग भी आर्यों के समाज में मिल गये थे; और वे शूद्र कहलाये। दासों के प्रति जो घृणा का भाव था वह शूद्रों के प्रति भी (परन्तु कुछ दर्जे कम) बना रहा। वे आर्यों से भिन्न वर्ण—यानी रंग—के थे।

वर्ण शब्द आर्यों की विभिन्न श्रेणियों के लिए भी बरता जाने लगा था। किन्तु उस समय के वर्णों के बीच कोई बाँध न बँधा था। तीन वर्णों के आदमी आसानी से एक से दूसरे वर्ण में चले जाते थे। चार आश्रमों अर्थात् मनुष्य-जीवन के चार विभागों का विचार पहले-पहल उत्तर वैदिक काल में ही परिपक्व हुआ। चौथा आश्रम—सन्यास—केवल ब्राह्मणों अर्थात् विद्वानों के लिए था। यज्ञों के कर्मकाण्ड का आडम्बर इस युग में बहुत बढ़ गया था। किन्तु आरण्यकों अथवा वानप्रस्थों अर्थात् जङ्गल में रहने वाले मुनियों के आश्रमों में, जो दार्शनिक विचार के केन्द्र थे, उस कर्मकाण्ड के विरुद्ध एक

लहर उठी। उन्हीं आश्रमों में अब उपनिषद्-ग्रन्थों की रचना हुई। उपनिषदों ने सीधे शब्दों में कहा कि "ये यज्ञ फूटी नाव की तरह हैं"। आदर्श को खोजने वाले लोग उनसे ऊब कर विचार और दार्शनिक चिन्तन की तरफ़ झुकने लगे। किन्तु वे दार्शनिक विचार भी केवल विद्वानों की प्यास बुझा सकते थे। जनसाधारण के लिए या तो यज्ञों का कर्मकाण्ड था, या जड-जन्तु-पूजा। उन से लोगों का मन नहीं भरता था; लोग मानो किसी सरल मार्ग के लिए तरस रहे थे। समय की ज़रूरत से वैसा मार्ग दिखाने वाले कई महात्मा प्रकट हुए। महावीर और बुद्ध उन में से मुख्य थे।

§२. **महावीर और बुद्ध के जीवन और उपदेश**—श्रावस्ती से ६० मील पर, रोहिणी नदी के पच्छिम, कपिलवास्तु नगरी शाक्यों के संघराष्ट्र की राजधानी थी। रोहिणी के पूरब कोलिय "राजाओं" का देवदह नगर था। शुद्धोदन शाक्य कुछ समय के लिए कपिलवास्तु के राजा अर्थात् राष्ट्रपति थे। उन्होंने एक कोलिय राजा की दो कन्याओं, माया और प्रजावती, से ब्याह किया था।

बरसों की प्रतीक्षा के बाद महामाया को पुत्र होने की आशा हुई। दोनों बहनें मायके रवाना हुईं। रास्ते में लुम्बिनी के सुन्दर वन में माया ने उस पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम आज संसार के आधे के क़रीब स्त्री-पुरुष प्रतिदिन जपते हैं। सात दिन बाद उसे प्रजावती के हाथ सौंप वह परलोक सिधार गयीं। लुम्बिनी को आजकल रुम्मिनदेई कहते हैं, और वह बस्ती ज़िले की सीमा पार नेपाल की तराई में है।

बालक सिद्धार्थ गौतम की बचपन से ही चिन्ताशील प्रवृत्ति देख कर पिता ने १८ वर्ष की आयु में उसका विवाह कर दिया, पर तो भी उसकी प्रवृत्ति न बदली। छोटी-छोटी घटनाएँ उसके दिल पर असर कर जातीं थीं। एक दिन रथ में सैर करते समय उसने एक बूढ़े को कमर झुकाये देखा। इसकी यह दशा क्यों है? बुढ़ापे के कारण। बुढ़ापा क्या चीज़ है? क्या वह इसी आदमी को सताता है या सब को? इत्यादि प्रश्न उसके जी में उठे। इसी तरह सिद्धार्थ ने एक रोगी और एक लाश को देखा। और अन्त में एक शान्त प्रसन्न-मुख सन्यासी को देख कर उसके विचार एक निश्चित इरादे की ओर बढ़ने लगे।

वह तब अट्ठाइस बरस का था। नदी-तट पर एक बग़ीचे में बैठे उसे अपने पुत्र होने की ख़बर मिली। चारों तरफ़ उत्सव-गीत गाये जाने लगे। पर सिद्धार्थ के मन में कुछ और हो समा चुका था। उसी धुन को लेकर वह उस रात अन्तिम बार अपनी स्त्री के पास गया। दिये के उजाले में उसने उस युवती को सोते देखा। उसका एक हाथ बच्चे के सिर पर था। जी में आया एक बार बच्चे को गोदी ले ले; पर अन्दर की एक आवाज़ ने सावधान किया। हृदय को कड़ा करके वह उसी रात गृहस्थ के सब सुखों को त्याग सन्यास के लिए निकल पड़ा। इसी को गौतम का 'महाभिनिष्क्रमण' कहते हैं।

गौतम डील के लम्बे थे; उनकी आँखें नीली, रङ्ग गोरा, कान लटकते हुए और हाथ लम्बे थे जिनकी अँगुलियाँ घुटनों तक पहुँचती थीं। केश घूंघर वाले और छाती चौड़ी थी।

मल्लों के देश को जल्द लाँघ सिद्धार्थ वैशाली पहुँचे और वहाँ से राजगृह। उन दोनों स्थानों में उन्होंने दो बड़े दार्शनिकों के पास उस समय की विद्याएँ पढ़ीं। गृहस्थों के हिंसापूर्ण कर्मकाण्ड से ऊब कर वे दर्शन की ओर झुके थे। पर उस सूखी दिमाग़ी कसरत में भी उन्हें वह शान्ति न मिली, जिसे वे अपने और संसार के लिए खोज रहे थे। तब उन्होंने एक और कठिन मार्ग पकड़ा। उसी आश्रम के पाँच विद्यार्थियों को साथी बना, वे गया के पहाड़ी जंगलों में उस समय के नियम के अनुसार तपस्या करने गये। वहाँ निरंजना नदी के किनारे छः बरस तक घोर तप करते-करते उन का केवल हाड़-चाम बाकी रह गया।

कहानी है कि एक बार कुछ नाचने वाली स्त्रियाँ गाती हुई उस जंगली राह से गुज़रीं। उनके गीत की ध्वनि गौतम के कान में पड़ी। वे गाती थीं 'अपनी वीणा के तार को ढीला न करो, नहीं तो वह बजेगा नहीं' और 'उसे इतना कसो भी नहीं कि वह टूट ही जाय!' पथिकों के उस गीत से गौतम को बड़ी शिक्षा मिली। उन्होंने देखा, वे अपने जीवन के तार को बहुत कसे जा रहे हैं। तब से वे अपनी देह की सुधि लेने लगे। उनके साथी उन्हें तप से डरा समझ, साथ छोड़ कर, बनारस चले गये। वे

अकेले देहाती स्त्रियों से भिक्षा पा-पाकर धीरे-धीरे स्वास्थ्य प्राप्त करने लगे। सुजाता नाम की एक युवती ने वहाँ गौतम को बड़ी श्रद्धा से पायस खिलाया।

स्वस्थ होने के बाद, एक दिन गौतम एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठे विचार करते थे। पर ध्यान लगाते ही "मार" (यानी मनुष्य की अपनी वासनाएँ) ने उन पर हमला किया। जल्द ही गौतम ने मार को जीत लिया; अर्थात् उन के चित्त के सब विक्षेप शान्त हो गये। तब उन्हें वह "बोध" (ज्ञान) हुआ, जिसके लिए वे भटकते फिरते थे। उसी दिन से गौतम "बुद्ध" हुए, और वह पीपल भी बोधि-वृक्ष कहलाया। गौतम की बोधि या बूझ क्या थी? वह केवल यह थी कि सरल सच्चा जीवन ही धर्म का सार है; वह सब यज्ञों, शास्त्रार्थों और तपों से बढ़ कर है। संयम-सहित सच्चा आचरण ही असल धर्म है।



भगवान बुद्ध—गुप्त युग की एक मूर्त्ति
[मथुरा म्यूज़ियम; भा० पु० वि०]

गौतम अपने बोध से स्वयं सन्तुष्ट हो कर बैठने वाले न थे। 'उत्थान' (उठना, उद्यम करना) और 'अप्रमाद' (कभी ढील न करना) उनके जीवन और उनकी शिक्षा का मूल-मन्त्र था। बनारस पहुँच कर (जहाँ आज-कल सारनाथ है) वे अपने पुराने साथियों से मिले और उन्हें समझाया। "भिक्खुओ, सन्यासी को दो अन्तों (सीमाओं) का सेवन न करना चाहिए। वे दो अन्त कौन से हैं? एक तो काम और विषय-सुख में फँसना जो अत्यन्त हीन, ग्राम्य और अनार्य है; और दूसरा शरीर को व्यर्थ कष्ट देना जो अनार्य और अनर्थक है। इन दोनों अन्तों को त्याग कर तथागत (ठीक समझ वाले, बुद्ध) ने मध्यमा प्रतिपदा (मध्यम मार्ग) को पकड़ा है, जो आँख खोलने वाली और ज्ञान देने वाली है।" यह मध्यम मार्ग ही बौद्ध धर्म का निचोड़ है।

बुद्ध का यह पहला उपदेश "धर्मचक्र-प्रवर्त्तन" कहलाता है। जिस प्रकार राजा लोग चक्रवर्त्ती बनने के लिए अपने रथ का चक्र चलाते थे, वैसे ही बुद्ध ने धर्म का चक्र चलाया। चौमासे में सन्यासी यात्रा नहीं करते, इसलिए उस चौमासे में वे वहीं रहे। धीरे-धीरे उनके चेलों में साठ भिक्खु और बहुत से उपासक (गृहस्थ अनुयायी) हो गये। बुद्ध ने उन भिक्खुओं को एक "संघ" अर्थात् प्रजातन्त्र के रूप में संगठित कर दिया। बौद्ध धर्म में किसी एक आदमी की हुकूमत न थी, संघ ही सब कुछ था। तब बुद्ध ने कहा—"भिक्खुओ, अब तुम जाओ, जनता के हित के लिए घूमो। कोई भी दो भिक्खु एक तरफ़ न जाओ।"

स्वयं बुद्ध भी भ्रमण को निकले। सबसे पहले वे गया की तरफ़ गये। वहाँ तीन काश्यप भाई रहते थे, जो बड़े विद्वान् कर्म-काण्डी थे और जिनके पास सैकड़ों विद्यार्थी पढ़ते थे। बुद्ध का उपदेश सुनकर उन्होंने यज्ञों की सब सामग्री निरंजना में बहा दी, और उनके साथ चल दिये। इस बात का मगध की जनता और राजा बिम्बिसार पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे भी बुद्ध के उपासक हो गये। राजगृह के पास सारिपुत्र और मोग्गलान (मौद्‌गलायन) नाम के दो बड़े विद्वान् ब्राह्मण बुद्ध के चेले बने। बौद्ध संघ में वे उनके "अग्र श्रावक" अर्थात् प्रमुख शिष्य कहलाये।

बुद्ध का यश अब कपिलवास्तु तक पहुँच गया और उन्हें वहाँ का निमन्त्रण स्वीकार करना पड़ा। वे भिक्खुओं के साथ भिक्षापात्र हाथ में लिये

उन्हीं घरों के सामने भिक्षा के लिए मौन खड़े हुए, जिनके वे राजा होते ! शुद्धोदन शाक्य उन्हें भिक्खुओं सहित अपने महल में ले गये, जहाँ सब स्त्री-पुरुषों ने उनका उपदेश सुना। किन्तु राहुल की माता (गौतम की पत्नी) उन श्रोताओं में न थी। बुद्धदेव सारिपुत्र और मोग्गलान के साथ स्वयं उसके मकान पर गये। वह उन्हें देख कर एकाएक गिर पड़ी और पैर पकड़ कर रोने लगी। जल्द ही उसने अपने को सँभाला और बुद्ध का उपदेश सुना। सात दिन बाद जब फिर बुद्ध शुद्धोदन के घर आये, तो उसने राहुल को बतलाया—'ये तुम्हारे पिता हैं, इनसे अपनी पितृ-दाय (बपौती) माँगो।' कुमार राहुल ने बुद्ध के पास जाकर कहा—'भिक्खु, मुझे मेरा पितृ-दाय दो।' बुद्ध ने सारिपुत्र से कहा—'राहुल को प्रव्रज्या (सन्यास) दान करो।' तब से वह कुमार भिक्खु हो गया।

कपिलवास्तु का पंचायती राजा इस बार भद्रक शाक्य था। बुद्ध के वापिस चले जाने पर अनुरुद्ध शाक्य अपनी माँ के पास गया और भिक्खु बनने की आज्ञा माँगने लगा। माँ ने कहा—'बेटा यदि राजा भद्रक घर छोड़ दे तो तू भी भिक्खु हो जा।' अनुरुद्ध के कहने से भद्रक भी तैयार हो गया। आनन्द आदि कई और शाक्य भी साथ हो गये और मल्ल राष्ट्र की तरफ़, जहाँ बुद्ध ठहरे हुए थे, चले। कुछ दूर जाकर उन्होंने अपने गहने और क़ीमती कपड़े उतार दिये और दुपट्टे में लपेट कर अपने नौकर उपालि नाई को देते हुए कहा—'जाओ, तुम्हारी जीविका के लिए यह काफ़ी होगा।' पर उपालि के दिल में कुछ और था। वह भी उनके साथ-साथ गया। बाद में ये लोग बड़े प्रसिद्ध हुए। आनन्द तो बुद्ध का दिन-रात का साथी, उनका "उपस्थापक" (प्राइवेट सेक्रेटरी) बन गया। उपालि बुद्ध के पीछे संघ का प्रमुख चुना गया।

एक बरस के इस भ्रमण के बाद बुद्ध राजगृह लौट आये। वहाँ उन्हें श्रावस्ती का करोड़पति सेठ सुदत्त अनाथपिण्डक निमन्त्रण देने आया। सुदत्त ने बौद्ध संघ को दान करने के लिए श्रावस्ती के राजकुमार जेत से एक बग़ीचा ख़रीदना चाहा। जेत ने कहा—'जितने सोने के सिक्के उस बाग में बिछ जायँ, वह उसकी कीमत है।' सुदत्त ने कहा—'मैंने बाग़ ले लिया।' जेत ने कहा—'मैंने

नहीं बेचा।' तब यह विवाद अदालत में गया। अदालत ने सुदत्त के पक्ष में फ़ैसला दिया, क्योंकि जेत ने अधिक से अधिक मूल्य कहा था और सुदत्त



जेतवन की खरीद और दान,
सुदत्त जलपात्र लिये दान करने खड़े हैं; गाड़ी पर सिक्के लाये गये हैं
जो बगीचे में बिछाये जा रहे हैं।

शुंगयुगीन भारहुत-स्तूप का एक मूर्त्त दृश्य [इण्डियन म्यू०, कलकत्ता]

उतना भी देने को तैयार था। सुदत्त ने तब वह बाग़ जेतवन खरीद लिया और उस में बौद्ध संघ के लिए विहार यानी मठ बनवाया।

प्रायः तीन बरस पीछे शुद्धोदन शाक्य स्वर्ग सिधारे। तब प्रजावती और राहुलमाता देवी ने भिक्खुनी बनने का संकल्प किया। अनेक शाक्य स्त्रियों के साथ वे बुद्ध के पास वैशाली पहुँचीं। कुछ देर तक बुद्ध हिचकिचाये, क्योंकि उस समय तक स्त्रियों के लिए सन्यास-मार्ग खुला न था। अन्त में आनन्द के कहने से बुद्ध ने स्त्रियों के लिए वह मार्ग खोल दिया। भिक्खुनी-संघ की अलग स्थापना हुई। उस संघ ने भी बड़ा काम किया। वृद्ध भिक्खु थेर (स्थविर) कहलाते थे। उसी प्रकार वृद्धा भिक्खुनियाँ थेरी कहलाती थीं। थेरों की वाणियाँ थेरगाथा नाम की पुस्तक में है, वैसे ही थेरियों की थेरी-गाथा में।

४५ बरस तक ठेठ हिन्दुस्तान के सब जनपदों में बुद्ध बराबर घूमते रहे। उनके अन्तिम समय में उनके पुराने साथी प्रायः उठ गये थे। अपने भ्रमण के ४५ वें बरस उन्हें विरूढक की करतूत से कपिलवास्तु के खँडहर देखने पड़े; और वे राजगृह पहुँचे तो अजातशत्रु वैशाली को ढहा देने की घात में था। वैशाली जा कर वे शहर के बाहर ठहरे। अम्बपाली गणिका को खबर मिली कि बुद्धदेव उसकी आम की बगिया में पधारे हैं। उसने उनके पास जा कर भिक्खु-संघ को भोजन कराने की प्रार्थना की, जो बुद्ध ने चुप रह कर स्वीकार की। लिच्छवि लोग सुन्दर रथों पर सवार हो जब बुद्ध के दर्शन को चले तो उन्होंने देखा कि अम्बपाली उनके पहियों से पहिया टकराते हुए अपना रथ हाँकती लौट रही है। लिच्छवियों ने पूछा—यह क्या बात है कि तू लिच्छवियों के बराबर अपना रथ हाँक रही है? अम्बपाली ने उत्तर दिया—आर्यपुत्रो मैंने भगवान को भिक्खु-संघ के साथ कल के भोजन के लिए न्यौता जो दिया है। उन्होंने कहा—अम्बपाली, हमसे एक लाख मुद्रा लेकर यह भोजन हमें कराने दे। उत्तर मिला—आर्यपुत्रो, आप मुझे वैशाली का समूचा राज्य दें तब भी मैं यह जेवनार नहीं दूँगी। निराश होकर लिच्छवियों ने कहा—अम्बका ने हमें हरा दिया। वे उसकी बगिया की ओर बढ़े। बुद्ध ने उन्हें आते देखा और भिक्खुओं से कहा—"जिन भिक्खुओं ने तावतिंश देवताओं को नहीं देखा है, वे लिच्छवियों की इस परिषद को देखें

और इस से देवताओं की परिषद का अनुमान करें ! उपदेश सुन चुकने पर लिच्छवियों ने बुद्ध से दूसरे दिन का भोजन करने की प्रार्थना की। "लिच्छवियो, मैंने कल के दिन अम्बपाली गणिका का न्यौता मान लिया है।" तब उन्होंने निराश होकर अपने हाथ पटके और कहा—हमें अम्बका ने हरा दिया ! दूसरे दिन उपदेश सुनने और भोजन कराने के बाद अम्बपाली ने कहा—'भगवन्, मैं यह आराम (बगीचा) भिक्खुओं के संघ के लिए, जिसके मुखिया बुद्ध हैं, देती हूँ।' वह दान स्वीकार किया गया। अम्बपाली पीछे थेरी हो गयी; उसके गीत भी थेरीगाथा में हैं।

वैशाली से बुद्ध एक गाँव गये। वहाँ उनके बड़ा दर्द उठा और मृत्यु निकट दिखायी दी। आनन्द ने कहा—भगवन्, जब तक आप भिक्खु-संघ को ठीक राह पर नहीं डाल देते, आशा है तब तक देह न त्यागेंगे। उत्तर मिला—"आनन्द, भिक्खु-संघ मुझसे क्या आशा करता है ? मैंने धर्म का साफ़-साफ़ उपदेश कर दिया। तथागत (बुद्ध) के धर्म में कोई गाँठ या पहेली तो नहीं है।...अब तुम अपनी ही ज्योति में चलो, अपनी ही शरण जाओ...धर्म की ज्योति में, धर्म की शरण में चलो।"

मल्लों के अनेक गाँवों में होते हुए बुद्ध पावा पहुँचे। वहाँ चुन्द लोहार ने उन्हें भोजन कराया और उसमें सुअर का मांस भी परस दिया। गृहस्थों से यह कहने की कि मैं अमुक चीज़ खाता हूँ अमुक नहीं खाता हूँ, बुद्ध की आदत न थी। उस भोजन से उनका दर्द बढ़ गया, रक्तातिसार हो गया। अन्तिम समय तक बड़ी पीड़ा रही। पावा से वे कुशिनगर को जो मल्लों की राजधानी थी गये। गोरखपुर के पास कसिया गाँव उसकी याद कराता है। रास्ते में उन्होंने आनन्द से कहा—"चुन्द के मन में कहीं कोई यह शंका न डाले कि उसके भोजन से बुद्ध का निर्वाण हो गया। आयुष्मान् चुन्द से कहना, मेरे लिए उसका भोजन और सुजाता का भोजन एक समान है।"

नदी में स्नान कर बुद्ध एक शाल-वन में आसन बिछवा कर लेट गये। शाल के पेड़ अपने फूल उन पर बरसाने लगे ! तब भी बुद्ध भिक्खुओं की

शंकाएँ दूर करते रहे। इसी बीच सुभद्र नाम का पण्डित बाहर से उनसे कुछ पूछने आया। आनन्द ने उसे रोक दिया, पर पता लगने पर बुद्ध ने पास बुला कर उसे उपदेश दिया। तब उन्होंने कहा—"भिक्खुओ, मैं तुम्हें अन्तिम बार बुलाता हूँ। संसार की सब सत्ताओं को अपनी-अपनी आयु है। अप्रमाद से काम करते जाओ। यही तथागत की अन्तिम वाणी है।" ऐसा कहते हुए, अस्सी बरस की आयु में उन्होंने आँखें मूँद लीं (५४५ ई० पू०)। यही उनका "महापरिनिर्वाण" (बुझना) कहलाता है।

कुशिनगर के मल्लों ने उनका दाह-कर्म करके उनके 'धातुओं' (फूलों) को भालों-धनुषों से घेर आठ दिन तक नाच-गान किया। निर्वाण का समाचार सुन कर चारों तरफ़ के राष्ट्रों के दूत आ जुटे। उन फूलों के आठ भाग करके वे अपने-अपने राष्ट्र में ले गये, जहाँ उन पर बड़े-बड़े स्तूप बनवाये गये। स्तूप उस इमारत को कहते हैं जो किसी पवित्र अवशेष के ऊपर यादगार के रूप में बनायी जाय। उसके अन्दर नींव में अवशेष रक्खा जाता था। यह वैदिक रीति थी।

निर्वाण के बाद ५०० बड़े भिक्खु राजगृह में इकट्ठे हुए, और उन्होंने बुद्ध के वचनों को मिल कर गाया। वह बौद्धों की पहली "संगीति" थी। सौ बरस बाद दूसरी संगीति वैशाली में हुई, और फिर तीसरी राजा अशोक के समय पटना में। इन संगीतियों में बौद्धों का धार्मिक साहित्य तैयार हुआ। शुरू में उसके दो अंश थे—धम्म और विनय। धम्म में बुद्ध के उपदेश बातचीत रूप में थे; विनय में भिक्खुओं के आचरण के नियम। अशोक के समय तक "त्रिपिटक" अर्थात् तीन पेटियाँ बन गयीं। विनय का विनय-पिटक बना; धम्म का संग्रह सुत्त (सूक्त) पिटक में हो गया। सुत्त-पिटक में बुद्ध की सूक्तियाँ हैं। और अभिधम्म-पिटक नाम से एक तीसरा पिटक बन गया जिसमें बौद्धों के दार्शनिक सिद्धान्त हैं। जिस प्रकार आजकल हिन्दी की खड़ी बोली के सिवाय बोलचाल की कई बोलियाँ हैं, वैसे ही तब संस्कृत के सिवाय बोलचाल की कई बोलियाँ थीं जो प्राकृत कहलाती थीं। त्रिपिटक पहले-पहल पालि नाम की प्राकृत में लिखा गया था।

भगवान् महावीर बुद्धदेव के समकालीन थे। वे वैशाली के पास कुण्डग्राम में वृजिगण के ज्ञात्रिक नाम के एक कुल में 'राजा' सिद्धार्थ के घर पैदा हुए थे। उनकी माता का नाम त्रिशला था, और उनका अपना नाम वर्धमान। सिद्धार्थ और त्रिशला तीर्थङ्कर पार्श्व नाम के एक धर्म-सुधारक के अनुयायी थे, जो प्रायः दो शताब्दी पहले बनारस में हुए थे। वर्धमान भी उन्हीं की शिक्षा पर चले। बड़े होने पर यशोदा नाम की देवी से उनका विवाह हुआ, जिससे एक लड़की हुई। माता-पिता के मरने पर तीस बरस की आयु में बड़े भाई से आज्ञा ले उन्होंने घर छोड़ा। बारह बरस के भ्रमण और तप के बाद उन्होंने "कैवल्य" (ज्ञान) पाया। तब से वे अर्हत् (पूज्य), जिन (विजेता), निर्ग्रन्थ (बन्धनहीन) और महावीर कहलाने लगे। उनके अनुयायियों को अब हम जैन कहते हैं।

निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र अथवा महावीर अर्हत् होने के बाद निर्वाण-काल तक लगातार मिथिला, कोशल आदि में भ्रमण करते रहे। बुद्ध-निर्वाण के एक बरस पहले मल्लों की पावापुरी में उनका निर्वाण हुआ*। बुद्ध और उनकी शिक्षा में मुख्य भेद यह है कि बुद्ध जहाँ मध्यम मार्ग का उपदेश देते थे, वहाँ महावीर तप और कृच्छ्र तप को जीवन-सुधार का एक मुख्य उपाय मानते थे। महावीर का अहिंसावाद भी अन्तिम सीमा तक पहुँचा था, बुद्ध उस बारे में भी मध्यम-मार्गी थे। दोनों वेद और ईश्वर को न मानते थे। मगध आदि देशों में महावीर की शिक्षा जल्द फैल गयीं, कलिंग उनके जीते जी उनका अनुयायी हो गया। राजपूताना में उनके निर्वाण के एक शताब्दी बाद ही उनके मत की जड़ जम गयी। जैनों का पवित्र साहित्य भी काफ़ी बड़ा है, और वह अवध या कोशल की पुरानी प्राकृत अर्धमागधी में है।

§३. **बुद्ध-युग का आर्थिक जीवन**—वैदिक काल से अब तक भारत-वासियों के जीवन में बड़ा परिवर्तन हो गया था। उस काल में आर्यों की मुख्य जीविका पशुपालन और कृषि थीं, अब शिल्प और व्यापार भी उनके बराबर

* १४वीं शताब्दी से आधुनिक जैन लोग इस पावापुरी को राजगृह के पास मानते आये हैं।

बढ़ गये थे। कृषि में भी उन्नति हो चुकी थी। अब आराम और उद्यान (बगीचे) प्रायः हर बस्ती में लग चुके थे। कपास के पौधे का ज्ञान भी आर्यों को इसी युग में हुआ। उससे पहले संसार की अधिकांश जातियाँ कपास की खेती न जानती थीं*। उसकी खेती दूसरे सब देशों ने पहले-पहल भारतवर्ष से ही सीखी। यूनान के लोग जब यहाँ पहले-पहल आये, तो कपास देख कर बड़े चकित हुए, और उसे ऊन का पौधा कहने लगे। शिल्प की उन्नति के साथ, हर बस्ती में शिल्प से जीविका चलाने वाले शिल्पियों के अलग-अलग संगठन बन गये, जिन्हें श्रेणियाँ कहते थे। एक नगर के सब बढ़इयों की मिल कर एक "श्रेणि" होती थी। इसी तरह लोहारों, कुम्हारों, मालियों, मल्लाहों, सुनारों आदि की अलग-अलग श्रेणियाँ थीं। श्रेणि का एक मुखिया चुना जाता था जिसे प्रमुख या जेट्ठक (ज्येष्ठक) कहते थे। काशी जैसी बड़ी नगरियों में एक-एक शिल्प के गली-मुहल्ले ही अलग हो गये थे; जैसे दन्तकार-वीथी में खाली हाथी-दाँत का काम करने वाले ही रहते थे।

शिल्प के साथ-साथ स्थल और जल का व्यापार भी ख़ूब चलने लगा। व्यापारी लोग साथों यानी काफ़िलों में चलते थे। नगरों में व्यापारियों के भी संगठन बन गये थे जिन्हें निगम कहते थे। निगम का मुखिया भी चुना जाता था और सेट्ठी (श्रेष्ठी) कहलाता था। काशी, चम्पा, भरुकच्छ, शूर्पारक आदि के व्यापारी अपने जहाज़ लेकर सुवर्णभूमि, ताम्रपर्णी और बावेरु (बाबुल) तक जाते थे। सात-सात सौ आदमी जिनमें लम्बी यात्रा कर सकें, इतने बड़े जहाज़ बनने लगे थे। जहाँ पहले गाँव ही गाँव थे, वहाँ अब शिल्प और व्यापार बढ़ने के कारण बहुत सी नगरियाँ स्थापित हो गयीं थीं।

§४. **राज-काज की संस्थाएँ**—ग्राम भी जहाँ पहले एक तरह के जत्थे थे, वहाँ अब वे कृषकों के संघ हो गये। जनों के राज्य जनपदों के राज्य बन गये थे, सो हम बतला चुके हैं। वैदिक काल में राष्ट्र के सामूहिक जीवन में सब से छोटी इकाइयाँ ग्राम थे। अब श्रेणि और निगम भी उसी नमूने की इकाइयाँ

* मोहनजो दड़ो में कपास का कपड़ा पाया गया है। किन्तु आर्यों के साहित्य में उत्तर वैदिक काल से पहले कपास का कहीं पता नहीं मिलता।

बन गये। श्रेणियाँ न केवल अपना आर्थिक प्रबन्ध ख़ुद करती थीं, प्रत्युत अपने नियम-क़ानून बनाना, अपने सदस्यों को नियम पर चलाना और अपने मामलों का फैसला करना—सब उन्हीं के हाथ में था। यही हालत निगमों की भी थी। नगरियों का प्रबन्ध भी मुख्यतया निगमों के ही हाथ में था। इसलिए नगर की सभा भी पहले-पहल निगम ही कहलाने लगी।

राज-सभा में भी श्रेणियों और निगमों का बड़ा प्रभाव था। रामायण-महाभारत की ख्यातें तो पुरानी हैं, पर अब जो रामायण हमें मिलती है उसका बड़ा हिस्सा और वैसे ही महाभारत का बहुत सा अंश भी लगभग ५०० ई० पू० का लिखा हुआ है। रामायण में जहाँ रामचन्द्र को युवराज बनाने के लिए राजा दशरथ की सभा का चित्र खींचा गया है, उसमें श्रेणियों के मुखियों और निगमों के श्रेष्ठियों को ऊँचा स्थान दिया है। इसी तरह महाभारत में गन्धर्वों से हारने पर दुर्योधन कहता है कि मैं श्रेणि-मुख्यों को कैसे मुँह दिखाऊँगा। वैदिक ज़माने की समिति अब न रही थी, पर इस युग के छोटे-छोटे जनपदों की अपनी परिषदें थीं, जिन में ग्रामों, श्रेणियों आदि के लोग



भीटा (ज़ि० इलाहाबाद) की खुदाई में पायी गयी "सहजातिये निगमस" (सहजाति-निगम की) मोहर*। [भा० पु० वि०]

* भीटा का पुराना नाम सहजाति था। वह चेदि जनपद में था। इस मोहर के अक्षरों की लिखावट से और खुदाई में जिस सतह से यह पायी गयी है उससे सिद्ध होता है कि यह मौर्य-युग से कुछ पहले की है।

जमा हो कर ठहराव करते और राजा को सलाह देते थे। कई संघ-राष्ट्रों में राजा न होता था और परिषदें ही सब कुछ करतीं थीं। परिषदों में प्रस्ताव रखने, भाषण देने, सम्मति लेने आदि के बाक़ायदा नियम थे। शाक्यों की परिषद् जिस भवन में जुटती थी उसे सन्थागार कहते थे।

इस प्रकार आर्थिक और राजनीतिक जीवन में उन्नति हो जाने के कारण क़ानूनों की भी ज़रूरत पड़ी और क़ानून इसी युग में इकट्ठे किये गये। क़ानून के दो पहलू थे—धर्म और व्यवहार। धार्मिक सामाजिक जीवन का क़ानून 'धर्म' कहलाता था, और दीवानी और फ़ौजदारी क़ानून 'व्यवहार'। मुकद्दमों का फ़ैसला करने वाले न्यायाधीश 'वोहारिक' ('व्यावहारिक') कहलाते थे। श्रेणियों के परस्पर झगड़ों के फ़ैसले करने को एक ख़ास वोहारिक होता था।

§५. **सामाजिक जीवन**—वर्ण और आश्रम का विचार पहले-पहल किस रूप में प्रकट हुआ था, यह बतलाया जा चुका है। पर वर्ण जाति न थे। आर्यों के समाज की निचली सतह में अब कुछ अनार्य शूद्र जातियाँ भी शामिल हो गयीं थीं। वे जातियाँ—निषाद, चण्डाल, पुक्कस आदि—नीची गिनी जाती थीं। महाजनपदों के ज़माने में क्षत्रिय लोग भी अपने को एक 'जाति' कहने लगे थे और सब से ऊँचा मानते थे। मगध के पहले साम्राज्य के अन्तिम समय में ब्राह्मण भी कहीं-कहीं अपने को 'जाति' कहने लगे थे। क्षत्रिय और ब्राह्मण कल्पित जातियाँ थीं; क्योंकि वास्तव में सब क्षत्रिय और ब्राह्मण एक ही आर्य जाति के थे। बाक़ी सब प्रजा में कई काम और कई शिल्प ऊँचे और कई नीचे गिने जाते थे। किन्तु जात-पाँत का भेद तब तक न था। ऊँचे-नीचे लोगों में मिल कर खाना-पीना ब्याह-शादी सब कुछ जारी था। कुछ ब्राह्मण पिछले समय में अपने को जाति ज़रूर कहने लगे, पर वे साधारण प्रजा से अपने को अलग न कर पाये थे। क्षत्रियों में कुलीनता का विचार सबसे अधिक था, पर ज़रूरत पड़ने पर वे भी सब धन्धे करते और सब से ब्याह-शादी करते थे। ये सब बातें पालि की पुस्तकों से मालूम हुई हैं। तब दास-प्रथा भी थी; पर दास थोड़े थे और उनके साथ अच्छा बर्त्ताव होता था। वे घरेलू सेवा करते थे, खेती आदि का काम उनसे न लिया जाता था।

§६. **बुद्ध-युग का साहित्य**—पालि त्रिपिटक का परिचय ऊपर दिया गया है। सातवीं-छठी शताब्दी ई० पू० में भारत में बहुत सी मनोरञ्जक कहानियाँ प्रसिद्ध थीं। उन सब को बुद्ध के पूर्व-जन्म की कहानियों की शकल दे कर और उनका नाम 'जातक' रख कर उन्हें सुत्तपटिक के एक हिस्से में शामिल किया गया है। ५५० के करीब वे कहानियाँ संसार भर में सबसे पुरानी और अत्यन्त रुचिकर हैं।

बौद्ध साहित्य के साथ-साथ वैदिक साहित्य का अन्तिम अंश भी बन रहा था। उसमें ब्राह्मणों-उपनिषदों के बाद वेदाङ्ग बने। वेदाङ्ग छः थे। उनमें से एक व्याकरण था। दूसरा निरुक्त, जिसमें यह देखा जाता था कि शब्दों का विकास और परिवर्तन कैसे हुआ। तीसरा शिक्षा, अर्थात् वर्णों या अक्षरों के उच्चारण की शिक्षा। चौथा छन्द। पाँचवाँ था ज्योतिष और छठा कल्प। ज्योतिष में गणित सम्मिलित था। कल्प के तीन हिस्से हैं—एक श्रौत, जिसमें यज्ञों की विधि कही गयी है; दूसरा गृह्य, जिसमें घरेलू संस्कारों का विधान है; और तीसरा धर्म अर्थात् धार्मिक-सामाजिक रीतियाँ और कानून।

इस प्रकार आर्यों के व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक रहन-सहन और संस्कारों के सब नियम कल्प में हैं। वेदाङ्गों का समय ८वीं से ५वीं शताब्दी ई० पू० तक है। व्याकरण, छन्द, ज्योतिष आदि विषय पहले तो वेद के अंग रूप में पैदा हुए, पर पीछे ये स्वतन्त्र विज्ञान बन गये। वेदाङ्ग प्रायः सब 'सूत्रों' में हैं। किसी बात को कहने के लिए जो छोटे से छोटा वाक्य बनाया जा सके, उसे सूत्र कहते हैं। ब्राह्मणों, उपनिषदों की तरह वेदाङ्ग भी आश्रमों में तैयार हुए थे।

पीछे जब वेदों से स्वतन्त्र फुटकर विद्याएँ भी चल पड़ीं, तब कई बड़े मार्के के ग्रन्थ तैयार हुए। भारतवर्ष का पहला दार्शनिक कपिल इसी युग में हुआ। तक्षशिला के आत्रेय भारतीय आयुर्वेद के पहले प्रसिद्ध आचार्य थे। कपिल और आत्रेयों के ग्रन्थ अब मूल रूप में नहीं मिलते हैं। पच्छिमी गान्धार में पुष्करावती के पास सुवास्तु (स्वात) नदी के काँठे में शालातुर नामी गाँव में, जो आजकल के यूसुफ़ज़ई इलाके में पड़ता है, ४०० ई० पू० के क़रीब

व्याकरण के एक बहुत बड़े विद्वान् हुए जिनका नाम पाणिनि था। पाणिनि के जोड़ का वैयाकरण शायद आज तक दुनियाँ में पैदा नहीं हुआ। पाणिनि ने संस्कृत का एक बड़ा पूर्ण व्याकरण सूत्रों में लिखा जिसका नाम अष्टाध्यायी है। पाटलिपुत्र के राजा ने पाणिनि को वहाँ बुला कर उनका बड़ा आदर किया।

रामायण का मुख्य अंश और महाभारत का कुछ अंश भी इसी युग का है। भगवद्गीता बुद्ध के बाद लिखी गयी। वह महाभारत में और पीछे मिलायी गयी। उसका लेखक जो उपदेश देना चाहता था उसने बड़े अच्छे ढंग से उसे कृष्ण के मुँह से युद्ध-क्षेत्र में कहलवा दिया है। पाणिनि की अष्टाध्यायी से पता लगता है कि उससे पहले नाटक-कला शुरू हो चुकी थी और उस पर भी सूत्र लिखे गये थे। सूद जैसे विषय पर भी सूत्र बन गये थे। जिस प्रकार धर्मों का विचार धर्म-सूत्रों में हुआ उसी प्रकार व्यवहारों का विचार अर्थशास्त्रों में किया गया। जातकों की कहानियों से पहले कई अर्थ-शास्त्र भी तैयार हो चुके थे। उपनिषदों और कपिल के सम्प्रदाय में दार्शनिक विचार पहले-पहल शुरू हुआ था।

चौथा प्रकरण

नन्द-मौर्य्य साम्राज्य

(३६६—२११ ई० पू०)

अध्याय १

नन्द साम्राज्य और अलक्सान्दर की चढ़ाई

(३६६—३२५ ई० पू०)

§१. **नन्द वंश**—शिशुनाक वंश के राजा महानन्दी के दो बेटों (३७४-३६६ ई० पू०) का अभिभावक महापद्म नन्द था। उन दोनों को मार कर वह ख़ुद मगध की गद्दी पर बैठ गया। उसके वंश में केवल दो पीढ़ी राज्य रहा। महापद्म एक दृढ़ और चतुर शासक था। मगध के साम्राज्य की शक्ति उसने पहले से अधिक बढ़ा दी। उस साम्राज्य के अधीन जितने छोटे-छोटे जनपदों के राजा थे, उन सब की सफ़ाई कर के उसने सब जनपदों को सीधे अपने शासन में ले लिया। इसी कारण उसे 'सर्वक्षत्रान्तक' अर्थात् सब क्षत्रियों का काल कहते थे। वह उग्रसेन भी कहलाता था। 'महापद्म' और 'उग्रसेन' दोनों असल में उसके विरुद थे। महापद्म इस कारण कि उसके कोष में पद्मों धन था, और उग्रसेन इस कारण कि उसकी भयंकर सेना थी। किन्तु वह प्रजापीडक था। उसके बेटों में धन नन्द मुख्य हुआ। उसके समय में मकदूनिया के राजा अलक्सान्दर (सिकन्दर) ने पंजाब पर हमला किया, जिसके वृत्तान्त पर अब हमें ध्यान देना होगा।

§२. **अलक्सान्दर की चढ़ाई**—यूनानी लोग भी आर्य थे, और ६वीं ८वीं शताब्दी ई० पू० से वे सभ्य होने लगे थे। प्राचीन भारतवासी उन्हें

यवन कहते थे। उनके देश में बहुत से छोटे-छोटे राष्ट्र थे। उनमें से अधिकांश संघ-राष्ट्र थे। छठी शताब्दी ई० पू० से उन्होंने बड़ी उन्नति की। उनके उत्तर तरफ़ मकदूनिया का पहाड़ी देश था। उसे वे बर्बर अर्थात् जङ्गली कहते थे। किन्तु चौथी शताब्दी ई० पू० के मध्य में उसी मकदूनिया के राजा फ़िलिप ने सभ्य यूनान के सब छोटे-छोटे राष्ट्रों को, जो आपस में लड़ा करते थे, जीत कर कुचल दिया।

फ़िलिप का बेटा अलक्सान्दर बचपन से दुनिया जीतने के सपने देखा करता था। उसके सामने कौन सी दुनिया थी? यूनान के उत्तर और पच्छिम के आधुनिक युरोप के देश तो तब निरे जंगली थे। यूनानियों का उन से बहुत कम सम्पर्क था। उन जंगलियों को वे "उत्तरी हवा के लोग" कहा करते थे। किन्तु पूरब तरफ़ ईरान का विशाल साम्राज्य था। उसके पूरब हिन्द का नाम भी अलक्सान्दर ने सुन रक्खा था, पर उसे वह एक छोटा सा देश समझता था। उसके आगे चीन का पता उसे न था।

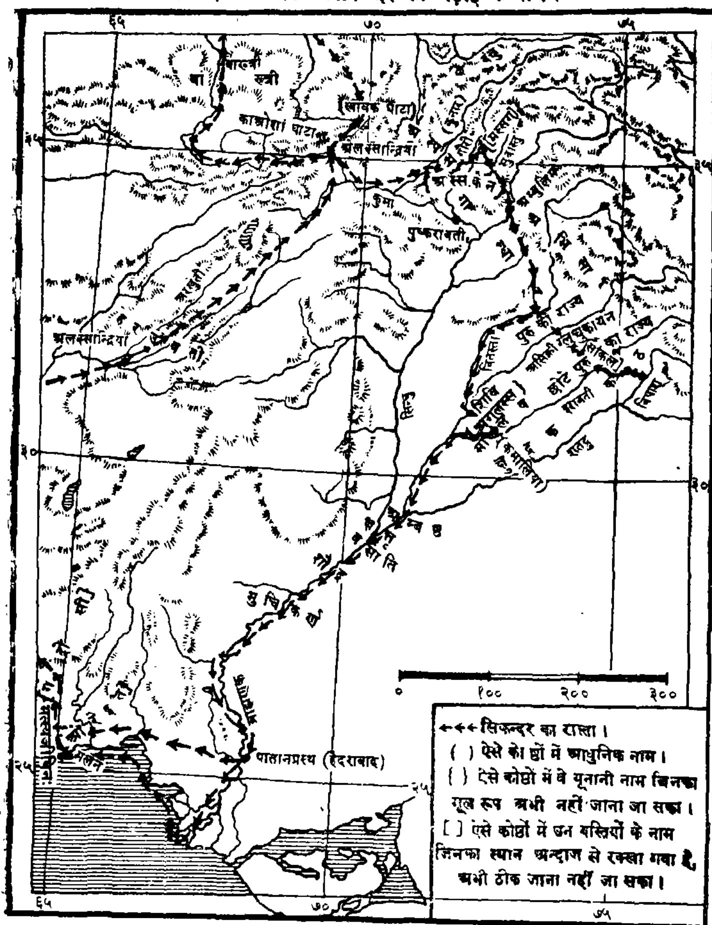


अलक्सान्दर
भारत में पाये जाने वाले सिक्कों पर का चित्र [दुर्गाप्रसाद-संग्रह से]

राज पाते ही अलक्सान्दर दिग्विजय को निकला। विशाल पारसी साम्राज्य अन्दर से बोदा हो चुका था। उसे उसने दो-चार ठोकरों में ही गिरा दिया, और चार बरस (३३०—३२६ ई० पू०) में समूचा जीत लिया। ईरान का सम्राट, दारयवहु (३य) बाख्त्री की ओर भाग निकला। आमू और सीर नदी के बीच के दोआब को, जिसमें अब बुखारा-समरकन्द की बस्तियाँ हैं, ईरानी लोग सुग्ध कहते थे। वहाँ ईरानियों का अन्तिम पराभव हुआ। उस युद्ध में उनकी तरफ़ से हिन्दूकुश के उत्तर तरफ़ का एक पहाड़ी हिन्दू राजा शशिगुप्त भी लड़ा था। हारने के बाद वह उस समय के क़ायदे के अनुसार अलक्सान्दर के अधीन होकर उसकी तरफ़ से लड़ने लगा। अलक्सान्दर जब सुग्ध में ही था, तभी उसके पास तक्षशिला के राजा आम्भि के दूत भी अधीनता का सँदेसा ले कर आये थे।

जिन यूनानी लेखकों ने अलक्सान्दर की यात्रा का हाल लिखा है, वे

उत्तर-पश्चिमी भारत सिकन्दर की चढ़ाई के समय



हिन्दूकुश के ठीक दक्खिन से उसकी भारत की चढ़ाई शुरू करते हैं। काबुल

नदी में मिलने वाली कुनार, पंजकोरा और स्वात नदियों की दूनों में जो वीर जातियाँ तब रहती थीं, उन्होंने चप्पा-चप्पा ज़मीन छोड़ने से पहले सख्त मुकाबिला किया। पंजकोरा को तब गौरी कहते थे। उसके पूरब 'मसग' नाम के एक क़िले में ६,००० पंजाबी सैनिक थे, जो अपनी स्त्रियों सहित एक-एक करके बड़ी वीरता से लड़ मरे।

सिन्ध नदी पार करने में अलक्सान्दर को कुछ कठिनाई न हुई, क्योंकि आम्भि उसके पक्ष में था। पर गान्धार के पूरब, केकय देश का वीर राजा पुरु, सेना के साथ, वितस्ता (जेहलम) पर उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। केकय के ठीक उत्तर अभिसार देश* था। काबुल के उत्तरी पहाड़ों के अनेक योद्धा भाग कर वहाँ आ जुटे थे। अभिसार का राजा पुरु से मिलने की तैयारी कर रहा था। इससे पहले कि वे दोनों मिल पायँ, सख्त गरमी की परवा न कर, अलक्सान्दर तुरत वितस्ता के किनारे पहुँच गया। किन्तु पुरु सब घाट रोके हुए था। अलक्सान्दर ने पहले तो सेना में ऐसी चहल-पहल रक्खी कि पुरु को रोज़ मालूम हो कि आज हमला होगा; फिर ऐसी रसद जुटानी शुरू की कि मानो अब वह महीनों वहीं टिकेगा। इस तरह पुरु जब कुछ असावधान हुआ, तब एक रात वर्षा में चुपके-चुपके अलक्सान्दर ने अपनी फ़ौज के बड़े अंश को २० मील हटा कर नदी पार कर ली। पता लगते ही पुरु भी जल्दी उधर बढ़ा।

जम कर लड़ने में अलक्सान्दर भी उसका मुक़ाबला न कर सकता, पर अलक्सान्दर की असल शक्ति उसके फुर्तीले सवारों में थी। पारसी सम्राट् की तरह पुरु भागा नहीं। जब तक उसकी सेना में ज़रा भी व्यवस्था रही, वह ऊँचे हाथी पर चढ़ा लड़ता रहा। उसके नंगे कन्धे पर शत्रु का एक बर्छा लगा। जब अन्त में उसे पीछे हटना पड़ा तो आम्भि ने घोड़ा दौड़ाते हुए उसका पीछा किया, और पुकार कर उसे अलक्सान्दर का सँदेसा दिया। घायल हाथ से पुरु ने घृणित देश-द्रोही पर बर्छा चलाया, पर आम्भि बच निकला। पुरु को फिर सवारों ने घेर लिया, उनमें से एक उसका मित्र भी था। जब घायल और थका-माँदा होकर वह अलक्सान्दर के

* आजकल की राजौरी, भिम्भर और पुंच रियासतें।

सामने लाया गया तो अलक्सान्दर ने आगे बढ़ कर उसका स्वागत किया, और दुभाषिये द्वारा उससे पूछा कि उसके साथ कैसा बर्त्ताव किया जाय। "जैसा राजा राजाओं के साथ करते हैं"—पुरु ने अभिमान से उत्तर दिया। सिकन्दर ने उसे शशिगुप्त की तरह अपनी सेना में ऊँचा पद दिया।




सिकन्दर-पुरु युद्ध का स्मारक पदक—'आम्भि ने घोड़ा कुदाते हुए उसका पीछा किया' [दुर्गाप्रसाद-संग्रह से]

आगे पूरब की ओर बढ़ते हुए अलक्सान्दर को कई छोटे-छोटे संघ-राष्ट्रों से लड़ना पड़ा। रावी और व्यास के बीच कठ नाम का राष्ट्र था, जिसकी राजधानी साङ्कल थी। साङ्कल के चौगिर्द रथों के तीन घेरे बना कर कठ लोग जी-जान से लड़े। बड़ी परेशानी के बाद, पीछे से पुरु की कुमुक आने पर, अलक्सान्दर उन्हें जीत सका, पर वह इतना खीझ गया था कि साङ्कल नगर को उसने जीतने के बाद मट्टी में मिलवा दिया। ब्यास के तट पर पहुँचने के बाद अभी पंजाब का एक बड़ा संघ-राष्ट्र सामने था, और उसके आगे नन्द सम्राट् भी अपनी सेना के साथ सतर्क था। अलक्सान्दर की फ़ौज यह जान कर घबड़ा उठी, कि अभी हिन्दुस्तान की असल शक्ति से तो मुकाबला बाक़ी ही है, वह बग़ावत कर बैठी। लाचार अलक्सान्दर को लौटने का निश्चय करना पड़ा।

वितस्ता पर वापिस आकर भारी तैयारी की गयी। २,००० नावों का बेड़ा बनाया गया। यात्रा के शकुन देख कर, नदी के बीच खड़े हो, सुनहले बरतन से सिकन्दर ने भारत की नदियों और अन्य देवताओं को अर्घ्य दिया और

तब जल और स्थल से उसकी सेना ने कूच किया। रास्ते में फिर कई छोटे राष्ट्रों से मुकाबला करना पड़ा।

वितस्ता और रावी के सङ्गम के नीचे रावी के दोनों तटों पर मालव-संघ का राज्य था और उसके पूरब तरफ़ मिला हुआ क्षुद्रकों का संघ-राष्ट्र था। मालव और क्षुद्रक मिल कर लड़ने की तैयारी कर रहे थे। वे दोनों जातियाँ समूचे पंजाब में अत्यन्त स्वतन्त्रता-प्रेमी और लड़ाकू प्रसिद्ध थीं। अलक्सान्दर की सेना यह जान कर कि भारत की एक सब से वीर जाति से लड़ना अभी बाक़ी है, फिर बगावत करने लगी। बड़ी मुश्किल से अलक्सान्दर ने उन्हें सँभाला और इससे पहले कि क्षुद्रक लोग आ पाते या मालव कृषक सेना के रूप में जुट पाते, वह मालवों के गाँवों और नगरों पर टूट पड़ा। तो भी मुलतान के क़रीब ४० मील उत्तर-पूरब (अन्दाज़न आजकल के कोट कमालिया की जगह पर) मालवों के एक संघ ने उसका सख़्त मुक़ाबला किया। वहाँ अलक्सान्दर की छाती में एक बर्छा लगा जिससे वह बेहोश हो कर गिर पड़ा। उस समय तो वह बच गया, पर आगे चल कर वही घाव उसके जल्द मरने का कारण हुआ।

उत्तरी सिन्ध में भी कई छोटे राष्ट्रों का मुकाबला करते हुए, अन्त में मकदूनी सेना पातन या पातानप्रस्थ नामक नगर में पहुँची, जो आजकल के हैदराबाद की जगह पर था। वहाँ से अलक्सान्दर की कुछ सेना जलमार्ग से और बाक़ी स्थल-मार्ग से पच्छिम मुड़ी। उसके मुँह फेरते ही भारत में बलवे होने लगे। उधर घर पहुँचने से पहले ही बाबुल में अलक्सान्दर का देहान्त हो गया (३२३ ई० पू०)।

विशाल ईरानी साम्राज्य को जहाँ उसने चार साल में जीत लिया था, वहाँ भारत के केवल उत्तर-पच्छिमी आँचल में उसे साढ़े तीन बरस लग गये, और यहाँ पग-पग पर सख़्त मुकाबला झेलना पड़ा। वह भारत के इस आँचल पर आँधी की तरह आया और बगूले की तरह चला गया। तो भी उसने प्राचीन जातियों के बीच जो रास्ता खोल दिया वह फिर खुला ही रहा। उसके कारण प्राचीन सभ्य जातियों की कूप-मण्डूकता बहुत कुछ दूर हुई। उसने यूनानी, ईरानी और भारतीय आर्यों में बहुत से परस्पर विवाह करा के इन जातियों को मिलाने का यत्न भी किया।

अध्याय २

मौर्य साम्राज्य का दिग्विजय युग

(३२५–२६२ ई० पू०)

§१. **चन्द्रगुप्त मौर्य और चाणक्य**—अलक्सान्दर जब तक्षशिला में था, उसके पास एक भारतीय युवक आया था, जो नन्दों के विशाल साम्राज्य को जीत लेना चाहता था। उस की अलक्सान्दर से कुछ खरी-खरी बातें हुईं, और उसे वहाँ से भागना पड़ा। उस युवक का नाम चन्द्रगुप्त मौर्य था।

बुद्ध के समय मोरिय नाम की एक जाति का एक छोटा संघ-राज्य हिमालय की तराई में था। उसी 'मोरिय' का संस्कृत रूप मौर्य है; और इस 'मौर्य' नाम पर से यह कहानी पीछे बना ली गयी कि चन्द्रगुप्त मुरा नाम की एक दासी का बेटा था। कोई घटना ऐसी हुई जिससे मोरिय संघ के उस युवक ने प्रजा-पीडक नन्दों के वंश को उखाड़ फेंकने का इरादा कर लिया। नन्द राजा ने उसे मार डालने का हुक्म निकाल रक्खा था और फाँसी का परवाना सिर पर लिये वह मारा-मारा फिरता था। उसी समय तक्षशिला में उसे एक अपने जैसा धुन का पक्का ब्राह्मण मिल गया। उस ब्राह्मण का नाम विष्णुगुप्त चाणक्य या कौटल्य था।

चाणक्य और चन्द्रगुप्त दोनों असाधारण कर्तृत्ववान्, दृढ़व्रती और प्रतिभाशाली थे। वे दोनों एक साथ एक ही धन्दे में लग गये। अलक्सान्दर के मरने के बाद एक बरस के अन्दर ही चन्द्रगुप्त ने पंजाब और सिन्ध के राष्ट्रों को यूनानियों के ख़िलाफ़ उभाड़ दिया और अलक्सान्दर जो सेना वहाँ छोड़ गया था उसे मार भगाया। तब उसने उन्हीं पंजाबी राष्ट्रों से एक बड़ी सेना खड़ी करके नन्द साम्राज्य पर हमला किया* और पाटलिपुत्र को जा घेरा। नन्द सम्राट को मार कर उसने मगध का शासन अपने हाथ में कर लिया (३२२ ई० पू०)। चाणक्य उसका प्रधान अमात्य बना। नन्द राजा का

---

* श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल तथा अन्य अनेक विद्वानों का मत है कि उसने पहले मगध जीता, बाद पंजाब लिया। इस विवाद का फ़ैसला अभी नहीं हो सकता।

एक मंत्री राक्षस नाम का था, जिसने उसके बाद भी चन्द्रगुप्त के विरुद्ध विद्रोह कराने के कई जतन किये, किन्तु चाणक्य की चतुराई से वे सब निष्फल हुए।

उसी समय एक और बड़ा शत्रु चन्द्रगुप्त पर चढ़ाई करने आ रहा था। अलक्सान्दर के पीछे यूनानी साम्राज्य के कई टुकड़े हो गये। उनमें से समूचा पच्छिमी और मध्य एशिया सेलेउक* नामक सेनापति के हिस्से में पड़ा। उसने भारतीय प्रान्तों को वापिस लेने के ख्याल से चढ़ाई की। पर उसे लेने के देने पड़ गये। चन्द्रगुप्त ने उसे हरा दिया और सेलेउक को उलटे चार प्रान्त देने पड़े। वे चार प्रान्त ये थे—(१) हिन्दूकुश और काबुल का प्रदेश, (२) हरात, (३) हरह्वती या अरखुती (कन्दहार)† और (४) गदरोसिया (कलात, लासबेला, मकरान)। हिन्दूकुश के उत्तर तरफ़ कम्बोज देश अर्थात् बदख़्शां और पामीर भी मौर्य साम्राज्य के अधीन हो गया। सेलेउक ने चन्द्रगुप्त को अपनी लड़की भी ब्याह दी और अपने दूत मेगास्थेने को उसके दरबार में रक्खा। चन्द्रगुप्त और चाणक्य ने मिलकर अपने साम्राज्य की सेना और शासन का प्रबन्ध भी बहुत अच्छा और मज़बूत किया।

§२. **बिन्दुसार**—चन्द्रगुप्त के बाद उसका बेटा बिन्दुसार अमित्रघात राजा हुआ (२९८ या ३०२ ई० पू०)। उसने प्रायः २५ बरस तक अपने पिता की तरह योग्यता से शासन किया। बौद्ध साहित्य में लिखा है कि चाणक्य उसके समय में भी प्रधान अमात्य रहा और उसने १६ राजधानियाँ जीत कर पूरब से पच्छिम समुद्र तक की भूमि बिन्दुसार के अधीन कर दी। वे १६ राजधानियाँ दक्खिनी राष्ट्रों की थीं। उनमें से आन्ध्र राष्ट्र बहुत प्रबल माना जाता था। मौर्य साम्राज्य की सीमा तब आधुनिक कर्णाटक के दक्खिनी छोर तक पहुँच

* सेलेउकस् (Seleucus) में अन्तिम स् प्रथमा एकवचन का सूचक है।

† कन्दहार शहर जिस नदी के किनारे बसा है उसका नाम अब भी अरगन्दाब है; वह हेलमन्द (सेतुमन्त) की एक शाखा है। अरगन्द नदी का पुराना नाम अरखुती था। "अरखुती" शब्द "हरह्वती" या "हरक्वती" का रूपान्तर था और वह "सरस्वती" का। जिस प्रकार 'सिन्धु' से 'हिन्दु' हो गया, उसी प्रकार 'सरस्वती' से 'हरह्वती' हुआ। असल में उस नदी और उसकी दून का नाम तब हरह्वती या हरउअती था, जिसे यूनानी अरखुती (Archotia) बोलते थे।

मयी थी। केवल चोल, पाण्ड्य, चेर (केरल) और ताम्रपर्णी अर्थात् तामिल प्रदेश, मलबार और सिंहल—दक्खिन तरफ़ उसके बाहर बचे रहे।

§३. **अशोक**—बिन्दुसार के बाद उसका बेटा अशोक गद्दी पर बैठा। वह बचपन ही से बड़े प्रखर स्वभाव का था। पिता के अधीन वह उज्जैन और



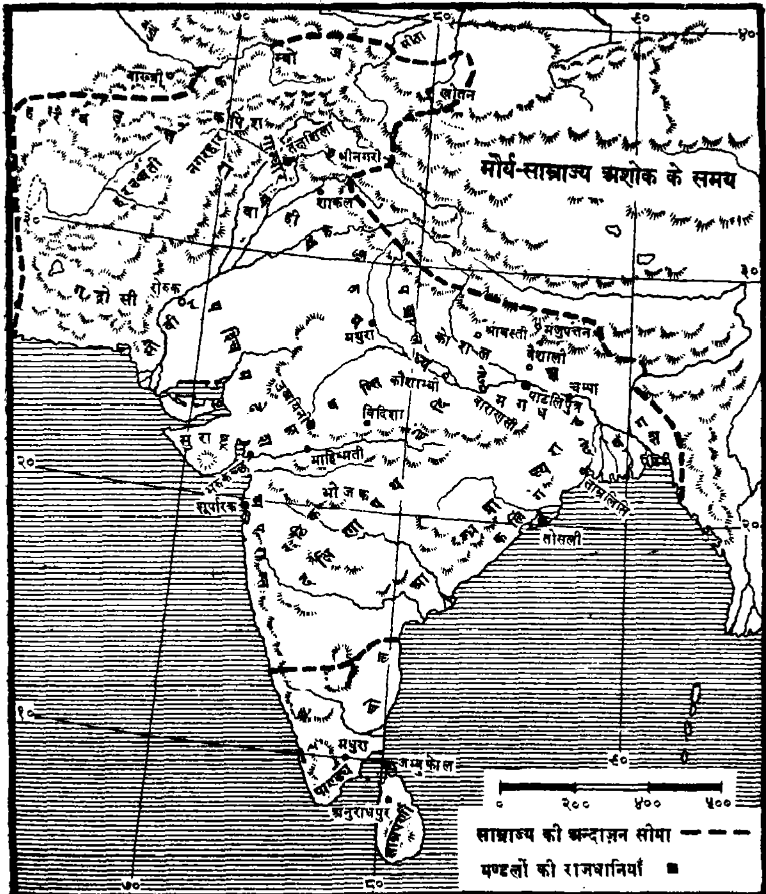
राजा अशोक जुलूस में

अशोक हाथी से उतर कर खड़े हैं; उनके आगे एक बच्चा और दोनों तरफ़ चँवरधारिणियाँ हैं। उनके बायें तरफ़ चँवरधारिणी के पीछे रानी दीख पड़ती है।

साँची स्तूप के पूर्वी तोरण की सबसे निचली दाब पर बाहर की तरफ़ के मूर्त्त दृश्य में से।

तक्षशिला का शासक रह चुका था। कम्बोज से कर्णाटक तक समूचा भारत अब मौर्य साम्राज्य में समा चुका था, तो भी बंगाल, मगध और आन्ध्र के

बीच तीन तरफ़ से घिरा कलिंग (उड़ीसा) राष्ट्र स्वतन्त्र ही था। वह बड़ा शक्ति-शाली था। उसकी हाथियों की सेना ख़ूब सधी हुई थी।



अपने राज्य के बारहवें बरस अशोक ने उस पर चढ़ाई की। कलिंग लोग

बड़ी वीरता से लड़े। एक लाख मारे गये, डेढ़ लाख क़ैद हुए और कई गुने पीछे बीमारी आदि से मरे। कलिंग देश मौर्यों के अधीन हो गया, पर युद्ध की घटनाओं ने अशोक के हृदय को बदल दिया। अशोक ने तब दिग्विजय के बजाय धर्म-विजय की राह पकड़ी। उस का वर्णन आगे किया जायगा।

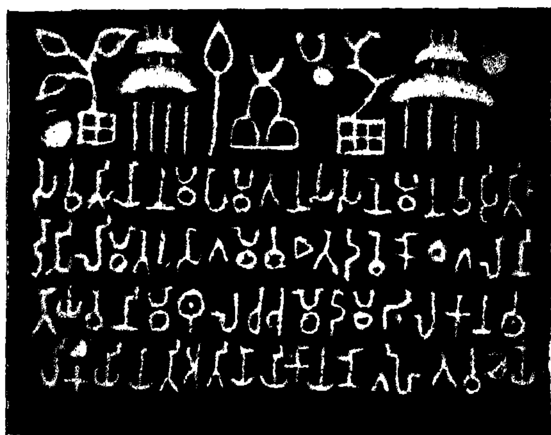
सीता (यारकन्द) नदी के काँठे में खोतन प्रदेश में अशोक के समय एक भारतीय बस्ती बसायी गयी। खोतन कम्बोज के ठीक पूरब था। उसके विषय में हम आगे बहुत कुछ सुनेंगे।

§४. **मौर्य्य साम्राज्य का शासन-प्रबन्ध**—मौर्य्य साम्राज्य का शासन-प्रबन्ध बहुत ही व्यवस्थित था। उस का हाल हमें मेगास्थेने के लिखे हुए वर्णन से, कौटल्य के लिखे अर्थशास्त्र नाम के ग्रन्थ से और अशोक के खुदवाये हुए लेखों से मिलता है।

मौर्य सम्राट् अपने को केवल 'राजा' कहते थे और अपने साम्राज्य को 'विजित'। राजा 'विजित' का शासन मन्त्रियों और परिषद् की सहायता से करता था। समूचा विजित इन पाँच मण्डलों में बँटा था जो शायद 'चक्र' कहलाते थे—(१) मध्य-देश या मध्य-मण्डल, (२) प्राची, (३) दक्षिणापथ, (४) अपर जनपद या पश्चिम-देश और (५) उत्तरापथ। आजकल हिन्दी भाषा का जो क्षेत्र है, क़रीब-क़रीब उसी को प्राचीन लोग मध्यदेश या मध्यमण्डल कहते थे। उसके पूरब कलिंग, बंगाल आदि 'प्राची' अर्थात् पूरबी देश कहलाते थे। नर्मदा के दक्खिन 'दक्षिणापथ' था। मारवाड़, सिन्ध, गुजरात और कभी-कभी उनके साथ मालवा तथा कोंकण भी मिला कर 'अपर-जनपद' या 'पश्चिम देश' कहलाता था। पंजाब, कश्मीर, काबुल आदि 'उत्तरापथ' में गिने जाते थे।

मध्यदेश का शासन पटना से होता था, उत्तरापथ का तक्षशिला से और पच्छिमी चक्र का उज्जैन से। दक्षिणापथ की राजधानी सुवर्णगिरि थी। वह ठीक कहाँ थी सो अभी तक मालूम नहीं हो सका। कलिंग ही पूरब प्रान्त था; उसकी राजधानी तोसली थी, जिसकी जगह पर अब पुरी ज़िले का धौली क़स्बा

है। इन राजधानियों में राजा की तरफ़ से कुमार (राजकुमार), महामात्य (सचिव) या 'राजुक' शासन का निरीक्षण करते थे।



चन्द्रगुप्त मौर्य की जनपद शासन-शैली का नमूना—सहगौरा (जि० गोरखपुर) से पाये गये इस ताम्रपत्र पर यह लेख है—"श्रावस्ती के महामात्यों का मानवर्साति शिबिर से हुक्म—अमुक गाँवों के ये अनाज के कोष्ठागार केवल सूखा पड़ने पर किसानों को बाँटने के लिए हैं; अकाल के समय ये रोके न जाँय।" इस ताम्रपत्र के ऊपर वही चिन्ह हैं, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के सिक्कों पर पाये गये हैं।

प्रत्येक चक्र के निरीक्षण में कई-कई जनपद थे। जनपद वही थे जो पुराने चले आते थे। उन जनपदों की अपनी-अपनी राजधानियाँ थीं, जिनमें राजकीय महामात्य प्रजा की परिषद् की सहायता से शासन करते थे। उदाहरण के लिए पाटलिपुत्र-मण्डल के निरीक्षण में कौशाम्बी एक जनपद की राजधानी थी। कई जनपदों का सीधा शासन राजा के अधीन था, अर्थात् उनके निरीक्षण के लिए राजकीय महामात्य नियुक्त थे, कई और अपने अन्दर के प्रबन्ध में सर्वथा स्वतन्त्र थे। आन्ध्र, विदर्भ और कम्बोज आदि साम्राज्यान्तर्गत स्वतन्त्र राष्ट्र थे।

प्रत्येक जनपद का अपना अपना 'धर्म' और 'व्यवहार' अर्थात् क़ानून था। ग्रामों, श्रेणियों, नगरों के निगमों तथा जनपदों की परिषदें जो नया क़ानून बनातीं, वह 'चरित्र' कहलाता था। विशेष दशा में राजा अपने 'शासन' से उन धर्मों, व्यवहारों और चरित्रों में रद्दोबदल कर सकता था। जनपदों के अपने-अपने "शील, वेश, भाषा और आचार" थे, तथा प्रत्येक जनपद का एक अपना देवता, अपने उत्सव और अपने "समाज" (खेलों की प्रतियोगितायें या टूर्नामेंट) होते थे। प्रजा में अपने-अपने जनपद के लिए भक्ति और अभिमान का भाव उत्कट रूप से था।

जनपदों के अन्दर फिर दो तरह के इलाक़े थे। एक तो वे जिन का ठीक-ठीक बन्दोबस्त हो चुका था। वे आहारों यानी ज़िलों में बँटे थे। दूसरे जंगली इलाक़े थे, जो कोट्ट-विषय अर्थात् क़िलों के क्षेत्र कहलाते थे। एक-एक कोट या क़िले के चौगिर्द जो जंगली इलाक़ा था उसका शासन उसी क़िले से चलता था।

ग्रामों और श्रेणियों के राजनीतिक अधिकारों को मौर्य साम्राज्य ने बहुत कुछ दबाने का यत्न किया। पुराने बन्दोबस्त हुए जनपदों के गाँवों तक में कर की वसूली, रक्षा, न्याय आदि का काम राजकीय 'पुरुष' यानी अफ़सर करते थे। गाँवों के शासक 'गोप' कहलाते थे। क़स्बों और शहरों में दो क़िस्म के सरकारी न्यायालय थे। एक कण्टक-शोधन यानी फ़ौजदारी, दूसरे धर्मस्थ यानी दीवानी। प्रत्येक जनपद के शासन में और बहुत से महकमे भी थे। वसूली, न्याय आदि के सिवाय सिंचाई, जंगल, खानों आदि के महकमे प्रजा की भलाई और राज्य की आमदनी बढ़ाने को थे। कुछ सामाजिक महकमे भी थे, जैसे शराबखानों की देख-रेख का महकमा।

सुराष्ट्र (काठियावाड़) में गिरनार के पास पहाड़ी नदियों को बाँधों से रोक कर चन्द्रगुप्त ने सिंचाई के लिए एक बड़ा ताल बनवाया था। पटना और भिन्न-भिन्न जनपदों के बीच सड़कों का एक जाल सा बिछा दिया गया था। मनुष्यों और पशुओं के लिए सरकारी चिकित्सालय थे। मनुष्य-गणना होती थी और वर्षा का माप रक्खा जाता था। फ़ौजदारी मामलों में 'आशु-

मृतक परीक्षा' यानी शव-परीक्षा करने की रीति जारी थी। ये बातें उस ज़माने में



मौर्ययुगीन पाटलिपुत्र की लकड़ी की इमारतों के खंडहर [फ़ोटो पटना म्यूज़ियम]

संसार का और कोई राज्य न जानता था। मौर्यों का गुप्तचर और सेना विभाग

बहुत मज़बूत था। सेना के छः महकमे पैदल, सवार, हाथी, रथ, जलसेना और रसद के थे। वे एक-एक छोटे वर्ग के अधीन होते थे।

पाटलिपुत्र नगर के प्रबन्ध के लिए प्रजा स्वयम् ३० आदमियों की एक सभा नियुक्त करती थी। उस सभा के पाँच-पाँच आदमी बँट कर छः छोटे वर्ग बन जाते थे, जो एक-एक महकमे की देख-रेख करते थे। उनमें एक महकमा विदेशियों की और एक शिल्प की देखरेख के लिए भी था। पाटलिपुत्र उस समय संसार में सब से बड़ा शहर था। उसमें बहुत से विदेशी आ कर रहते थे। विजित की दूसरी नगरियों का प्रबन्ध भी उसी तरह चलता होगा।

दण्ड-विधान कठोर था, पर मौर्यों ने अपने से पहले दण्ड-विधान को बहुत कुछ नरम करने का जतन किया था। कारीगर का हाथ या आँख बेकार कर देने वाले को फाँसी मिलती थी। सिंचाई के तालाब का बाँध तोड़ने वाले को वहीं डुबा दिया जाता था। मेगास्थेने लिखता है, 'भारतवर्ष के लोग कभी झूठ नहीं बोलते, मकानों में ताले नहीं लगाते और अदालतों में बहुत कम जाते हैं।'

यूनान आदि में दास-प्रथा इतनी अधिक थी कि खेती-बारी और मेहनत-मज़दूरी सब दासों से करायी जाती थी। एक-एक स्वतन्त्र गृहस्थ के पाँच-पाँच सौ तक दास होते थे, जिनके साथ पशुओं का सा बर्ताव होता था। पर भारत में यह बात न थी। इसी कारण मेगास्थेने लिखता है कि भारत में दासता न थी। कौटल्य भी लिखता है—"म्लेच्छों को अपनी सन्तान बेचने या धरोहर रखने से दोष नहीं लगता; पर आर्य कभी दास नहीं हो सकता।" घरेलू सेवा के लिए जो थोड़ी-बहुत दासता थी, उसे भी कौटल्य ने बिलकुल उठाने की चेष्टा की। उसने "आर्य-प्राण" शूद्रों की—अर्थात् उन शूद्रों की जिनमें आर्य रक्त मिला हुआ था—बिक्री आदि पर सख़्त बन्धन लगा दिये, और ऐसे नियम बनाये कि दास लोग बहुत आसानी से "आर्य" यानी स्वतन्त्र भारतवासी बन सकें। प्रत्येक भारतवासी को स्वतन्त्र बनाने के कौटल्य के ये यत्न ऐसे थे जिनके लिए आज भी हम आदर के साथ उसका नाम लेते हैं।

अध्याय ३

अशोक की धर्म-विजय और पिछले मौर्य-सम्राट्

(२६५—२११ ई० पू०)

§ १. **अशोक के सुधार**—कलिंग-विजय के बाद अशोक के मन में भारी 'अनुशोचन' हुआ। उसने अनुभव किया कि "जहाँ लोगों का इस प्रकार वध, मरण और देशनिकाला हो, वहाँ जीतना न जीतने के बराबर है"। उसने निश्चय किया कि अब वह ऐसी विजय न करेगा। अपने बेटों-पोतों के लिए भी उसने यह शिक्षा दर्ज की कि वे "नयी विजय न करें और जो विजय बाण खींच कर ही हो सके, उसमें भी क्षमा और लघुदण्डता से काम लें। धर्म के द्वारा जो विजय हो उसी को असल विजय मानें।" दक्खिनी सीमा के राज्यों के विषय में उसने अपने अधिकारियों को लिखा—"शायद आप लोग जानना चाहें कि सीमा पर के जो राज्य अभी तक जीते नहीं गये हैं, उनके विषय में राजा क्या चाहता है। मेरी······यही इच्छा है कि वे मुझ से डरें नहीं, मुझ पर भरोसा रक्खें·····वे यह मानें कि जहाँ तक क्षमा का बर्ताव हो सकेगा, राजा हम से क्षमा का बर्ताव करेगा।"

अपने राज्य के अन्दर भी उसने बहुत सुधार किये। प्राचीन भारत में जानवर लड़ा कर तमाशा देखने का व्यसन बहुत प्रचलित था। उसे 'समाज' यानी इकट्ठा हाँकना कहते थे। अशोक ने अपने यहाँ वह बन्द कर दिया और प्रजा को भी वैसा करने का उपदेश दिया। जो पशु-पक्षी केवल विनोद के लिए मारे जाते थे, उनकी हत्या भी उसने रोक दी। राजा लोग विहार-यात्राएँ करते थे। अशोक ने उसके बजाय धर्म-यात्रा शुरू की, जिस में वह प्रजा की भलाई के उपाय करता था। अपने राज-पुरुषों पर उसने कड़ी निगरानी की कि वे प्रजा को पीड़ित न कर पावें। उसने उनसे ताकीद की कि एक भी निरपराध आदमी को उनकी बेपरवाही से कष्ट न हो। जगह-जगह मनुष्यों और पशुओं



गिरनार की चट्टान पर अशोक के खुदवाये हुए लेख—सन् १८९० में म० म० पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा द्वारा लिया हुआ चित्र

के लिए चिकित्सालय बनवाये और कुएँ खुदवाये। सड़कों पर पेड़ लगवाये। सब पन्थों के लोग आपस में सहिष्णुता और प्रेम से रहें, ऐसी शिक्षा देने के लिए उसने "धर्ममहामात्य" नियुक्त किये। उसने लिखा, "प्रियदर्शी राजा (अशोक) चाहता है कि सब पन्थ वाले सब जगह आबाद हों। वे सभी संयम और भाव-शुद्धि चाहते हैं।...सब पन्थों की सार-वृद्धि हो...इसका मूल वचोगुप्ति (वाणी का संयम) है जिस में अपने पन्थ वालों का अति आदर और दूसरों की निन्दा न की जाय।"

§२. धर्म-विजय की नयी नीति—किन्तु अशोक ने विजय की नीति न छोड़ दी थी। दिग्विजय के बजाय उसने अब "धर्म-विजय" शुरू की। वह एक नयी और विचित्र नीति थी। उसने न केवल अपने विजित में, प्रत्युत चोल, चेर, पाण्ड्य और सिंहल में, तथा दूसरी तरफ़ पड़ोस और दूर के सब यूनानी राज्यों में भी, चिकित्सालय बनवाये और रास्तों पर पेड़ लगवाये। इन यूनानी राज्यों के नाम अशोक ने अपने लेखों में दिये हैं। इनसे प्रतीत होता है कि समूचे मध्य और पच्छिमी एशिया, मिस्र, उत्तरी आफ्रिका और यूनान तक अशोक के ये धर्म-विजय के कार्य फैले हुए थे।

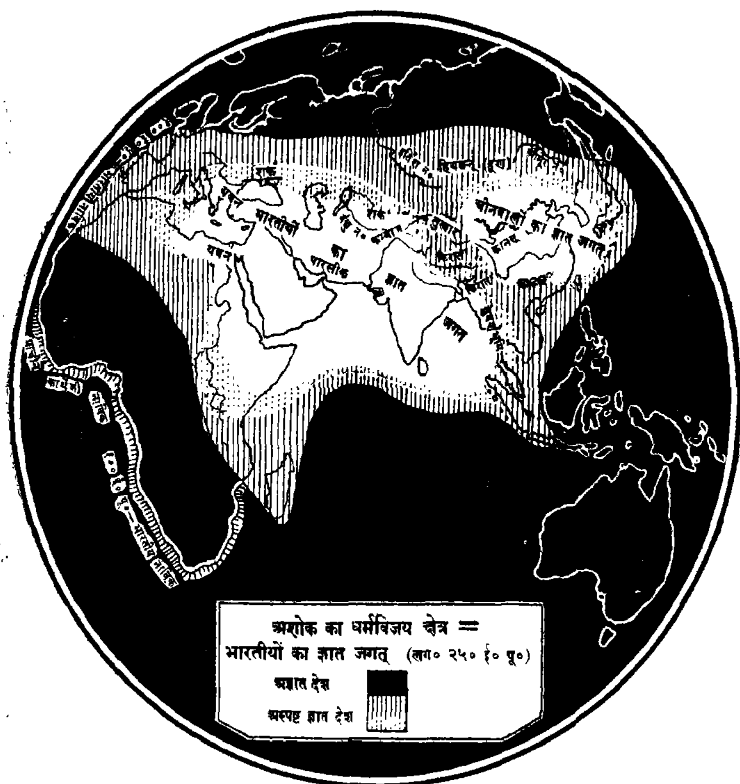
इसके अलावा अशोक ने बौद्धों की तीसरी 'संगीति' बुलवायी। उसकी तरफ़ से उसने इन सब देशों में भिक्षु प्रचारक भेजवाये। उन प्रचारकों के कार्य-क्षेत्रों को चार हिस्सों में बाँटा जा सकता है—

(१) सब से पहले दक्खिन भारत और सिंहल। सिंहल में अशोक का बेटा महेन्द्र और उसकी बहन संघमित्रा, जो भिक्षु और भिक्षुणी हो गये थे, गये। वहाँ उन्होंने विजय के वंशज राजा तिष्य को उसके साथियों सहित बौद्ध बनाया। उन लोगों ने बोधि-वृक्ष की एक शाखा सिंहल के लिए मँगवायी। अशोक ने उसे स्वयं काट कर बंगाल के ताम्रलिप्ति (तामलूक) बन्दरगाह से जहाज़ में भेजा और अनुराधपुर में वह शाखा लगायी गयी। महेन्द्र और संघमित्रा ने सिंहल में जो बौद्ध धर्म का पौधा लगाया, वह भी बोधि-वृक्ष की उस शाखा की तरह धीरे-धीरे एक विशाल वृक्ष बन गया।

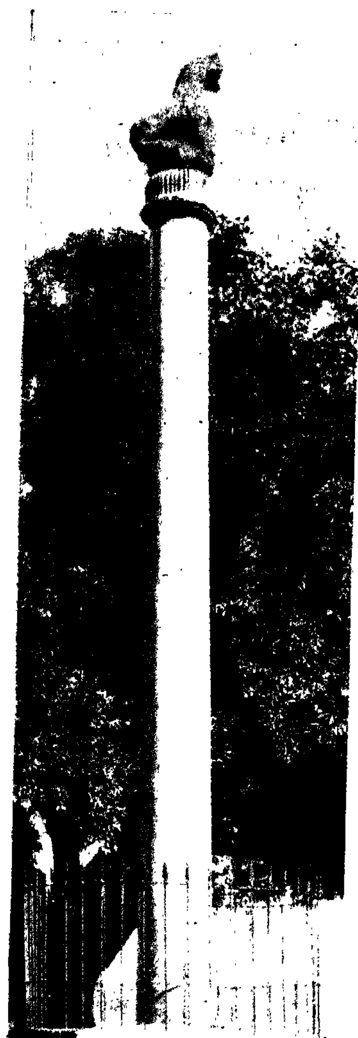
(२) उत्तर तरफ़ गान्धार, कश्मीर, कम्बोज आदि देशों में भिक्षु भेजे गये।

(३) इसी प्रकार पूरबी हिमालय के किरात लोगों में और सुवर्णभूमि के असभ्य आग्नेय लोगों में भी धर्म-प्रचार के लिए भिक्षु गये।

(४) भिक्षुओं का एक दल पच्छिम के यवन राज्यों में गया। उन्होंने पच्छिमी एशिया में बुद्ध का संदेश पहुँचाया। अशोक के अढ़ाई सौ बरस पीछे



उसी पच्छिम एशिया में महात्मा ईसा प्रकट हुए, जिनकी शिक्षाएँ भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं से बहुत मिलती-जुलती हैं। ईसा की मातृभूमि में बुद्ध की शिक्षाएँ अशोक ने ही पहुँचायी थीं।

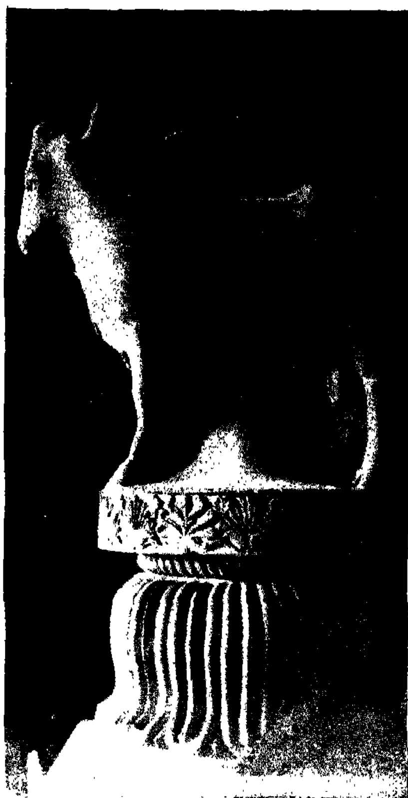


अशोक का एक स्तम्भ—लौड़िया नन्दनगढ़ (जि० चम्पारन) में [भा० पु० वि०]

यह समझ लेना चाहिए कि अशोक ने अपने ज़माने के सारे सभ्य संसार की 'धर्म-विजय' करने की चेष्टा की थी। उस समय संसार में यूनानी, भारतीय और चीनी—इन तीन ही सभ्य जातियों के राज्य थे। यूनान के पच्छिम रोम के लोग अभी सभ्यता सीखने ही लगे थे। अशोक ने चीन में अपने भिक्षु न भेजे, इसका कारण शायद यह था कि भारतवर्ष और पच्छिम के लोग उस समय तक चीन को न जानते थे। चीन और भारत के बीच सुवर्णभूमि (हिन्द-चीन), तिब्बत और तारीम काँठे के विशाल देश हैं। वे तीनों उस समय तक इतने जंगली थे कि उनके आरपार लाँघ कर चीन और भारत का परस्पर सीधा परिचय न हुआ था। सुवर्णभूमि, पूरबी हिमालय और कम्बोज देश के लोग भारत-वासियों की दृष्टि में सभ्य जगत् के अन्तिम छोरों पर रहते थे। इसलिए जितने संसार को भारतीय जानते थे, उसके अन्तिम किनारों तक अशोक ने अपनी धर्म-विजय की चढ़ाइयाँ की थीं।

§३. अशोक की इमारतें—अशोक का नाम उसकी इमारतों और उसके लेखों के कारण भी प्रसिद्ध है।

उसने पहाड़ी चट्टानों पर और पत्थर के खम्भों पर लेख खुदवाये जिन में से बहुत से अब तक मौजूद हैं। चट्टानों पर के लेख पेशावर और हज़ारा ज़िले में, काठियावाड़ और उड़ीसा में और देहरादून से मैसूर और हैदराबाद तक मिले हैं। लेखों वाले मुख्य खम्भे छः हैं जो दिल्ली, प्रयाग और चम्पारन ज़िले में हैं। कुछ गौण खम्भे भी हैं जिनमें से एक लुम्बिनी में है। ये खम्भे कारीगरी के अनोखे नमूने हैं। प्रत्येक ४०-५० फ़ीट ऊँचा और एक ही पत्थर में से कटा हुआ है। उनकी पालिश की चिकनाई और चमक आज भी ज्यों की त्यों बनी है। वे सब मिर्ज़ापुर-चुनार के पत्थर के हैं और वहीं से सब जगह भेजे गये थे। दिल्ली में फ़ीरोज़शाह के कोटले पर अशोक का जो खम्भा लगा है, उसे फ़ीरोज़-शाह तुग़लक़ अम्बाला के पास से वहाँ उठवा लाया था। उस एक खम्भे को रस्सों से खींचने के लिए ८,४०० आदमी लगे थे, और सिर्फ़ डेढ़ सौ मील ले जाने के लिए बड़ा इन्तज़ाम करना पड़ा था। अशोक के इञ्जीनियरों ने उन्हें चुनार से इतनी दूर कैसे भेज दिया सो कुछ कम अचरज की बात नहीं



रामपुरवा (जि० चम्पारन) के अशोक-स्तम्भ पर की वृष-मूर्त्ति [भा० पु० वि०]

है। उन खम्भों के ऊपर जो सिंह आदि की मूर्तियाँ हैं, वे भी बहुत बढ़िया कारीगरी की हैं।



बराबर पहाड़ी (ज़ि० गया) की चट्टान काट कर राजा दशरथ द्वारा बनवायी गयी गुहा, जो लोमश ऋषि की गुफ़ा के नाम से प्रसिद्ध है। [मा० पु० वि०]

अशोक ने कितने ही स्तूप बनवाये, और बुद्ध की धातुओं (फूलों) को आठ मूल स्तूपों में से निकलवा कर उन सब में बाँट दिया। आजकल के काफ़िरिस्तान का पुराना नाम कपिश है। कपिश की राजधानी कापिशी में अशोक का बनवाया हुआ एक सौ फ़ीट ऊँचा स्तूप छठी शताब्दी ई० तक मौजूद था। काबुल और पेशावर के बीच जलालाबाद शहर है, जिसका इलाक़ा अब निग्रहार कहलाता है। उसका पुराना नाम नगरहार था। वहाँ भी अशोक का बनवाया हुआ तीन सौ फ़ीट ऊँचा एक स्तूप था। कश्मीर की राजधानी श्रीनगरी और नेपाल की पुरानी राजधानी पाटन या मंजुपत्तन भी अशोक ने स्थापित की थीं। नेपाल में अशोक की बेटी चारुमती और उसका पति देवपाल जा बसे थे।



चँवर-धारिणी
पिछले मौर्य युग की कारीगरी का नमूना—दीदारगञ्ज (ज़ि० पटना) से पायी गयी मूर्त्ति। [पटना म्यूज़ियम]

§४. **पिछले मौर्य्य सम्राट्**—अशोक के बाद उसके बेटे कुनाल ने राज्य किया, फिर क्रम से कुनाल के दो बेटों दशरथ और सम्प्रति ने। वे तीनों योग्य राजा थे। उनका शासन २५ बरस रहा और २११ ई० पू० में समाप्त हुआ। सम्प्रति ने जैन धर्म के लिए वही काम किया जो अशोक ने बौद्ध धर्म के लिए किया था।

§५. **मौर्य्य भारत की सभ्यता**—मौर्य्यों के समय भारतवर्ष की समृद्धि और सभ्यता पहले मगध-साम्राज्य के समय से और आगे बढ़ गयी। शिल्प की उन्नति के कारण देश का धन ख़ूब

बढ़ा। पाटलिपुत्र उस समय संसार में सब से बड़ा नगर था। उसी समय क्या, सारे प्राचीन काल में उतना बड़ा कोई और नगर नहीं हुआ। उसका घेरा २१॥ मील का था। चारों तरफ़ लकड़ी का परकोटा था, जिसमें ६४ दरवाज़े और ५७० गोपुर थे। दूर-दूर के देशों के लोग वहाँ आते थे।

पृथिवी-माता ?



नन्दनगढ़ की खुदाई से पायी गयी सोने की पत्री पर अंकित मूर्त्ति; असल साइज़। नन्दयुग की कारीगरी का नमूना।
[भा० पु० वि०]

मौर्य्य युग का साहित्य प्रायः पिछले युग की तरह था। सूत्र-शैली में ग्रन्थ लिखना अभी जारी था। बौद्ध धर्म के प्रचार की कहानी हम कह चुके हैं। मेगास्थेने के लेख से जान पड़ता है कि शूरसेन (मथुरा) के लोग अब कृष्ण वासुदेव को देवता की तरह पूजने लगे थे। मौर्य्य युग का समाज भी पिछले हिन्दू समाज की अपेक्षा वैदिक समाज से अधिक मिलता-जुलता था। स्त्रियों को पूरी स्वतन्त्रता थी। आवश्यकता होने पर, धर्मस्थ की इजाज़त ले कर, वे विवाह का 'मोक्ष' (तलाक) करवा सकतीं थीं। उन्हें दायभाग भी मिलता था।

पाँचवाँ प्रकरण

सातवाहन-युग

(लगभग २१० ई० पू० से १७५ ई०)

अध्याय १

यवन और शुङ्ग राजा

(लगभग २१०—१०० ई० पू०)

§१. दक्खिन और कलिंग में सातवाहन और चेदि-वंश—सम्प्रति के बाद के मौर्य राजा निकम्मे और कर्त्तव्यविमुख निकले। उन्होंने अपनी कमज़ोरी को अशोक वाली क्षमानीति का ढोंग करके छिपाना चाहा। २१० ई० पू० से उनका साम्राज्य टूटने लगा, और भारतवर्ष के चार मंडलों—मध्यदेश, पूरब, दक्खिन और उत्तरापथ—में नये राज्य उठ खड़े हुए।

सबसे पहले दक्खिन और पूरब के मण्डल स्वतन्त्र हुए। दक्खिन में सिमुक नाम के एक ब्राह्मण ने अपना राज्य स्थापित किया। उसके वंश का नाम सातवाहन* था। सातवाहनों का राज्य शुरू में महाराष्ट्र में था, पीछे आन्ध्र में भी हो गया। तब वह वंश आन्ध्र वंश भी कहलाने लगा। इस वंश का राज्य अनेक उतार-चढ़ावों के बीच करीब ४५० बरस तक बना रहा, और उस अरसे में प्रायः वह भारतवर्ष का प्रमुख राज्य रहा। इसी कारण हम इस युग को सातवाहन-युग कहते है।

---

* 'सातवाहन' का एक प्राकृत रूप 'सालवाहन' है, जिसका संस्कृत रूपान्तर फिर 'शालिवाहन' किया गया है।

कलिङ्ग में भी चेदि वंश के एक क्षत्रिय ने, लगभग २१० ई० पू० में, स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया।

§२. **पार्थव और बाख्त्री राज्य**—उधर उत्तरापथ में एक नयी शक्ति खड़ी हो गयी। सेलेउक वंश का जो साम्राज्य पच्छिम एशिया से मध्य एशिया तक फैला हुआ था, वह अशोक के समय में ही टूटने लगा था। २४८ ई० पू० में ईरान उससे स्वतन्त्र हो गया। ईरान के उत्तरी पहाड़ी हिस्से को आजकल खुरासान कहते हैं। वहाँ पार्थव नाम की एक ईरानी जाति रहती थी, जिससे उस प्रदेश का नाम भी तब पार्थव था। पार्थव जाति के मुखिया अरसक ने ईरान को स्वतन्त्र कर अपने वंश का राज्य स्थापित किया। सातवाहनों की तरह उसके वंशजों ने भी प्रायः ४५० बरस राज्य किया। पार्थवों की प्रधानता होने के कारण इस युग में सारे ईरान का नाम पार्थव (Parthia) ही रहा।

पार्थव देश के उत्तर-पूरब बाख्त्री (बाह्लीक या बलख) और सुग्ध (आमू-सीर-दोआब) प्रदेश थे। आजकल हम उन्हें तुर्किस्तान* में गिनते हैं, पर हखामनी साम्राज्य के समय और उसके पहले से सुग्ध में शक लोग रहते थे। उनकी एक शाखा अफ़ग़ानिस्तान के दक्खिन-पच्छिम आ बसी थी, जिससे उस प्रदेश का नाम शकस्थान हुआ, जो अब भी सीस्तान कहलाता है। अलक्सान्दर ने बाख्त्री और सुग्ध दोनों को जीता था। २५० ई० पू० के करीब वहाँ का यूनानी शासक सेलेउकी साम्राज्य से स्वतन्त्र हो बैठा। प्रायः सौ बरस तक बाख्त्री (Bactria) में इन यूनानियों का स्वतन्त्र राज्य रहा। इनका भारतवर्ष से भी घनिष्ठ सम्बन्ध था। सेलेउकी साम्राज्य अब केवल पच्छिमी एशिया में, सीरिया के चौगिर्द, रह गया।

§३. **डिमित, खारवेल, शातकर्णि (१म) और पुष्यमित्र**—२०५ ई० पू० तक काबुल दून में राजा सुभागसेन राज्य करता था। वह मौर्यों का उत्तराधिकारी था। उसके मरने पर बाख्त्री के यूनानियों ने काबुल, हरउअती

* प्राचीन इतिहास में तुर्किस्तान शब्द से खास तौर से परहेज करना चाहिए, क्योंकि उस देश में तब तुर्क थे ही नहीं; वे वहाँ बहुत पीछे आये हैं।

और गदरोसिया को जीत लिया। फिर उन्होंने पंजाब-सिन्ध पर भी चढ़ाई की। जब मध्यदेश में मौर्य साम्राज्य समाप्त हो रहा था उस समय बाख्त्री के राजा देमेत्रिय (Demetrius) ने उस पर चढ़ाई की। मथुरा और साकेत (अयोध्या) को ले कर उसने पाटलिपुत्र को भी घेर लिया।

उस समय दक्खिन में सिमुक का भतीजा शातकर्णि (१म) राज्य कर रहा था, और कलिङ्ग में चेदि राजा खारवेल। खारवेल शातकर्णि को दो बार

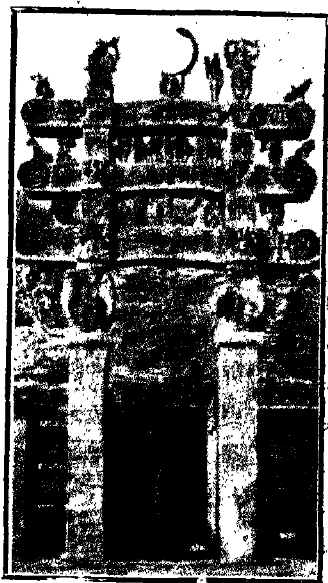


रानीगुम्फा
खंडगिरि (जि० पुरी) की चट्टान में खारवेल की रानी का कटवाया हुआ गुहा-विहार [भा० पु० वि०]

हरा कर, उससे वेणगङ्गा-वर्धा का प्रदेश छीन कर, विदर्भ पर अपनी प्रभुता जमा चुका था। देमेत्रिय या डिमित के हमले की खबर पा कर खारवेल मगध की तरफ़ बढ़ा; परन्तु डिमित उसके आने की खबर सुन कर उलटे पाँव भाग गया। खारवेल ने उसके बाद "उत्तरापथ" पर भी चढ़ाई की। वह मगध के रास्ते लौटा। उधर सुदूर दक्खिन पर भी खारवेल ने चढ़ाई की। पाण्ड्य

देश के समुद्र में मोती निकाले जाते थे। उस व्यापार के कारण पाण्ड्य बहुत धनी थे। अब मोतियों के जहाज़ कलिङ्ग के राजा के पास भेंट में आने लगे। खारवेल जैन धर्म का अनुयायी था। उसके कारनामों का वृत्तान्त भुवनेश्वर के पास हातीगुम्फा नाम की एक गुफ़ा की चट्टान पर खुदा है।

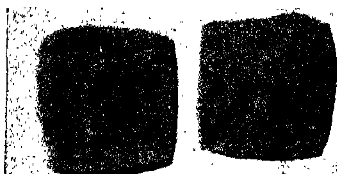
मौर्य राज्य की निष्क्रियता से ऊब कर प्रजा और सेना बिगड़ उठी। सेनापति पुष्यमित्र शुङ्ग ने समूची सेना के सामने राजा को मार कर शासन अपने हाथ में कर लिया। पुष्यमित्र ने समूचे मध्यदेश पर अधिकार करके यूनानियों से भी लड़ाइयाँ लड़ीं। मद्र देश की राजधानी शाकल (स्यालकोट) तक उसने विजय की। उसने बौद्धों का बहुत दमन किया। उसका बेटा अग्निमित्र और पोता वसुमित्र था। वसुमित्र के हाथ एक घोड़ा छोड़ बाद में उसने अश्वमेध भी किया। महाकवि कालिदास ने वही वृत्तान्त मालविकाग्निमित्र नाटक में लिखा है।


साँची स्तूप के जँगले का उत्तरीतोरण

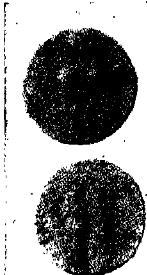
पुष्यमित्र के पीछे शुङ्ग-वंश का आधिपत्य मथुरा तक ज़रूर बना रहा। शुङ्गों के सामन्त मथुरा में, उत्तर-पञ्चाल की राजधानी अहिच्छत्रा में, कौशाम्बी में तथा बघेलखण्ड की राजधानी भारहुत में राज्य करते थे। शुङ्ग राजा पाटलिपुत्र के बजाय अयोध्या में और कभी-कभी आकर देश (पूरबी मालवा) की राजधानी विदिशा (भेलसा) में भी रहते थे। पुष्यमित्र असल में विदिशा का ही रहने वाला था। उसी विदिशा के पास सांची का प्रसिद्ध स्तूप है जिसके चारों तरफ़ पत्थर की सुन्दर वेदिका (जङ्गला) शुङ्गों के समय की या उनके कुछ पहले की बनी हुई है।

§४. **यवन राज्य**—उत्तर की तरफ़ भी अनेक उतार-चढ़ावों के बाद अफ़ग़ानिस्तान और पच्छिमी पञ्जाब में चार छोटे-छोटे यूनानी राज्य स्थापित हो गये। एक कापिशी में, दूसरा पुष्करावती में, तीसरा तक्षशिला में और चौथा शाकल में था। इन सब राज्यों के बहुत से सिक्के अब तक मिलते हैं। उन सिक्कों के एक तरफ़ प्रायः यूनानी और दूसरी तरफ़ प्राकृत लेख होता है। कापिशी के कई सिक्कों पर "कापिशी के नगर देवता" की मूर्त्ति रहती है और पुष्करावती के सिक्कों पर नन्दी और "पुष्करावती देवी" की। तक्षशिला औरशाकल के सिक्कों पर यूनानी और

'कविसिए नगरदेवता'



'पखलावदि देवदा'





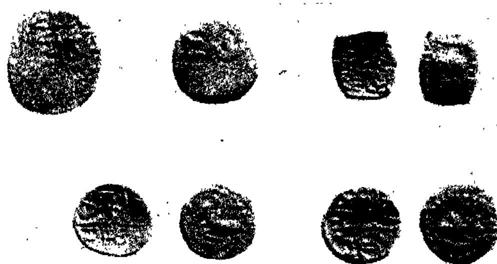
मेनन्द्र का सिक्का [श्रीनाथ साह संग्रह]
ऊपर के चौकोर सिक्के के सीधी तरफ़ राजा एवुक्रतिद (Eucratides) की और उलटी तरफ़ कापिशी के देवता की मूर्त्ति है। नीचे मेनन्द्र का सिक्का है जिसके सीधी तरफ़ यूनानी और उलटी तरफ़ प्राकृत लेख है। बाईं तरफ़ पुष्करावती का सिक्का है; सीधी तरफ़ नन्दी की मूर्त्ति है और उसमें (वृषभः) लिखा है; उलटी तरफ़ पुष्कलावती की देवी है।



भेलसा में हेलिउदोर का गरुडध्वज, जो खाम-बाबा नाम से प्रसिद्ध है।
[फ़ोटो, रा० सांकृत्यायन]

भारतीय देवताओं की मूर्तियाँ तथा बुद्ध के धर्म-चक्र आदि के निशान होते हैं। शाकल में मेनन्द्र (Menander) नाम का यूनानी राजा बड़ा विजेता हुआ। वह बौद्ध हो गया और उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए भी बहुत काम किया। तक्षशिला के एक यूनानी राजा अन्तलिखित का दूत शुङ्ग राजा के पास विदिशा में गया था। वह यूनानी दूत हेलिउदोर वासुदेव (विष्णु) का उपासक था। वासुदेव की पूजा के लिए उसने वहाँ एक गरुडध्वज बनवाया, जो गरुड़ की मूर्त्ति के बिना अब तक मौजूद है।

इन पर मा ल वा नां ज य लिखा है। (मा ल वों की ज य)



मालव गण के सिक्के

बांई तरफ़ से दूसरे सिक्के पर जो दो अक्षर हैं, वे ज और य हैं। तीसरे सिक्के की उलटी तरफ़ मङ्गल-घट और निचली पंक्ति के दोनों सिक्कों की उलटी तरफ़ नन्दी की मूर्त्ति है। [इं० म्यू०, कलकत्ता]

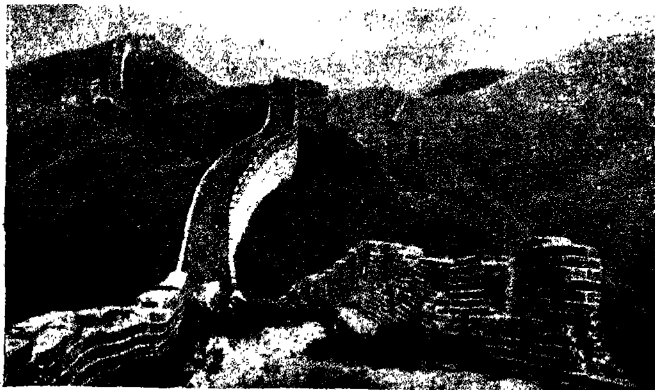
९५. गण-राज्यों का पुनरुत्थान—यूनानी राज्यों और शुङ्ग साम्राज्य के बीच पूरबी पञ्जाब, राजपूताना और सुराष्ट्र (काठियावाड़) में बहुत से संघ-राष्ट्र फिर उठ खड़े हुए। उनके सिक्के अब तक पाये जाते हैं। अब संघ के बजाय गण शब्द चल पड़ा था, क्योंकि संघ से अब बौद्ध संघ समझा जाने लगा था। सतलज के निचले काँठे पर यौधेय नाम का एक मज़बूत गणराज्य था। यौधेयों के वंशज आज भी उसी इलाके में रहते और जोहिये कहलाते हैं। कुणिन्द नाम का एक शक्तिशाली गण राज्य हिमालय की तराई में ब्यास से जमना तक था। प्रसिद्ध मालव गण यूनानियों के दबाव के कारण

पञ्जाब छोड़ कर चम्बल के काँठे में आ बसा। दक्खिन में सातवाहन-वंश का राज्य बना रहा।

मौर्यों के बाद भारतवर्ष के चार मण्डलों में चार राज-शक्तियाँ उठ खड़ी हुईं, पर पच्छिमी मंडल में ऐसी कोई शक्ति न उठी। इसी कारण उसकी राजधानी उज्जैन के लिए चारों तरफ़ की शक्तियाँ आपस में छीन-झपट करती रहीं। प्रत्येक विजेता की उसी पर निगाह थी। कई शताब्दियों तक भारतवर्ष के इतिहास की मुख्य रङ्ग-स्थली उज्जैन बनी रही। १०० ई० पू० में वहाँ एक नयी शक्ति प्रकट हुई जिसका वृत्तान्त आगे दिया जाता है।



कुणिन्द गण का सिक्का
[पटना म्यूज़ियम]



चीन की दीवार

अध्याय २

शक और सातवाहन

(लगभग १०० ई० पू०—७८ ई०)

§१. **मध्य एशिया में जातियों की उथल-पुथल; कम्बोज-वाह्लीक में 'युचि'-तुखारों का आना**—हमारे देश में जिस समय अशोक राज कर रहा था, लगभग उसी समय चीन में एक बड़ा राजा हुआ, जिसने वहाँ की नौ छोटी-छोटी रियासतों को जीत कर सारे चीन* को एक कर दिया। चीन के उत्तर इर्तिश और आमूर नदियों के बीच हूण लोग रहते थे। वे प्रायः सभ्य चीनी राज्यों पर हमले करके उन्हें सताया करते थे। चीन के उस सम्राट् ने अपने देश की समूची उत्तरी सीमा पर एक मज़बूत दीवार बनवा दी जिससे हूण लोग चीन के अन्दर न घुस पाँय। तब हूणों को पच्छिम तरफ रुख़ करना पड़ा।

तिब्बत और मंगोलिया के बीच चीन का जो भाग गर्दन की तरह निकला हुआ है वह कानसू प्रान्त है। उसके पच्छिम अब चीनी तुर्किस्तान या सिम-कियाङ शुरू होता है। तुर्क और हूण एक ही जाति के दो नाम हैं। कह चुके हैं कि उस समय तक उनका घर इर्तिश के पूरब था और मध्य एशिया में वे न पहुँच पाये थे। कानसू से ले कर यूनान की सीमा तक (मध्य एशिया से कास्पियन और काले सागर के उत्तर होते हुए) जो जातियाँ तब रहती थीं वे सब शक परिवार की थीं। शक लोग भी आर्य थे, किन्तु तब तक वे जङ्गली और ख़ानाबदोश थे। कानसू की ठीक सीमा पर शकों से मिलती-जुलती एक जाति रहती थी, जिसे चीनी लोग "युचि" कहते थे। नयी खोज से मालूम हुआ है कि संस्कृत की पुस्तकों में उसी का नाम ऋषिक है। युचि या ऋषिकों के पड़ोस में, तारीम नदी के उत्तर तरफ़, तुखार लोग रहते थे।

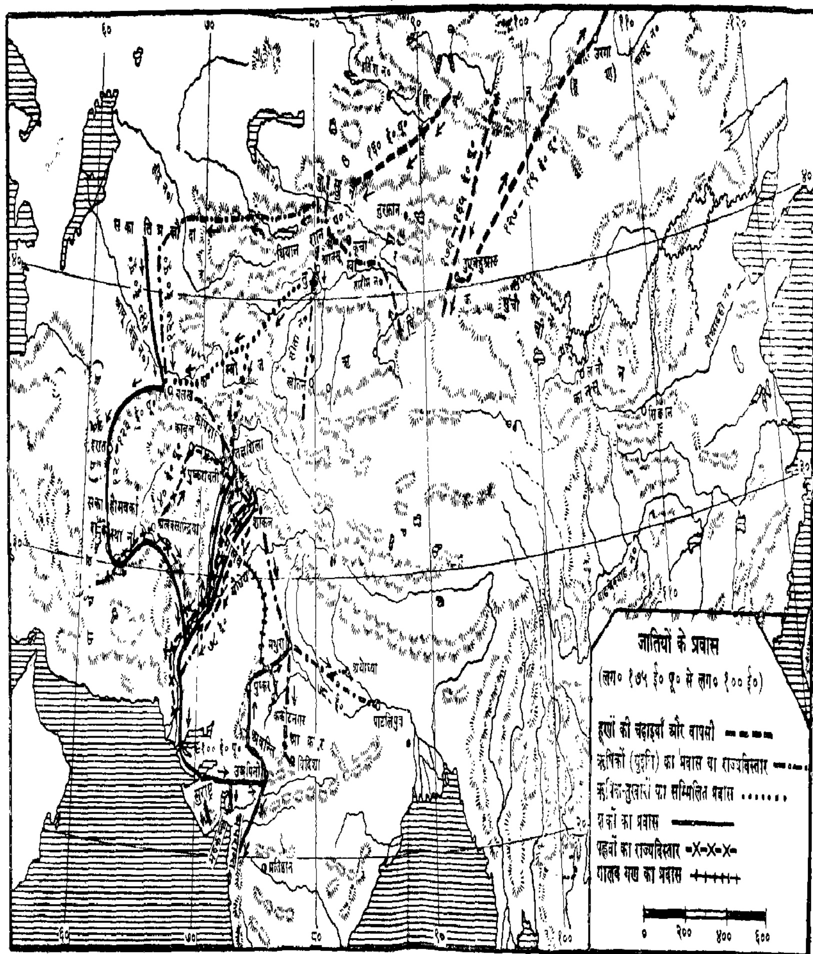
* हमारा मतलब ठेठ चीन से है, न कि आजकल के चीन साम्राज्य से।

हूणों ने पच्छिम हट कर ऋषिकों पर हमले किये (१७६, १=५ ई० पू०) और उन्हें मार भगाया। ऋषिक लोग तुखारों के देश में जा कर उनके राजा बन बैठे। फिर जब उन्हें वहाँ से भी भागना पड़ा, तब तुखारों को अपने साथ खदेड़ते हुए वे पच्छिम की ओर बढ़े, और थियानशान पर्वत को पार कर गये। वहाँ से उनकी एक शाखा दक्खिन झुक कर कम्बोज देश अर्थात् पामीर-बदख़्शाँ की तरफ़ बढ़ी और दूसरी शाखा ने सुग्ध दोआब में शकों की ख़ास बस्ती पर हमला किया। तब ख़ानाबदोश जातियों का यह प्रवाह बाख्त्री के यूनानी राज्य पर टूट पड़ा, और वह राज्य समाप्त हो गया (लगभग १४० ई० पू०)। ऋषिकों की अपेक्षा तुखारों की संख्या अधिक होने से तुखारों का नाम इतिहास में अधिक प्रसिद्ध है। प्राचीन कम्बोज देश में ऋषिक-तुखारों के बस जाने से वह तुखारदेश या तुखारिस्तान कहलाने लगा। यह नाम प्रायः एक हज़ार बरस तक चलता रहा।

§७. **शकों का भारत-प्रवास**—सुग्ध से खदेड़े जा कर शकों ने हिन्दू-कुश पार नहीं किया। वे हरात से घूम कर, रास्ते में लूट-मार करते हुए, शकस्थान की पुरानी बस्ती में अपने भाई-बन्दों के पास जाने लगे। हरात और शकस्थान तब पार्थव राज्य में थे, इसलिए सब से पहले पार्थवों को उनसे वास्ता पड़ा। दो पार्थव राजा उनसे लड़ते हुए मारे गये (१२८ और १२३ ई० पू०)। किन्तु उसके बाद पार्थव राजा मिथ्रदात (२य) ने उनका बुरी तरह दमन किया (१२३—८८ ई० पू०)। उसके दमन से घबड़ा कर उन्होंने शकस्थान से भारत की तरफ़ मुँह फेरा, और हमारे सिन्ध प्रान्त पर अधिकार कर लिया (लगभग १२०—११५ ई० पू०)। सिन्ध में उनकी ऐसी सत्ता जम गयी कि वह हमारे देश में शकद्वीप* कहलाने लगा, और पच्छिमी लोग उसे हिन्दी शकस्थान (Indo-Skythia) कहने लगे। भारत में वही शकों का केन्द्र था, और वहीं से वे दूसरे प्रान्तों की तरफ़ बढ़े।

---

* द्वीप शब्द का अर्थ सदा टापू ही न होता था। प्रायः वह दोआब के अर्थ में और कभी-कभी देश के अर्थ में भी आता था।



लगभग १७५ ई० पू० से प्रायः १०० ई० तक (१) हूणों की चढ़ाइयाँ और वापसी, (२) ऋषिकों (युइचों) का प्रवास या राज्य-विस्तार, (३) ऋषिक-तुखारों का सम्मिलित प्रवास, (४) शकों का प्रवास, (५) पह्लवों का राज्य-विस्तार और मालव गण के प्रवास का नक्शा

§३. **उज्जैन, मथुरा और पञ्जाब में शक**—शकों का सब से पहला धावा सुराष्ट्र (काठियावाड़) और उज्जैन पर हुआ। उस घटना के विषय में बहुत सी ख्यातें प्रसिद्ध हैं। इनके अनुसार शकों ने १००ई० पू० में उज्जैन जीता; और ५८ ई० पू० तक वहाँ राज्य किया ; तब प्रतिष्ठान से राजा विक्रमादित्य ने आ कर उन्हें निकाल दिया। इसी समय के नहपान नामक शक सरदार के सिक्के और उसके दामाद उषवदात के लेख इस इलाके में मिलते हैं। उषवदात ने पुष्कर के पास मालव-गण को हराया। दक्खिन की तरफ़ नहपान का अधिकार उत्तरी महाराष्ट्र और कोंकण तक था। उसकी राजधानी भरुकच्छ (भरुच) थी। वह सिक्कों पर अपने को "महाक्षत्रप" कहता है, क्योंकि वह सिन्ध के महाराजा का क्षत्रप अर्थात् सूबेदार था। उषवदात जैन था। नासिक और जुन्नर में उसने बौद्ध भिक्षुओं के लिए पहाड़ कटवा कर कई विहार बनवाये। वैदिक ब्राह्मणों के यज्ञों के लिए भी उसने बहुत दान किये।

उज्जैन से पुष्कर होता हुआ शक राज्य मथुरा तक पहुँच गया। मथुरा से तब शुङ्गों की सत्ता मिट गयी और इससे शुङ्ग राज्य को ऐसा धक्का लगा कि कुछ समय बाद वह मगध से भी उठ गया। अन्तिम शुङ्ग राजा से काण्व वंश के एक ब्राह्मण अमात्य ने राज्य छीन लिया (७३ ई० पू०)। काण्व वंश ने मगध में चार पीढ़ी राज्य किया। उधर सिन्ध से शक विजेता सीधे गान्धार की तरफ़ बढ़ते हुए स्वात की दून तक पहुँच गये (लगभग ६५ ई० पू०)। शकों के हमलों की इस बाढ़ में पंजाब के यवन राज्य बह गये। तो भी काबुल में तुखारों और शकों के बीच घिरा हुआ एक छोटा सा यूनानी राज्य कुछ समय के लिए बचा रहा।




गौतमीपुत्र के सिक्के
नहपान-वंश से राज्य छीनने के बाद गौतमीपुत्र ने उसके सिक्कों को अपनी छाप लगा कर चलाया। इन सिक्कों पर चेहरा नहपान का है, उसके ऊपर के चिह्न गौतमीपुत्र के हैं। (दुर्गाप्रसाद संग्रह)

§४. **राजा गौतमीपुत्र शातकर्णि**—पुष्करावती से पूना तक शकों का वह साम्राज्य बहुत थोड़े ही अरसे तक टिका। प्रसिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य ने प्रतिष्ठान से आ कर उज्जैन जीता और शकों का संहार कर विक्रम-संवत्



नासिक में राजा गौतमीपुत्र का कटवाया हुआ गुहा-विहार [भा० पु० वि०]

चलाया। विक्रमादित्य उस राजा का विरुद था। उसका असल नाम गौतमीपुत्र शातकर्णि था। उसकी माता गौतमी बालश्री के लेख अब तक मौजूद हैं। गौतमीपुत्र ने नहपान के वंश को "जड़ से उखाड़" कर सारे सातवाहन राज्य पर फिर अधिकार किया, और बहुत से नये प्रदेश भी जीत लिये। उज्जैन के साथ-साथ मथुरा से भी शकों की सफ़ाई हो गयी।

§५. **मालव संवत् या विक्रम संवत्**—राजा विक्रमादित्य ने संवत् चलाया यह बात पूरी तरह ठीक नहीं है। पुराने लेखों में उस संवत् को मालव गण का संवत् कहते हैं। उसका नाम विक्रम-संवत् बहुत पीछे पड़ा। ऐसा जान पड़ता है कि मालव-गण और राजा गौतमीपुत्र शातकर्णि ने इकट्ठे मिल कर उज्जैन में शकों को हराया और तब से वह संवत् चला।

§६. **कन्दहार के पह्लव**—उधर मिथ्रदात (२य) के बाद पार्थव साम्राज्य के कमज़ोर हो जाने पर पूरबी ईरान या शकस्थान में एक छोटा पार्थव राज्य अलग हो गया। पार्थव जाति को पुरानी फ़ारसी और संस्कृत में पह्लव कहते थे। इन पह्लवों ने अपना राज्य शकस्थान से हरउवती की तरफ़ बढ़ाया। वहाँ से बढ़ कर काबुल के यूनानी राज्य को जीता और फिर गान्धार तथा सिन्ध को भी शकों से छीन लिया (लगभग ४५ ई० पू०)। तब शकों का राज्य कहीं भी न रह गया। हरउवती के पह्लवों ने लगभग ईस्वी सन् के शुरू तक अफ़गानिस्तान, पञ्जाब और सिन्ध पर राज्य किया।



अय या अज का सिक्का—घोड़े पर सवार राजा की मूर्त्ति।
[श्रीनाथसाह संग्रह]



गुदफर का सिक्का; सीधी तरफ़ राजा का चेहरा; उलटी तरफ़ देवी के चौगिर्द प्राकृत लेख—'महाराज-गुदफरनस त्रातारस'।

इन पह्लव राजाओं में श्पलिरिष, उसके बेटे अय या अज और अय के बेटे गुदफर का विस्तृत राज्य रहा। श्पलिरिष ने काबुल जीता। अज और गुदफर समूचे उत्तर-पच्छिमी भारत के राजा थे।

पह्लव राजा प्रायः बौद्ध थे। हिन्दूकुश के दक्खिन के यूनानी सिक्कों की

तरह शकस्थान के इन राजाओं के हरउवती में चलने वाले सिक्कों पर भी प्राकृत ज़रूर लिखी रहती थी। इसका यह अर्थ है कि काबुल और कन्दहार के प्रदेश तब स्पष्ट रूप से भारत में गिने जाते थे।

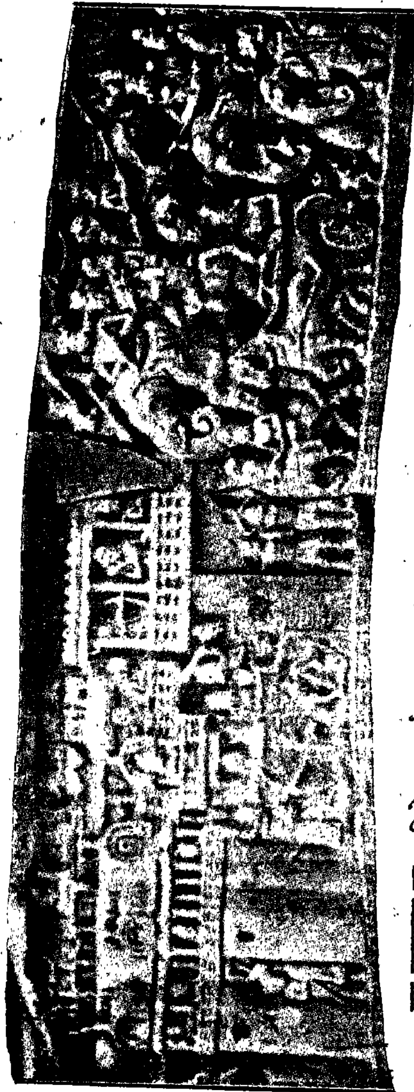


शुङ्ग-सातवाहन-युग—युद्ध का दृश्य; साँची स्तूप, पच्छिमी तोरण, पिछली तरफ़, बिचली दाब पर से

§७. सातवाहनों की चरम उन्नति—दूसरी शताब्दी ई० पू० में भारत में चार बड़ी शक्तियाँ थीं। शक लोग पाँचवीं शक्ति के रूप में पहले पहल पच्छिम-मंडल में प्रकट हुए। कलिङ्ग का राज्य शकों से पहले ही समाप्त हो गया था। मध्य-देश के शुङ्ग राज्य और उत्तरापथ के यूनानी राज्यों को शकों ने मिटा दिया। तब केवल दो शक्तियाँ बचीं, एक शक, दूसरे सातवाहन। पहले सातवाहनों को कुछ दबना पड़ा, पर पीछे उन्होंने शकों को "जड़ से उखाड़ दिया।" उसके बाद ५७ ई० पू० से सातवाहनों की शक्ति बढ़ती ही गयी। गौतमीपुत्र

का बेटा वासिष्ठीपुत्र पुलुमाव भ बड़ा योग्य राजा था। उसने अन्दाज़न ४४ से ८ ई० पू० तक राज किया। २८ ई० पू० में सातवाहनों ने काण्व राजा से मगध भी जीत लिया। प्रायः तभी रोम में भी साम्राज्य स्थापित हुआ। पुलुमावी ने रोम-सम्राट् के पास दूत भेजे थे।

प्रायः सौ बरस तक सातवाहन भारत के सम्राट् रहे। उनकी दक्खिनी सीमा तामिल राष्ट्रों तक थी, और वे राष्ट्र भी उनके प्रभाव में रहते थे। सातवाहनों का दरबार विद्या का केन्द्र बन गया था। सातवाहन युग की समृद्धि अद्वितीय थी। भारतवर्ष के सुदूर कोनों में जो छोटे-मोटे राष्ट्र उनके साम्राज्य के बाहर बचे हुए थे, वे भी प्रत्येक बात में सातवाहन साम्राज्य का अनुकरण करते थे। इस युग के सातवाहनों में से राजा हाल का नाम बहुत प्रसिद्ध है।



शुंग-सातवाहन-युग—किले पर चढ़ाई का दृश्य; साँची स्तूप, दक्खिनी तोरण, पिछली तरफ़, छत से निचली धरन पर से

अध्याय ३

पैठन और पेशावर के साम्राज्य

(७८ ई० से १७६ ई०)

§१. 'उपरले हिन्द' में चीन और भारत का मिलना—हम ऋषिक-तुखारों को पामीर, बदख्शाँ और बलख़ में छोड़ आये हैं। हूणों ने चीन का ठीक पच्छिमी दरवाज़ा घेर लिया, यह बात चीन के सम्राटों को गवारा न हुई। उन्होंने अपने पुराने पड़ोसी ऋषिकों से हूणों के विरुद्ध सहायता लेनी चाही, और इस विचार से चाङ-किएन नामक एक दूत को ऋषिकों के पास भेजा (१३८ ई० पू०)। रास्ते में दस बरस हूणों की क़ैद काटने के बाद १२७ ई० पू० में वह वंक्षु (आमू दरिया) के किनारे ऋषिक डेरे में पहुँचा। बलख़ के बाज़ार में उसने चीन का रेशम और बाँस बिकता देखा, और पूछा कि वह कहाँ से आया है। तब उसे मालूम हुआ कि हिन्दूकुश के दक्खिन तरफ़ 'शिन्तु' (सिन्धु, हिन्द) नाम का विशाल और सभ्य देश है, जिसके आर-पार हो कर वह माल आता है। जङ्गली किरात लोग आसाम के रास्ते चीन और भारत की चीज़ों का विनिमय करते थे, पर दोनों देशों के शिक्षित लोग तब तक न जानते थे कि वे ठीक कहाँ से वह माल लाते हैं। इधर उत्तर की तरफ़ चीन के कानसू और भारत के कम्बोज देश के बीच केवल तारीम नदी का लम्बा काँठा था, जो ऋषिकों और तुखारों का मूल निवास-स्थान था। चाङ-किएन उसके इस पार निकल आया था, जहाँ से आगे 'शिन्तु' और पार्थव देश को रास्ते जाते थे। इस प्रकार सभ्य जगत् के पूरबी और पच्छिमी हिस्से, जो अढ़ाई हज़ार बरस से एक दूसरे के लिए अन्धेरे में पड़े थे, प्रकाश में आ गये।

चाङ-किएन के वापिस पहुँचने पर चीन के सम्राट् ने अपने इस पच्छिमी रास्ते को खुला और सुरक्षित रखने का पक्का निश्चय कर लिया। १२७ से

११६ ई० पू० तक चीनी सेनाओं ने हूणों को मंगोलिया के उत्तर तक मार भगाया। ऋषिक-तुखारों को अपना पुराना देश भी वापिस मिला। १०२ ई० पू० में एक चीनी सेना सीर की उपरली दून में फ़रग़ाना (खोकन्द) तक समूचे मध्य एशिया को जीतती चली आयी।

कानसू और कम्बोज के बीच के अँधियारे देश को जहाँ एक तरफ़ से चीन वाले यों साफ़ कर रहे थे, वहाँ दूसरी तरफ़ से भारत के आर्य उसे रोशन करने में लगे थे। भारतीय बस्ती की नींव वहाँ अशोक के समय से—अर्थात् चीनियों के आने से पहले—पड़ चुकी थी। सीता (यारकन्द) नदी के भारतीय नाम को अपना कर चीनी लोग उसे अब तक सीतो कहते हैं। वहाँ के बाकी सब नाम भी उन्होंने प्रायः भारतवासियों से ही लिये। खोतन की पुरानी ख्यात है कि वहाँ एक राजा विजयसम्भव हुआ, जिसके समय में वहाँ के पशुपालकों को आर्य वैरोचन ने पहले-पहल लिखना सिखाया। यह बात अन्दाज़न १०० ई० पू० में हुई। इसके बाद से तारीम के काँठे में भारतवर्ष की जनता और सभ्यता इस प्रकार जम गयी कि विद्वान् लोग उसे प्राचीन इतिहास में 'उपरला हिन्द' (Ser-India) कहते हैं। 'उपरले हिन्द' या ऋषिक-तुखारों के देश में ऋषिकों के हूणों से भगाये जाने के बाद एक शताब्दी के अन्दर (१६०–६० ई० पू०) दो बड़ी बातें हो गयीं। एक तो यह कि ऋषिक-तुखार लोग इस अरसे में बहुत कुछ सभ्य हो गये, और दूसरे उनके द्वारा चीन और भारत का परस्पर सम्बन्ध स्थापित हो गया।

§२. **राजा कुषाण**—अब धीरे-धीरे ऋषिक लोग हिन्दूकुश के इस पार भी उतरने लगे। ख़ास कर कम्बोज देश से पूरबी हिन्दूकुश के घाटों को पार कर स्वात और सिन्ध की दूनों में हो कर वे सीधे गान्धार की तरफ़ आ निकले। हिन्दूकुश के दक्खिन उनकी पाँच छोटी-छोटी रियासतें बन गयीं। कुछ समय बाद कुषाण* नाम का एक शक्तिशाली व्यक्ति उनमें से एक का सरदार हुआ।

* पहले यह समझा जाता था कि कुषाण उसके वंश का नाम है। असल में उस राजा का वही नाम था। उसके वंशज कुषाण-वंशज कहला सकते हैं।

उसने बाकी चारों रियासतों को भी जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। यह घटना उस समय की है जब हरउवती के पह्लव राजा काबुल को जीत रहे थे। कुषाण उस समय तो चुप रहा, किन्तु पह्लव राज्य के कमज़ोर होने पर उसने समूचे अफ़ग़ानिस्तान, कपिश और पच्छिमी-पूरबी गान्धार (पुष्करावती; तक्षशिला) को जीत लिया। बलख और कम्बोज तथा उपरले हिन्द के कुछ हिस्से पर तो उसका अधिकार पहले ही से था। उसके राज्य की पच्छिमी सीमा अब पार्थव राज्य से लगने लगी। यह राज्य स्थापित हो जाने पर उसने अपने दूत चीन भेजे, और उनके हाथ बौद्ध धर्म की एक पोथी पहले-पहल चीन पहुँची (२ ई० पू०)। कुषाण को इतिहास में कुषाण कफ्स कहते हैं। दीर्घ शासन के बाद अस्सी बरस की आयु में उसकी मृत्यु हुई (अन्दाज़न ३० ई०)।

§३. युचि और सातवाहनों का युद्ध—कुषाण कफ्स का बेटा विम कफ्स था*। उसका राज्य-काल अन्दाज़न ३०–७७ ई० है। कुषाण बौद्ध था, पर विम शैव। उसने समूचा पंजाब, सिन्ध और मथुरा प्रान्त जीत लिये। उसके साम्राज्य की सीमाएँ दो तरफ़ पार्थव और चीन साम्राज्य से लगती थीं, अब तीसरी तरफ़ सातवाहन साम्राज्य से लगने लगीं। उसकी राजधानी बदख्शां में ही रही।




विम कफ्स का सिक्का
सीधा तरफ़—राजा विम अग्नि में आहुति देते हुए;
उलटा तरफ़—नन्दी के सहारे खड़े शिव।
[श्रीनाथ साह संग्रह]

---

* पंजाब की कहानियों में उसका नाम 'सिरकप' प्रसिद्ध है। 'सिरकप' का अर्थ अब कहानी सुनाने वाले करते हैं—सिर काटने वाला; पर असल में वह 'सिरि कप' अर्थात् 'श्री कफ्स' है।

पंजाब में 'सिरकप' और शालिवाहन की लड़ाई की कहानी लोग अब तक सुनाते हैं। प्रसिद्ध है कि विक्रमादित्य के १३५ वर्ष पीछे शक और शालिवाहन राजाओं की मुलतान के पास करोड़ नामक जगह पर लड़ाई हुई, जिसमें शक राजा मारा गया। भारतवर्ष में ऋषिक लोग शक ही कहलाते थे, क्योंकि वे शक परिवार के थे। और जब उन्होंने गान्धार से आगे बढ़ना शुरू किया तब सवा सौ बरस पुराना शकों और सातवाहनों का युद्ध फिर से छिड़ गया। सातवाहनों के साथ कुछ गणराज्य भी थे। करोड़ यौधेयों के राज्य में पड़ता था। करोड़ की लड़ाई के बाद भी वह लम्बी कशमकश बन्द न हुई।



यौधेय गण का सिक्का [पटना म्यूज़ियम]

§४. देवपुत्र कनिष्क—विम कफ्स का उत्तराधिकारी सुप्रसिद्ध राजा कनिष्क हुआ। उसने खोतन के राजा विजयकीर्त्ति के साथ मिल कर फिर मध्य-देश पर चढ़ाई की। विजयकीर्त्ति विजयसम्भव के वंश का था। उन्होंने साकेत (अयोध्या) को घेर लिया, और उसके बाद पाटलिपुत्र को भी जीता। वहाँ से कनिष्क प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् अश्वघोष को अपने साथ ले गया। मध्यदेश और मगध पूरी तरह कनिष्क के हाथ में आ गये और वहाँ उसके क्षत्रप राज करने लगे। प्रसिद्ध शक सम्वत् जो ७८ ई० में शुरू होता है, कनिष्क का चलाया माना जाता है*।

कनिष्क ने प्रायः बीस बरस राज्य किया। इसी समय (७३–१०२ ई०) चीन के एक सेनापति ने सारे मध्य एशिया को जीत कर कास्पियन सागर तक

* कुछ विद्वानों के मत में कनिष्क १२८ ई० में राज करने लगा। इस तथा अन्य कई कारणों से कनिष्क के वंशजों और पूर्वजों का, हरउवती के पह्लवों का तथा नहपान आदि पहले शकों और उनके समकालीन सातवाहनों का समय निर्विवाद नहीं है। इन तिथियों में २० से ५० वर्ष तक फेरफार की गुञ्जाइश है।

चीन का आधिपत्य पहुँचा दिया। कनिष्क को भी उपरले हिन्द में उस सेनापति से हारना पड़ा। उसने पुष्करावती से कुछ हट कर पुरुषपुर (पेशावर) बसाया और बदख्शां से अपनी राजधानी वहीं उठा लाया। पेशावर और अन्य स्थानों में उसने अनेक स्तूप और विहार आदि बनवाये। अपनी राजधानी को उसने सातवाहनों की तरह विद्या का केन्द्र बनाया। महाकवि अश्वघोष के अतिरिक्त आयुर्वेद का प्रसिद्ध आचार्य चरक भी उसकी सभा में था। कनिष्क की प्रेरणा से बौद्धों की चौथी संगीति कश्मीर में श्रीनगर के पास हुई। अशोक की तरह कनिष्क ने भी दूर-दूर तक बौद्ध धर्म का प्रचार करवाया। इस कारण उसका नाम आज तिब्बत, खोतन और मंगोलिया तक बड़े आदर से याद किया जाता है। उसके सिक्कों पर उसका नाम 'कनिष्क शाहानुशाह' अर्थात् 'शाहों का शाह' लिखा होता है। शकों के सरदार शाहि कहलाते थे। 'शाह' उसी 'शाहि' का रूपान्तर है। चीनी सम्राटों की नकल कर कनिष्क अपने को 'देवपुत्र' भी कहता था।



मथुरा के पास माट गाँव से पायी गयी
कनिष्क की खंडित मूर्त्ति
[मथुरा म्यू०, भा० पु० वि०]

§५. कनिष्क के वंशज, शक रुद्रदामा और पिछले सातवाहन— कनिष्क के बाद उसके वंश में सम्राट् हुविष्क (लगभग १०६—१४० ई०) और वासुदेव (लगभग १४१—१७६ ई०) प्रसिद्ध हुए। 'उपरले हिन्द' में चीन की शक्ति १०२ ई० के बाद कुछ न रही, तब हुविष्क ने वहाँ फिर

अपना अधिकार जमा लिया। उपरले-हिन्द की राजकाज की भाषा इस समय से भारतवर्ष की एक प्राकृत रही। इधर मध्यदेश और मगध इन ऋषिक राजाओं के हाथ आ जाने के बाद जब पैठन का सातवाहन साम्राज्य दक्खिन तक ही सीमित रह गया, तब फिर उसी उज्जैन-प्रदेश के लिए पेशावर और पैठन के साम्राज्यों में छीन-झपट शुरू हो गयी। लगभग ११० ई० में ऋषिक सम्राट् की तरफ़ से चष्टन नाम का एक शक महाक्षत्रप उज्जैन में स्थापित हो गया।[1] किन्तु पीछे उसका प्रायः सारा राज्य सातवाहन राजा ने छीन लिया।



हुविष्क का सिक्का
[श्रीनाथ साह संग्रह]

चष्टन के बेटे ने राज्य नहीं किया। उसके पोते रुद्रदामा को अपनी बेटी सातवाहन राजकुमार को व्याह में देनी पड़ी। परन्तु पीछे रुद्रदामा ने अपने समधी को दो बार हराया, और सन् १५० ई० तक उसने सारे सिन्ध, मारवाड़, कच्छ, सुराष्ट्र, गुजरात, मालवा और उत्तरी महाराष्ट्र पर अधिकार कर लिया। सिन्ध-मारवाड़ की उत्तरी सीमा पर यौधेय गण था। रुद्रदामा गर्व से लिखता है कि "सब क्षत्रियों में वीर प्रसिद्ध हो जाने से जिनका दिमाग फिर गया था, और जो किसी के अधीन न होते थे, उन यौधेयों को" उसने "ज़बरदस्ती उखाड़ डाला।" यूनानियों, शकों और पह्लवों की चढ़ाइयों के बीच अब तक यौधेयों ने अपनी स्वतन्त्रता बराबर बनाये रखी थी। अपने सिक्कों पर वे युद्ध के देवता स्कन्द की मूर्त्ति बनाते थे।



चष्टन
एक सिक्के पर से बड़ा किया हुआ चित्र

रुद्रदामा के पीछे शक क्षत्रपों से सातवाहनों ने फिर कई प्रदेश ले लिये। दूसरी शताब्दी ई० के पिछले भाग में यज्ञश्री शातकर्णि नामक सातवाहन राजा बड़ा शक्तिशाली हुआ।



रुद्रदामा
सिक्के पर से बढ़ाया हुआ चित्र

§६. तामिल और सिंहल राष्ट्र—जब उत्तरी और पच्छिमी भारत में पेशावर और पैठन साम्राज्यों की यह कशमकश जारी थी, तब सातवाहन साम्राज्य के दक्खिन छोर पर तामिल और सिंहल राष्ट्रों में भी एक दूसरे से बढ़ने के लिए स्पर्धा चल रही थी। अन्दाज़न ७०–१००ई० में प्रसिद्ध चोल राजा करिकाल हुआ, जिसने सब तामिल राष्ट्रों और सिंहल



एक आणीकट—वेलमुंडि 'जि० कोयम्बटूर' से [भा० पु० वि०]

पर भी अपनी प्रभुता जमायी। उसकी राजधानी कावेरी नदी पर उरगपुर या उरैपुर (आधुनिक त्रिचनापल्ली) थी। कावेरी के मुहाने पर उसने

एक बड़ा बन्दरगाह कावेरीपट्टनम् बसाया। उस पट्टन में एक मन्दिर सातवाहन का भी था, जिसमें सातवाहन की पूजा होती थी! इससे प्रतीत होता है कि सातवाहन राजाओं का भारतवर्ष के सुदूर कोनों तक भी कितना प्रभाव था।

करिकाल के बाद कुछ समय तक चेर राज्य सब तामिल राष्ट्रों में प्रमुख रहा। फिर लगातार पाण्ड्यों की प्रधानता रही। किन्तु चोल देश का उत्तरी आधा हिस्सा जिसकी राजधानी काञ्ची (काञ्जीवरम्) थी, सातवाहनों के अधीन रहा। यज्ञश्री के काञ्ची वाले सिक्कों पर दो मस्तूलों का जहाज़ बना रहता है, जो उसकी समुद्री शक्ति को सूचित करता है। इन सब तामिल और सातवाहन राजाओं ने समुद्री डाकुओं का दमन कर विदेशी व्यापार को खूब बढ़ाया। नदी के मुहाने में आणीकट-बाँध बनवा कर सिंचाई के लिए पानी काटने का तरीका इन्हीं तामिल राजाओं ने चलाया, जो इन्हीं से संसार के सब देशों ने सीखा।

———

अध्याय ४

बृहत्तर भारत

§१. उपरला हिन्द, सुवर्णभूमि और सुवर्णद्वीप—ऋषिक-तुखारों का देश किस तरह उपरला-हिन्द बन गया, और उसके द्वारा चीन और भारत का सम्बन्ध कैसे हो गया सो हमने देखा। उसी प्रकार इस युग में एक और हिन्द पैदा हो गया था, जिसे पच्छिमी लोग तब 'गङ्गा पार का हिन्द' (Trans-Gangetic India) कहते थे और अब भी परला हिन्द (Further India) कहते हैं। बहुत पुराने समय से वहाँ आग्नेय वंश की जातियाँ रहती थीं, जो अशोक के समय तक पत्थर के हथियार काम में लाती थीं। महाजनपदों के ज़माने से भारत के सामुद्रिक व्यापारी उधर जाने लगे, और उन्हें वहाँ सोने की खानें मिलीं, इसलिए उन्होंने इस देश का नाम सुवर्णभूमि रक्खा। धीरे-धीरे वहाँ भारतीय बस्तियाँ बसीं और भारतीयों ने आग्नेय लोगों को भी सभ्य बनाया। सातवाहनों के चरम उत्कर्ष के ज़माने में वहाँ भारतीय बस्तियाँ खूब बढ़ीं, और कई भारतीय राज्य स्थापित हो गये (५८ ई० पू०—७८ ई०)। ईसवी सन् के शुरू में आजकल के फ़ांसीसी हिन्दचीन में कौठार और पाण्डु-रङ्ग नाम के दो छोटे-छोटे भारतीय राज्य स्थापित हो चुके थे। मेकाङ नदी के तट पर एक तीसरे बड़े राज्य की राजधानी थी, जिसे चीन वाले फ़ूनान कहते थे। उसका असली नाम अभी तक नहीं जाना जा सका। उस राज्य की सीमा बरमा तक थी। उसकी स्थापना एक कौण्डिन्य ब्राह्मण ने की थी। कौण्डिन्य ने वहाँ जा कर सोमा नाम की "नागी" (अर्थात् नागों को पूजने वाली किसी आग्नेय जाति की लड़की) से ब्याह किया था, जिस से उसके वंशज सोम-वंश के कहलाये।

प्राचीन परला हिन्द

आधुनिक नाम कोष्ठों में

(पहली शती ई० पू० से तेरहवीं शती ई० तक)

मलक्का प्रायद्वीप और सुमात्रा का उत्तरी हिस्सा सुवर्णद्वीप और बाकी सुमात्रा-जावा मिला कर यवद्वीप कहलाता था। यवद्वीप में शिशिर पर्वत था, और उसके पूरबी हिस्से में सरयू नदी अब तक है। इन बस्तियों और राज्यों के हिन्दू संस्थापक प्रायः शैव थे। सन् ईसवी की पहली शती में मदगास्कर द्वीप में भी भारतीय बस्तियाँ स्थापित हुईं।

सुवर्णभूमि के साथ सबसे अधिक और पुराना सम्बन्ध चम्पा (भागलपुर) के लोगों का था। १९२ ई० में उन्होंने सुवर्णभूमि के पूरबी छोर पर एक चम्पा राज्य स्थापित किया, जिसने कौठार और पाण्डुरङ्ग तथा और पड़ोसी प्रदेशों को जीत लिया। तब से १२०० बरस तक चम्पा की बड़ी शक्ति और समृद्धि बनी रही। उसके बाद भी गिरते पड़ते आज से १०० बरस पहले तक चम्पा राज्य किसी प्रकार बना रहा।

§२. **चीन और रोम से सम्बन्ध**—उपरले हिन्द और सुवर्णभूमि में सभ्य राज्य स्थापित हो जाने से चीन के साथ भारत का सम्बन्ध स्थल और जल दोनों रास्तों से हो गया। दोनों देशों में व्यापार तो बढ़ा ही, साथ-साथ एक दूसरे की सभ्यता भी वे सीखने लगे। ६८ ई० में गान्धार, अफ़ग़ानिस्तान या खोतन से धर्मरत्न और कश्यपमातङ्ग नाम के दो भिक्षु पहले-पहल चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार करने पहुँचे। उसके बाद वह सिलसिला लगातार जारी रहा। चीन वालों का पच्छिमी रास्ता खुल जाने से चीन का रेशम उन सब देशों में जाने लगा।

पच्छिमी एशिया और मिस्र जब तक यूनानी राज्य रहे उनके साथ भारत का अच्छा व्यापार रहा। जब बलख के यूनानी राज्य को तुखारों ने मिटाया, प्रायः उसी समय रोम वालों ने पच्छिम के सारे यूनानी राज्यों को जीत लिया। रोम का साम्राज्य "भूमध्य-सागर" के चौगिर्द था। वह सागर असल में रोम की भूमि के ही मध्य में था। भारतीय नाविक व्यापारी रोम-साम्राज्य के सब देशों में पहुँचते थे। लगभग १०० ई० पू० में एक बार कुछ भारतवासी अपने जहाज़ के साथ आफ़्रिका महाद्वीप का चक्कर लगाते हुए दिशामूढ हो कर जर्मनी के तट पर जा भटके और वहाँ से रोम पहुँचाये गये थे।

भारतीय माल रोम-साम्राज्य में ख़ूब पहुँचता और बदले में सोना आता था। यहाँ से हाथीदाँत का सामान, इत्र, मसाले, मोती और कपड़े आदि जाते थे। कनिष्क के समय के करीब एक रोमन लेखक ने शिकायत की है कि भारतवर्ष रोम से हर साल साढ़े पाँच करोड़ का सोना खींच लेता है,



भारत-लक्ष्मी

भारत के रोमन व्यापार का स्मारक एक तश्तरी पर का चित्र जो रोम-साम्राज्य में अङ्कित किया गया था। यह तश्तरी अब इस्ताम्बूल म्यूज़ियम में है।

और "यह कीमत हमें अपनी ऐयाशी और अपनी स्त्रियों की ख़ातिर देनी पड़ती है।" एक दूसरे रोमन लेखक ने रोमन स्त्रियों की शिकायत करते हुए लिखा है कि वे भारतवर्ष से आने वाले "बुनी हुई हवा के जाले" (**मलमल**) पहन कर अपना सौंदर्य दिखाती थीं ! एक तरफ़ रोम और पार्थव तथा दूसरी तरफ़ चीन और सुवर्णभूमि के ठीक बीच होने से भारतवर्ष इस समय सारे सभ्य जगत् का मध्यस्थ था।

अध्याय ५

सातवाहन-युग की समृद्धि और सभ्यता

§१. **पौराणिक धर्म और महायान**—भगवान् बुद्ध ने निरर्थक कर्मकाण्ड का स्थान आचारप्रधान-धर्म को दे कर आर्यावर्त्त में एक नया जीवन फूँक दिया था। साढ़े तीन सौ बरस बाद उस नवजीवन की लहर में कुछ मन्दता आने लगी। अन्तिम मौर्यों ने जब उस धर्म की आड़ में अपनी कायरता को छिपाना चाहा, तब उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। पुराने वैदिक धर्म को फिर से जगाने की पुकार उठी। सिमुक और पुष्यमित्र दोनों ब्राह्मण थे, जिन्होंने निर्बल बौद्ध मौर्यों के विरुद्ध विद्रोह किया। बौद्धों ने यज्ञों की हिंसा का विरोध किया था, पर पुष्यमित्र ने और सिमुक के भतीजे शातकर्णि ने पुराना अश्वमेध यज्ञ, जिसका रिवाज सदियों से उठ चुका था, दो-दो बार किया।

किन्तु वैदिक धर्म वैदिक समाज के साथ था और इस युग का समाज अब बहुत आगे बढ़ चुका था। न वैदिक समाज वापिस आ सकता था, और न वैदिक धर्म अपने पुराने रूप में लौट सकता था। बौद्ध धर्म ने जनता के विचारों में जो परिवर्त्तन कर दिया था, उसे मिटाया न जा सकता था। वैदिक कर्मकाण्ड, दार्शनिक विवाद और कृच्छ्र तप का पुराना धर्म जब केवल ऊँचे लोगों की चीज़ बन गया था, उस समय बुद्ध ने जनसाधारण को जगाया और उठाया था। जनता की उस जागृति की उपेक्षा न की जा सकती थी। इसीलिए वैदिक धर्म को फिर से जगाने की जो लहर उठी, वह बौद्ध सुधार की सब मुख्य प्रवृत्तियों को अपनाये हुए थी। बौद्ध धर्म यदि जनता के लिए था, तो वैदिक धर्म का यह नया रूप उससे बढ़ कर जनता को जगाने वाला था।

बौद्ध धर्म आचार-प्रधान था; ईश्वर और देवताओं की पूजा के लिए उस में जगह न थी। जनसाधारण ने बुद्ध की शिक्षा को सुना, पर देवताओं की पूजा के बिना उनका काम न चला। आर्यों के निचले दर्जों और

अनार्य जातियों में अनेक क़िस्म की जड़-पूजायें प्रचलित थीं। बहुत से





भद्र महिला—शुङ्ग-युग की वेषभूषा भद्र पुरुष—पिछले सातवाहन युग की वेषभूषा
कौशाम्बी से पाये गये मिट्टी के खिलौने [प्रयाग म्यू०]

स्थानीय देवताओं की गद्दियाँ जगह-ब-जगह स्थापित थीं। कई स्थानों में जनता

के ऊँचे दर्जों में भी अपने पुरखों के सम्मान ने ही पूजा का रूप धारण कर लिया था। कह चुके हैं कि शूरसेन देश में वासुदेव कृष्ण की पूजा होती थी और उसके सम्बन्ध में उत्सव होते थे। राजा वसु के समय में जो अहिंसा और भक्ति-प्रधान धर्म की लहर उठी थी, कृष्ण ने उसे अपनाया और पुष्ट किया था। शूरसेन लोगों ने कृष्ण को पहले उस धर्म के प्रवक्ता और अपने महान् पूर्वज के रूप में आदरपूर्वक याद करना शुरू किया, और उसी ने धीरे-धीरे पूजा का रूप धारण कर लिया। वैदिक धर्म को फिर से जगाने की लहर ने प्रत्येक प्रचलित जड़-देवता और मनुष्य-देवता में किसी न किसी वैदिक देवता की प्राण-प्रतिष्ठा कर दी। भारत में जितने देवता पूजे जाते थे, उन्हें उसने शिव, विष्णु, सूर्य, स्कन्द आदि की भिन्न-भिन्न शक्तियों के सूचक भिन्न-भिन्न रूप मान लिया। जहाँ किसी पुराने पुरखा की पूजा होती थी, उसे भी उसने किसी अवतार रूप में भगवान् की पूजा बना दिया।

यह लहर चली तो वैदिक धर्म को जगाने का नाम ले कर, पर इससे एक नया धर्म पैदा हो गया, जिसे हम पौराणिक धर्म कहते हैं। देवता वैदिक धर्म में भी थे, और इसमें भी रहे। पर पहले उनकी पूजा यज्ञों द्वारा होती थी और अब उनके मन्दिर और मूर्त्तियाँ बनने लगीं। वे मन्दिर और मूर्त्तियाँ और उनकी पूजा अभी तक बहुत सादा थी। मूर्त्तियाँ देवताओं की शक्तियों का केवल "प्रतीक" अर्थात् संकेत थीं। दिव्य शक्तियों के आवाहन से जड़-पूजाओं में जान पड़ गयी, और उन सरल पूजाओं के धर्म ने जनता में एक नया जीवन फूँक दिया।

वैदिक देवताओं में इन्द्र मुख्य था; अब विष्णु और शिव की प्रधानता हो गयी। ऐतिहासिक पूर्वज कृष्ण की पूजा में अब वैदिक प्रकृति-देवता विष्णु की पूजा मिल गयी। कृष्ण विष्णु का अवतार माने गये। यही सातवाहन-युग का भागवत धर्म था। किन्तु आजकल के पौराणिक धर्म की बहुत सी बातें उस शुरू के पौराणिक धर्म में न थीं। भागवत धर्म में उस समय तक कृष्ण की गोपी-लीलाओं की कहानियाँ न मिल पायी थीं। विष्णु के अतिरिक्त शिव और स्कन्द की पूजा उस समय के पौराणिक-धर्म में बहुत प्रचलित थी।

स्कन्द युद्ध का देवता था। शिवलिंग की पूजा आर्यों में पहले-पहल सातवाहन-युग के अन्तिम हिस्से में आ कर सुनी जाती है। हम देख चुके हैं कि भागवत और शैव धर्म को तब अनेक विदेशी भी अपना लेते थे। पौराणिक धर्म तब सब के लिए खुला था। पुराने यूनानी भी वैदिक देवताओं से मिलते-जुलते प्रकृति-देवताओं को पूजते थे। उस पुरानी पूजा के आडम्बरमय और निर्जीव हो जाने पर भारतवर्ष के इस नये भक्तिप्रधान धर्म ने उन्हें आकर्षित किया। अन्दाज़न कनिष्क के समय में ईरान के मग (= "शाकद्वीपी") ब्राह्मणों ने भारत में आ कर सूर्य की एक विशेष पूजा चलायी। सूर्य की पूजा यहाँ वैदिक काल से थी, पर उसकी मूर्त्ति और मन्दिर बनाने की चाल ईरानी मगों ने चलायी। पंजाब, सिन्ध, राजपूताना, सुराष्ट्र, मगध आदि में उन्होंने बहुत से मन्दिर स्थापित किये, जिनमें से मूलस्थानपुर (मुल्तान) का मन्दिर सबसे पुराना और प्रसिद्ध था। वह ईरानी सूर्य-पूजा भी पौराणिक धर्म में मिल गयी।

पौराणिक धर्म का प्रभाव फिर बौद्ध और जैन धर्मों पर पड़ा। उनमें बुद्ध और महावीर अब ऐतिहासिक महापुरुष के बजाय प्रमुख देवता बन गये। बौद्धों का कहना है कि बुद्ध पिछले कई जन्मों से साधना कर रहे थे, और तब वे बोधिसत्त्व थे। इसी प्रकार जैन लोग मानते हैं कि महावीर से पहले कई तीर्थङ्कर हुए थे। इन सब ने गौण देवताओं और अवतारों का स्थान ले लिया। बौद्ध धर्म का यह नया रूप महायान अर्थात् बड़ा पन्थ कहलाने लगा। इसके मुकाबले में पुराना बौद्ध धर्म (थेरवाद) हीन-यान (छोटा पन्थ) कहलाने लगा। नागार्जुन (लगभग १५० ई०)* महायान के प्रमुख आचार्य थे। थेरवाद की पुस्तकें पाली में हैं और महायान की संस्कृत में। थेरवाद अब सिंहल, स्याम और बरमा में है; महायान चीन, जापान और कोरिया में।

§२. **नवीन संस्कृत, प्राकृत और तामिल साहित्य**—पौराणिक धर्म की तरह नये संस्कृत-साहित्य का विकास पहले-पहल शुंग-सातवाहन-युग में हुआ। वह पुराने वैदिक साहित्य से भिन्न और स्वतन्त्र है। पुष्यमित्र शुंग के समय पतञ्जलि मुनि थे, जिन्होंने अष्टाध्यायी पर महाभाष्य लिखा। शुंगों के ही समय

* नागार्जुन की तिथि अब कुछ विवाद-ग्रस्त है।

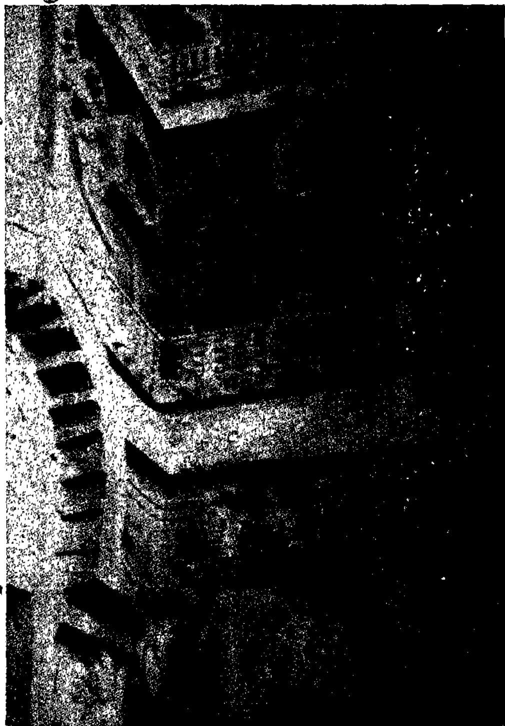
(अन्दाज़न १५० ई० पू०) में मनुस्मृति लिखी गयी। इस कारण उसमें बौद्ध-विरोधी भाव बहुत हैं। उसका लेखक एक भृगुवंशी ब्राह्मण था, पर उसने मनु के नाम से अपनी शिक्षाओं को चलाया। उसके प्रायः अढ़ाई तीन शताब्दी पीछे याज्ञवल्क्य-स्मृति लिखी गयी। महाभारत के कोई-कोई अंश ५०० ई० पू० तक के हैं। किन्तु उसका अधिकांश २०० ई० पू०–२०० ई० के बीच लिखा गया। सुप्रसिद्ध भास कवि, जिसके नाटकों के नमूने पर बाद में कालिदास ने नाटक लिखे, इसी युग का है। अश्वघोष न केवल एक बौद्ध-दार्शनिक, प्रत्युत कवि और नाटककार भी था। आचार्य नागार्जुन अश्वघोष का प्रशिष्य था। वह दर्शन के साथ-साथ विज्ञान का भी बड़ा पंडित था। उसने एक 'लोहशास्त्र' लिखा और पारे के योग बनाने की विधि निकाल कर रसायन के ज्ञान को आगे बढ़ाया। उसने सुश्रुत के ग्रन्थ का सम्पादन भी किया।

भारतवर्ष के प्रसिद्ध वैद्य चरक और सुश्रुत दोनों इसी युग में हुए। मीमांसा-दर्शन के प्रवर्त्तक जैमिनि, वैशेषिक-दर्शनकार कणाद, न्याय-दर्शन के संस्थापक अक्षपाद गौतम तथा वेदान्त के प्रवर्त्तक बादरायण भी इसी युग में हुए। प्रसिद्ध अमरकोष भी इसी युग में लिखा गया। उसका लेखक अमरसिंह बौद्ध था। पिछले शुंगों के समय से बौद्धों के सब ग्रन्थ संस्कृत में ही लिखे जाने लगे थे। महायान के उदय का जो कारण था, वही बौद्ध ग्रन्थों के संस्कृत में लिखे जाने का भी कारण हुआ। दूर-दूर के जनपदों में जब उस धर्म का प्रचार किया गया, तब जैसे उसे अपना आन्तरिक रूप बदलना पड़ा, वैसे ही अपनी भाषा भी बदलनी पड़ी, क्योंकि अब प्रान्तीय प्राकृत पाली से उसका काम न चल सकता था।

संस्कृत के साथ-साथ कई प्राकृतों में उत्तम रचनाएँ हुईं। राजा हाल स्वयम् प्राकृत का कवि था। एक सातवाहन राजा के दरबार में गुणाढ्य नाम का प्रसिद्ध कश्मीरी लेखक था। कश्मीर के उत्तर-पच्छिम, कृष्णगंगा की दून से पामीर की जड़ तक दरदिस्तान का इलाक़ा है; वहाँ की पुरानी प्राकृत में गुणाढ्य ने बृहत्कथा नाम का कहानियों का एक बहुत सुन्दर ग्रन्थ लिखा। वह ग्रन्थ अब नहीं मिलता, पर उसके तीन अनुवाद संस्कृत में हैं और एक तामिल में।

तामिल भाषा का साहित्य भी पहले-पहल पहली शती ई० से ही प्रकट होने लगा। तामिल राज्यों में इस समय "संघम्" नाम की एक साहित्य-परिषद् थी।

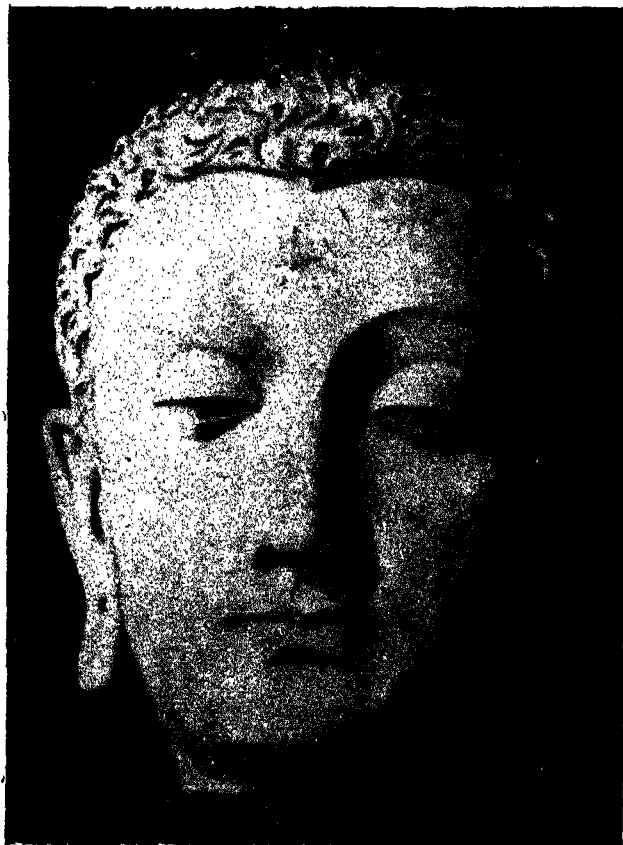
§३. **सातवाहन शिल्प-कला**—साहित्य की तरह शिल्प और कला भी सातवाहन-युग में खूब फूली-फली। इस युग की तीन प्रकार की इमारतें और शिल्प बहुत प्रसिद्ध हैं। उनमें से पहले हैं पहाड़ों में काटे हुए गुहा-मन्दिर जो महाराष्ट्र और उड़ीसा में पाये जाते हैं। वे खारवेल और शातकर्णि (१म) के समय शुरू हुए, और फिर शकों और पिछले सातवाहनों के समय तक बनते रहे। महाराष्ट्र में उन्हें 'लेण' कहते हैं और उड़ीसा में 'गुम्फा'। महाराष्ट्र की लेणें सब बौद्ध चैत्य हैं, और उड़ीसा की गुम्फाएँ जैन मन्दिर। एक-एक मन्दिर केवल एक-एक चट्टान को काट कर बना है।



कार्ले लेणका सिंहद्वार, एक किनारे का दृश्य [फ़ोटो पटना म्यू०]

उनकी कारीगरी अद्भुत है। दूसरा शिल्प, जिसके कारण इस युग की प्रसिद्धि है, भारहुत और साँची के स्तूपों और उनके चारों तरफ़ की पत्थर की वेदिकाओं (जङ्गलों) और तोरणों का है। स्तूप तो पुराने हैं, पर पत्थर का काम सब इस

युग का है। वेदकाओं और तोरणों के प्रत्येक खम्भे में और खम्भों के बीच



गान्धारी शैली की बुद्ध-मूर्त्ति—हद्दा, अफ़ग़ानिस्तान से [काबुल म्यूज़ियम]
(फ़ादर हेरस के सौजन्य से)

की प्रत्येक दाब और चोभी में सुन्दर मूर्त्तियाँ तराशी गयी हैं, या कहानियों और घटनाओं के पूरे दृश्य काटे गये हैं। इन दोनों शिल्पों की एक विशेषता यह है

कि ये हैं तो पत्थर के, किन्तु ठीक काठ के नमूने पर बनाये गये हैं। काठ के शिल्प की बारीक नक्काशी और छँटाई पत्थर में की गयी है।

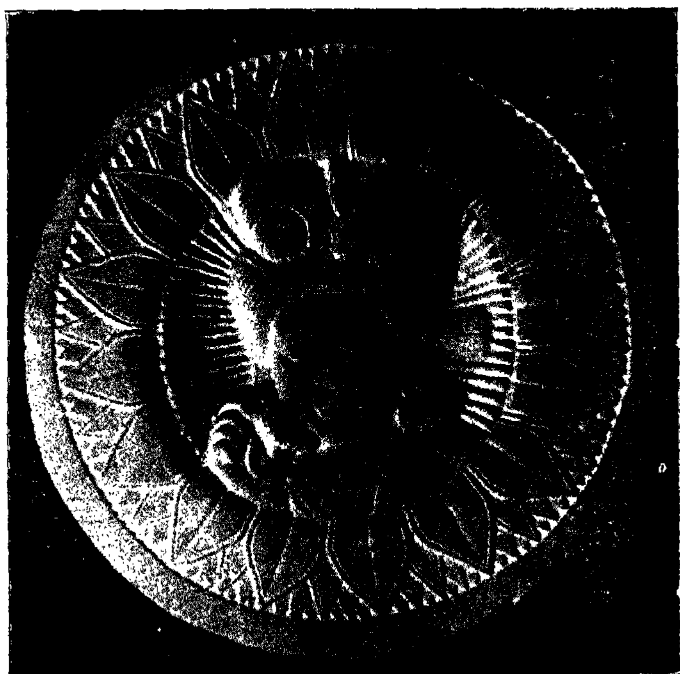
लगभग कनिष्क के समय से गान्धार देश की इमारतों और मूर्त्तिकला में एक और शैली का विकास हुआ, जिसे अब हम गान्धारी शैली कहते हैं। वह शैली यूनानी और भारतीय शैली के समागम से पैदा हुई। अब तक बुद्ध की सबसे पुरानी मूर्त्तियाँ उसी शैली की पायी गयी हैं।

§४. **आर्थिक जीवन**—साहित्य, सिक्कों और पत्थर में खुदे हुए लेखों आदि से इस युग के आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक जीवन का भी पता मिलता है। इस युग में शिल्प और व्यापार की बड़ी उन्नति हुई। कारीगरों की श्रेणियाँ अब ऐसे काम भी करने लगीं जो आजकल के बड़े-बड़े बैंक करते हैं। सेनापति उषवदात ने नासिक के बौद्ध भिक्षुओं के संघ के लिए कई हज़ार का दान किया; उस रक़म को उसने कोरियों (जुलाहों) की दो श्रेणियों के पास "अक्षयनीवी" (कभी न लौटने वाली



गान्धारी शैली की एक खंडित स्त्री-मूर्त्ति, शहर-ए-बहलोल (जि० पेशावर) की खुदाई से प्राप्त [भा० पु० वि०]

धरोहर) के रूप में रख दिया कि उसके सूद से उन भिक्षुओं को हर साल चीवर (कपड़े) मिलते रहें। एक राजा अपना दान जुलाहों की श्रेणि के पास हमेशा के लिए जमा करा दे, इससे उस श्रेणि की हैसियत का अन्दाज़ होता है। इस



एक सेट्ठो अर्थात् निगम-सभा का प्रमुख--शुङ्ग-युग की वेषभूषा--भारहुत स्तूप की वेदिका से [इं० म्यू० कलकत्ता]

तरह के और अनेक उदाहरण हैं। जहाज़ों के किराये और विदेशी व्यापार तथा व्यापारी दस्तावेज़ों के नियम भी इस युग की स्मृतियों में विस्तार से दिये गये हैं।

§५. **राज्य-संस्था**—राज-काज में ग्रामों, श्रेणियों और नगर-संस्थाओं की बड़ी हैसियत थी। नगर-संस्था को अब 'पूग' या 'पौर' भी कहते थे। सेनापति

उषवदात ने अपने उक्त दान के सम्बन्ध में लिखा है कि यह " 'निगमसभा' में सुनाया गया, और 'फलकवार' (रिकार्ड आफिस, लेखा दफ़्तर) में 'चरित्र' के अनुसार 'निबद्ध' (रजिस्टरी) किया गया।"* इससे प्रकट है कि इस युग में राजा भी अपने दस्तावेज़ों को नगर-परिषदों के दफ़्तरों में उन परिषदों के कानून के अनुसार रजिस्टरी कराते थे।



उद्यान-क्रीड़ा—साँची स्तूप की वेदिका पर खुदा एक दृश्य [श्री हरिहरनाथ मेहर कृत प्रतिलिपि, डा० मोतीचन्द के सौजन्य से]

जनपदों की परिषदें तो देश की मुख्य शासक-शक्ति थीं। जब कोई जनपद एक राजा के हाथ से दूसरे राजा के हाथ में जाता, तब इस बात का बड़ा आग्रह रहता कि नये जीते हुए जनपद में राजा वहीं के "धर्म, व्यवहार और चरित्र" के अनुसार चले। राजा परिषद् की सहायता से राज्य करते थे।

§६. सामाजिक जीवन—सामाजिक जीवन में भी यह युग वैदिक युग से दूर हट रहा था। स्मृतिकारों की यह कोशिश रही कि समाज चार वर्णों या 'जातियों' में बँटा रहे, जिनमें से प्रत्येक अपना खास धन्धा करे और अपने अन्दर ही विवाह करें; पर बर्ताव में यह बात न

* निगम-सभा का अर्थ नगर की परिषद् और चरित्र का अर्थ परिषदों का बनाया हुआ कानून होता था सो पीछे कह चुके हैं। फलक माने अलमारी, और फलकवार का अर्थ हुआ अलमारियों वाली जगह यानी लेखा रखने का दफ़्तर।

चली। ऐसे बहुत से समूह थे, जिन्हें वे किसी 'जाति' में न गिन पाते थे। उन्हें उन्होंने "संकर जाति" मान लिया। भिन्न-भिन्न जातियों का खानपान अलग करने की बात तो स्मृतिकार भी नहीं कहते। विवाह-बन्धन की शिथिलता को हटाने तथा तलाक और पुनर्विवाह की रोक-थाम करने की मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य-स्मृति ने कोशिश की। तो भी उनके समय तक वे बातें जारी थीं। बौद्धों का विरोधी होते हुए भी मनुस्मृति-कार ने "व्यर्थ हत्या" की निन्दा की। जुआ और 'समाह्वय' (जानवरों के मुकाबले पर बाज़ी लगाना) इस युग में भी जारी ही रहे, पर "उद्यान-क्रीड़ाएँ", गोष्ठियाँ और नाटक आदि विनोद उनसे अधिक चल पड़े।


पिछले सातवाहन-युग की नारी-शिरोभूषा। कौशाम्बी से प्राप्त मिट्टी का खिलौना [प्रयाग म्यू०]

छठा प्रकरण

नाग, वाकाटक और गुप्त साम्राज्य

(लगभग १७५ से ५४० ई०)

अध्याय १

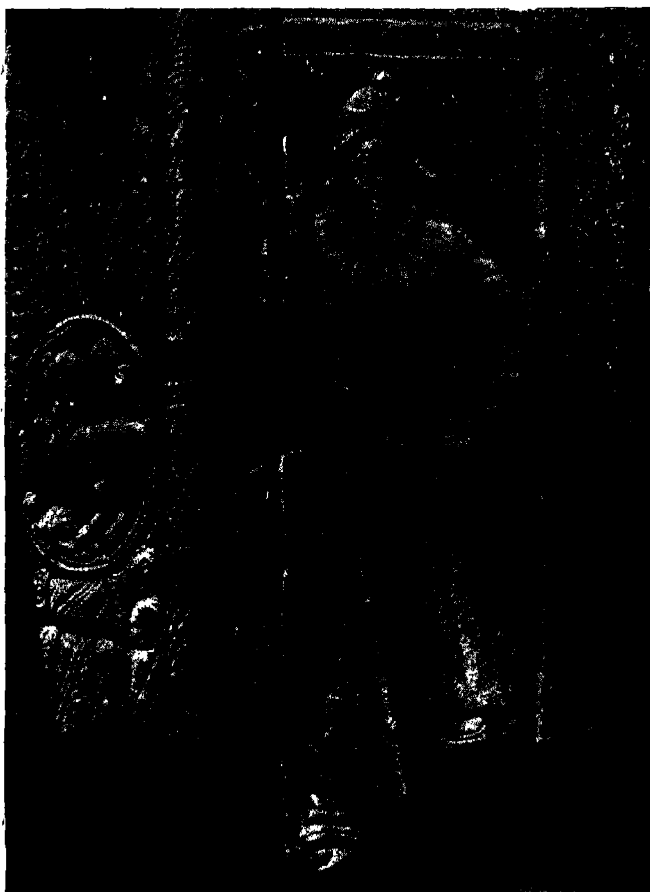
भारशिव और वाकाटक साम्राज्य

(लगभग १७५—३४० ई०)

§१. **सातवाहनों के उत्तराधिकारी**—दूसरी शती के अन्त में सातवाहन-साम्राज्य टूटने लगा। उसके उत्तराधिकारियों में तीन राज्य प्रमुख हुए। दक्खिन-पूरबी गुजरात में आभीरों का गणराज्य स्थापित हुआ, जिसने चष्टन-वंशी राजाओं से उनके पूरबी प्रदेश छीन लिये। १८८–१९० ई० में ईश्वरसेन आभीर ने समूचे शक राज्य पर दखल कर लिया; किन्तु उसके पीछे काठियावाड़ और उत्तरी गुजरात में वह राज्य फिर उठ खड़ा हुआ। महाराष्ट्र और कर्णाटक में सातवाहन वंश की एक शाखा चुटु-सातवाहनों ने प्रायः एक शताब्दी तक राज किया। उनकी राजधानी वैजयन्ती (उत्तर कनाडा ज़िले में आधुनिक बनवासी) थी। आन्ध्र देश में प्रायः उसी समय इक्ष्वाकु क्षत्रियों के एक वंश ने राज किया। उनकी राजधानी श्रीपर्वत (कृष्णा के दक्खिन नालमलै पर्वत, गुंटूर ज़िले में) थी।

§२. **भारशिव-नागों का उदय, तुखार-साम्राज्य का अन्त**—दूसरी शती ई० पू० के अन्त में शुंग-साम्राज्य के पतन पर विदिशा (भेलसा) में नाग क्षत्रियों का राज्य था। नहपान शक ने जब विदिशा जीती, तब वे लोग सिन्ध और पार्वती के सङ्गम पर पद्मावती (आधुनिक पदमपवायाँ) में चले गये। ७८ ई० के बाद उत्तर भारत में ऋषिक-तुखारों का साम्राज्य स्थापित होने पर वे अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए नर्मदा के दक्खिन

जङ्गलों में जा बसे। इन्हीं नाग क्षत्रियों के नाम से नागपुर का नाम पड़ा। वहाँ दूसरी शती के मध्य (लगभग १४०–१७० ई०) में राजा नव नाग हुआ।।



एक शक द्वारपाल

इक्ष्वाकु राजाओं के समय की नागार्जुनीकोंडा स्तूप की वेदिका में से [भा० पु० वि०]

उसने अपने उस जङ्गल के आसरे से आधुनिक बघेलखण्ड के रास्ते गंगा-काँठे की तरफ़ बढ़ कर तुखार-साम्राज्य के पूरबी छोर पर चोट की, कौशाम्बी को जीत लिया, और कान्तिपुरी (मिर्ज़ापुर के पास आधुनिक कन्तित) में अपना नया राज्य स्थापित किया। कान्तिपुरी के नाग राजा शिव के उपासक थे; उन्होंने अपने वंश का नाम भारशिव रक्खा। नवनाग के उत्तराधिकारी वीरसेन (लगभग १७०—२१० ई०) ने मथुरा से भी तुखार सत्ता उठा दी। पद्मावती और मथुरा में तथा पूरब की तरफ़ चम्पा (भागलपुर) में नाग राजवंश की शाखाएँ स्थापित हो गयीं।

उनकी मुख्य राजधानी कान्तिपुरी ही रही। भारशिवों ने गंगा और यमुना के प्रदेशों को फिर स्वतन्त्र किया और उन नदियों की मूर्त्तियाँ अपने सिक्कों और अपनी रचनाओं पर अंकित कीं। उन्होंने दस बार अश्वमेध किया।

§३. **मालव और यौधेय-गण**—भारशिवों द्वारा तुखार साम्राज्य तोड़ा जाने पर अनेक गणराज्य भी स्वतन्त्र हो गये। मालव-गण की राजधानी चम्बल के काँठे में कर्कोटनगर थी, जिसके खँडहर अब जयपुर राज्य के उणियारा ठिकाने में हैं। तीसरी शती के उत्तरार्द्ध में उनका राज्य और फैल गया। धीरे-धीरे पुराना अवन्ति और आकर देश भी मालवा बन गया। यौधेयों का गण-राज्य भी शक्तिशाली हो उठा। सतलज के निचले काँठे से होशियारपुर तक, वहाँ से सहारनपुर तक, और वहाँ से दक्खिन भरतपुर रियासत तक उनके राज्य के चिह्न पाये गये हैं। मालवों और यौधेयों के बीच तथा उनके अड़ोस-पड़ोस में अन्य कई छोटे-छोटे गण-राज्य थे।

तीसरी शती में तुखार राज्य मध्य एशिया, काबुल और पच्छिमी पंजाब में बचा रह गया। ईरान का पार्थव राजवंश भी तभी समाप्त हुआ, और उसका स्थान सासानी राजवंश ने ले लिया (२२४ ई०)। सासानी राजाओं की यह चेष्टा रही कि ईरान के गौरव को फिर वैसा ही स्थापित कर दें जैसा वह हखामनी वंश के समय था।

§४. **वाकाटक और पल्लव वंश**—आजकल के पन्ना शहर के पास किलकिला नामक छोटी सी नदी है, जो आगे केन में जा मिलती है। उसके

नाम से पन्ना का समूचा पठार तीसरी शती में किलकिला कहलाता था। वहाँ भारशिवों का एक सामन्त और सेनापति रहता था, जो 'विन्ध्यशक्ति' नाम से प्रसिद्ध था। वह वाकाटक या विन्ध्यक वंश का था।

भारशिव साम्राज्य की सब शक्ति धीरे-धीरे वाकाटकों के हाथ में चली गयी। विन्ध्यशक्ति ने २४८ ई० से अन्दाज़न २८४ ई० तक राज किया। उसके शासन के आरम्भ से वाकाटक वंश के राज्य का और एक नये संवत् का आरम्भ माना गया। वह सम्वत् चेदि देश में प्रचलित रहने के कारण बाद में चेदि-सम्वत् कहलाया।

भारशिव साम्राज्य तब गंगा-काँठे से नागपुर-बस्तर तक फैला हुआ था। विन्ध्यमेखला में उसके तीन खण्ड-राज्य थे—(१) माहिष्मती अर्थात् मालवा का प्रान्त, जिसके अन्दर पुष्यमित्र नामक एक गणराज्य भी सम्मिलित था; (२) मेकला, जिसमें बघेलखण्ड से बस्तर तक के प्रदेश थे, तथा (३) कोशला अर्थात् दक्खिन कोशल या छत्तीसगढ़। वाकाटकों के नेतृत्व में अब दक्खिन के प्रान्त भी जीते गये। इस प्रकार महाराष्ट्र और कर्णाटक में चुटु-सातवाहन और आन्ध्र में इक्ष्वाकु राजवंश का अन्त हुआ। वीरकूर्च्च उर्फ़ कुमारविष्णु नामक एक सरदार ने, जो नाग सम्राट् का दामाद था, इस समय आन्ध्र-देश जीता और तामिल देश पर चढ़ाई कर काञ्ची को भी अधीन किया (लगभग २५५—६५ ई०)। वीरकूर्च का वंश पल्लव वंश कहलाया। वाकाटक वंश और पल्लव वंश में घनिष्ठ सम्बन्ध दिखायी पड़ता है।

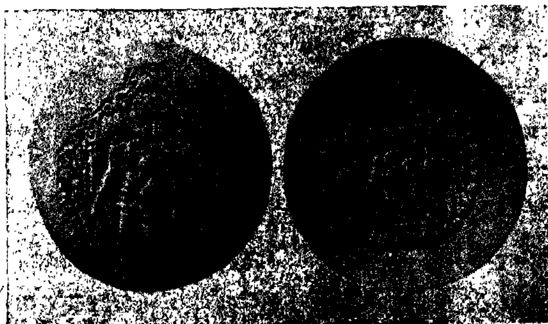


भीटा में पायी गयी गौतमीपुत्र वाकाटक की मुहर [भा० पु० वि०]

§५. सम्राट् प्रवरसेन (लगभग २८४–३४४ ई०)—विन्ध्यशक्ति के बेटे प्रवरसेन के ६० बरस के शासन में वाकाटक साम्राज्य उन्नति के शिखर पर पहुँच गया। भारशिव सम्राट् भव नाग ने अपनी इकलौती बेटी प्रवरसेन के बेटे गौतमीपुत्र वाकाटक से ब्याह दी, और अपने

दोहते को अपना उत्तराधिकारी माना। इस प्रकार भारशिव और वाकाटक वंश मिल कर एक हो गये। प्रवरसेन ने चारों दिशाओं की विजय कर चार अश्वमेध किये और 'सम्राट्' पद धारण किया। इतिहासलेखकों ने उसे "प्रवीर" कहा।

तीसरी शती के अन्त के करीब (२६५ ई०) गुजरात-काठियावाड़ के चष्टन-वंशी राजाओं को अपना महाक्षत्रप पद छोड़ना पड़ा। अब से वे अपने को केवल क्षत्रप कहने लगे, अर्थात् उन्होंने 'भारतवर्ष के सम्राट्' की अधीनता मान ली। उत्तर-पच्छिम की तरफ़ प्रवरसेन ने तुखारों को और आगे ढकेला। अब केकय देश की राजधानी सिंहपुर (आजकल के कटासराज) में यादव क्षत्रियों का एक वंश राज करने लगा, और मद्रदेश में मद्रक गण स्वतन्त्र हो



होर्मिज़्द के वंशज वरहरान (५म) (४२२--४४० ई०) का शैव सिक्का
सीधी तरफ़—राजा आहुति देते हुए; उलटी तरफ़—शिव और नन्दी।
विम कफ्स के सिक्के (पृष्ठ १२०) से तुलना कीजिये।

गया। तुखार राज्य केवल काबुल और मध्य-एशिया में रह गया। काबुल के कुषाण-वंशी राजा ने सासानी राजा होर्मिज़्द (२य) (३०२—३०६ ई०) की शरण ली और उसे अपनी बेटी ब्याह दी। परस्पर मैत्री प्रकट करने के लिए काबुल के राजा ने अपने सिक्कों पर ईरानी चिह्न छपवाये और होर्मिज़्द ने कुषाण-वंशियों की तरह शिव और नन्दी की छाप वाले सिक्के निकाले।

उधर वीरकूर्च के बेटे शिवस्कन्दवर्मा ने काञ्ची पर अपना अधिकार दृ रक्खा (लगभग २८०—२९५ ई०) । तो भी तामिल राज्यों से पल्लवों का मुकाबला जारी रहा। शिवस्कन्दवर्मा के पोते विजयस्कन्दवर्मा (लगभग २९७—३३२ ई०) को काञ्ची फिर से जीतनी पड़ी। दक्खिन-पूरबी कर्णाटक में इस समय काण्व ब्राह्मणों का एक राजवंश पल्लवों के सामन्त रूप में गं वंश नाम से स्थापित हुआ।

§६. कादम्ब और गुप्त राज्यों का उदय—खास कर्णाटक में मयूरशर्मा नामक व्यक्ति ने पल्लवों और वाकाटकों से स्वतन्त्र होकर अपना राज्य स्थापित किया (लगभग ३२५ ई०)। मयूरशर्मा कादम्ब वंश का था, और अपने को चुटु-सातवाहनों का उत्तराधिकारी मानता था। उसने अपरान्त (कोंकण) तक जीतना चाहा, पर वाकाटकों ने महाराष्ट्र और अपरान्त पर अपना अधिकार दृढ़ रक्खा और कादम्ब राज्य कर्णाटक या कुन्तल में ही सीमित रहा।




चन्द्र-गुप्त (१म) का सोने का सिक्का
सीधी तरफ़—राजा-रानी-लेख—चन्द्रगुप्तः श्रीकुमारदेवी; उलटी तरफ़—सिंह पर दाहिने मुख बैठी देवी; लेख-लिच्छवयः।
[श्रीनाथ साह संग्रह]

कर्णाटक के साथ-साथ मगध में भी एक नयी शक्ति उत्पन्न हुई। २७५ ई० के करीब साकेत-प्रयाग प्रदेश में गुप्त नामक एक राजा था। गुप्त का बेटा घटोत्कच हुआ, और उसके बेटे चन्द्र ने अपने को चन्द्रगुप्त कहा। चन्द्रगुप्त ने ३१९-२० ई० में राज पाया। उसके वंशजों ने तब से गुप्त संवत् का आरम्भ माना। चन्द्र-गुप्त ने वैशाली के लिच्छवि सरदारों की एक कन्या कुमारदेवी से विवाह किया, और लिच्छवियों की मदद से पाटलिपुत्र पर चढ़ाई कर उसे जीत लिया। किन्तु कुछ समय बाद उसे मगध से निकलना पड़ा। उसका बेटा समुद्र-गुप्त उसका उत्तराधिकारी हुआ (लगभग ३४० ई०)।

अध्याय २

गुप्त साम्राज्य का उदय और उत्कर्ष

(लगभग ३४०—४५५ ई०)

§१. **दिग्विजयी समुद्र-गुप्त**—(लगभग ३८० ई०) सम्राट् प्रवरसेन के मरते ही समुद्र-गुप्त ने वाकाटक साम्राज्य पर हमला किया। उसका रणकौशल अद्वितीय था। तीन या चार युद्धों में वाकाटक साम्राज्य को जीत कर तथा एक चढ़ाई में गुजरात-काठियावाड़ के राज्य का दमन कर वह समूचे भारत का 'महाराजाधिराज' बन गया। उसकी विजयों का वृत्तान्त अशोक की कौशाम्बी वाली लाट पर, जो अब इलाहाबाद के क़िले में है, खुदा है। उससे तथा काठियावाड़ के सिक्कों से उसका इतिहास इस प्रकार प्रकट होता है :—

समुद्र-गुप्त ने पहले मगध पर चढ़ाई कर पाटलिपुत्र को घेर लिया। पद्मावती और गंगा-यमुना-काँठे के नाग सरदार पाटलिपुत्र को बचाने दौड़े; समुद्रगुप्त ने उन्हें रास्ते में—सम्भवतः कौशाम्बी पर—रोक कर हराया और "जड़ से उखाड़ डाला।" उधर उसकी सेना ने पटना ले कर वहाँ के राजा को क़ैद कर लिया। इस प्रकार एक ही युद्ध में मगध और अन्तर्वेद समुद्र-गुप्त के हाथ आ गये।

तब उसने वाकाटक साम्राज्य के दक्खिन-पूरबी पहलू पर चढ़ाई की। मगध और झाड़खण्ड से कोशल (छत्तीसगढ़) और महाकान्तार (बस्तर) जीतता हुआ वह आन्ध्र देश की तरफ़ बढ़ा। कुराल (कोल्लेरू) झील पर कलिङ्ग और आन्ध्र के सरदारों ने तथा काञ्ची के पल्लव राजा सिंहवर्मा के छोटे भाई विष्णुगोप ने, उसका मुकाबला किया। युद्ध में ये सब राजा क़ैदी हुए और अधीनता मानने पर छोड़े गये।

इस प्रकार वाकाटक साम्राज्य के दो पहलू तोड़ कर समुद्र-गुप्त ने उसके केन्द्र पर चढ़ाई की। बीना नदी के तट पर अरिकिण (एरन) नाम की प्राचीन बस्ती पर लड़ाई हुई, जिसमें प्रवरसेन का बेटा रुद्रसेन या रुद्रदेव अपने सरदारों सहित मारा गया।

इन एक बारगी विजयों से समुद्र-गुप्त की धाक जम गयी। सब "प्रत्यन्तों" अर्थात् सीमान्तों के राज्यों ने आप से आप उसे कर देना और पूरी तरह उसकी



एरण (जि० सागर) में समुद्र-गुप्त की रानी के स्थापित किये विष्णु-मन्दिर के अवशेष [भा० पु० वि०]

आज्ञा में रहना मान लिया। इन "प्रत्यन्त" राज्यों में (१) समतट (गंगा का मुहाना), (२) डवाक (चटगाँव-त्रिपुरा), (३) कामरूप, (४) नेपाल तथा (५) कर्तृपुर (कुमाऊँ) के राज्य और (६) मालव, (७) आर्जुनायन, (८) यौधेय, (९) माद्रक, (१०) आभीर और (११)

मालवा के अनेक छोटे-छोटे गणराज्य शामिल थे। नेपाल में तो गुप्तों के सम्बन्धी लिच्छवियों का ही राज्य था।

सन् ३४५ ई० के करीब जब प्रवरसेन की मृत्यु के पीछे समुद्र-गुप्त ने पाटलिपुत्र पर एकाएक चढ़ाई की तो गुजरात-काठियावाड़ के राजा स्वामी रुद्रदामा (२य) ने मौका देख कर महाक्षत्रप पद धारण कर लिया। किन्तु वाकाटक साम्राज्य से छुट्टी पाते ही समुद्र-गुप्त गुजरात पर बिजली की तरह टूट पड़ा (३५१ ई०)। स्वामी रुद्रदामा के बेटे रुद्रसेन (३य) के समूचे राज्य में एकाएक क्रान्ति हो गयी, और उस राज्य का अन्त हो गया। १३ वर्ष पीछे रुद्रसेन सामन्त रूप से फिर अपना सिक्का चला सका। समुद्र-गुप्त ने इस प्रकार "अनेक गिराये हुए राज्यों की फिर से स्थापना की।" भारतवर्ष में उसका साम्राज्य स्थापित होने पर "देवपुत्र शाहि शाहानुशाहि" अर्थात् काबुल और तुखारिस्तान के कुषाण-वंशी राजा ने और सिंहल आदि सब भारतीय द्वीपों के राजाओं ने भी उसे अपना अधिपति स्वीकार किया।



समुद्र-गुप्त का अश्वमेध-स्मारक दीनार (सोने का सिक्का)
सीधी तरफ़—घोड़े के चौगिर्द लेख—राजाधिराजः पृथिवीं विजित्य दिवं जयत्यप्रतिवार्यवीर्यः।
उलटी तरफ़—देवी, लेख—अश्वमेधपराक्रमः।
[श्रीनाथ साह संग्रह]

रुद्रसेन वाकाटक से उसका साम्राज्य छीन लेने के बाद उसके बेटे पृथिवीषेण (लगभग ३४८-३७५ ई०) के पास समुद्र-गुप्त ने दक्खिनी चेदि और महाराष्ट्र का राज्य रहने दिया। कादम्ब मयूरशर्मा के बेटे कंग ने पल्लवों के समुद्र-गुप्त से हारने पर दक्खिन में अपना राज्य फैलाना चाहा, पर पृथिवीषेणने उसे कुन्तल अर्थात् कर्णाटक की सीमाओं से आगे न बढ़ने दिया।

भारतवर्ष की दिग्विजय कर समुद्र-गुप्त ने अश्वमेध किया। वह जैसा अद्वितीय विजेता था, वैसा ही आदर्श राजा और सुशासक भी था। वह स्वयम्

विद्वान् था तथा काव्य और संगीत में विशेष निपुण था। वह और उसके वंशज विष्णु के उपासक थे। भगवान् विष्णु की तरह दुष्टों का दलन कर, प्रजा का पालन और मंगल करना तथा राष्ट्र को सब प्रकार समृद्ध बनाना उन्होंने अपना कर्तव्य समझा।

§२. **चन्द्र-गुप्त विक्रमादित्य**—समुद्र-गुप्त ने अपने छोटे बेटे चन्द्र-गुप्त को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा था, पर मंत्रियों ने जेठे बेटे राम-गुप्त को राज्य दिया। उसके राज पाते ही कुषाण-वंशी राजा ने गुप्त साम्राज्य पर चढ़ाई की। व्यास नदी के किनारे हिमालय की बाहरी शृंखला में विष्णुपद नाम के पहाड़ी गढ़ में राम-गुप्त घिर गया, और अपनी रानी ध्रुवस्वामिनी को

समुद्रगुप्त के सोने के सिक्के




वीणावादक नमूना




धनुर्धर नमूना

[पटना म्यू०]

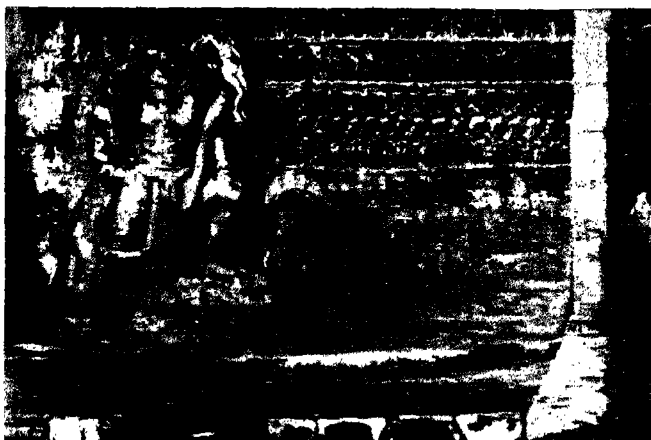
सौंप देने की शर्त पर उसने शत्रु से छुटकारा पाने की सन्धि की। नौजवान चन्द्र-गुप्त से यह अपमान न सहा गया। उसने अपने भाई के सामने एक योजना रक्खी। स्वयम् ध्रुवस्वामिनी का और अपने बहुत से नौजवान साथियों से उसकी सहेलियों का भेस बनवा वह शत्रु की छावनी में घुसा, और ज्यों ही उसने कुषाणवंशी राजा का तथा उसके साथियों ने उसके सरदारों का काम तमाम कर शंख बजाया, त्यों ही गढ़ के भीतर वाली सेना ने शत्रु की सेना पर टूट कर उसे तहस-नहस कर दिया। चन्द्र-गुप्त ने इसके बाद "सिन्धु की सातों धाराएँ" (पंजाब और काबुल की नदियाँ) "युद्ध में पार कर" बलख़ पर चढ़ाई की और कुषाण-वंशजों को उनके ही गढ़ में परास्त किया।

इसके बाद कायर राम-गुप्त का शीघ्र ही अन्त हो गया और भारतवर्ष का

सामाज्य चन्द्र-गुप्त को मिला। देवी ध्रुवस्वामिनी ने अपने उस उद्धारक को अपना पति वरण किया। भेलसा के पास उदयगिरि में चन्द्र-गुप्त के बनवाये

हुए गुहा-मन्दिरों के बाहर, पृथिवी का उद्धार करती हुई वराह की एक विशाल मूर्ति बनी है, जिसमें ध्रुवस्वामिनी के उद्धारक चन्द्र-गुप्त के तेज और वीर्य की स्पष्ट झलक दिखायी देती है।

बलख की लड़ाई से पहले कुमारचन्द्र-गुप्त बङ्गाल में कई सम्मिलित शत्रुओं के एक दल को हरा चुका था। राम-गुप्त के समय की साम्राज्य की कमज़ोरी से



उदयगिरि की चन्द्र-गुप्त-गुहा के बाहर वराह मूर्त्ति
वराह की दन्त कोटि पर लटकती हुई स्त्री-मूर्ति-पृथिवी या ध्रुवस्वामिनी [ग्वालियर पु० वि०]

लाभ उठा कर, पच्छिमी क्षत्रपों ने फिर स्वतन्त्र महाक्षत्रप पद धारण कर लिया (३८२ ई०)। उत्तरापथ से लौट कर चन्द्र-गुप्त ने दक्खिन पर चढ़ाई की और उनके राजवंश को सदा के लिए मिटा दिया (३६० ई०)। विष्णुपद पहाड़ पर उसकी इन विजयों की याद में एक लोहे का स्तम्भ खड़ा किया गया जिसे ११वीं सदी में राजा अनंगपाल दिल्ली उठवा ले गया। वहाँ महरौली में उस "लोहे की कीली" पर उसकी कीर्ति अब तक खुदी है। अपनी विजयों के कारण चन्द्र-गुप्त ने विक्रमादित्य पद धारण किया था।

§३. रानी प्रभावती—सम्राट् चन्द्र-गुप्त ने अपनी बेटी प्रभावती का राजा पृथिवीषेण के बेटे रुद्रसेन (२य) से विवाह किया। रुद्रसेन की मृत्यु के बाद अपने नाबालिग़ बेटों के नाम पर प्रभावती स्वयम् शासन करती रही (लगभग ३९५–४१५ ई०)। इस प्रकार जब उत्तर भारत में चन्द्र-गुप्त विक्रमादित्य का राज्य था, तभी महाराष्ट्र में रानी प्रभावती राज करती थी। वह भारतवर्ष के लिए अत्यन्त गौरव और समृद्धि का युग था। चन्द्र-गुप्त ने अपने राज्य से मृत्यु-दण्ड उठा दिया था।



महरौली में राजा "चन्द्र" की लोहे की कीली, जिस पर उसके बंगाल, बलख और दक्खिन की विजयों का वृत्तान्त खुदा है। पड़ोस की टूटी मसजिद अनंगपाल के मन्दिर का रूपान्तर है। [भा० पु० वि०]

§४. कुमार-गुप्त (१म)—चन्द्र-गुप्त विक्रमादित्य के बाद उसके बेटे कुमार-गुप्त ने ४० वर्ष (४१५–४५५ ई०) शान्तिपूर्वक राज्य किया। वाकाटक राज्य में यही समय, प्रभावती के बेटे प्रवरसेन

(लगभग ४१५–३५ ई०) और उसके बेटे नरेन्द्रसेन (लग० ४३५–७० ई०) के शासन में बीता। राजगृह और पाटलिपुत्र के बीच नालन्दा नामी स्थान में कुमार-गुप्त ने एक महाविहार की स्थापना की। आगे चल कर वह एक महान् विद्यापीठ के रूप में बहुत प्रसिद्ध हुआ। कुमार-गुप्त का शासन-काल भारत-वर्ष में अद्वितीय शान्ति और समृद्धि का युग था। किन्तु उत्तर-पच्छिमी सीमान्त पर तब एक नयी आँधी आने की सूचना मिल रही थी।




चन्द्र-गुप्त विक्रमादित्य का सोने का सिक्का
सीधी तरफ़—राजा शेर का शिकार करते हुए, लेख—नरेन्द्र···। उलटी तरफ़—सिंहवाहिनी देवी, लेख—सिंहविक्रमः। [श्रा०सा०सं०]




कुमार-गुप्त (१म) का सोने का सिक्का
सीधी तरफ़—राजा घोड़े पर सवार, लेख—गुप्तकुलव्योमशशी जयत्यजेयो जितामरेन्द्रः। उलटी तरफ़—देवी मोर को खिलाते हुए। [श्री० सा० सं०]

§५. मध्य-एशिया में हूण और गान्धार में किदार-वंश—प्रायः पाँच सौ बरस चुप रहने के बाद चौथी शती ई० के अन्त में हूण लोग फिर अपने घरों से निकले, और टिड्डी-दल की तरह संसार के सब सभ्य देशों पर छा गये। जहाँ कहीं वे पहुँचते, गाँव और बस्तियाँ जलाते और मारकाट मचाते जाते थे। उनकी जंगली आदतों के अतिरिक्त उनकी चिपटी नाक, गड़ी हुई छोटी आँखें और कर्कश आवाज़ उन्हें और भी भयंकर बना देती थीं। उनकी एक बाढ़ वोल्गा नदी को लाँघ कर युरोप को चली गयी और रोम-साम्राज्य के सिर पर मँडराने लगी। जैसे प्राचीन ईरान और आर्यावर्त के उत्तरी सीमान्त पर शक लोग रहते थे, वैसे ही रोम-साम्राज्य के उत्तर-पूरब राईन और दान्यूब नदियों

के उस तरफ़ गत (Goth),* स्लाव (Slav), त्यूतन (Teuton) आदि असभ्य जातियाँ रहती थीं। हूणों ने उनके देशों में खलबली मचा दी, जिससे वे रोम-साम्राज्य पर जा टूटीं और उसे तहस-नहस करने लगीं। स्वयम् हूण मध्य-युरोप तक जा पहुँचे, जहाँ उनके नाम से एक देश हुंगरी कहलाने लगा, तथा उनके भाई-बन्दों के नाम से एक देश बुलगारिया। अतिला नामक हूण सरदार ने रोम का पूरा पराभव कर उसे लूट लिया।

हूणों की दूसरी बाढ़ मध्य-एशिया के तुखार राज्यों पर टूटी (लगभग ४२५ ई०)। मध्य-एशिया का किदार नामक एक ऋषिक (युचि) सरदार भाग कर भारत आया, और उसने तक्षशिला में अपने राजवंश की स्थापना की। मध्य-एशिया की शान्ति, समृद्धि और सभ्यता का हूणों ने अन्त कर दिया। सुग्ध दोआब के तुखार राज्य को जीत कर उन्होंने ईरान के सासानी राज्य पर हमले करना शुरू किया। सासानियों से उनकी लड़ाइयाँ प्रायः सवा सौ बरस तक जारी रहीं।

---

* भारतीय अभिलेखों में Goth के लिए गत शब्द आया है। महाराष्ट्र के जुन्नर नामक स्थान में सातवाहन-युग के दो लेख हैं, जिनमें दो गत-यवनों द्वारा बौद्ध संघ को दान दिये जाने की बात दर्ज है। यवन शब्द वहाँ युरोपियन के अर्थ में है।

अध्याय ३

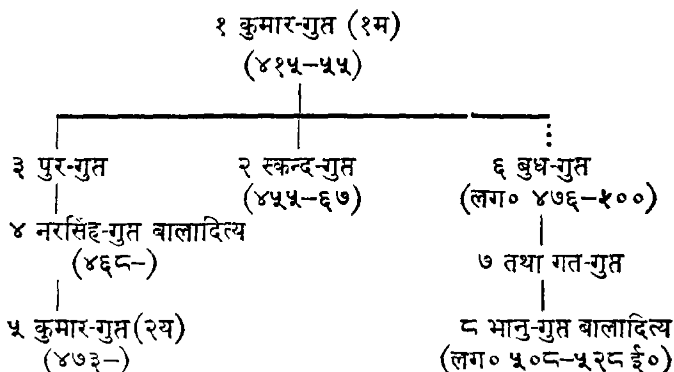
गुप्त साम्राज्य, हूण और यशोधर्मा

(लगभग ४५५—५४० ई०)

§१. **सम्राट् स्कन्द-गुप्त**—(४५५—४६७ ई०) ४५४ ई० में सासानी राजा यज़्दगुर्द (२य) को हरा कर हूणों का एक दल अफ़ग़ानिस्तान लाँघता हुआ पंजाब तक बढ़ आया। कुमार-गुप्त की मृत्यु कैसे हुई, सो स्पष्ट नहीं है। तो भी इतना निश्चित है कि उसकी मृत्यु के समय "गुप्तों की राज्य-लक्ष्मी डगमगा गयी थी", और उसका बेटा स्कन्द-गुप्त बड़ी बहादुरी से शत्रुओं का मुकाबला कर रहा था। वे शत्रु एक तो हूण थे, दूसरे मालवा का पुष्यमित्र नामक गण था, जिसने अब विद्रोह किया था। तीन महीने के अन्दर सब शत्रुओं को परास्त कर, विजय का समाचार लिये स्कन्द-गुप्त अपनी माँ के पास उसी तरह पहुँचा, जैसे "कृष्ण देवकी के पास गये थे।" माँ ने डबडबाई आँखों से उसका स्वागत किया। हूणों को उसने ऐसी करारी हार दी कि अगले तीस बरस तक उन्होंने भारतवर्ष की ओर मुँह न फेरा, और प्रायः ५५ बरस तक गुप्त-साम्राज्य को फिर छेड़ने की उनकी हिम्मत न हुई। उस विजय का स्मारक एक स्तम्भ खड़ा किया गया, जो ग़ाज़ीपुर ज़िले के सैयदपुर-भीतरी गाँव में अब भी मौजूद है। स्कन्द-गुप्त के बारह बरस (४५५—४६७ ई०) के शासन में गुप्त-साम्राज्य का गौरव ज्यों का त्यों बना रहा।

§२. **बुध-गुप्त और भानु-गुप्त**—स्कन्द-गुप्त के बाद दस बरस में तीन सम्राटों ने राज किया, और फिर बीस बरस तक (४७७–९६ ई०) बुध-गुप्त ने।

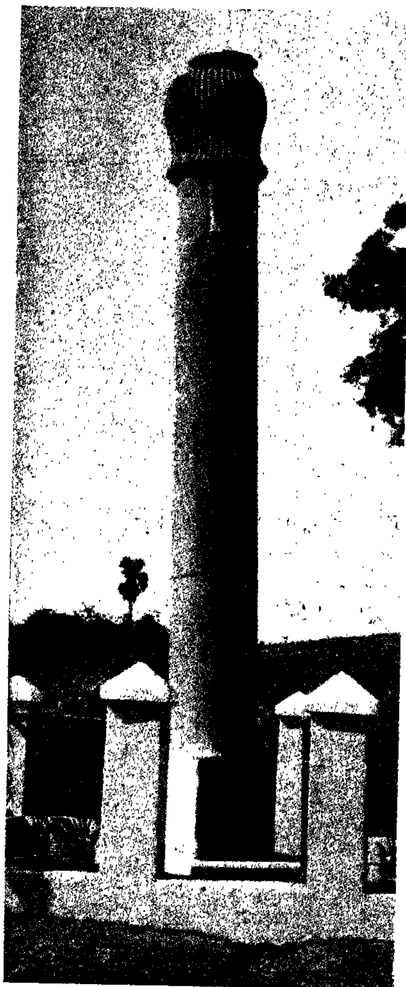
बुध-गुप्त के बाद उल्लेखयोग्य राजा भानु-गुप्त हुआ। वही शायद बालादित्य (२य) था। इन सम्राटों का वंशवृत्त और राज्यकाल इस प्रकार हैं :—



§३. **गान्धार में हूण; राजा तोरमाण और मिहिरकुल**—उधर ईरान के सासानी शाहों और काबुल के तुखारों का मध्य एशिया में हूणों के साथ घोर मुकाबला जारी रहा। ४८४ ई० में ईरान का शाह फ़ीरोज़ उन से लड़ता हुआ मारा गया। तब उन्होंने अफ़गानिस्तान को भी पैरों तले रौंद डाला, और उसकी अनेक सुन्दर सभ्य बस्तियों को मटियामेट कर डाला। गान्धार पहुँच कर उन्होंने किदार के वंशजों को वहाँ से भगा दिया; किदारों ने उरशा (हज़ारा) और कश्मीर में शरण ली।

५०० ई० के बाद गान्धार का हूण राजा तोरमाण "षाही जऊव्ल" था। उसने गुप्त साम्राज्य को कमज़ोर पा कर पंजाब से मालवा तक अधिकार कर लिया। भानु-गुप्त अपने सामन्तों के साथ एरण में हूणों के ख़िलाफ़ बहादुरी से लड़ा (५१० ई०)। लेकिन बाद में उसे तोरमाण के बेटे मिहिरगुल या मिहिरकुल को अपना अधिपति मानना पड़ा।

मिहिरकुल ने शाकल (स्यालकोट) को अपनी राजधानी बनाया। वह अपने को पशुपति (शिव) का उपासक कहता था। गान्धार की प्रजा पर, विशेष कर बौद्धों पर, उसने घोर अत्याचार किये; जिससे गान्धार में बौद्ध



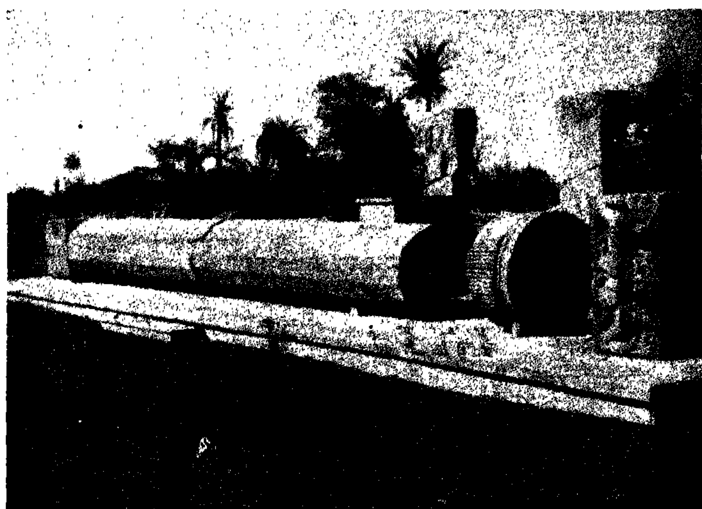
हूण-विजय का स्मारक स्तम्भ, सैयदपुर-भीतरी
(जि० गाजीपुर) [भा० पु० वि०]

शासन का अन्त हो गया। भानुगुप्त बालादित्य ने तब उसका आधिपत्य मानने से इनकार किया। मिहिरकुल ने उसपर चढ़ाई की। बालादित्य उसके सामने भागने का बहाने कर उसे कहीं गङ्गा के कछार में भटका ले गया, और तब एकाएक हमला कर उसे कैद कर लिया (लग० ५२७ ई०)। बालादित्य ने उसे सूली पर चढ़ाना तय किया लेकिन उसकी माता ने मिहिरकुल की जान बख्श दी। मिहिरकुल पंजाब लौटा, पर उसके भाई ने पीछे उसकी गद्दी सँभाल ली थी। इसलिए मिहिरकुल ने भाग कर कश्मीर के राजा के यहाँ शरण ली, और कुछ समय बाद अपने आश्रयदाता का राज्य छीन लिया! तब फिर उसने गान्धार पर चढ़ाई की, और वहाँ बड़े अत्याचार किये। हूणों के दो तीन आक्रमणों से तक्षशिला सदा के लिए मटियामेट हो गयी।

§३. **यशोधर्मा**—उत्तर भारत की जब यह हालत हो रही थी, तब वाकाटक राजा हरिषेण अवन्ति से कुन्तल और कलिंग की सीमाओं तक

अपना राज्य बनाये हुए था (लग० ४६०-५२० ई०), और कर्णाटक का कादम्ब राज्य भी अच्छी उन्नति पर था ।

पंजाब, थानेसर और मालवा को गुप्त सम्राट् हूणों से न बचा सके, तब वहाँ की सारी प्रजा हूणों के खिलाफ़ उठ खड़ी हुई । उसका अगुआ "जनता का नेता" यशोधर्मा नाम का एक व्यक्ति था । उसने वह काम कर दिखाया



दासोर में पड़े हुए यशोधर्मा के विजय-स्तम्भ [ग्वालियर पु० वि०]

जो गुप्त सम्राटों के वंशज न कर सके थे । हिन्दुस्तान से उसने हूणों की जड़ उखाड़ डाली और देश का शासन अपने हाथ में ले लिया । जिस मिहिरकुल से बालादित्य डरता फिरता था, उसे यशोधर्मा ने "हिमालय के जंगलों में खदेड़ा, और अपने चरणों पर झुकने को बाधित किया ।" कमज़ोर गुप्तों के साम्राज्य पर भी उसने दख़ल कर लिया । "लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) के काँठे से महेन्द्र पर्वत (उड़ीसा) तक और हिमालय से पच्छिमी समुद्र तक" समूचा देश अपने उस उद्धारक का शासन मानने लगा । "जिन पर

गुप्तों का अधिकार कभी न हुआ था, और जिनमें हूणों की आज्ञा कभी न पहुँची थी" ऐसे कई देश भी उसके अधीन हो गये। वाकाटकों का राज्य भी सम्भवतः उसी के राज्य में मिल गया। दासोर (मन्द सोर) में यशोधर्मा के विजय-स्तम्भ, जिनमें से एक पर ५३२ ई० का लेख है, अब तक पड़े हैं। यशोधर्मा के पचीस-तीस बरस पीछे (५५७—५६७ ई०) ईरान के प्रसिद्ध बादशाह नौशीरवाँ ने मध्य-एशिया में भी हूणों की शक्ति तोड़ दी।

यशोधर्मा के शान्ति-युग के साथ हमारे इतिहास का प्राचीन काल समाप्त होता है। इसके बाद के करीब एक हज़ार बरस को हम मध्य काल कहते हैं।

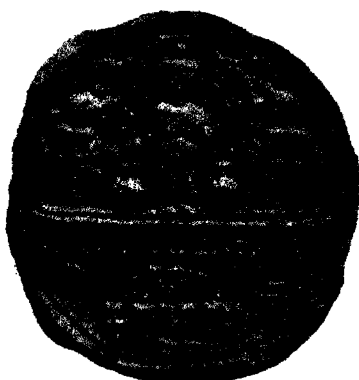


अध्याय ४

वाकाटक-गुप्त-युग का भारतवर्ष

§१. गुप्त सुशासन और समृद्धि—गुप्त सम्राटों के शासन-काल में भारतवर्ष ने जैसी शान्ति और समृद्धि देखी, वैसी न तो शायद पहले कभी देखी थी, और न पीछे कभी देख पायी। भारतवर्ष तब अपनी सभ्यता के

नालन्दा और भीटा की खुदाई में पायी गयीं गुप्तों की सरकारी मुहरें—असल परिमाण



"नगरभुक्तौ कुमारामात्याधिकरणस्य"
(नगर का शासन करने वाले कुमार-अमात्य के दफ्तर की मुहर)



"सामाहर्स-विषयाधिकरणस्य"
('सामाहर्स जिले के दफ्तर की')

[भा० पु० वि०]

उच्चतम शिखर पर पहुँच गया था। समूचा गुप्त साम्राज्य बहुत से 'देशों' और 'भुक्तियों' में बँटा हुआ था, जैसे अन्तर्वेदी (ठेठ हिन्दुस्तान), श्रावस्ती-भुक्ति (अवध), तीर-भुक्ति (तिरहुत), 'यमुना-नर्मदा का मध्य', इत्यादि। प्रत्येक देश या भुक्ति पर एक 'गोप्ता' या 'उपरिक महाराज' शासन करता था जो या

तो सम्राट् का नियुक्त किया हुआ या उसका सामन्त राजा होता था। देश या भुक्ति फिर कई छोटे "विषयों" अर्थात् ज़िलों में बँटी होती थी। प्रत्येक देश या भुक्ति के शासन के लिए कई महकमे थे। प्रत्येक महकमे का अलग-अलग दफ़्तर (अधिकरण) होता था। तीरभुक्ति की राजधानी वैशाली के खँडहरों में से वहाँ के बहुत से अधिकरणों की मोहरें पायी गयी हैं। गुप्त सम्राटों की सफलता का सब से बड़ा कारण उनका सुशासन और सुव्यवस्था थी। उनकी शासन-पद्धति की नक़ल भारतवर्ष के दूसरे सब राजाओं ने भी की, और उनके बाद के ज़माने में भी लगातार उसी की नक़ल होती रही।



"दण्डनायकश्रीशङ्करदत्तस्य" ('पुलिस-नायक श्रीशङ्करदत्त का')



"कुमारामात्याधिकरणस्य" ('कुमार-अमात्य के दफ़्तर का')

§२. ग्रामों और जनपदों के सङ्घ, शिल्पियों की श्रेणियाँ, व्यापारियों के निगम—वैशाली के खँडहरों में पायी गयी गुप्त-युग की मुहरों में

एक ग्राम की मुहर भी है, जिससे प्रतीत होता है कि राजकीय शासन के नीचे ग्रामों, नगरों आदि की पञ्चायतें पहले की तरह अपना प्रबन्ध स्वतन्त्रता से करती आती थीं। नालन्दा के खँडहरों में से सरकारी अधिकरणों (दफ्तरों) और ग्रामों की मुहरों के अतिरिक्त कई 'जानपदों'—अर्थात् जनपद या देश के संघों—की भी मुहरें मिली हैं। उनसे सिद्ध होता है कि जनपदों की संगठित राष्ट्र-सभाएँ इस युग में भी मौजूद थीं।



"पुरिकाग्राम-जानपदस्य"
नालन्दा में पाया गया एक जानपद संघ का मुहर—
गुप्त युग की लिपि में [भा० पु० वि०]

वैशाली में व्यापारियों के निगमों और कारीगरों की श्रेणियों की मुहरें भी पायी गयी हैं। श्रेणियों के लेख और भी कई जगहों से मिले हैं। उनसे यह जाना गया है कि व्यापारियों और शिल्पियों के संगठन भी पहले से अधिक समृद्ध दशा में थे।

वाकाटकों और गुप्तों के समय में देश की समृद्धि और उसका व्यवसाय सातवाहन-युग से भी कहीं अधिक बढ़े हुए थे। विदेशी व्यापार ख़ूब होता था। कुषाण-वंशजों के शासन में कश्मीर में तीसरी शती तक वहाँ के जगत्-प्रसिद्ध शालों का व्यवसाय स्थापित हो चुका था। २७४ ई० में सासानी राजा ने रोम-सम्राट् को एक कश्मीरी शाल भेंट किया, जिसकी नफ़ासत देख कर रोम के लोग दंग

रह गये थे। होर्मिज़्द (२य) (३०१–३०६ ई०) के साथ काबुल की जिस राजकुमारी का विवाह हुआ, उसका सब दहेज भी कश्मीरी जुलाहों ने तैयार किया था। भारतवासी अपने ही जहाज़ों से विदेशों में माल ले जाते थे। इस ज़माने में नारदस्मृति बनी। मनुस्मृति और याज्ञ-वल्क्य-स्मृति की अपेक्षा उसमें व्यापारिक क़ानून कहीं अधिक हैं।



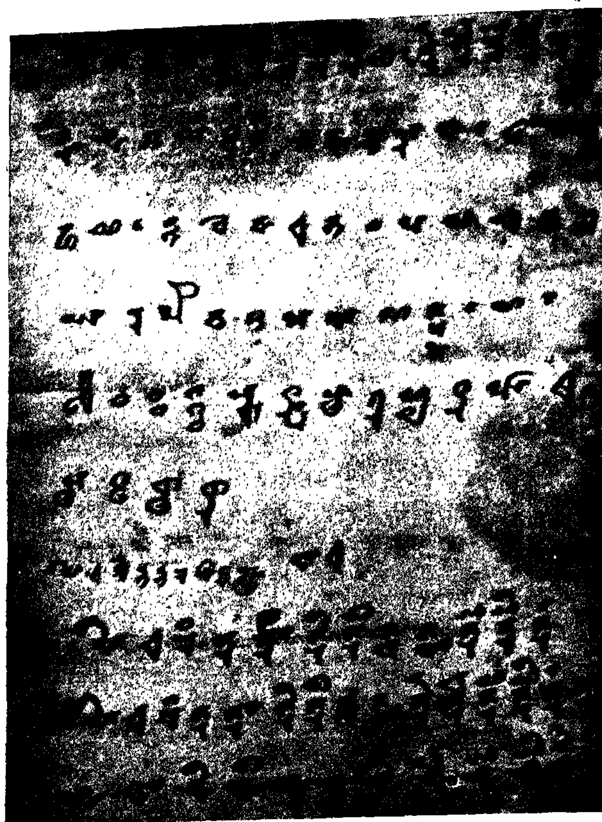
"पादयाग-ग्रामस्य"
नालन्दा में पाया गया एक ग्राम का मुहर—
गुप्त युग की लिपि में [भा० पु० वि०]



"अश्वघोष-कृत वज्रच्छेदिका के खोतनदेशी अनुवाद की भोजपत्र पर लिखी पोथी का एक पृष्ठ। यह पोथी तुर्किस्तान से मिली है।"

§३. वाकाटक-गुप्त-युग का बृहत्तर भारत—वाकाटक और गुप्त युगों में भारतवर्ष कहने से उपनिवेशों-सहित भारतवर्ष ही समझा जाता था। वाकाटक और पल्लव राज्यों का सामुद्रिक उपनिवेशों से घनिष्ठ सम्बन्ध था। यह सम्बन्ध ठेठ भारतवर्ष तथा उन उपनिवेशों की लिपियों तक का मिलान करने से देखा जा सकता है। वाकाटक युग में तत्कालीन बरमा-निवासी प्यू नामक किरात जाति की भाषा भारतीय अक्षरों में लिखी जाती थी।

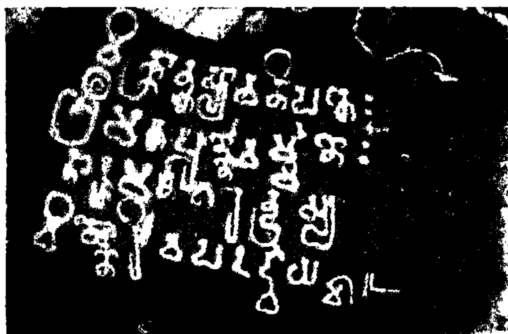
उपरले हिन्द में तुखार और ऋषिक लोग जो बोलियाँ बोलते थे, वे भी गुप्त ज़माने में लिखी जाने लगीं और सभ्य भाषाएँ बन गयीं। उनमें



खोतनदेशी वर्णमाला और बारहखड़ी का तुएनहोआङ से मिला एक पत्रा। शुरू में 'सिद्धम्' शब्द है। पहली पंक्ति में स्वर हैं; २-३-४ पंक्तियों में व्यञ्जन, ५-६ में अंक, ८-९-१० में क की बारहखड़ी।

साहित्य पैदा हो गया, और अच्छे-अच्छे ग्रन्थ भी लिखे जाने लगे। पर वे

लिखी गयीं हमारे देश की ही उस लिपि में जो यहाँ गुप्त-युग में चलती थी। उनका साहित्य भी प्रायः संस्कृत से अनुवादित था, या उसके नमूने पर बना था। उन भाषाओं को तुखारी और खोतनदेशी कहते हैं। तुखारी तारीम नदी के उत्तर तुरफान, कूचा आदि बस्तियों की भाषा थी; खोतन-देशी उसके दक्खिन खोतन इलाके की।



जावा के राजा पूर्णवर्मा का लेख

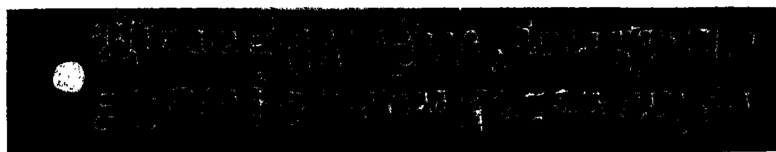
(पं० १) विक्क्रान्तस्यावनिपतेः (पं० २) श्रीमतः पूर्णवर्म्मणः (पं० ३) तारुमनगरेन्द्रस्य (पं० ४) विष्णोरिव पदद्वयम्।

उधर परले हिन्द और हिन्दी द्वीपावली में भारतीय राज्य बोर्नियो द्वीप के पूरबी छोर तक पहुँच गये। पूरबी बोर्नियो में चौथी शती में राजा मूलवर्मा का राज्य था, जिसके बनवाये हुए यज्ञों के यूप (खम्भे) और संस्कृत के लेख अब भी मौजूद हैं। जावा में उसी समय का राजा पूर्णवर्मा का लेख पाया गया है। चम्पा में ४०० ई० के क़रीब राजा भद्रवर्मा (१म) था; उसका बेटा गंगा की तीर्थ-यात्रा करने आया। अपने देश में लौटने पर वह गंग-राज कहलाया, और उसका वंश भी तब से गंगराज-वंश कहलाने लगा। 'फूनान' के साम्राज्य में चौथी शती के अन्त में दक्खिन भारतवर्ष से एक दूसरा कौण्डिन्य गया, जिसने वहाँ भारत के नमूने पर धर्म और समाज-विषयक अनेक सुधार किये। "सुवर्णद्वीप" अथवा "यवभूमि" (=सुमात्रा-जावा) में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय शैलेन्द्र वंश का एक नया राज्य स्थापित हुआ, जो शीघ्र एक साम्राज्य बन गया। उसकी राजधानी श्रीविजय (आजकल का पालेम्बांग) थी। उस साम्राज्य में बहुत जल्दी अड़ोस-पड़ोस के सब द्वीप और मलक्का प्रायद्वीप भी समा गये। श्रीविजय के जहाज़ पूरब तरफ़ चीन तक

और पच्छिम तरफ़ मदगास्कर और अलक्सान्दरिया (मिस्र के बन्दरगाह) तक जाते थे। प्राचीन काल में लाल सागर को नील नदी से मिलाने वाली एक नहर थी, जिसके द्वारा पूरबी देशों के जहाज़ अलक्सान्दरिया हो कर रोम-सागर (भूमध्य-सागर) तक जा निकलते थे।

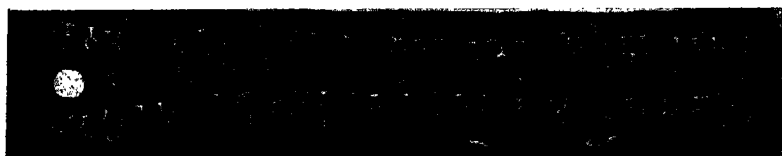
वेंगिपुर (कृष्णा के मुहाने) का चौथी शती ई० का एक लेख

(पूर्णवर्मा के लेख से लिपि की तुलना करने के लिए)



(पहला पत्रा, पं० १) स्वस्ति विजयवेङ्गीपुराद्भगवच्चित्ररथस्वामिपादानुदृध्यातो भ-

(पं० २) ट्टारकपादभक्तः परमभागवतश्शालङ्कायनो महाराजा च-



(दूसरा पत्रा, पं० १) ण्डवर्म्मणस्सूनुर्ज्ज्येष्ठो महाराजश्री······इत्यादि।

फ़न-ये नामक एक चीनी लेखक ने पाँचवीं शती के शुरू में लिखा है कि काबुल से शुरू कर दक्खिन-पच्छिम समुद्रतट तक और वहाँ से पूरब तरफ़ आनाम तक सब देश शिन्-तु (सिन्धु = हिन्द) में शामिल हैं। शिन्-तु को चीनी लोग थियेन-चु (देवताओं का देश) भी कहते थे।

§४. **फ़ाहियेन, कुमारजीव और गुणवर्मा**—भारतवर्ष और बृहत्तर भारत की हालत उस समय कैसी थी और उनका आपस में और विदेशों से सम्बन्ध कैसा था, इसका पता हमें इस समय के तीन प्रसिद्ध विद्वान यात्रियों के वृत्तान्तों से मिलता है। इनमें से एक फ़ा-हियेन था। वह बौद्ध धर्म की ऊँची शिक्षा पाने और बुद्ध की जन्मभूमि देखने के लिए ३६६ ई० में

चीन से भारत के लिए रवाना हुआ और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्य में ४०५ से ४११ ई० तक रहा। चीन के कानसू प्रान्त से उपरले हिन्द पहुँच कर वहाँ के भारतीय राज्यों में घूमता हुआ गान्धार हो कर वह मध्यदेश पहुँचा। वह लिखता है कि भारतवर्ष दुनिया भर से बढ़ कर सभ्य देश है; यहाँ पूरा रामराज्य है। प्रजा सभ्य, सम्पन्न और सदाचारी है। लोग नशा नहीं खाते, अपराध बहुत कम होते हैं, अपराधों के दण्ड बहुत हलके हैं और मृत्यु-दण्ड किसी को नहीं दिया जाता। अपनी लम्बी यात्रा में फ़ा-हियेन को कहीं चोर-डाकुओं से वास्ता नहीं पड़ा। एक बात और ध्यान देने की यह है कि फ़ाहियेन के समय तक हिमालय की तराई की बस्तियाँ—कपिलवास्तु, कुशिनगर आदि—जिनमें बुद्ध के समय बड़ी चहल-पहल थी, सब जंगल हो चुकी थीं। वैसे बौद्ध धर्म और पौराणिक धर्म दोनों देश में बराबर-बराबर चल रहे थे। फ़ा-हियेन मगध से चम्पा (भागलपुर) हो कर ताम्रलिप्ति (तामलूक) पहुँचा। वहाँ जहाज़ में बैठ १४ दिन में सिंहल पहुँचा, फिर वहाँ से ९० दिन में यवद्वीप। यवद्वीप में तब तक बौद्ध धर्म का प्रचार न था। वहाँ से वह एक जहाज़ में, जिसमें २०० भारतीय व्यापारी भी थे, चीन वापिस गया।

फ़ा-हियेन जब भारत में बौद्ध शिक्षा पाने आया, तभी एक भारतीय विद्वान् चीन में वही शिक्षा देने गया था। उसका नाम था कुमारजीव। उसका पिता कुमारायण किसी भारतीय राज्य के एक अमात्य का बेटा था। घर छोड़ कर वह उपरले हिन्द में कूचा के राज्य में चला गया। वहाँ की राजकुमारी से उसका प्रेम और विवाह हो गया; वहीं कुमारजीव पैदा हुआ। बच्चे को पढ़ाने के लिए उसकी माँ उसे कश्मीर ले आयी, और जब वह पढ़ चुका तो वापिस ले गयी। वह मध्य एशिया की सब भाषाएँ सीख गया। ४०१ ई० में वह चीन पहुँचा और ४१३ तक वहाँ उसने अश्वघोष, नागार्जुन आदि के अनेक ग्रन्थों का चीनी अनुवाद कर महायान का प्रचार किया। उसके ग्रन्थ आज तक चीन में उसी तरह पढ़े जाते हैं, जैसे यहाँ कालिदास के।

तीसरे विद्वान् का नाम है गुणवर्मा। वह कश्मीर का युवराज था, पर बौद्ध भिक्षु बन गया था। पहले वह सिंहल गया, और वहाँ से ४२३ ई०

में यवद्वीप पहुँचा। फ़ा-हियेन के जाने के १० बरस पीछे, वहाँ उसने पहले-पहल बौद्ध धर्म का प्रचार किया। यवद्वीप से वह नन्दी नामक एक भारतीय के जहाज़ में चीन गया।

समुद्र-गुप्त के समय कोरिया में बौद्ध धर्म स्थापित हो गया (३५२ ई०)। उस देश की भाषा भी तब भारत की ब्राह्मी लिपि में लिखी गयी, और तब से आज तक वह समय के साथ बदलती हुई उसी लिपि में लिखी जा रही है। यशोधर्मा के समय निपन (जापान) देश भी बौद्ध हो गया (५३८ ई०); तब वहाँ होरिउजी और नारा के बौद्ध विहार स्थापित हुए, जिनमें तत्कालीन संस्कृत ग्रन्थ आज तक रक्खे हैं, और जिनकी भीतों पर लिखे चित्रों में स्पष्ट भारतीय प्रभाव झलकता है।



होरिउजी मठ की भीत पर एक बोधिसत्त्व-चित्र

[भदन्त राहुल के सौजन्य से]

§५. नाग-वाकाटक-गुप्त-युग का धर्म, कला, साहित्य, ज्ञान और संस्कृति—चौथी शती ई० के अन्त में पेशावर में आसंग और वसुबन्धु नाम के दो भाई दार्शनिक हुए। वे दोनों महायान के प्रसिद्ध आचार्य थे। पाँचवीं शती ई० के शुरू में मगध में बुद्धघोष ब्राह्मण हुआ, जिसने सिंहल जा कर पाली में त्रिपिटक की 'अत्थकथाएँ' (अर्थकथाएँ = भाष्य) लिखीं। कहते हैं वहाँ से वह परले हिन्द गया और वहीं उसका देहान्त हुआ। ४५३ ई० में काठियावाड़ की वलभी नगरी में जैन विद्वानों का एक संघ बैठा। उसमें जैनों के सब

धर्म-ग्रन्थों का सम्पादन हुआ। उसी रूप में आज वे ग्रन्थ हमें मिलते हैं।

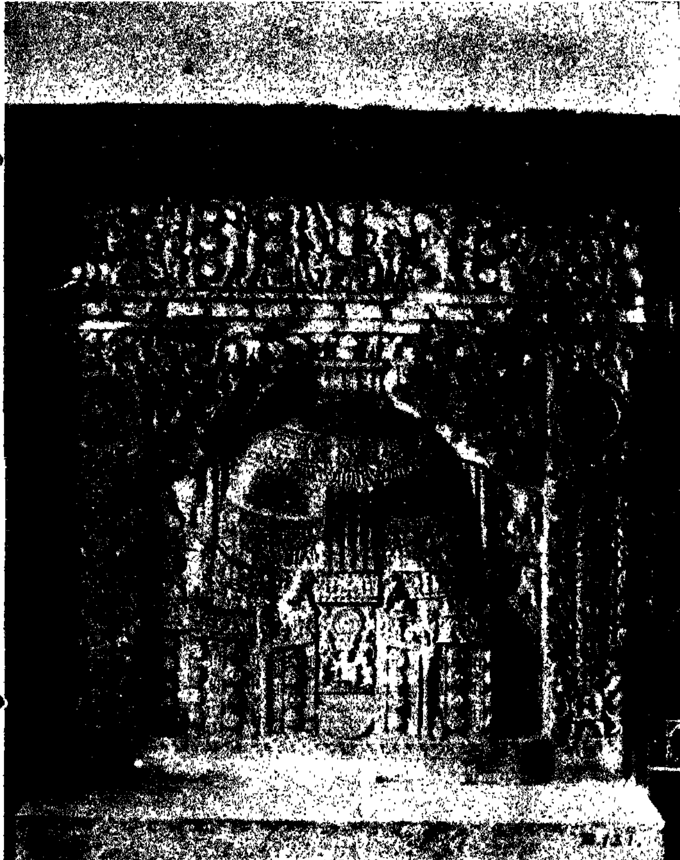
बौद्ध और जैन धर्म के साथ-साथ पौराणिक धर्म भी पूरे यौवन पर था। वह अब पूर्ण हो चुका था। विष्णु, स्कन्द, शिव, सूर्य और देवी की पूजा चल चुकी थी। विदेश-यात्रा, असवर्ण विवाह और मांस-भोजन का परित्याग अब तक न हुआ था। आजकल के हिन्दू धर्म की बाक़ी बहुत सी बातें चल पड़ी थीं।



"माँ"—मथुरा से पाया गया एक मूर्त्ति, अन्दाज़न तीसरी शती ई० पूर्वार्ध (भारशिव-युग) की [मथुरा म्यू०, भा० पु० वि०]

सातवाहन ज़माने में पहली शती ई० पू० के बाद का कोई पौराणिक मन्दिर नहीं पाया गया। पर इस ज़माने में मन्दिर ख़ूब बनने लगे। ऊँचे नुकीले शिखर वाले वैष्णव मन्दिर बनाने की शैली इसी युग में अधिक चली। भारशिव युग में वैसे मन्दिर बहुत बनने लगे। उन मन्दिरों के शिखरों पर कमल का संकेत उदय होते सूर्य को अर्थात् नयी ज्योति और नये जीवन को सूचित करता है। वह नया जीवन नाग-वाकाटक-गुप्त-युग के भारत में चारों तरफ़ दिखायी देता था। आन्ध्र-देश में इक्ष्वाकु

राजाओं के समय अमरावती स्तूप को ओर भूषित किया गया तथा नागार्जुनी-



अमरावती-स्तूप पर चुनी गयी एक चोप पर का मूर्त्त दृश्य—सम्भवतः समूचा स्तूप इस में चित्रित है। [मद्रास म्यू०, भा० पु० वि०]

कोंडा स्तूप की मूर्त्त चित्रों से अलंकृत वेदिका (जंगला) बनी। महाराष्ट्र की

रमणीक अजन्ता पहाड़ी के विशाल गुहा-मन्दिर वाकाटक राजाओं के समय काटे गये। तभी काबुल के कुषाण-वंशी राज्य में बामियाँ के पहाड़ में बौद्ध गुफ़ाएँ बनीं।



बामिया (अफ़गानिस्तान) की एक गुहा में ५३ मीटर ऊँची खंडित बुद्ध-मूर्त्ति

[फ़ादर हेरस के सौजन्य से]

अजन्ता-गुहाओं की दीवारों पर गुप्त-युग में और बाद में चित्र भी लिखे गये, जिनमें से कुछ अब तक मौजूद हैं। अजन्ता-"लेणों" के ये चित्र प्राचीन जगत् की चित्रकला के सर्वोत्तम उदाहरणों में से हैं। इस युग की मूर्त्तिकला में शृङ्गारहीन सीधापन है, और उसके साथ कमाल की सजीवता है। उदयगिरि

की वराह-मूर्त्ति और भेलसा से पायी गयी गंगा-मूर्त्ति को देखते ही बनता है। उनके अंग-अंग से मानो बल, तेज और सौन्दर्य टपकता है।



गुप्त-युग की मूर्त्तिकला का नमूना—देवगढ़ (ज़ि० झाँसी) के विष्णु-मन्दिर में नर-नारायण की मूर्त्तियाँ [भा० पु० वि०]

साहित्य और ज्ञान में इस युग में भारतवर्ष अपनी उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गया था। दार्शनिक वसुबन्धु का उल्लेख हो चुका है। बाद के प्रसिद्ध दार्शनिक शंकराचार्य की विचार-पद्धति वसुबन्धु के दर्शन पर ही निर्भर है। पातञ्जल योगसूत्र का भाष्यकार व्यास और सांख्यतत्वकौमुदी का लेखक



दिव्य गायक

अजन्ता लेण नं० १७ का चित्र;—इस लेण के चित्र लगभग ५०० ई० के हैं।

ईश्वरकृष्ण चौथी-पाँचवी शती ई० में हुए। बौद्ध तार्किक दिङ्नाग गुप्त युग के अन्त में हुआ। सम्राट् कुमार-गुप्त ने राजगृह के पास नालन्दा महाविहार की नींव डाली। वह एक भारी विद्यापीठ बन गया, जहाँ बाद में देश-विदेश के अनेक विद्वान् शिक्षा पाने आते रहे।

प्रसिद्ध ज्योतिषी आर्यभट ४७६ ई० में पैदा हुआ। उसे यह मालूम था कि पृथिवी गोल है। गुरुताकर्षण और सूर्य के चौगिर्द पृथिवी के घूमने के

सिद्धान्त उसने स्थापित किये। और अनेक बातों में भी भारतवर्ष का गणित और ज्योतिष गुप्त ज़माने में जिस सीमा तक पहुँच गया था, उस सीमा को आजकल के विद्वान् पिछली शताब्दी में ही लाँघ सके हैं।

ज्ञान और सचाई को कहीं से भी ले लेने में उस युग के भारतवासी उत्सुक रहते थे। ज्योतिषी वराहमिहिर ने, जो छठी शती में हुआ, लिखा है—"यवन (यूनानी) लोग म्लेच्छ हैं, पर उनमें इस शास्त्र का ज्ञान है। इस कारण वे ऋषियों की तरह पूजे जाते हैं।" गुप्त युग में भारतीय ज्योतिष में रोम और अलक्सान्दरिया के सिद्धान्त भी शामिल कर लिये गये थे। दश-गुणोत्तर गिनती पहले-पहल चौथी शती ई० में भारतीयों ने ही निकाली; फिर यहाँ से उसे दुनियाँ के सब देशों ने सीखा। गिनती पहले भी थी, परन्तु जिस प्रकार नौ इकाइयों के निशान हैं, उसी तरह दस, बीस, तीस आदि दहाइयों के अलग निशान होते थे, फिर सैकड़ों के अलग, इत्यादि। इकाई के आगे शून्य लगा कर दहाई बना ली जाय, यह आविष्कार पहले-पहल चौथी शती में यहीं हुआ। युरोप वालों ने यह तरीक़ा १३ वीं–१४ वीं शती में जा कर सीखा।

इस युग के काव्य-साहित्य में विष्णुशर्मा का पञ्चतन्त्र एक अमर रत्न है, जिसका संसार की बीसियों भाषाओं में अनुवाद हुआ है। गुप्त युग का सबसे प्रसिद्ध पुरुष महाकवि कालिदास है। कालिदास के काव्यों तथा नाटकों में भारत की आत्मा जिस तरह प्रकट हुई है, वैसी आज तक और किसी रचना में शायद नहीं हुई। रघु के दिग्विजय की कहानी द्वारा उसने बतलाया कि कम्बोज से कन्या कुमारी तक और ईरान की सीमा से लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) तक सारा भारत एक है; वह एक ही राज-छत्र के नीचे रहना चाहिए। दुष्यन्त और शकुन्तला के प्राकृतिक प्रेम की कहानी लिख कर उसकी लेखनी ने प्राचीन आर्य्यों के सरल साहसी और रसमय जीवन के आदर्श को अमर कर दिया, और भारतवासियों को अपने उस पुरखा भरत की याद दिलायी जो बचपन के खेलों में शेर के दाँत गिना करता था! प्रातःकाल की उषा की सूचना जैसे चिड़ियों के चहचहाने से मिलती है, वैसे गुप्त युग की नयी ज्योति की

सूचना कालिदास के जादू-भरे छन्दों से मिलती है। भारतवर्ष की संस्कृति का पूरा निचोड़ हम उसकी रचनाओं में पाते हैं।

कालिदास के समय भारतवर्ष में ज्ञान और जीवन की जो ज्योति प्रकट हुई, वह प्रायः एक हज़ार बरस तक संसार को रोशन करती रही। भारतवर्ष की इस जाग्रति का प्रभाव एक तरफ़ चीन पर हुआ, और वहाँ से कोरिया और जापान तक पहुँचा; दूसरी तरफ़ वह अरब के रास्ते पच्छिमी युरोप तक गया। उत्तर तरफ़ वह तिब्बत और मध्य-एशिया द्वारा मंगोलिया तक जा निकला, और दक्खिन तरफ़ परले हिन्द के द्वीपों की अन्तिम सीमा तक। प्रायः एक हज़ार बरस तक न तो स्वयम् भारतवासियों ने (सिवा वैद्यक और गणित के) अपने ज्ञान में आगे कुछ उन्नति की, और न बाकी दुनियाँ का ज्ञान—दो-चार बातों को छोड़ कर—उससे कुछ आगे बढ़ा। इस लम्बे अरसे में वही संसार भर का ज्ञान रहा और जिस देश में वह पहुँचा वहीं नव जाग्रति की लहर उठ खड़ी हुई।

वाकाटक-गुप्त-युग के भारतीयों का साधारण जीवन भी पहले से परिष्कृत हो गया। गोहत्या को इसी युग से पाप माना जाने लगा। उस युग के संसार में चार ही सभ्य साम्राज्य और जातियाँ थीं—चीनी, भारतीय, ईरानी और रोमन। उपनिवेश-सहित गुप्त युग का भारतवर्ष बाकी तीनों जातियों के क्षेत्रों से बहुत अधिक विस्तृत और समृद्ध था, और उस युग में भारतवासी वस्तुतः सभ्य संसार के नेता थे। अपने इस गौरव को तब वे अवश्य अनुभव करते होंगे।

———

सातवाँ प्रकरण

कन्नौज और कर्णाटक के साम्राज्य

(५४०—११६० ई०)

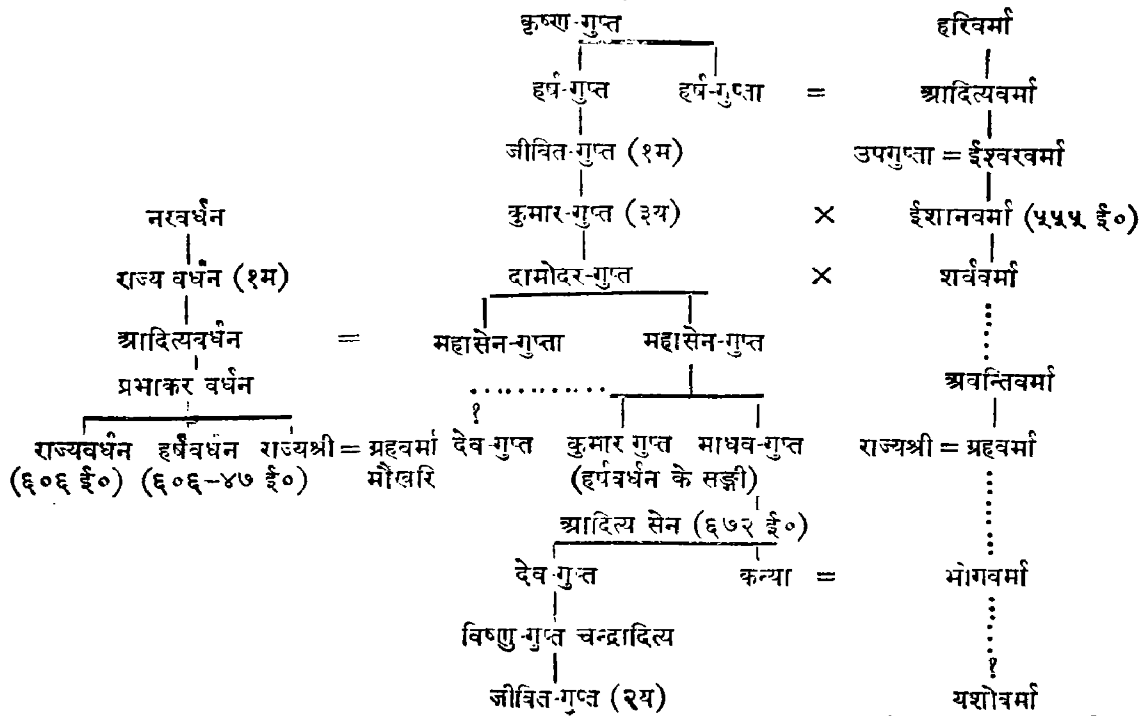
अध्याय १

पिछले गुप्त, मौखरि, बैस और चालुक्य राज्य

(लगभग ५४०—७२० ई०)

§१. **पिछले गुप्त और मौखरि** (लगभग ५४०-५६२ ई०)—यशोधर्मा ने अपना कोई राजवंश स्थापित न किया था। उसके बाद गुप्त साम्राज्य पुनर्जीवित हुआ। सन् ५४४ में ही पुण्ड्रवर्धनभुक्ति (उत्तरी बंगाल) के एक लेख में 'महाराजाधिराज ''''' गुप्त' का उल्लेख है। महाराजाधिराज का नाम उस लेख से मिट गया है। सम्भवतः भानु-गुप्त बालादित्य का बेटा प्रकटादित्य अब से प्रायः आधी शताब्दी तक उत्तर भारत का सम्राट् रहा। लेकिन वह नाम का सम्राट् था, क्योंकि अब विभिन्न प्रान्तों में अनेक नयी शक्तियाँ उठ खड़ी हुईं।

छठी शती के शुरू में गुप्त सम्राटों के वंश से एक शाखा निकली, जिसके राजाओं ने अगली दो शतियों के इतिहास में विशेष भाग लिया। प्रकटादित्य के समय भी वास्तविक शासक इसी शाखा के राजा थे। इन राजाओं को 'पिछले गुप्त' कहते हैं। इनका दावा समूचे गुप्त साम्राज्य पर था, लेकिन इनका वास्तविक अधिकार केवल मगध-बंगाल पर या कुछ समय के लिए



बैस वंश
नरवर्धन
राज्य वर्धन (१म)
आदित्यवर्धन = महासेन-गुप्ता
प्रभाकर वर्धन
राज्यवर्धन (६०६ ई०)
हर्षवर्धन (६०६–४७ ई०)
राज्यश्री = ग्रहवर्मा मौखरि
पिछले गुप्त
कृष्ण-गुप्त
हर्ष-गुप्त
हर्ष-गुप्ता = आदित्यवर्मा
जीवित-गुप्त (१म)
कुमार-गुप्त (३य) × ईशानवर्मा (५५५ ई०)
दामोदर-गुप्त × शर्ववर्मा
महासेन-गुप्त
?
देव-गुप्त
कुमार गुप्त
माधव-गुप्त (हर्षवर्धन के सङ्गी)
आदित्य सेन (६७२ ई०)
देव-गुप्त
कन्या = भोगवर्मा
विष्णु-गुप्त चन्द्रादित्य
जीवित-गुप्त (२य)
मौखरि
हरिवर्मा
आदित्यवर्मा
उपगुप्ता = ईश्वरवर्मा
ईशानवर्मा (५५५ ई०)
शर्ववर्मा
अवन्तिवर्मा
राज्यश्री = ग्रहवर्मा
भोगवर्मा
?
यशोवर्मा (लगभग ७२५–४० ई०)

मालवा पर रहा। इन गुप्तों के मुकाबले में अन्तर्वेद के ठीक बीच दक्खिन पञ्चाल की राजधानी कन्नौज में मौखरि नाम का एक नया राजवंश उठ खड़ा हुआ। मौखरि लोग पहले-पहल हूणों के युद्धों में प्रसिद्ध हुए। सम्भवतः वे यशोधर्मा की सेना की हरावल में रहे थे। पञ्चाल की तरह कुरु देश का बैस वंश भी हूणों के युद्धों में प्रसिद्ध हुआ, और अब राजवंश बन गया। इसकी राजधानी थानेसर थी।

छठी शती में उत्तर भारत में गुर्जर जाति एकाएक प्रबल हो उठी। पंजाब में गुजरात और गुजरांवाला ज़िले उसके राज्य की याद दिलाते हैं। दक्खिनी मारवाड़ में उनकी एक बड़ी राजधानी भिन्नमाल थी। उनका एक और छोटा सा राज्य भरुच में भी था। उनके नाम से इस देश का नाम भी गुर्जरत्रा (गुजरात) पड़ गया। गुर्जरत्रा में तब मारवाड़ की भी गिनती थी। सुभीते के लिए हम पिछले इतिहास में भी इसे गुजरात कहते रहे हैं। असल में वह नाम इसी युग से शुरू हुआ था।

सुराष्ट्र (काठियावाड़) में छठी शती के आरम्भ में मैत्रक वंश का भटार्क नामक एक सेनापति था। उसके बेटे द्रोणसिंह का 'समूची पृथ्वी के एकस्वामी' अर्थात् गुप्त सम्राट् ने स्वयम् राज्याभिषेक किया। मैत्रकों का राजवंश तब से वलभी नगरी (भावनगर के पास) में स्थापित हो गया।

पूरबी सीमा पर कामरूप का राज्य समुद्रगुप्त के समय से गुप्त साम्राज्य के अधीन था। उससे भी हमें इस युग के इतिहास में वास्ता पड़ेगा। इन राज्यों के वंश-वृक्ष सामने रखने से इनका इतिहास समझना सुगम होगा।

ईश्वरवर्मा और ईशानवर्मा के समय भारत का साम्राज्य मौखरि वंश के हाथ में चला गया। उन्होंने सुराष्ट्र, आन्ध्र और गौड (पच्छिमी बङ्गाल) तक विजय की। कुमार-गुप्त (३य) के साथ ईशान का युद्ध हुआ, जिसका परिणाम अनिश्चित रहा। ईशान के बेटे शर्व के समय (लगभग ५५६–७० ई०) में मौखरियों का प्रताप और भी बढ़ा। शर्व से लड़ता हुआ

दामोदर-गुप्त मारा गया। मौखरियों के प्रताप से अब कन्नौज की वही हैसियत हो गयी जो पहले पटना की थी। अगले छः सौ बरस तक वह उत्तर भारत का



शर्ववर्मा मौखरि की नालन्दा से पायी गयी मुहर; ठीक इस तरह की मुहर पहले असीरगढ़ (खानदेश) से भी पायी गयी थी। [भा० पु० वि०]

केन्द्र माना जाता था और हिन्दुस्तान कहने से कन्नौज का ही साम्राज्य समझा जाता था।

मगध में भी मौखरि वंश की एक शाखा स्थापित हो गयी; गुप्त "महाराजाधिराज" का अधिकार तब केवल बङ्गाल में ही रह गया होगा। उसके पड़ोसी कामरूप के राजा सुस्थितवर्मा ने भी 'महाराजाधिराज' पद धारण कर स्वतन्त्र होना चाहा। तब महासेन-गुप्त ने लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) तक चढ़ाई कर उसे हराया। शर्ववर्मा के उत्तराधिकारी अवन्तिवर्मा के समय में मौखरि साम्राज्य शायद किसी तरह कमज़ोर हो गया, और ऐसा जान पड़ता है कि उससे लाभ उठा कर गुप्त महाराजाधिराज ने महासेन-गुप्त को मालवा का राज्य सौंप दिया (लगभग ५८५ ई०)।

§२. **चालुक्य और पल्लव** (लगभग ५५०-६०८ ई०)—यशोधर्मा के बाद दक्खिन का राजनीतिक नक़्शा भी पलट गया। जहाँ कादम्बों और वाकाटकों के राज्य थे, वहाँ अब चालुक्यों का एक राज्य उठ खड़ा हुआ। उसका संस्थापक पुलकेशी था, जिसने कादम्बों से वातापी नगरी (बीजापुर ज़िले में बदामी) छीन कर अश्वमेध किया (लगभग ५५० ई०)। किन्तु दक्खिनी छोर पर काञ्ची के पल्लवों का राज्य ज्यों का त्यों बना रहा, प्रत्युत पहले से भी अधिक चमक उठा। पल्लव राजा सिंहविष्णु ने सिंहल को भी जीता (लगभग ५९० ई०)।

§३. **कुरुक्षेत्र का प्रभाकरवर्धन** (लगभग ५९०-६०५ ई०)—थानेसर का प्रभाकरवर्धन शायद महासेन-गुप्त का भानजा था। उसने उत्तरापथ की तरफ़ अपनी शक्ति बढ़ायी। पहले उसने कश्मीर या तुखारिस्तान से हूणों को खदेड़ा; फिर सिन्धु, गुर्जर (पंजाब, मारवाड़) और गान्धार के राजाओं पर काबू किया। तब वह दक्खिन की ओर झुका और उसने लाट देश (दक्खिनी गुजरात=भरुच-सूरत) पर चढ़ाई कर मालवा के राज्य को जीता। मालवा के राजा (महासेन-गुप्त ?) ने अपने दो बेटे कुमार-गुप्त और माधव-गुप्त उसे सौंपे।

प्रभाकरवर्द्धन की तीन सन्तानें हुईं—राज्यवर्धन, हर्षवर्धन तथा राज्यश्री। कुमारगुप्त और माधवगुप्त बचपन से राज्यवर्धन और हर्षवर्धन के अनुचर रहे थे। जवान होने पर राज्यश्री मौखरि राजा अवन्तिवर्मा के बेटे

ग्रहवर्मा को व्याही गयी। प्रभाकरवर्धन ने राज्यवर्धन को "हूणों को मारने के लिए उत्तरापथ में भेजा।" हर्ष भी उसके पीछे-पीछे जङ्गल में शिकार के लिए गया। वहाँ कश्मीर के पहाड़ों की तराई में उसे पिता की बीमारी की ख़बर मिली। उसके लौट आने पर प्रभाकर ने प्राण छोड़ दिये (६०५ ई०)। राज्यवर्धन भी यह ख़बर पा कर वापिस आया।

§४. **रानी राज्यश्री**—इधर प्रभाकर को मरा सुन मालवा के राजा (महासेन के बेटे देवगुप्त ?) ने कन्नौज पर चढ़ाई की, और ग्रहवर्मा को मार कर राज्यश्री को कन्नौज के क़ैदख़ाने में डाल दिया। पच्छिमी और उत्तरी बङ्गाल में इस समय शशांक नाम का एक नया राजा था। उसे शायद महासेनगुप्त ने अपनी कामरूप वाली चढ़ाई के समय वहाँ स्थापित किया हो। मालवा का राजा उसे साथ ले थानेसर पर चढ़ाई की तैयारी करने लगा। ख़बर पाते ही दस हज़ार सवारों के साथ राज्यवर्धन उसके मुकाबले को बढ़ा। 'मालवे की सेना को खेल ही खेल में जीत कर' वह शशांक की तरफ़ मुड़ा। गौड के राजा ने उससे मैत्री प्रकट की और उसे छल से क़त्ल कर डाला। शशांक अपने एक और कारनामे के लिए भी प्रसिद्ध है। उसने बौद्धों पर बहुत अत्याचार किये, और बोधिवृक्ष को उखड़वा कर जलवा दिया।

नौजवान हर्ष अपने इस शत्रु के मुकाबले को तेज़ी से बढ़ा। एक ही पड़ाव आगे पहुँचने पर प्राग्ज्योतिप (आसाम) के राजा भास्करवर्मा के दूत उसे मैत्री का सन्देश लिये मिले। कन्नौज के करीब पहुँचने पर हर्ष को मालवा के क़ैदियों को लिये हुए सेनापति भण्डि मिला। वहीं उसने यह सुना कि पिछली गड़बड़ में राज्यश्री क़ैद से छुट कर निराश दशा में विन्ध्य के जङ्गल में कहीं चली गयी है। भण्डि को गौड़ की तरफ़ रवाना कर, हर्ष बहन की खोज में निकला। विन्ध्याचल के जङ्गलों में शबर जवानों की सहायता से खोजते हुए उसने उसे ठीक उस समय पाया जब वह सती होने की तैयारी कर रही थी। भाई के मिलने पर उसने वह इरादा छोड़ दिया, पर फिर भी उसने भिक्षुणी होना चाहा। अन्त में उसने स्वीकार किया कि जब तक हर्ष अपने शत्रुओं से बदला न चुका ले, तब तक वे दोनों अपनी राजकीय ज़िम्मेदारी निबाहेंगे।

यह वृत्तान्त हमें बिहारी कवि बाण भट्ट के 'हर्षचरित' नामक ग्रन्थ से मिलता है। बाण कवि हर्ष की सभा में था।

§५. **हर्षवर्धन**—६३० ई० में युत्रान च्वाङ नाम का एक चीनी यात्री उपरले हिन्द और अफगानिस्तान के रास्ते हो कर भारत आया, और ६४३ ई० में उसी रास्ते से वापिस गया। वह हर्ष के साथ भी कुछ समय रहा। यहाँ वह देश के एक छोर से दूसरे छोर तक घूमा और उसने अपने भ्रमण का वृत्तान्त भी लिखा। उस वृत्तान्त से भी हर्ष के समय की बहुत सी बातें मालूम होती हैं।

राज्यश्री ने वापिस आ कर कन्नौज का राज्य सँभाला, और हर्ष अपनी बहन का प्रतिनिधि हो कर राजा शीलादित्य नाम से उसकी देख-रेख करने लगा। इस प्रकार अब कुरु और पञ्चाल दोनों राज्यों की शक्ति हर्ष के हाथ में आ गयी। उन दोनों की सेनाएँ तैयार कर वह भारत-दिग्विजय को निकला। छः बरस तक वह पूरब से पच्छिम तक सब प्रदेशों को जीतता रहा। उसके हाथियों के हौदे और सिपाहियों की वर्दियाँ बराबर कसी रहीं। कामरूप के "भास्करवर्मा का उसने स्वयम् अभिषेक कराया, सिन्धुराज को कुचल कर उसका राज्य छीन लिया और तुखार पहाड़ों के दुर्गों से कर वसूल किया।" शशांक ने शायद उसके आगे झुक कर अपने को बचा लिया। वलभी का राजा ध्रुवसेन हर्ष से हार कर भरुच के गुर्जर राजा के पास भाग गया। पीछे हर्ष ने उसे अपना सामन्त बना कर अपनी इकलौती बेटी ब्याह दी। किन्तु महाराष्ट्र के राजा पुलकेशी (२य) पर जब हर्ष ने चढ़ाई की तो वह नर्मदा के घाटों पर अपनी सेना को इस प्रकार से सजग और तैनात रक्खे हुए था कि अपने साम्राज्य की सारी शक्ति लगा कर भी हर्ष उसे न लाँघ सका। गंगा और गोदावरी के काँठों के वे सम्राट् एक दूसरे के ठीक मुकाबले के थे और दोनों ने नर्मदा नदी को तब से अपनी सीमा मान लिया। हर्ष की अन्तिम चढ़ाई ६४३ ई० में उड़ीसा तट के दक्खिन गंजाम प्रदेश पर हुई।

हर्ष जैसा विजेता था वैसा ही योग्य और न्यायी शासक भी था। बरसात के सिवाय वह सदा अपने राज्य में दौरे करता, और फूस के खेमों में ही पड़ाव

किया करता था। राज्य-कार्य के पीछे वह अपनी भूख और नींद को भूल जाता था। उसका नाम शीलादित्य भी सार्थक था, क्योंकि वह शील और सच्चरित्रता की मूर्त्ति था। उसने एकपत्नीव्रत धारण किया और आजन्म उसे निबाहा। प्रजा उसके राज्य में सुखी थी। तो भी अब गुप्तों के समय की सी पूरी शान्ति न थी और दण्ड भी तब से कुछ अधिक कठोर थे। ६०६ ई० में हर्ष ने अपने अभिषेक का सम्वत् चलाया। ६४७ ई० में उसकी मृत्यु हुई।

हर्ष के राज्यकाल में भिन्नमाल और पञ्जाब के गुर्जर राज्यों का अन्त हुआ। मध्य पञ्जाब में तब टक्क (टांक) जाति का राज्य स्थापित हुआ, जिस के कारण सातवीं शती में वह टक्कदेश कहलाने लगा। शाकल उसकी राजधानी थी और मुलतान भी उसके अधीन था। उसके दक्खिन, सिन्ध में एक अलग स्वतन्त्र राज्य था, जिसका मकरान तक अधिकार था। भरुच का छोटा गुर्जर राज्य आठवीं शती के शुरू तक बना रहा।

§६. पुलकेशी और विक्रमादित्य चालुक्य; पल्लव महेन्द्रवर्मा और नरसिंहवर्मा—हर्ष का समकालीन सत्याश्रय पुलकेशी (लगभग ६०८–६४२ ई०) भी उसी की तरह प्रसिद्ध है। उसने गुजरात, कोशल (छत्तीसगढ़) और आन्ध्र को जीत

स्व ह स्तो म म म हा रा जा धि रा ज श्री ह र्ष स्य

"स्वहस्तो मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य"—हर्षवर्द्धन के हस्ताक्षर बांसखेड़ा ताम्रपत्र पर से (लखनऊ म्यू०)

कर पच्छिमी से पूरबी समुद्र तक अपना राज्य फैलाया। आन्ध्र-देश का राज्य उसने अपने भाई कुब्ज विष्णुवर्धन को दिया, जिसके वंशज पीछे पूरबी चालुक्य कहलाये। गोदावरी और कृष्णा के मुहानों के बीच वेंगि राजधानी में उन्होंने लगातार ४५० बरस तक राज्य किया। पुलकेशी ने पल्लव सिंहविष्णु के बेटे महेन्द्रवर्मा को हरा कर कावेरी पार तक अपनी धाक जमायी। वह सामुद्रिक



पञ्च-पाण्डव रथ, मामल्लपुरम् [भा० पु० वि०]

शक्ति में भी प्रबल था। ईरान के राजा ख़ुसरो (२य) ने ६२५-२६ ई० में उसके दरबार में अपने एलची भेजे। बदले में महाराष्ट्र राजा के दूत भी ईरान गये।

पुलकेशी के अन्तिम समय महेन्द्रवर्मा के बेटे नरसिंहवर्मा पल्लव ने वातापी पर चढ़ाई की, और उसे हरा कर अपने बाप की हार का बदला चुकाया (अन्दाज़न ६४२ ई०)।

महेन्द्रवर्मा (१म) (६१८ ई०) और नरसिंहवर्मा (६४६ ई०) दोनों शक्तिशाली राजा थे। पुद्दुकोटै राज्य में सित्तनवासल नामक स्थान की गुफाएँ जिनकी दीवारों पर अजन्ता की गुफाओं की तरह सुन्दर चित्र अंकित हैं, इन्हीं

राजाओं की कटवायी हुई हैं। काञ्ची के सामने समुद्रतट पर मामल्लपुरम् के एक-एक चट्टान में से काटे हुए विशाल मन्दिर भी, जिन्हें 'रथ' कहते हैं, और जो संसार की अद्भुत चीज़ों में गिने जाते हैं, इन्हीं राजाओं के बनवाये हुए हैं।



गणेश रथ, मामल्लपुरम् [भा० पु० वि०]

पुलकेशी के बेटे विक्रमादित्य (१म) ने नरसिंहवर्मा के पोते के समय काञ्ची को फिर जीत कर बदला चुकाया। चालुक्यों और पल्लवों की यह पटका-पटकी अगले सौ बरस तक इसी तरह चलती रही।

§७. **आदित्यसेन और विनयादित्य** (लगभग ६७०-६९६ ई०)—हर्षवर्धन के कोई पुत्र न था। उसके पीछे माधव-गुप्त के बेटे आदित्यसेन ने मगध में स्थापित हो फिर अपने को समूचे उत्तर भारत का सम्राट् बना लिया। उसने दक्खिन पर भी चढ़ाई की, और पूरबी तट के साथ-साथ वह चोल देश तक पहुँच गया। किन्तु यह पुनर्जीवित गुप्त साम्राज्य चिरस्थायी न हुआ। विक्रमादित्य (१म) चालुक्य के बेटे विनयादित्य (६८०-६९६ ई०) ने एक तरफ़ सिंहल तक जीता और दूसरी तरफ़ "समूचे उत्तर भारत के स्वामी" को हरा कर उससे उस का साम्राज्य-चिन्ह—गङ्गा-यमुना के चित्रों से अंकित झण्डा—छीन लिया। यह 'समूचे उत्तर भारत का स्वामी' सम्भवतः आदित्यसेन का बेटा देव-गुप्त था।


नरसिंहवर्मा की समकालीन मूर्त्ति—मामल्लपुरम् के धर्मराज रथ में से [रैवरैण्ड फ़ादर हेरस के सौजन्य से]

§८. **नेपाल, कश्मीर के राज्य**—उत्तरी सीमान्तों पर भी छठी शती के मध्य से कई नयी शक्तियाँ प्रकट हो गयीं। कामरूप की चर्चा हो चुकी है। नेपाल में लिच्छवियों का राज चला आता था, पर हर्ष के समय वहाँ ठाकुरी

वंश का राजा अंशुवर्मा हुआ, जिसने हर्ष की तरह अपना सम्वत् भी चलाया। उसके बाद अनेक शताब्दियों तक नेपाल में लिच्छवि और ठाकुरी सरदारों का सम्मिलित द्विराज जारी रहा। उत्तरपच्छिमी सीमान्त पर हूणों की सत्ता को कन्नौज और थानेसर के राजाओं ने मिटा दिया। युआन-च्वाङ जब उधर से गुज़रा तब काबुल और पच्छिमी गान्धार में एक क्षत्रिय राजा राज्य करता था, और कश्मीर में दुर्लभवर्धन ने कर्कोट राजवंश की स्थापना की थी, जिसकी राज्य-सीमा नमक-पहाड़ियों तक थी।

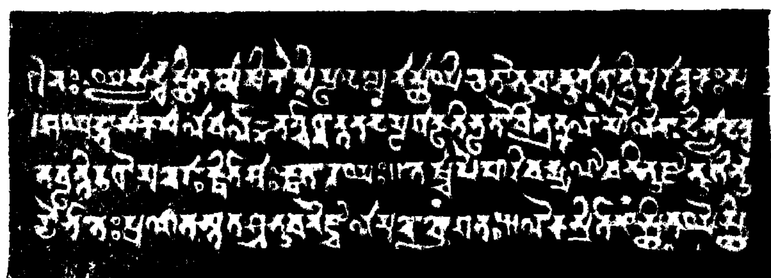
§६. **मध्य एशिया में तुर्कों का प्रवेश और दमन**—मध्य एशिया में हूणों की शक्ति ५६५ ई० में नौशीरवाँ ने तोड़ दी थी, सो पीछे कह चुके हैं। किन्तु नौशीरवाँ ने वह काम अकेले न किया; उसमें 'पच्छिमी तुर्क' उसके सहायक थे। तुर्क असल में हूणों की एक शाखा ही थे, जिसका असल नाम असेना था। असेना लोग पाँचवीं सदी में कान्सू प्रान्त में एक पहाड़ के पास रहते थे। उस पहाड़ की शक्ल एक खोद या मिगफ़ार (फ़ौजी टोपी) की सी थी, जिसे हूण भाषा में 'तुर्कु' कहते हैं। इसीसे वे लोग तुर्कु या तुर्क कहलाने लगे। ५४५ ई० से वे प्रबल हुए। नौशीरवाँ ने उनकी मदद से हूणों को हराया—अर्थात् हूणों के एक फ़िरके की मदद से दूसरों को हराया।

मध्य एशिया पर नौशीरवाँ का प्रभाव नाममात्र को रहा। ५६५ ई० से ६३१ ई० तक वहाँ तुर्कों की ही प्रधानता रही। तुरफ़ान से मर्व तक मध्य एशिया में जो तुर्क थे वे पच्छिमी तुर्क कहलाते थे, और जो अभी अपने मूल घरों में थे वे उत्तरी तुर्क नाम से प्रसिद्ध हुए। यह पच्छिम उत्तर का हिसाब चीन की दृष्टि से था। युआन-च्वाङ को ६३० ई० में भारत आते समय तुरफ़ान से कपिश की सीमा तक के लिए पच्छिमी तुर्कों के 'क़ग़ान' अर्थात् राजा ने ही राहदानी दी थी। तुर्कों में तब धीरे-धीरे बौद्ध धर्म का प्रवेश हो रहा था। तुर्की भाषा में संस्कृत से कई ग्रन्थों के अनुवाद किये गये।

६३० ई० से ही तुर्कों की शक्ति टूटने भी लगी। उस साल चीन ने उत्तरी तुर्कों का देश जीत लिया। खोतन के हिन्दू राज्य को ४४५ ई० से हूण और तुर्क लोग सता रहे थे। ६३० ई० में वहाँ के राजा विजयसंग्राम ने तुर्कों के देश

पर चढ़ाई कर उनका संहार किया। उससे कुछ बरस पहले या पीछे ही तो राज्यवर्धन और हर्षवर्धन ने भी तुखार पहाड़ों पर चढ़ाइयाँ की थीं। यों पञ्जाब और खोतन के हिन्दू राज्यों के दोतरफ़ा दबाव से कश्मीर और तुखारिस्तान में हूण-तुर्कों का अन्त हुआ। ६४०-४८ ई० के बीच तुरफ़ान और कूचा से भी वे निकाले गये; और ६५६ ई० तक चीन ने पच्छिमी तुर्कों का भी समूचा देश जीत कर काबुल और कश्मीर के हिन्दू राज्यों पर भी अपना आधिपत्य स्थापित किया।

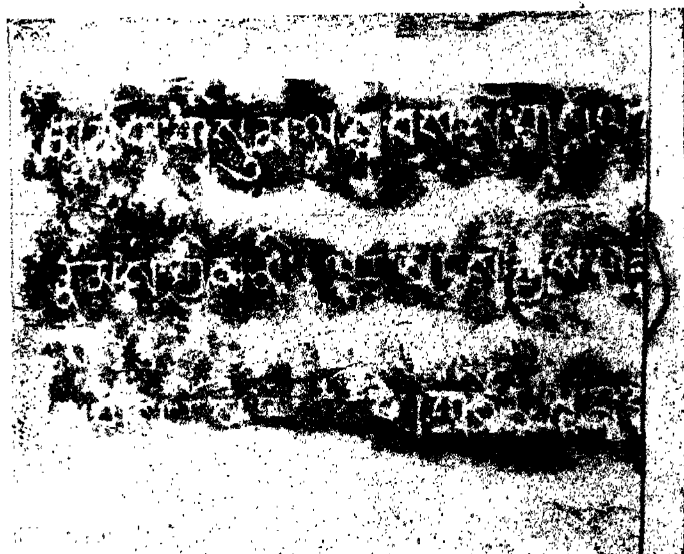
§१०. तिब्बत का उत्थान—किन्तु चीन और कश्मीर तथा खोतन और नेपाल के बीच एक नया राज्य भी इसी युग में उठ खड़ा हुआ। वह



छठी शताब्दी की भारतीय लिपि, जिसमें तिब्बती भाषा पहले-पहल लिखी गयी—हराहा (जि० रायबरेली) में प्राप्त ईशानवर्मा मौखरि के सं० ६११ वि० के लेख में से [लखनऊ म्यू०]

तिब्बत का राज्य था। इससे पहले तिब्बती लोग निरे जङ्गली थे और छोटे-छोटे गिरोहों में रहते थे। तीन तरफ़ के भारतीय देशों से और चौथी तरफ़ चीन से उनमें धीरे-धीरे सभ्यता का प्रकाश पहुँचा। खोतन और कूचा में जो भारतीय लिपि प्रचलित थी, वह सातवीं सदी के शुरू में तिब्बत में भी पहुँच गयी। तिब्बती भाषा तब से आज तक हमारी ही वर्णमाला में लिखी जाती है। ६३० ई० में पहले-पहल एक सम्राट् सारे तिब्बत को अपने शासन में ले आया; उसने ६५० ई० तक राज्य किया। ल्हासा की स्थापना

उसी ने की। उस सम्राट् का नाम स्रोङ्चन-गम्बो था। उसने नेपाल के अंशुवर्मा की बेटी भृकुटि से और चीन-सम्राट् की एक कन्या से विवाह किया। वे दोनों देवियाँ बौद्ध थीं। उन्होंने तिब्बतियों के रहन-सहन में अनेक सुधार करवाये। ६४१ ई० में हर्षवर्धन ने अपने दूत चीन भेजे। दो बरस बाद



आरम्भिक तिब्बती लिपि—ल्हासा के पास ग्यल्खङ् विहार के एक शिलालेख में से। हराहा लेख की लिपि से इसकी तुलना कीजिये।

[भदन्त राहुल के सौजन्य से]

चीन के दूत तिब्बत के रास्ते कन्नौज आये। इस प्रकार अब पहले-पहल चीन और भारत के बीच तिब्बत के रास्ते आना-जाना शुरू हुआ। बाद के तिब्बती राजाओं ने भी नेपाल, मगध और कन्नौज से लगातार सम्पर्क जारी रक्खा।

———

अध्याय २

इस्लाम का उदय और भारतवर्ष में प्रवेश

(लगभग ६२०–७६० ई०)

§१. हज़रत मुहम्मद—जब भारतवर्ष में हर्ष और पुलकेशी राज्य करते थे, उसी समय अरब में इस्लाम धर्म का उदय हुआ। इस धर्म के प्रवर्तक हज़रत मुहम्मद नाम के महात्मा ५७१ ई० में अरब की कुरैश जाति में पैदा हुए। अरब लोग उसी सेमेटिक (Semitic) नस्ल से हैं, जिससे पुराने बाबुली लोग थे या यहूदी लोग हैं। हज़रत मुहम्मद से पहले अरब वाले अनेक जड़-जन्तुओं को पूजते थे और छोटे-छोटे फ़िरक़ों में बँटे हुए थे। मुहम्मद साहब ने उन्हें तौहीद अर्थात् परमेश्वर के एक होने की शिक्षा दी। उन्होंने अनुभव किया कि उनका वह तौहीद का विचार स्वयम् परमेश्वर या अल्लाह की प्रेरणा है। इसलिए उन्होंने अपने को अल्लाह का 'रसूल' अर्थात् भेजा हुआ कहा। फिर उनकी यह शिक्षा थी कि, अल्लाह और उसके रसूल को मानने वाले सब मुसलमान हैं, और उसकी दृष्टि में एक बराबर हैं। उनमें कोई ऊँच-नीच या छोटाई-बड़ाई नहीं है। अल्लाह और रसूल को न मानना कुफ़्र अर्थात् नास्तिकता है, और कुफ़्र करने वाला काफ़िर है।

इन शिक्षाओं के प्रचार से अरब वालों में एक अनुपम एकता और शक्ति प्रकट होने लगी। पहले तो उन्होंने इस शिक्षा का विरोध किया। यहाँ तक कि रसूल को अपने विरोधियों से सताये जाने पर अपनी जन्मभूमि मक्का को छोड़ कर मदीना भागना पड़ा। (इसे 'हिजरत करना' कहा गया और उसी समय—६२२ ई०—से हिजरी सन् जारी हुआ)। किन्तु पीछे उन्हें पूरी

सफलता हुई और सारा अरब उनकी छत्रच्छाया में आ गया। ६३२ ई० में उनका देहान्त हुआ।

§२. **खिलाफ़त का विस्तार**—उनके पीछे अरबों के जो नेता बने वे ख़लीफ़ा कहलाये। पहले चार ख़लीफ़ा बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने इस क्रम से राज्य किया—(१) अबू बक्र—६३२-३४ ई०, (२) उमर—६३४-४३ ई०, (३) उस्मान—६४३-५५ ई०, और (४) अली—६५५-६१ ई०।

अरब के पड़ोस में एक तरफ़ ईरान और दूसरी तरफ़ रोम का साम्राज्य था। वे दोनों बोदे और खोखले हो चुके थे। रसूल की मृत्यु के बाद पाँचवें ही बरस (६३६-३७ ई०) अरबों ने सासानी राजा यज़्दगुर्द को हरा कर ईरान पर दखल कर लिया। ईरान के लोग मुसलमान बनाये गये, और उनमें से कुछ बच कर समुद्र के रास्ते भारत भाग आये। उन भागने वालों के वंशज, जो अब गुजरात में आबाद हैं, पारसी नाम से प्रसिद्ध हैं। अगले पन्द्रह बरस के भीतर (६५० ई० तक) ख़लीफ़ाओं ने रोम-साम्राज्य से शाम (सीरिया), फ़िलिस्तान और मिश्र ले लिये। उसके बाद खिलाफ़त अर्थात् ख़लीफ़ा-साम्राराज्य का केन्द्र अरब के रेगिस्तान के छोर से उठ कर दमिश्क (सीरिया की राजधानी) में चला आया (६७० ई०)। ७६६ ई० में वह दमिश्क से बगदाद आया।

पाण्ड्य, सिंहल, श्रीविजय (सुमात्रा) आदि जिन भारतीय राष्ट्रों का सामुद्रिक व्यापार बहुत था, वे पच्छिमी समुद्र की इस नयी शक्ति की उपेक्षा न कर सकते थे। अतः उसके साथ मैत्री रखना उनके लिए आवश्यक था। अरब लोग भी भारतीय समुद्र में व्यापार और मल्लाहगीरी करते थे। किन्तु पहले जहाँ वे कोरे व्यापारी और माँझी थे, वहाँ अब उन में से प्रत्येक एक नयी उमङ्ग लिये हुए अपने दीन (धर्म) का उग्र प्रचारक बन गया। जहाँ कहीं भी व्यापार या मल्लाहगीरी के कारण उनकी छोटी-मोटी बस्ती रही, वहाँ मस्जिदें खड़ी होने लगीं, इस्लाम का प्रचार होने लगा, और वहाँ से लोग हज (अरब के तीर्थों की यात्रा) के लिए जाने और ख़लीफ़ा के पास ज़कात (अपनी बचत का ४० वाँ अंश) भेजने लगे। इस नये जोश और

जीवन में अरबों की सामुद्रिक शक्ति भी बढ़ने लगी और इन मुस्लिम केन्द्रों से भारत के तट-प्रदेशों का परिचय पा कर खलीफ़ाओं की जल-सेना उन पर हमले भी करने लगी।

§ ९. **भारत के सीमान्त पर हमले** (६४३–७०० ई०)—खलीफ़ा उमर के समय में पहले-पहल भारत के पच्छिमी तट पर अरबों के सामुद्रिक हमले हुए। एक हमला कोंकण के ठाना ज़िले पर हुआ, जिसमें पुलकेशी के हाथों अरबों की बुरी तरह हार हुई। दूसरे सामुद्रिक हमले भी उसी प्रकार विफल हुए।

६४३ ई० में ईरान के पूरबी प्रान्त किरमान और सिजिस्तान (प्राचीन शकस्थान) जीत लिये गये। सिजिस्तान लेने से अरब लोग हेलमन्द नदी पर पहुँच गये, जो उस समय भी भारत की सीमा मानी जाती थी। उसका काँठा सिन्ध और अफ़गानिस्तान के बीच एक पच्चर की तरह घुसा हुआ है। ६४४ ई० में सिन्ध के राजा "सिहर्सराय" (श्रीहर्षराज) से अरबों ने मकरान छीन लिया। सिहर्सराय लड़ाई में मारा गया। उसके बेटे साहसी ने लड़ाई जारी रक्खी, पर दो बरस पीछे वह भी मारा गया। तब सिन्ध का राज्य ब्राह्मण मन्त्री चच के हाथ आया। उधर ६५० ई० में हरात भी अरबों के क़ब्ज़े में चला गया, जिससे अफ़ग़ानिस्तान का पच्छिमी छोर भी उन्होंने घेर लिया। पच्छिम की तरफ़ सीरिया, फ़िलीस्तीन और मिस्र भी प्रायः उसी समय तक अरब साम्राज्य में शामिल हो चुके थे।

६६३ ई० में अरबों ने काबुल पर पहली चढ़ाई की। साल भर काबुल घिरा रहा और लोग बस्तियाँ छोड़ कर भाग गये। पर ज्यों ही अरब सेनाओं ने मुँह फेरा कि काबुली फिर स्वतन्त्र हो गये। ६६७ और ७०० ई० में काबुल पर फिर वैसी ही विफल चढ़ाइयाँ हुईं।

अरब विजेता हरात से मध्य एशिया की तरफ़ भी बढ़े। काबुल की पहली चढ़ाई से चार ही बरस पहले तो चीन ने मध्य एशिया और अफ़ग़ानिस्तान पर प्रभाव जमाया था। अब अरबों और चीनियों का मुक़ाबला आ पड़ा। किन्तु चीनियों को जहाँ सामने से अरबों का मुक़ाबला करना पड़ता था, वहाँ

उनके बायीं तरफ़ अब उनका नया शत्रु तिब्बत खड़ा हो गया था। तिब्बती लोग उत्तर तरफ़ बढ़ कर चीनी सेनाओं का रास्ता काट देते और बहुत बार अरबों के साथ सन्धि कर लेते थे। चीनियों की कोशिश रहती कि वे एक दूसरे से नहीं मिल पायँ। इस कोशिश में वे प्रायः सफल हुए। तो भी ६७४ ई० में तिब्बतियों ने खोतन के राजा विजयकीर्त्ति को हरा दिया, और १६ बरस तक वहाँ अधिकार बनाये रहे। कश्मीर के उत्तर बोलौर प्रदेश पर भी उन्होने दखल कर लिया।

§४. **सिन्ध-विजय**—मकरान लेने के बाद ख़लीफ़ाओं की दृष्टि सिन्ध पर पड़ी और उस पर चढ़ाई के लिए कारण भी उपस्थित हो गया। सिंहल के राजा ने ख़लीफ़ा के पास कई भेंट के जहाज़ भेजे। सिन्ध नदी के पच्छिमी तट के देवल बन्दर पर वे लुट गये। तब चच का बेटा दाहिर सिन्ध का राजा था। मुलतान भी तब टक्क (पञ्जाब) के बजाय सिन्ध-राज्य में शामिल था। दाहिर ने जब ख़लीफ़ा के कहने पर भी जहाज़ लुटने का कोई प्रतिकार न किया, तब मकरान के तट तथा समुद्र से देवल पर चढ़ाई की गयी (७१०-११ ई०)। उस चढ़ाई का नेता एक नौजवान मुहम्मद-इब्न-क़ासिम था। देवल पर अरब सेना का विशेष मुकाबला न करके दाहिर सिन्ध नदी के पच्छिम के सारे इलाक़े को छोड़ पूरब की तरफ़ हट गया। मुहम्मद ने पहले उसी भाग पर कब्ज़ा किया। उसके उत्तरी छोर पर सिविस्तान में दाहिर के एक भाई ने सख्त मुकाबला किया; परन्तु जनता का एक बड़ा अंश बौद्ध श्रमण थे, और वे तमाशबीन बने रहे। अन्त में मुहम्मद-इब्न-क़ासिम की जीत हुई।

तब वह नीचे आ कर सिन्ध नदी लाँघने का उपाय करने लगा। सामने दाहिर की सेना थी, और उसका बेटा जयसिंह नदी का घाट रोके हुए था। किन्तु नदी के बीच में एक टापू था। उसका "मुखी" मुहम्मद-इब्न-क़ासिम के साथ मिल गया और जैसे सिकन्दर को आम्भि ने सिन्ध नदी के पार उतार दिया था, वैसे ही उसने मुहम्मद-इब्न-क़ासिम को पार उतार दिया। उस पार दाहिर वैसी ही वीरता से लड़ा जैसे पुरु सिकन्दर से लड़ा था। किन्तु सिन्ध के इन अन्तिम हिन्दू राजाओं ने अपनी आट और टेक-

प्रजा पर बड़े ज़ुल्म किये थे, इसलिए बहुत से जाटों ने अरबों का साथ दिया। दाहिर युद्ध में मारा गया। उसकी रानी ने पड़ोस के एक किले में कुछ सेना ले कर, जब तक बना, मुकाबला किया। अन्त में उसने बची हुई स्त्रियों के साथ "जौहर" कर लिया। भारत में जौहर की यह पहली घटना थी। उत्तर की तरफ़ बढ़ कर मुहम्मद-इब्न-क़ासिम ने छः महीने के घेरे के बाद सिन्ध का मुख्य नगर ब्राह्मनाबाद जीत लिया। तब उसने सिन्ध की राजधानी अलोर (रोड़ी के पास) पर भी कब्ज़ा किया। अलोर के बाद मुलतान भी अरबों के हाथ में चला गया।

§५. **सिन्ध का अरब राज्य**—जाटों और मेडों से काम निकल जाने के बाद मुहम्मद-इब्न-क़ासिम ने भी उन पर पहले सी सख्ती की। परन्तु व्यापारी और कृषक प्रजा को विशेष नहीं सताया; उनसे जज़िया ले कर उन्हें अपना धर्म बनाये रखने और अपने मन्दिरों में पूजा-पाठ करने दिया। राज्य का शासन, वसूली आदि का काम ब्राह्मणों और पुराने सरदारों के हाथ सौंपा। मुलतान के प्रसिद्ध सूर्य-मन्दिर को तोड़ने के बजाय उसके चढ़ावे की आमदनी में से हिस्सा लेना अरब विजेताओं को अच्छा जँचा। कुछ समय बाद मुहम्मद-इब्न-क़ासिम खलीफ़ा-दरबार की दलबन्दी के कारण वापिस बुलाया गया और यातनाएँ दे कर मार डाला गया।

अरबों ने सिन्ध से और आगे बढ़ने के भी अनेक जतन किये, पर वे सब विफल हुए। ७३६ ई० में उनकी सेना कच्छ, सुराष्ट्र आदि जीत कर सूरत ज़िले की नवसारी नगरी तक पहुँच गयी, पर वहाँ चालुक्यों ने उसे तहस-नहस कर दिया। भिन्नमाल राज्य के साथ तो उनकी प्रायः लगातार मुठभेड़ होती रही। ७६६ ई० में उन्होंने सुराष्ट्र पर चढ़ाई कर वलभी नगरी को लूटा। तब मैत्रक वंश का राज्य समाप्त हुआ। खलीफ़ाओं की शक्ति शिथिल होने पर भी सिन्ध में अनेक अरब सरदार बने रहे।

§६. **कन्नौज का राजा यशोवर्मा; पूरबी भारत की स्थिति (लग० ७२०–७४० ई०)**—सिन्ध में अरब राज्य स्थापित होने के कुछ ही बरस बाद मगध और गौड में गुप्त राजवंश का अन्त हुआ। कन्नौज का राजा

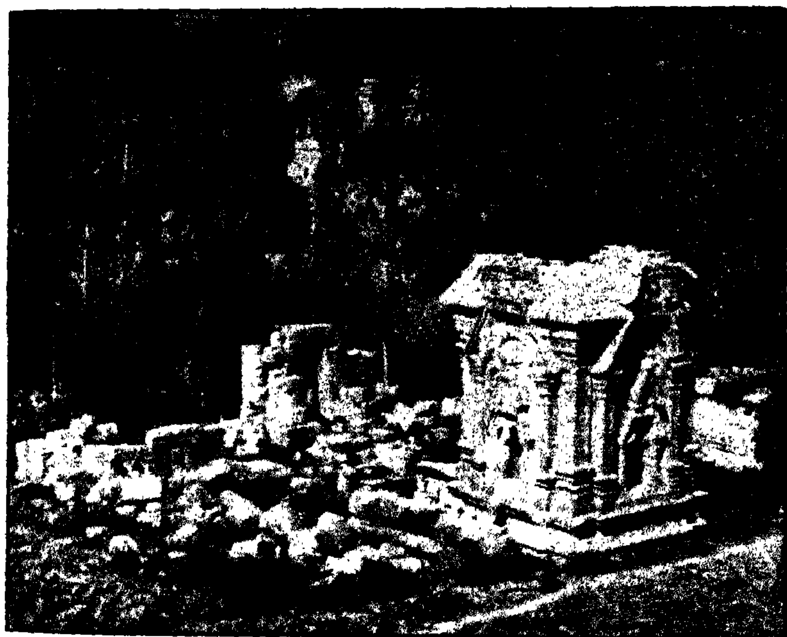
इस समय यशोवर्मा था। उसने मगध और गौड पर चढ़ाई कर वहाँ के गुप्त राजा को मार डाला और पूरबी समुद्र तक अपना साम्राज्य फैला लिया। इसके थोड़े ही अरसे बाद यशोवर्मा को एक प्रबल शत्रु से हारना पड़ा, जिस का उल्लेख हम अभी करेंगे। गुप्त राजवंश ने तब फिर उठने की चेष्टा की, पर वह विफल हुई। मगध, मिथिला और बङ्गाल में कुछ बरसों तक अराजकता फैली रही।

§७. मध्य एशिया में तिब्बत, अरब और चीन की कशमकश; राजा ललितादित्य—मुहम्मद-इब्न-क़ासिम जब सिन्ध को जीत रहा था उसी समय दो और नौजवान खिलाफ़त-साम्राज्य को दूसरे दो कोनों पर बढ़ा रहे थे। एक तरफ़ तारिक आफ्रिका के अन्तिम छोर से स्पेन में घुस कर रोम-साम्राज्य की उत्तराधिकारिणी पच्छिमी युरोप की त्यूतन जातियों से लड़ रहा था। स्पेन का प्रसिद्ध बन्दरगाह उसी के नाम से जब्र् उल् तारिक (जिब्राल्तर) कहलाने लगा। दूसरी तरफ़ कौतैबा मध्य एशिया में चीनी सेनाओं से लड़ रहा था (७०५–१४ ई०)। पहले तो तिब्बतियों और अरबों ने वहाँ से चीन के पैर उखाड़ दिये; किन्तु ७१५ ई० के बाद चीन की शक्ति फिर जाग उठी, और गज़नी और बलख तक के राज्यों को उसने अरबों के विरुद्ध खड़ा किया। अगले तीस बरस में चीन-सम्राट् ने कास्पियन सागर के दक्खिन तक के शासकों पर अपना प्रभाव जमा लिया। कश्मीर की गद्दी का लगभग ७३३ से ७६६ ई० तक दुर्लभवर्धन का पोता राजा मुक्तापीड ललितादित्य राजा था। उसने बोलौर और उपरले हिन्द से तिब्बतियों को मार भगाया और तुखारिस्तान को भी जीता।

ललितादित्य ने इधर कन्नौज-सम्राट् यशोवर्मा से भी लोहा लिया। यशोवर्मा के साम्राज्य में हिमालय के पहाड़ी प्रदेश भी थे, और उसके साम्राज्य की सीमा तिब्बत से लगती थी। यशोवर्मा को हरा कर उसने पच्छिमी हिमालय के सब प्रदेश उससे छीन लिये और काली नदी, जो अब नेपाल को कुमाऊँ से अलग करती है, उनके राज्यों के बीच की सीमा बनी। ललितादित्य और यशोवर्मा दोनों ने चीन-सम्राट् के पास दूत भेजे। ललितादित्य ने सम्राट् से तिब्ब-

तियों को उत्तर से दबाने का अनुरोध करते हुए लिखा कि मैंने अन्तर्वेद के सम्राट् यशोवर्मा के साथ मिल कर उनके सब दक्खिनी रास्ते रोक दिये हैं।

आठवीं शती के मध्य तक चीन ने तिब्बत और अरब की प्रगति को रोके रक्खा; किन्तु ७५१ ई० में अरबों ने तुर्कों के साथ मिल कर समरकन्द में चीनियों को बुरी तरह हराया। उसी युद्ध के चीनी कैदियों से पहले-पहल



अनन्तनाग (कश्मीर) में ललितादित्य के बनवाये मार्त्तण्ड मन्दिर के खँडहर

अरबों ने कागज़ बनाना सीखा, और फिर उनसे समूचे पच्छिमी जगत् ने। ७८० ई० में तिब्बतियों ने खोतन के विजय-वंश के राज्य को सदा के लिए मिटा दिया। ७८६ ई० में खलीफ़ा हारूँनुल-रशीद के समय काबुल पर अरबों ने फिर चढ़ाई की और नगर के बाहर एक बहुत बड़े विहार को लूटा। वहाँ तो उनके पैर न जमे, पर गज़नी कुछ समय बाद अरब शासन में चला गया।

§८. **खिलाफ़त की सभ्यता**—अरब लोग शुरू में तो क्रूर और संहारकारी थे, पर ईरान और भारत के संसर्ग से जल्दी सभ्य हो गये। आठवीं शती के शुरू में सिन्ध और बलख़ के अरब-साम्राज्य में सम्मिलित होने पर भारतवर्ष का प्रभाव ख़िलाफ़त के देशों पर पड़ने लगा। ख़लीफ़ा हारूँनुल-रशीद के समय (७८६–८०६ ई०) तो हिन्दू संस्कृति के प्रवाह से बग़दाद का दरबार मानो आप्लावित हो उठा था। बरमक नाम के वज़ीर ख़ानदान की वहाँ बड़ी ताकत थी; वे लोग बलख़ के थे। उनके पुरखा बलख़ के नव-विहार में पदाधिकारी रह चुके थे। वे नाम को मुसलमान हुए थे। पुराने रिश्ते-नातों के कारण वे भारत से हिन्दू विद्वानों को बग़दाद बुलाते और उन्हें वहाँ वैद्य आदि के पदों पर रखते थे। अरब विद्यार्थियों को वे पढ़ने को भारत भेजते। संस्कृत के दर्शन, वैद्यक, ज्योतिष, इतिहास, काव्य आदि के अनेक ग्रन्थों के उन्होंने अरबी अनुवाद करवाये। भारतवर्ष से गणित आदि का ज्ञान अरब लोग ही युरोप ले गये। पञ्चतन्त्र आदि की कहानियाँ भी उन्हीं के द्वारा विदेशों में पहुँचीं।

किन्तु उनका साम्राज्य और वैभव जैसे जल्दी बढ़ा था, वैसे ही उनका पतन भी जल्दी हुआ। वैभव ने उन्हें विलासी बना दिया। नवीं शती के उत्तरार्द्ध में अरब साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया। ख़िलाफ़त एक छोटी सी रियासत के रूप में रह गयी, और जो राज्य उसके स्थान में उठ खड़े हुए, उनमें अधिकांश मुसलमान बने हुए ईरानियों के थे। उनमें से एक बुख़ारा और ख़ुरासान (उत्तरी ईरान) के अमीरों का था, जिससे हमें आगे वास्ता पड़ेगा। बुख़ारा हमारे ही 'विहार' शब्द का तुर्की-मंगोली उच्चारण है। वह सुग्ध दोआब में है। वहाँ के अमीर ईरानी मुसलमान थे।

———

अध्याय ३

पहले राजपूत राज्य

(लग० ७५०–६६५ ई०)

§१. **कन्नोज साम्राज्य की अवनति** (लग० ७४०–८२० ई०)—ललितादित्य से हारने के बाद कन्नौज साम्राज्य की शीघ्र ही अवनति हुई। यशोवर्मा किस वंश का था, सो मालूम नहीं हुआ। उसका नाम और सिक्के मौखरियों की शैली के हैं। उसके बाद के राजा "भण्डि-कुल" के थे। हर्षवर्धन के मामा का लड़का और सेनापति भण्डि था। जान पड़ता है कि यशोवर्मा के बाद कन्नौज का साम्राज्य उस सेनापति के वंश के हाथ में चला गया। किन्तु ललितादित्य के उत्तराधिकारी जयापीड ने कन्नौज के नये सम्राट् वज्रायुध को भी हरा कर पहाड़ों में नेपाल तक अपना राज्य बढ़ाया। पहला कन्नौज-साम्राज्य जब यों कश्मीरियों के हमलों से जीर्ण हो रहा था, तब उसके पूरब, दक्खिन और पच्छिम में नयी शक्तियाँ उठ रहीं थीं।

§२. **पाल, गंग, राष्ट्रकूट और प्रतिहार राज्यों का उदय** (लग० ७४३–७६० ई०)—मगध और बङ्गाल में अराजकता फैली थी, जिस से लोग ऊब गये थे। उस "मछलियों की सी दशा* को बदलने के लिए प्रजा ने श्रीगोपाल के हाथ में राज्य-लक्ष्मी सौंप दी"—अर्थात् उसे अपना राजा चुन

---

* अराजकता को संस्कृत में "मछलियों का दशा" कहते हैं। बड़ी मछली छोटी को खा जाती है, और उसे भी अपने से बड़ी का डर रहता है। अराजकता में भी यही हाल होता है।

लिया (लग० ७४३ ई०)। गोपाल योग्य राजा था, उसने समूचे मगध, मिथिला और बङ्गाल को शीघ्र एक सुसंगठित राज्य बना दिया।

कलिंक अर्थात् उड़ीसा में इस समय तक गंग वंश का राज्य स्थापित हो चुका था। गंग राजा पहले कादम्बों के सामन्त रूप में पूरबी मैसूर में राज्य करते थे। उस प्रदेश का नाम इसी कारण गंगवाडी पड़ा; वहाँ कोलाहलपुर (कोल्हार) गंगों की राजधानी थी। वहीं से वे लोग कलिंग आये, और यहाँ आठवीं से पन्द्रहवीं शती तक बराबर राज करते रहे।



कैलाश-मन्दिर, वेरूल [निज़ाम-हैदराबाद पुरातत्व विभाग]

७५३ ई० में महाराष्ट्र-कर्णाटक के अन्तिम चालुक्य राजा से उसके सामन्त दन्तिदुर्ग राष्ट्रकूट ने उसका राज्य छीन लिया। 'राष्ट्रकूट' का असल अर्थ "प्रान्त का शासक" था। वही शब्द इस वंश का नाम हो गया। पीछे उसी का रूप 'राठोड' हुआ। दन्तिदुर्ग के उत्तराधिकारी, उसके चाचा, कृष्ण (लग० ७६०–७५ ई०) के समय राष्ट्रकूट सत्ता समूचे महाराष्ट्र और कर्णाटक पर स्थापित हो गयी। कृष्ण ने वेरूल* में एक चट्टान में से कटवा

* 'वेरूल' का बिगड़ा हुआ अंग्रेजी रूप 'एलोरा' है।

कर कैलाश नाम का मन्दिर बनवाया। वह भारतवर्ष की लेणियों या गुहा-मन्दिरों में सब से अनोखी रचना है।

महाराष्ट्र में जब राष्ट्रकूट राज्य स्थापित हुआ तभी गुर्जरदेश के राजा नागभट ने सिन्ध के मुसलमान शासकों को हरा कर ख्याति पायी। नागभट की राजधानी भिन्नमाल थी और मारवाड़ से भरुच तक उसका राज्य था। उसके पुरखा किसी राजा के प्रतिहार अर्थात् द्वारपाल थे। वही प्रतिहार शब्द उनके वंशजों का उपनाम हो गया; और क्योंकि वे प्रतिहार गुर्जरदेश के थे इस कारण वे इतिहास में "गुर्जर-प्रतिहार" कहलाये।

इन नये राज्यों के मुकाबले में कन्नौज का साम्राज्य थोदा था। मगध और गौड राज्य में गोपाल का उत्तराधिकारी उसका सुयोग्य बेटा धर्मपाल हुआ (लगभग ७७०-८०६ ई०)। उसने उत्तर भारत का सम्राट् बनना चाहा। कन्नौज का सम्राट् तब इन्द्रायुध था। ७८३ ई० के बाद धर्मपाल ने उसे गद्दी से उतार कर उसकी जगह चक्रायुध को बैठाया। चक्रायुध के अभिषेक के समय कन्नौज-साम्राज्य के सब सामन्तों ने उसे सम्राट् स्वीकार किया। इन में पञ्जाब के मद्र, गान्धार और कीर (कांगड़ा) तक के राज्यों की गिनती थी। इस प्रकार कन्नौज का साम्राज्य चाहे अब निःशक्त था, तो भी उसका शासन दूर-दूर तक माना जाता था।

नागभट के भाई के पोते प्रतिहार राजा वत्सराज ने धर्मपाल को चुनौती दी और उस पर चढ़ाई कर उसे हराया; किन्तु उन दोनों पर राष्ट्रकूट कृष्ण के बेटे ध्रुव धारावर्ष (७८३—९३ ई०) ने चढ़ाई की। लाट और मालवा प्रान्तों के लिए राष्ट्रकूटों और प्रतिहारों के बीच लड़ाई रहती थी। ध्रुव धारावर्ष ने काञ्ची से कोशल (छत्तीसगढ़) और लाट तक अपना आधिपत्य स्थापित किया। अब उसने वत्सराज को हराया, और गंगा-जमना के बीच भागते हुए गौड राजा (धर्मपाल) का छत्र छीन लिया।

§३. **धर्मपाल, नागभट (२य) और गोविन्द** (लगभग ७९०-८१५ ई०)—ध्रुव के दो बेटों—स्तम्भ और गोविन्द (३य)—में घरेलू युद्ध हुआ। उस अवसर से लाभ उठा कर वत्सराज के बेटे नागभट (२य) ने,

जो राजस्थान की ख्यातों में नाहड़देव नाम से प्रसिद्ध है, चक्रायुध और धर्मपाल दोनों को हरा कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया (लगभग ७६२-६४ ई०)। किन्तु गोविन्द (७६४-८१४ ई०) ने अपने राज्य में स्थापित होने के बाद उत्तर भारत पर चढ़ाई की और नागभट को हराया; धर्मपाल और चक्रायुध को भी उसके सामने झुकना पड़ा। इस चढ़ाई में उसने मालव, कोशल, कलिंग, ओड्र (उड़ीसा का पहाड़ी भाग) और डहाला (जबलपुर-प्रदेश) पर अधिकार कर लिया। उधर उसने काञ्ची और रामेश्वरम् तक जीता था। इस प्रकार वह अपने समय का भारत का सम्राट् था।

धर्मपाल का उत्तराधिकारी उसका बेटा देवपाल (लगभग ८१०-८५१ ई०) भी उसी की तरह योग्य हुआ। पाल राजा सब बौद्ध थे। धर्मपाल ने भागलपुर के पास विक्रमशिला नाम का एक महाविहार स्थापित किया, जो नालन्दा की तरह बाहर के बौद्ध देशों में भी शीघ्र प्रसिद्ध हो गया।

§४. **अमोघवर्ष और कृष्ण; मिहिर भोज और महेन्द्रपाल** (८१५-९११ ई०)—गोविन्द के बेटे शर्व अमोघवर्ष (८१५-७७ ई०) और उस के बेटे कृष्ण अकालवर्ष (८७७-९११ ई०) के एक शती के शासन में दक्खिन भारत ने अद्वितीय शान्ति और समृद्धि प्राप्त की। अमोघवर्ष ने मान्यखेट नगरी (निज़ाम राज्य की मालखेड) को अपनी राजधानी बनाया।

उधर राजा देवपाल ने मगध के राज्य को पूरबी भारत का साम्राज्य बना दिया। उसके सेनापति ने उत्कल (उड़ीसा) और प्राग्ज्योतिष (आसाम) को जीत लिया। शायद ललितादित्य और जयापीड की पूरबी विजयों के सिलसिले में पूरबी हिमालय में कश्मीरियों और कम्बोजों की एक बस्ती बस गयी थी। हिमालय में देवपाल ने उन्हें हराया। दूसरी तरफ़ उसने विन्ध्य में अमोघवर्ष से टक्कर ली। नागभट की मृत्यु के बाद उसके बेटे रामभद्र के मुकाबले में भी देवपाल का पलड़ा भारी रहा।

किन्तु लगभग ८३६ ई० में रामभद्र के बेटे भोज या मिहिर भोज के अधिकार पाने पर अवस्था पलट गयी। भोज ने राज पाते ही कन्नौज को जीता और भिन्नमाल के बदले उसे अपनी राजधानी बना लिया। कश्मीर की सीमा

तक हिमालय के प्रदेशों पर उसने फिर से कन्नौज का आधिपत्य स्थापित किया। उसने गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य की पच्छिमी सीमा उन पहाड़ों से मुलतान-सिन्ध की सीमा तक और सुराष्ट्र के समुद्र तक पहुँचा दी। पूरब तरफ़ उसने देवपाल के बेटे नारायणपाल (लगभग ८५४—९०८ ई०) से न केवल मगध-तिरहुत प्रत्युत पुण्ड्रवर्धन (उत्तरी बङ्गाल) भी छीन लिया (लगभग ८७१ ई०)। पालों का राज्य तब केवल राढ देश (पच्छिमी बङ्गाल) और समतट में रह गया। पूरबी बङ्गाल में भी एक स्थानीय चन्द्र-वंश खड़ा हो गया, जिसकी राजधानी विक्रमपुर (ढाका के पास) थी।

भोज के पचपन बरस (लगभग ८३६—९० ई०) और उसके बेटे महेन्द्रपाल के सत्रह बरस (८९१—९०७ ई०) के शासन में कन्नौज फिर भारत के सब से प्रतापी सम्राटों की राजधानी बना रहा। उनके डर से दक्खिन के राष्ट्रकूटों और सिन्ध के अरबों ने परस्पर मैत्री कर ली। अरब लोग मान्यखेट के राजा को बल्हारा (वल्लभ-राजा) नाम से जानते और उसे भारत में सबसे बड़ा राजा मानते थे।

§५. चोल, कश्मीर और ओहिन्द के नये राज्य (लगभग ८५०—९०० ई०)—नवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतवर्ष के सीमान्त राज्यों में रद्दोबदल हुआ। काञ्ची, कश्मीर और काबुल के सीमान्त राज्य कर्णाटक, कन्नौज और बोखारा साम्राज्यों के हमलों से जीर्ण हो गये थे, इसलिए उन में आन्तरिक परिवर्तन ज़रूरी हो गया। काञ्ची के पल्लव राज्य को समाप्त कर एक चोल राजा तामिल देश में उठा (लगभग ८८० ई०), जिसके वंशज आगे चल कर बड़े प्रतापी हुए।

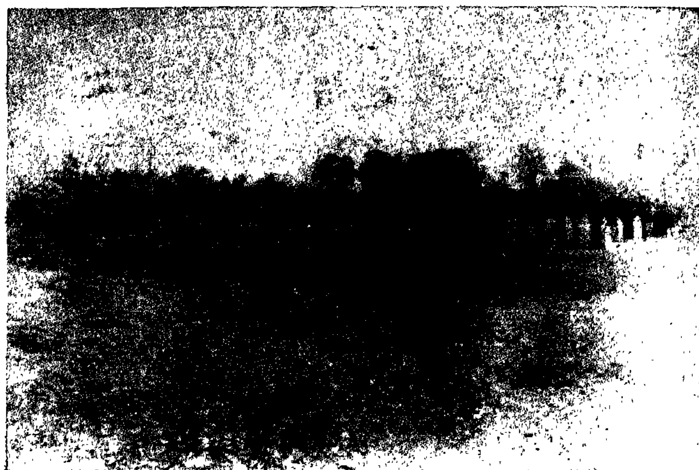
कश्मीर में तभी कर्कोट वंश का राज्य समाप्त हो कर उत्पल वंश का शुरू हुआ। पहला उत्पल राजा अवन्तिवर्मा (८५५—८३ ई०) अत्यन्त न्यायी और सुशासक था। उसके सुय्य नाम के एक मन्त्री ने कश्मीर की नदियों में बाँध बँधवाये, नहरें खोदवायीं और दलदलों को सुखा कर सैकड़ों नये गाँव बसा दिये। कश्मीर की उपज तब इतनी बढ़ी कि धान की कीमत एकाएक ५॥वाँ हिस्सा रह गयी। सुय्य को लोगों ने अन्नपति की पदवी दी।

अवन्तिवर्मा का बेटा शंकरवर्मा (८८३–९०२ ई०) भी बड़ा विजेता था। उसने पूरब और मिहिर भोज का मुकाबला किया और पच्छिम की तरफ़ उरशा (हज़ारा) और काबुल राज्य जीते। ८७० ई० में बोखारा के एक सेनापति याकूब-ए-लैस ने काबुल का क़िला ले लिया। काबुल शहर और इलाका हिन्दू राजाओं के पास रहा, किन्तु वे अपनी राजधानी सिन्ध नदी के पुराने घाट उदभाण्डपुर पर ले गये। उदभाण्डपुर अटक के १६ मील उत्तर है और अब ओहिन्द कहलाता है। वहाँ ८८३ ई० में अन्तिम राजा से उसके ब्राह्मण मन्त्री लल्लिय ने राज्य छीन लिया। लल्लिय के वंशज ब्राह्मण शाहि कहलाये। शंकरवर्मा ने लल्लिय को जीत कर अपना सामन्त बनाया। अरसे तक शाहियों का राज्य कश्मीरियों की अधीनता में रहा। मिहिरभोज से शंकरवर्मा की लड़ाई कांगड़ा के इलाके में हुई होगी।

§६. **दूसरे कन्नौज साम्राज्य की अवनति** (९१६ ई० से)—जब महेन्द्रपाल का बेटा महीपाल कन्नौज की गद्दी पर बैठा, तब भी उसका शासन कलिंग से काठियावाड़ और काठियावाड़ से कुल्लू तक माना जाता था। उधर कर्णाटक में कृष्ण अकालवर्ष का उत्तराधिकारी उसका पोता इन्द्र नित्यवर्ष हुआ। ९१६ ई० में मध्यदेश और महाराष्ट्र के सम्राटों में फिर लड़ाई हुई। इस बार इन्द्रराज ने कन्नौज नगरी को ले कर उजाड़ा और उसके एक सामन्त ने प्रयाग तक महीपाल का पीछा किया। तब से कन्नौज-साम्राज्य की घटती कला शुरू हुई। बङ्गाल के पालवंशी राजाओं ने ९५० ई० तक मगध फिर वापिस ले लिया। तो भी उत्तरी बङ्गाल को वे न ले सके और वहाँ एक कम्बोज वंश स्थापित हो गया।

§७. **चेदि, जभौती, मालवा, गुजरात, राजपूताना, पंजाब और महाराष्ट्र के नये राज्य** (लगभग ९२५–९५ ई०)—अन्तर्वेद का साम्राज्य कमज़ोर होने से विन्ध्यमेखला के सामन्त राज्य स्वतन्त्र हो गये। जमना के दक्खिन से विदर्भ और कलिंग की सीमा तक पुराना चेदि देश था। इस युग में चेदि नाम उसके दक्खिनी अंश का रहा; उत्तरी अंश जेजाकभुक्ति या जभौती कहलाता था। चेदि के कलचुरि-वंश की राजधानी त्रिपुरी (जबलपुर के पास आधुनिक

तेवर) थी। महाकोशल अर्थात् छत्तीसगढ़ भी उसके अधीन रहा। उसकी पच्छिमी सीमा वर्धा नदी तक थी। जझौती में चन्देल राजवंश था। उनकी राजधानी पहले महोबा और फिर खजुराहो में रही। कालंजर का प्रसिद्ध किला ले लेने से वे कालंजर के राजा भी कहलाये।



भद्रावती (भांदक, जि० चांदा) में एक पुराने पुल के खँडहर। भद्रावती य्वान-च्वाङ के समय महाकोशल की राजधानी थी। [भा० पु० वि०]

यशोवर्मा चन्देल (लगभग ९२०–५० ई०) ने डहाला से मगध, मिथिला और गौड तक चढ़ाई की, और पूरबी हिमालय तक जा कर वहाँ की कश्मीरी या कम्बोज बस्ती को हराया। उसके बेटे धंग ने (लगभग ९५०–९५ ई०) अङ्ग और राढ देश पर चन्देलों का आधिपत्य जारी रक्खा। दसवीं शती के अन्तिम भाग में पालवंशी राजा महीपाल (लगभग ९७५—१०२६ ई०) ने फिर धीरे-धीरे अपने पुरखों के राज्य का पुनरुद्धार किया। पहले उसने कम्बोज-वंश का अन्त कर उत्तरी बङ्गाल लिया (लग० ९८४ ई०)

और फिर मगध। अपने राज्यकाल के प्रायः अन्त में उसने मिथिला को भी ले लिया (लगभग १०२३ ई०)।

भारतवर्ष
पहले मध्य काल के मुख्य प्रदेश और स्थान

चेदि और जझौती के पच्छिम मालवा में परमार राजपूतों का एक राज्य स्थापित हुआ, जिसकी राजधानी धारा थी। मालवा के पच्छिम गुजरात में मूलराज सोलंकी (चालुक्य) ने ९६० ई० में एक राज्य स्थापित किया जिसकी

राजधानी अणहिल्लपाटन (अणहिलवाड़ा) थी। दक्खिनी राजपूताना पर प्रायः गुजरात और मालवा का अधिकार रहा। उत्तरी राजपूताना में चौहानों का एक स्वतन्त्र राज्य उठ खड़ा हुआ, जिसकी राजधानी साँभर थी। उधर ओहिन्द के शाहियों ने अपना राज्य पंजाब तक फैला लिया। इन राज्यों के बीच कन्नौज का प्रतिहार राज्य भी बना रहा।



काबुल-ओहिन्द के शाहि सामन्तदेव का सिक्का [श्री० सा० सं०]
सीधी तरफ़—राजा घोड़े पर; उलटी तरफ़—नन्दी; ऊपर लेख—श्री सामन्तदे(व)।

इन्द्रराज राठोड ने ६१६ ई० में कन्नौज पर दखल किया था; ६७२ ई० में मालवा के पहले स्वतन्त्र राजा सीयक (श्रीहर्ष) ने राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्यखेट पर दखल किया। तब राष्ट्रकूटों का राज्य समाप्त हुआ और तैलप चालुक्य ने महाराष्ट्र-कर्णाटक में फिर से चालुक्य राज्य स्थापित किया (६७३ ई०)। पिछले चालुक्यों की राजधानी कल्याणी नगरी (बिदर के पास) थी, इस कारण वे कल्याणी के चालुक्य कहलाये। सीयक का बेटा राजा मुंज छः बार तैलप को हराने के बाद सातवीं लड़ाई में उसके हाथ से मारा गया (लगभग ६६४ ई०)।

इन राजाओं के वंशज बाद में राजपूत कहलाये। इस से हम इन्हें भी राजपूत कह देते हैं। इन सब नये राज्यों में उत्तरी और दक्खिनी किनारे के दो राज्य—गज़नी और ताञ्जोर के—सबसे ज़्यादा ज़बरदस्त निकले; उन्होंने अगले पचास बरस में बीच के सब राज्यों को एक बार झकझोर दिया।

अध्याय ४

गज़नी और तांजोर के साम्राज्य

(६८५-१०४५ ई०)

§१. तुर्कों का फिर बढ़ना (६५० ई० से)—मध्य एशिया में शकों तुखारों का स्थान किस प्रकार हूण-तुर्कों ने ले लिया और उनपर पहले चीनियों तथा पीछे अरबों ने कैसे अपना आधिपत्य जमाया, सो कह चुके हैं। ६५६ ई० में ये चीन के शासन में चले गये थे, और ७५१ ई० में चीन का स्थान अरबों ने लिया था। खिलाफ़त-साम्राज्य टूटने पर कई अरब और ईरानी राजवंश सारे पच्छिम और मध्य एशिया पर शासन करते रहे। तुर्क लोग प्रायः तीन सौ बरस तक गौण रहे। इस बीच मध्य एशिया में बौद्ध धर्म का स्थान इस्लाम ले रहा था। तुर्कों की पच्छिमी जातियाँ पहले मुसलमान हुईं। यारकन्द और काशगर के पूरबी तुर्क दसवीं शताब्दी के अन्त में मुसलमान हुए। ६५० ई० के करीब से अरबों और ईरानियों के अधीन जो तुर्क सरदार थे वे सिर उठाने लगे। कुछ ही समय में तुर्क सत्ता उन सब देशों पर छा गयी जो पहले खिलाफ़त के अधीन थे। इसी समय अलप्-तगीन नामक तुर्क ने, जो पहले बुखारा के अमीर के यहाँ हाजीब अर्थात् प्रतिहार (द्वारपाल) था, गज़नी में एक छोटी सी तुर्क जागीर की नींव डाली। गज़नी को बुखारा के मुसलमानों ने कुछ ही समय पहले छीना था और अब भी उसके पड़ोस में सब तरफ़ हिन्दू ही थे।

§२. सुबुक्-तगीन (६७७-६७ ई०)—अलप्-तगीन के पीछे उसका दामाद सुबुक्-तगीन जो उसी की तरह पहले बुखारा में प्रतिहार रहा था, गजनी का मालिक बना (६७७ ई०)। जिस अन्तिम ईरानी राजा यज़्दगुर्द से

अरबों ने राज्य छीना था, उसकी एक लड़की एक तुर्क सरदार को ब्याही थी। कहते हैं सुबुक्-तगीन उसी का वंशज था। यह बात सच हो या झूठ, इसमें सन्देह नहीं कि तुर्क लोग अब पुराने हूण न रहे थे। मध्य एशिया में आ कर शकों-तुखारों और ईरानियों का आर्य खून उनमें पूरी तरह मिल चुका था।

सुबुक्-तगीन ने अपना राज्य बढ़ाना शुरू किया, और पूरब और उत्तर तरफ़ कई किले छीने, जो कि ओहिन्द के शाहि जयपाल के थे (लगभग ६८६ ई०)। जयपाल ने उसके इलाके पर चढ़ाई की। कई दिन की घोर लड़ाई के बाद, हिन्दू सेना जिस चश्मे का पानी पीती थी उसे शराब से गन्दा कर तुर्कों ने उन्हें सन्धि करने पर विवश किया। जयपाल ने कुछ किले देना स्वीकार कर लिया, पर लौट कर उसने वे किले न दिये। तब सुबुक्-तगीन उसके इलाकों को लूटने और उजाड़ने लगा। निंग्रहार के उत्तर-पच्छिम पहाड़ों की उस तराई का, जिसमें अलीशांग नदी काबुल में मिलती है, संस्कृत नाम लम्पाक था, और अब लमगान है। सुबुक्-तगीन ने उसी को अपना लक्ष बनाया था। जयपाल कन्नौज के राजा राज्यपाल और जभौती के राजा धंग की सहायता मँगा कर एक बड़ी सेना के साथ फिर गज़नी की तरफ़ बढ़ा। कुर्रम नदी की दून में लड़ाई हुई। सुबुक्-तगीन ने सामने लड़ने के बजाय ५-५ सौ सवारों की टुकड़ियों से शत्रु सेना पर झपट्टे मारने की नीति पकड़ी, जिसमें वह सफल हुआ। लमग़ान उसके अधीन हो गया।

§३. महमूद गज़नवी (६६७-१०२६ ई०)—सुबुक्-तगीन की जागीर उसके पीछे ६६७ ई० में उसके बेटे महमूद को मिली। कुछ ही समय बाद बुखारा-खुरासान का राज्य तुर्क सरदारों के उपद्रवों से तथा पामीर पार के काशगर के बौद्ध तुर्कों के हमलों के कारण समाप्त हो गया। आमू-सीर-दोआब काशगर के राज्य में चला गया, और खुरासान का बाकी सब राज्य, जिसमें ईरान के अतिरिक्त आमू और कास्पियन के बीच का प्रदेश—ख्वारिज़्म—था, महमूद को मिला। महमूद ने सुलतान बन कर नये राज्य पर अपना अधिकार दृढ़ किया। वह सीस्तान पर काबू करने में लगा था, जब उसे खबर मिली कि जयपाल फिर लड़ाई की तैयारी कर रहा है।

इससे पहले कि जयपाल को समय मिले उसने एकदम पेशावर पर हमला कर दिया (१००१ ई०)। जयपाल अपने बेटे आनन्दपाल और अनेक सरदारों सहित कैद हुआ। पेशावर और ओहिन्द अर्थात् अटक नदी तक का कुल इलाका विजेता के हाथ में चला गया। आनन्दपाल को ओल रख उसने जयपाल को जाने दिया; पर जयपाल को अपनी हारों से इतनी ग्लानि हुई कि वह आग में जल मरा। तब महमूद ने आनन्दपाल को छोड़ दिया। आनन्दपाल ने नमक की पहाड़ियों में भेरा को अपनी राजधानी बनाया और वहीं रहने लगा। यह महमूद की पहली चढ़ाई थी। कहते हैं उसने भारतवर्ष पर कुल १७ चढ़ाइयाँ कीं थीं।

ओहिन्द के बाद "भाटिया" और मुलतान ये दो और राज्य महमूद के पड़ोसी थे। "भाटिया" दक्खिन पंजाब में भाटी राजपूतों की बस्ती थी। पंजनद के पास उच्च नाम का स्थान उसकी राजधानी थी। महमूद ने पहले "भाटिया" पर चढ़ाई की। किले के बाहर तीन दिन के घोर युद्ध के बाद राजा विजयराय मारा गया। विशेष लूट विजेता के हाथ नहीं लगी। लौटते समय उसकी सेना बुरी तरह सतायी गयी और स्वयम् सुलतान की "कीमती जान" बड़ी मुश्किल से बची।

मुलतान के शासक मुसलमान थे। महमूद ने उनपर चढ़ाई करने के लिए आनन्दपाल से उसके राज्य में से लाँघने की इजाज़त माँगी। आनन्दपाल ने इजाज़त न दी। तब महमूद ने उसके प्रदेश में घुस कर उसे उजाड़ना शुरू किया, और कई मुठभेड़ों में आनन्दपाल को हरा कर कश्मीर की ओर भगा दिया। मुलतान का शासक यह समाचार पा कर भाग गया। महमूद ने मुलतान पर अधिकार कर प्रजा से भारी जुरमाना वसूल किया।

आनन्दपाल ने फिर एक बार कन्नौज, जझौती आदि के राजाओं से सहायता मँगा कर अटक के पूरब एक बड़े युद्ध की तैयारी की (१००९ ई०)। उस इलाके के वीर गक्खड़ भी उसकी सेना में शामिल थे। महमूद भी एक बड़ी फौज के साथ आया। ४० दिन तक दोनों सेनाएँ अटक के पास छछ के मैदान में एक दूसरे की ताक में पड़ी रहीं। अन्त में गक्खड़ों ने तुर्कों पर हमले

शुरू किये। लड़ाई में तुर्कों के पैर उखड़ गये और महमूद पीछे हटने की सोचने लगा। उसी समय आनन्दपाल का हाथी बिगड़ कर भागा और उसकी सेना उसे राजा के हारने का संकेत समझ कर भाग खड़ी हुई। इस हार ने हिन्दू राज्यों की हिम्मत तोड़ दी; उन पर महमूद का आतंक जम गया। शाहियों के राज्य के पूरब लगा हुआ कीर देश (कांगड़ा) का राज्य था। छछ की विजय के बाद महमूद सीधा उस पर जा टूटा, और वहाँ के नगरकोट के मन्दिर को लूटा।

इतने हमलों के बावजूद भी पंजाब का शाहि-राज्य न टूटा था। महमूद की एक और चढ़ाई में आनन्दपाल मारा गया। उसके बेटे त्रिलोचनपाल ने वार्षिक कर देना स्वीकार किया, और अपने दो हज़ार सैनिक सुलतान की सेवा में रख दिये। महमूद का राज्य पच्छिम तरफ़ भी कास्पियन तक फैला हुआ था। उधर उसने कास्पियन के पच्छिम गर्जिस्तान (ज्यौर्जिया) तक के प्रदेश जीते। आमू पार के बौद्ध तुर्कों का उसे कई बार मुकाबला करना पड़ता था। गज़नी के पड़ोस के ग़ोर आदि इलाकों के पठानों को काबू में रखने के लिए भी उसे सदा सजग रहना पड़ता था। वे पठान तब तक हिन्दू थे। चार बरस तक महमूद और त्रिलोचनपाल के बीच शान्ति रही; किन्तु १०१४ ई० में महमूद ने फिर चढ़ाई की। अटक और जेहलम के बीच पहाड़ी इलाके में तौसी नदी के किनारे लड़ाई हुई। कश्मीर के राजा संग्रामराज ने अपने सेनापति तुंग को त्रिलोचन शाहि की मदद को भेजा। महमूद ने कुछ सेना तौसी पार भेजी, जिसे तुंग ने मार भगाया। शाहियों को अब तक तुर्कों के "छल-युद्ध" का तजुरबा हो चुका था। त्रिलोचनपाल ने तुंग को समझाया कि एकाएक आगे न बढ़े; किन्तु तुंग अपनी उस जीत के मद में नदी पार कर गया और अन्त में महमूद की बड़ी सेना से हार गया। त्रिलोचन कश्मीर भाग गया और पञ्जाब पर महमूद ने दखल कर लिया। कश्मीरी इतिहास लेखकों ने तुंग की उस मूर्खता को ही पञ्जाब के पतन का कारण माना है।

मुलतान और पञ्जाब पर दखल करने के बाद महमूद ने और आगे बढ़ना शुरू किया। उसने थानेसर पर धावा बोला। फिर १०१८ ई० में एक

लाख सेना के साथ उसने अन्तर्वेद पर चढ़ाई कर मथुरा और कन्नौज को लूटा। राजा राज्यपाल गङ्गा पार भाग गया। एक और चढ़ाई के बाद उसने कर देना स्वीकार किया। कालंजर के युवराज विद्याधर और उसके ग्वालियर के सामन्त ने इस कायरता के कारण राज्यपाल को मार डाला। तब महमूद ने एक चढ़ाई ग्वालियर और कालंजर पर भी की।

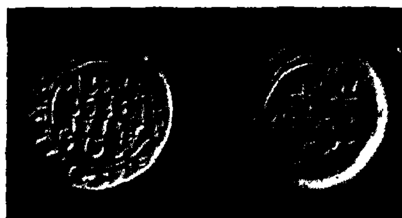
महमूद के पड़ोसी उत्तर भारत के हिन्दू राज्यों में से अब एक मात्र कश्मीर ऐसा बचा था जिसने उससे नीचा न देखा था। १०२१ ई० में महमूद ने कश्मीर पर भी चढ़ाई की, किन्तु लोहर नाम के पहाड़ी किले से हार कर उसे लौटना पड़ा।

महमूद की अन्तिम प्रसिद्ध चढ़ाई १०२३ ई० में सुराष्ट्र के सोमनाथ मन्दिर पर हुई। मुलतान से तीस हज़ार ऊँटों पर रसद-पानी ले कर वह जालोर के रास्ते अणहिलवाड़ा की तरफ़ बढ़ा। राजा भीम सोलंकी भाग कर कच्छ चला गया। समुद्र के किनारे सोमनाथ पर पहुँच कर महमूद ने नगर और मन्दिर को लूटा, और उसका शिव-लिंग* तोड़ डाला। वह मन्दिर काठ का था और धारा के राजा मुंज परमार के भतीजे सुप्रसिद्ध राजा भोज ने उसे कुछ ही पहले बनवाया था। जब महमूद लौटने को था तो उसे खबर मिली कि मालवा का परमारदेव अर्थात् राजा भोज लौटते हुए उसका रास्ता काट कर हमला करेगा। इसलिए महमूद राजपूताना के बजाय कच्छ और सिन्ध के रास्ते लौटा। सिन्ध नदी के नाविक जाटों ने उसकी सेना को बहुत सताया और बहुत सी लूट रास्ते में छीन ली। उन्हें दण्ड देने के लिए महमूद ने एक और चढ़ाई की।

§४. **महमूद का चरित्र**—१०२६ ई० में महमूद का देहान्त हुआ। वह अपने ज़माने का अद्वितीय सेनापति था। मुस्लिम इतिहासलेखकों का एक अरसे तक यह विश्वास रहा कि काफ़िरों को लूटना धर्म है। इस कारण उन्होंने महमूद का हाल इस ढङ्ग से लिखा कि उसकी भारतीय चढ़ाइयों का एकमात्र

* वह लिङ्ग ठोस था; उसके खोखले पेट में रत्न भरे होने की बात पीछे की गप्प है।

प्रयोजन लूट ही प्रतीत होता है। असल में वह बात न थी। उसकी १७ चढ़ाइयों में से १३-१४ पञ्जाब पर हुईं—पञ्जाब ने उसका अन्त तक मुकाबला किया। उन चढ़ाइयों का उद्देश धीरे-धीरे अपने राज्य को बढ़ाना और संगठित करना ही था। शत्रु को तङ्ग करने और डराने के लिए वह लूट-मार और क्रूरता अवश्य करता था। किन्तु वह सफल सेनापति था, इसका यह अर्थ है कि उसकी सेना में पूरा नियमपालन होता था। उसके शहर लूटने, योद्धाओं को कैद और कतल करने आदि के वृत्तान्त में कहीं स्त्रियों, बच्चों को सताने की बात नहीं सुनी जाती। वह स्वयम् सच्चरित्र था, और उसके अपने राज्य में प्रजा खूब सुरक्षित थी तथा शासन बहुत ही व्यवस्थित और सुसंगठित था। अपने धर्म पर उसे अटल विश्वास था, और उसके जीवन के सामने एक बड़ा लक्ष्य था। तो भी उसे कोरा धर्मान्ध नहीं कह सकते। उसके दरबार में फ़ारसी का महाकवि फ़िरदौसी था, जिससे उसने ईरान के पुराने अग्निपूजक राजाओं की कीर्ति शाहनामा नामक ग्रन्थ में लिखवा कर अपने को उनका वंशज बताया। अल्बेरूनी नाम का एक और विद्वान् उसके यहाँ था, जिसने पेशावर और मुलतान के पण्डितों से संस्कृत पढ़ी और भारतवर्ष के विषय में एक बड़ा ग्रन्थ लिखा। महमूद ने अफ़ग़ानिस्तान के हिन्दुओं को ज़बरदस्ती मुसलमान ज़रूर बनाया, परन्तु वैसा किये बिना उसका राज्य दृढ़ न हो सकता था। क्योंकि वह हिन्दू अफ़ग़ानों के देश में बिलकुल विदेशी था, और अपनी प्रजा से किसी बात में एकता पैदा करना उसके लिए ज़रूरी था। उसकी सेना में बहुत से हिन्दू सैनिक और सरदार भी थे, जो पच्छिम की लड़ाइयों में बड़ी वीरता दिखाते रहे थे। उसने हिन्दू मन्दिरों को ज़रूर लूटा; किन्तु उस युग में मन्दिरों में उचित से इतनी अधिक



कलमे के संस्कृत अनुवाद सहित महमूद का टंका

[लाहौर म्यू०]

सम्पत्ति लगायी जाने लगी थी कि किसी न किसी राजपरिवर्तन में वे लुटे बिना



कला-ए-बुस्त, अफ़गानिस्तान, में महमूद के समय की मेह्राब [फ़ादर हेरस के सौजन्य से]

न रह सकते थे। मथुरा के मन्दिरों की कारीगरी देख कर महमूद चकित हो गया, और भारत से कारीगर ले जा कर उसने गज़नी में अत्यन्त शानदार



गज़नी में महमूद के बनवाये एक ताल की पाल;—बाँये तरफ़ की नयी पाल अमीर हबीबुर्रहमान की बनवायी हुई है।
[फ़ादर हैरस के सौजन्य से]

मसजिदें और महल बनवाये। जझौती की कृत्रिम पहाड़ी झीलों के नमूने पर

उसने अफ़ग़ानिस्तान में झीलें बनवायीं। उसके चाँदी के सिक्कों पर यह संस्कृत लेख पाया जाता है—

अव्यक्तमेकं मुहम्मद अवतार नृपति महमूद अयं टंको महमूदपुरे घटे हतो जिनायन-संवत्...।

अर्थात्—"एक अव्यक्त (ला इलाह इल्लिल्लाह), अवतार मुहम्मद (मुहम्मद रसूल इल्लाह); राजा महमूद। यह टंका महमूदपुर (लाहौर) की टकसाल में छापा गया, जिन (हज़रत) के अयन (भागने) का संवत्...।"



राजराज का बनवाया बृहदीश्वर मन्दिर, तांजोर—भीतरी गोपुर का दृश्य [भा० पु० वि०]

§५. राजराज और राजेन्द्र चोल (९८५–१०४४ ई०)—महमूद की तुर्क सेना जब ग़ज़नी से सोमनाथ की ओर बढ़ रही थी, उसी समय राजेन्द्र चोल का तामिल दल तांजोर से बङ्गाल पर टूट रहा था। उत्तर और पच्छिम भारत की जो दशा ग़ज़नी के तुर्क राजा ने की, दक्खिन और पूरब की वही दशा तांजोर के चोल राजाओं ने की। राजराज चोल ९८५ ई० में तांजोर

की गद्दी पर बैठा। पाण्ड्य और केरल को उसने पूरी तरह वश में किया, वेंगि के चालुक्यों और कलिंग पर आधिपत्य जमाया, कर्णाटक पर चढ़ाई कर तैलप के बेटे सत्याश्रय को चार बरस की लड़ाई के बाद बुरी तरह हराया। स्थल और जल सेना से उसने सिंहल को भी जीत लिया, और लकदिव और मालदिव को अपने राज्य में मिला लिया। तांजोर में उसका बनवाया विशाल मन्दिर अब तक मौजूद है। उसके राज्य का शासन बहुत ही बाक़ायदा था। प्रत्येक ग्राम की अपनी पंचायत थी, और उन पंचायतों के प्रतिनिधि तांजोर के मन्दिर में इकट्ठे होते थे।

राजराज के बाद राजेन्द्र चोल राजा बना (१०१२ ई०)। उसने अपने जंगी बेड़े से श्रीविजय* ("मलाया" प्रायद्वीप, सुमात्रा, जावा) के शैलेन्द्र राजा संग्राम-विजयोत्तुंगवर्मा पर हमला कर उसे जीता और बृहत्तर भारत का बड़ा अंश अपने अधीन किया। कलिंग के रास्ते उसने गौड (पच्छिमी बङ्गाल) के राजा महीपाल पर चढ़ाई कर उसे युद्ध में भगा दिया। गंगा तक विजय करने के कारण वह "गंगैकोंड" कहलाया। महमूद के प्रायः पन्द्रह बरस पीछे उसका देहान्त हुआ।

---

* देखिये ऊपर पृ० १६७।

अध्याय ५

पिछले राजपूत राज्य

(लगभग १०१०—११९० ई०)

§१. **महमूद के वंशज**—महमूद के समय में ही गुज़ नाम की नयी तुर्क जातियाँ आमू के इस पार आयीं। उनके एक राजवंश का नाम सेल्जुक था। सेल्जुकों ने महमूद के पीछे सारे ईरान और पच्छिमी एशिया पर अधिकार कर लिया। अफ़ग़ानिस्तान, पंजाब और सिन्ध में महमूद के वंशजों का अधिकार बचा रहा। महमूद के बेटे मसऊद (१०३०-४० ई०) के समय तिलक नाम का हिन्दू अफ़गान पञ्जाब का शासक रहा। पञ्जाब से तुर्कों के कई हमले कन्नौज-साम्राज्य और राजपूताने पर होते रहे।

§२. **राजा भोज, गांगेयदेव और कर्ण (१०१०-१०७३ ई०)**—भारतवर्ष के ठीक मध्य के केवल दो राज्य ऐसे थे जो तुर्कों और तामिलों के हमलों से बच गये थे। एक था मालवा और दूसरा चेदि। महमूद और राजेन्द्र के बाद ये दोनों भारत में मुख्य हो गये। मालवा के राजा भोज ने लगभग १००९ से १०५४ ई० तक राज्य किया। उसका नाम भारत का बच्चा-बच्चा जानता है। उसी समय चेदि का राजा गांगेयदेव (लगभग १०१५-४१ ई०) और उसका बेटा कर्ण (लगभग १०४१-७३ ई०) हुआ। कन्नौज और जझौती के निःशक्त हो जाने के कारण गांगेय ने प्रयाग और काशी पर उस समय अधिकार कर लिया था, जब वे राज्य महमूद के साथ जीने मरने की कशमकश में फँसे थे। फिर कर्ण ने राज पाते ही मगध पर चढ़ाई की। राजा महीपाल के बेटे नयपाल (१०२६-४१ ई०) और कर्ण के बीच में पड़ कर दीपंकर श्रीज्ञान नाम के बौद्ध आचार्य ने शान्ति करा दी। कर्ण अपने समय के भारत में सब से प्रतापी राजा था। हिमालय में कीर (नगरकोट) राज्य

तक, जो तब ममूहद के वंशजों के अधीन था, उसने चढ़ाइयाँ की और विजय पायी। भोज ने और उसने तुर्कों से उत्तर हिन्दुस्तान को बहुत कुछ उबारा। थानेसर, हाँसी और नगरकोट के प्रदेश १०४४ ई० तक स्वतन्त्र हो गये। त्रिपुरी के अतिरिक्त काशी को भी कर्ण ने अपनी राजधानी बनाया। लगभग १०५४ ई० में उसने गुजरात के राजा भीम सोलंकी से मिल कर धारा नगरी पर चढ़ाई की। तभी भोज की मृत्यु हुई।

§३. कीर्तिवर्मा चन्देल और चन्द्र गाहड्वाल (१०४६-१११० ई०)—कुछ बरस बाद कीर्तिवर्मा चन्देल (लगभग १०५४-१०६६ ई०) ने चेदि के इस सर्व-विजयी कर्ण को परास्त किया। तब भोज के वंशज उदयादित्य ने भी मालवा राज्य का पुनरुद्धार किया (लगभग १०७५ ई०)। १०८० ई० में चन्द्रदेव गाहड्वाल (गहरवार) ने कन्नौज में एक नया मज़बूत राज्य स्थापित कर अन्तर्वेद को तुर्क हमलों से सुरक्षित किया।

§४. राजेन्द्र चोल के वंशज (१०४५-११४२ ई०)—उधर राजेन्द्र चोल का बेटा राजाधिराज चोल तुंगभद्रा के किनारे कोप्पम् की लड़ाई में सोमेश्वर (१म) चालुक्य के हाथ मारा गया (१०५२ ई०)। उसी रणभूमि में उसके भाई राजेन्द्र परकेसरी ने मुकुट पहना और सोमेश्वर को हरा दिया। १०६८ ई० से चोल राजाओं ने श्रीविजय पर आधिपत्य छोड़ दिया। १०७४ ई० में चोल वंश में कोई पुरुष न रहा; तब राजेन्द्र गंगैकोंड का एक दोहता, जो वेङ्गि का राजकुमार था, तांजोर की गद्दी पर कुलोत्तुंग चोल नाम से बैठा, जिससे वेङ्गि का चालुक्य और तांजोर का चोल राज्य मिल कर एक हो गये। कुलोत्तुंग के समय उड़ीसा में भी राजेन्द्र गंगैकोण्ड का एक दोहता अनन्तवर्मा राज करता था। वह गंग वंश का था, पर चोल माता का बेटा होने से चोडगंग कहलाने लगा। उसने ७१ वर्ष (१०७६-११४७ ई०) तक उड़ीसा का सुशासन किया। पुरी का प्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर उसी के समय बना।

§५. कर्णाटक की प्रधानता; सेन और कर्णाट वंश (१०७५-११५६ ई०)—चोल राजाओं से पिटने के बावजूद भी कर्णाटक के नये राज्य

में काफ़ी जान थी। ११वीं सदी के मध्य से वह फिर चमक उठा। सोमेश्वर का बेटा विक्रमांक चालुक्य अपने पिता से भी अधिक प्रतापी निकला (१०७६–११२५ ई०)। इन राजाओं के समय कर्णाटक की तूती फिर सारे भारत में बोलने लगी। १० वीं सदी से ही कनाडे सिपाही भारत भर में प्रसिद्ध थे। १०८० ई० के करीब विजयसेन और नान्यदेव नामक दो कनाडे सैनिकों ने पाल राजाओं से बङ्गाल और तिरहुत छीन कर दो नये राज्य बनाये। कर्णाटक का तब इतना प्रभाव था कि सुदूर कश्मीर में विक्रम चालुक्य का समकालीन राजा हर्ष (१०८६–११०१ ई०) अपने दरबार में कर्णाटक की ही चाल-ढाल की नक़ल करता था।

§६. गुजरात के सोलंकी और अजमेर के चौहान (१०६०–११६२ ई०)—११वीं सदी के अन्त में अणहिलवाड़ा का चालुक्य राज्य भी फिर सँभल गया। वहाँ सिद्धराज जयसिंह (१०६३–११४२ ई०) और कुमार-पाल (११४२–७३ ई०) नाम के दो प्रतापी और योग्य राजा हुए। बारह बरस लड़ कर सिद्धराज ने मालवा का राज्य जीत लिया। सोमनाथ के मन्दिर को इन राजाओं ने अब पत्थर का बनवा दिया।

इनके पड़ोसी और समकालीन चौहान अजयराज और आना थे। अजय-राज ने अजमेर बसा कर साँभर के बजाय उसे राजधानी बनाया। उसके बेटे आना को पहले तो सिद्धराज ने हराया, पर पीछे अपनी लड़की काञ्चन-देवी ब्याह दी। आना की पहली रानी से विग्रहराज उर्फ़ बीसलदेव पैदा हुआ, और काञ्चनदेवी से सोमेश्वर। इसी बीसलदेव ने ११५० ई० के करीब हाँसी और दिल्ली को जीत कर अजमेर राज्य में मिलाया। दिल्ली नगरी की स्थापना उससे करीब १०० साल पहले अनङ्गपाल नामक एक तोमर सरदार ने की थी। बीसलदेव ने पञ्जाब के तुर्कों को पीछे ढकेला। समूचा राजपूताना उसके अधीन था। ११६३ ई० में दिल्ली की अशोक वाली प्रसिद्ध लाट पर, जो तब अम्बाला के उत्तर थी, उसने एक लेख खुदवाया जिसका अभिप्राय यह है कि "विन्ध्याचल से हिमालय तक राजा बीसल ने विजय की, म्लेच्छों को उखाड़ कर आर्यावर्त्त को फिर से यथार्थ आर्यावर्त्त बनाया। चौहान राजा

विग्रहराज अब अपनी सन्तान से कहता है कि इतना तो हमने किया, बाकी जो रहा उसे पूरा करने का उद्योग तुम मत छोड़ना।"

बीसलदेव के पीछे सोमेश्वर अजमेर की गद्दी पर बैठा। उसका विवाह चेदि की एक राजकुमारी कर्पूरदेवी से हुआ था। उनका पुत्र प्रसिद्ध पृथ्वीराज चौहान हुआ (११७६-६२ ई०)। पृथ्वीराज वीर राजा था, पर उसमें वह राजनैतिक दूर-दर्शिता न थी जो उसके चचा बीसलदेव में थी। बजाय इसके कि वह बीसलदेव की वसीयत पर ध्यान दे कर पञ्जाब की तरफ़ अपनी वीरता आज़माता, उसने पूरब की तरफ़ उसका दुरुपयोग किया। महमूद के समय जभौती का राज्य कन्नौज से भी अधिक मज़बूत था। जमना के दक्खिन ग्वालियर तक के प्रदेश जभौती के अधीन थे। फिर जभौती के राजा कीर्तिवर्मा ने ही भारत-विजयी कर्ण को हराया था। पृथ्वीराज ने उसके वंशज परमर्दी चन्देल पर चढ़ाई कर धसान नदी तक के प्रदेश उससे छीन लिये (११८२ ई०)। किन्तु उसी समय पृथ्वीराज का एक प्रबल शत्रु पञ्जाब में पैर जमा रहा था।

§७. **गाहड़वाल वंश** (११००-११६४ ई०)—उधर कन्नौज में चन्द्र गाहड्वाल का पोता गोविन्दचन्द्र (१११४-५४ ई०), उसका पुत्र विजयचन्द्र, और विजयचन्द्र का पुत्र जयच्चन्द्र भी प्रबल और योग्य राजा हुए। कन्नौज के गौरव को उन्होंने फिर से स्थापित किया। वे काशी के राजा भी कहलाते थे। बङ्गाल के नये सेन वंश और तिरहुत के कर्णाट वंश ने पाल राजाओं से उनका राज्य छीन लिया; तब केवल मगध उनके पास बच रहा। उसे भी विजयसेन के पोते राजा लक्ष्मणसेन (१११६-११७० ई०) ने छीनना चाहा। तब गाहड्वालों ने मगध में दखल दिया। बीसलदेव जब दिल्ली और हाँसी को जीत रहा था, लगभग तभी गोविन्दचन्द्र ने मुंगेर तक अपना अधिकार कर लिया (११४५ ई०)। उसके बाद १२ वीं सदी के अन्त तक कभी तो मगध सेन राजाओं के हाथ आ जाता, और कभी गाहड्वालों के, और बीच-बीच में कभी राजा गोविन्दपाल भी स्वतन्त्र हो जाता था।

६८. धोरसमुद्र और ओरंगल राज्य (१११? ई० से)—कल्याणी का विक्रमांक चालुक्य यद्यपि प्रबल राजा प्रसिद्ध था, तो भी उसके पिछले समय में उसकी सीमाओं के दो सामन्त सिर उठाने लगे। ११११ ई० में मैसूर अर्थात् दक्खिनी कर्णाटक में यादवों का एक वंश प्रबल हो उठा। उस वंश की छेड़ (चिढ़ाने) का नाम होयशल था, और उसकी राजधानी धोरसमुद्र। १११७ ई० में चालुक्य राज्य की पूरबी सीमा पर उत्तरी तेलंगाना में काकतीय वंश के सामन्तों ने सिर उठाया। उनकी राजधानी ओरंगल थी। चालुक्य राज्य को ओरंगल ने उड़ीसा से और धोरसमुद्र ने चोल राज्य से अलग कर दिया।

६९. देवगिरि के यादव (११८६ ई० से)—फिर ११५६ ई० के बाद कल्याणी का राज्य बिलकुल ढीला पड़ने लगा। उसके किनारों के प्रदेश धोरसमुद्र के यादवों और ओरंगल के काकतीयों ने दबा लिये थे। बाकी ठेठ महाराष्ट्र बचा, उसे भी ११८६ ई० में उत्तरी महाराष्ट्र के भिल्लम नामक एक यादव सरदार ने छीन लिया, और देवगिरि में अपनी राजधानी स्थापित की।

अध्याय ६

पहले मध्य काल की सभ्यता

§१. **बौद्ध धर्म की अवनति—वज्रयान**—हर्षवर्धन-युग का जीवन पहले-पहल गुप्त-युग के जीवन सा लगता है, पर उसमें कई नयी प्रवृत्तियाँ शुरू हो गयी थीं। हर्ष के समय बौद्ध धर्म उन्नति पर था, तो भी उसमें अवनति का बीज पड़ चुका था। कम से कम सिन्धु के एक प्रान्त में वह अवनति स्पष्ट दिखायी देती थी। युवानच्वाङ का कहना है कि वहाँ के भिक्खु-भिक्खुनी निठल्ले कर्तव्य-विमुख और पतित थे। सिन्ध पर जब अरब आक्रमण हुआ तब वहाँ भी श्रमणों का निकम्मापन स्पष्ट प्रकट हुआ। दूसरे प्रान्तों की हालत अच्छी थी, पर वहाँ भी यह बुरी प्रवृत्ति शुरू हो चुकी थी। महायान में से एक नया पन्थ वज्रयान निकल आया। वह बौद्ध वाममार्ग छठी शती ई० में आन्ध्र देश के श्रीपर्वत में पहले-पहल प्रकट हुआ। महायान बुद्ध को संसार के उद्धारक रूप में देखता था। वज्रयान ने उसे "वज्रगुरु" बना दिया। वज्रगुरु वे उस आदर्श पुरुष को कहते थे, जिसे अलौकिक "सिद्धियाँ" प्राप्त हों। उन सिद्धियों को पाने के लिए अनेक गुह्य साधनाएँ करनी पड़ती थीं। आठवीं से ग्यारहवीं शती तक वज्रयान के ८४ सिद्ध हुए। प्रसिद्ध गोरखनाथ उन्हीं ८४ में से एक था। ७४७ ई० में नालन्दा महाविहार के शान्तरक्षित नामक आचार्य निमन्त्रण पा कर तिब्बत गये। उन्होंने वहाँ पद्मसम्भव नामक सिद्ध को भी बुलवाया। पद्मसम्भव को तिब्बती अब भी अपना गुरु मानते हैं। फिर १०४०–४२ ई० में विक्रमशिला विहार से जो आचार्य दीपङ्कर श्रीज्ञान उर्फ अतिशा तिब्बत गया, वह तो स्वयम् वज्रयानी था।

§२. **शंकराचार्य**—बौद्ध धर्म की अवनति का मुख्य कारण उसके अन्दर की ये नयी प्रवृत्तियाँ थीं। वैदिक और पौराणिक धर्म का मुकाबला भी उसके साथ जारी था। सातवीं सदी में कुमारिल नामक विद्वान् ने फिर से वैदिक यज्ञों को चलाना चाहा। फिर ७८८ ई० में केरल देश में शंकराचार्य उत्पन्न हुए। कहा जाता है कि शंकर ने बौद्ध मत को भारत से उखाड़ दिया। सच बात यह है कि शंकर के विचारों पर बौद्ध दार्शनिक वसुबन्धु की पूरी छाप है। इसी कारण वे प्रच्छन्न बौद्ध (छिपे बौद्ध) कहलाते हैं। और चूँकि उन्होंने अपने दर्शन में बौद्धों की मुख्य बातें अपना लीं, इसलिए बौद्ध दर्शन अनावश्यक सा हो गया। शंकर ने घूम-घूम कर सारे भारत में अपने मत का प्रचार किया। एक बार मंडन मिश्र नाम के विद्वान् से उनका शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें मंडन की विदुषी स्त्री मध्यस्थ बनायी गयी, और उसने अपने पति के विरुद्ध फैसला दिया! शंकर ने भारत के चार कोनों में अपने चार मठ स्थापित किये—एक केरल में शृंगेरी मठ, दूसरा गढ़वाल में बदरिकाश्रम, तीसरा पुरी में और चौथा द्वारिका में। भारतवर्ष के समूचे विचार पर शंकर का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

दो-तीन शताब्दियों तक तो उनके विचारों के आगे दूसरी कोई विचार-पद्धति टिकने न पायी। किन्तु वे प्रच्छन्न बौद्ध थे। आस्तिक लोग धीरे-धीरे अनुभव करने लगे कि उनकी पद्धति में भक्ति को कोई स्थान नहीं है। इसी कारण पीछे ग्यारहवीं सदी से आस्तिक विद्वान् उसके विरोध में आवाज़ उठाने लगे। उस विरोध के पहले नेता रामानुज थे जो तामिल देश में १०१६ ई० में पैदा हुए।

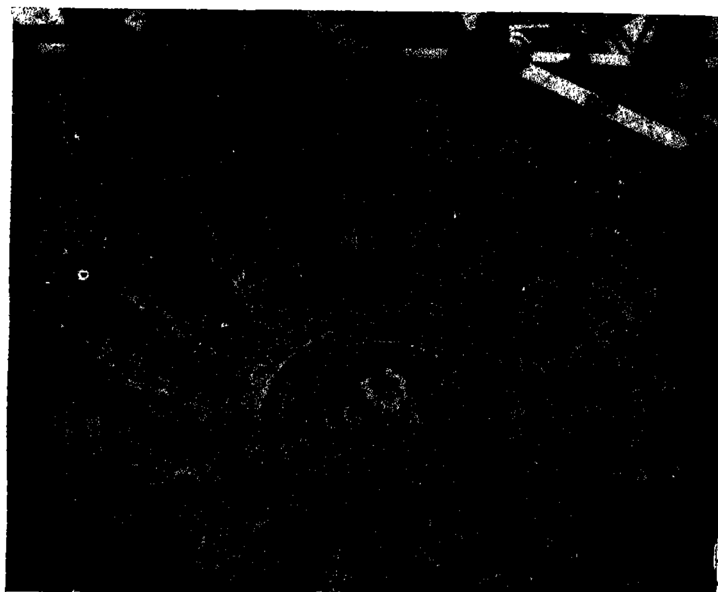
§३. **पौराणिक धर्म की अवनति, मूर्त्तिपूजा और भक्ति-मार्ग**—किन्तु इन आचार्यों के ऊँचे-ऊँचे विचार साधारण जनता के लिए नहीं थे। वह अपने देवताओं को ही पूजती रही। परन्तु जनता की वह सरल भक्तिमयी पौराणिक पूजा भी, जिसने सातवाहन और गुप्त युगों में एक नया जीवन जगाया था, अब आडम्बर से घिर गयी। देवताओं के सुनहले मन्दिर बनने लगे; उनका साज-शृंगार होने लगा और उनकी पूजा एक भारी प्रपंच हो गयी। जीवित देवता

मानों जड़ हो गये। महायान से जैसे मन्त्रयान और वज्रयान पैदा हुए, वैसे ही शैव मत में पाशुपत और कापालिक, वैष्णव मत में गोपी-लीला, और शाक्त सम्प्रदाय में आनन्दभैरवी की पूजा आदि घोर और अश्लील पन्थ चल पड़े। "सिद्धि" पाना अब सभी पन्थों में जीवन का मुख्य ध्येय बन गया। ये "अतिमार्ग" या "वाममार्ग" पहले मध्य काल के पिछले अंश में विशेष रूप से बढ़े।

पर इनके बीच-बीच पौराणिक धर्म की सरल और शुद्ध धारा का प्रवाह भी रुक न गया। शंकर और रामानुज जैसे आचार्यों के अतिरिक्त अनेक भक्त और सुधारक भी पैदा हुए। तामिल देश में तो वैष्णव और शैव भक्तों का एक सिलसिला ही जारी रहा। वैष्णव भक्त वहाँ आलवार और शैव भक्त नायन्मार कहलाते थे। उनकी तामिल रचनाओं का वेद और उपनिषद् की तरह आदर किया जाता है। अवन्तिवर्मा के समय (८५४ ई०) कश्मीर में शैव धर्म में सुधार की एक लहर चली। ११वीं सदी के अन्त में कर्णाटक में लिंगायत या वीरशैव नाम का एक और सुधार-पन्थ चला। अपने अच्छे अंश के कारण ही पौराणिक धर्म में अब तक इतनी शक्ति बची रही कि वह सातवीं से बारहवीं शती तक इस्लाम का प्रायः सफलता से मुकाबला करता रहा।

परन्तु उसमें अन्ध विश्वास भी काफ़ी था। कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार सम्राटों के लिए कई ऐसे मौके आये जब वे मुलतान को आसानी से जीत सकते थे। किन्तु जब वैसा अवसर आता तभी मुलतान के मुस्लिम शासक सूर्य-मन्दिर को तोड़ने की धमकी देते, और कन्नौज की सेना लौट जाती! दो-एक दृष्टान्त इससे उलटे भी मिलते हैं। कश्मीर के राजा शंकरवर्मा (८८३-९०२ ई०) ने अपनी आय बढ़ाने के लिए जो उपाय किये, उनमें मन्दिरों की जायदाद ज़ब्त करना भी एक था। और ग्यारहवीं सदी के अन्त में—कीर्तिवर्मा चन्देल, विक्रम चालुक्य, चन्द्र गाहड्वाल और सिद्धराज जयसिंह के ज़माने में—कश्मीर के राजा हर्ष (१०८९-११०१ ई०) ने एक "देवोत्पाटन-नायक" अर्थात् मन्दिर उखाड़ने वाला अफ़सर रक्खा, जिसका काम था

देवमन्दिरों को चुपके-चुपके बिगड़वा देना, और जब लोग उन्हें पूजना छोड़ दें तब ज़ब्त कर लेना। अन्ध विश्वास में मुसलमान भी हिन्दुओं से बहुत पीछे न थे। महमूद के बेटे मसऊद के राज्य पर सेलजुकों का हमला होने पर उसने शुरू में उनका मुकाबला इसलिए नहीं किया कि पच्छिमी तारा उसके प्रतिकूल था!



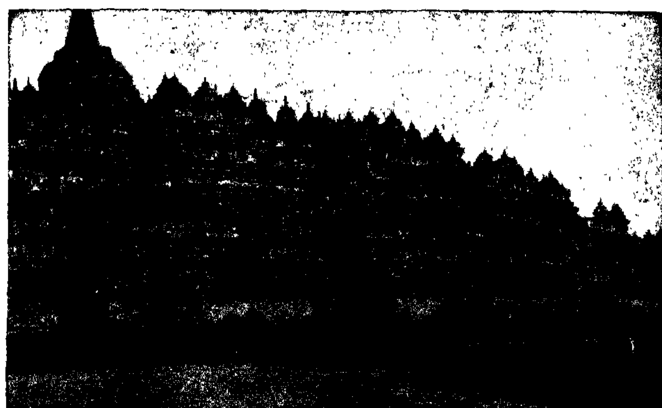
विमलवसही (विमलशाह का बनवाया मन्दिर, १०३१ ई०), देलवाड़ा, आबू, की छत का दृश्य [भा० पु० वि०]

§४. ललित कला।—धार्मिक श्रद्धा से कहीं अधिक ललित कला की रुचि थी जो बड़े-बड़े मन्दिर बनाने की प्रेरणा देती थी। पिछले कई युगों से देश में पूँजी जमा हो रही थी। वह फ़ालतू पूँजी अब सुन्दर और विशाल मन्दिर बनाने और अन्य कारीगरी के कामों में ख़र्च हुई। यही कारण था कि महमूद के अनेक मन्दिर ढहाने और लूटने से भी हिन्दुओं की वह प्रवृत्ति दबने न पायी।

गुजरात के चालुक्य राज्य के दक्खिनी छोर पर महमूद जब सोमनाथ को ढहा



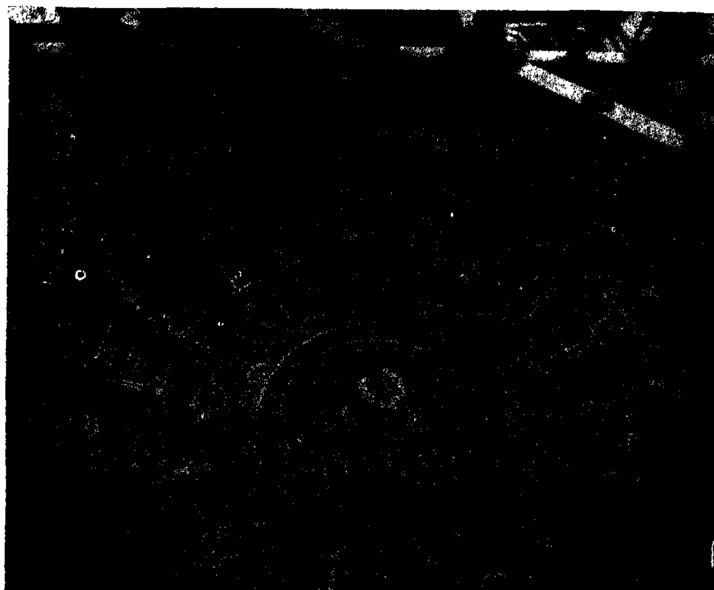
बिन्दु-सरोवर के किनारे लिंगराज और अन्य मन्दिर, भुवनेश्वर, जि० पुरी [भा० पु० वि०]



बोरोबुदुर मन्दिर (८वीं शती ई०)

रहा था, उसी समय उसी राज्य के उत्तरी छोर पर आबू के पास देलवाड़ा

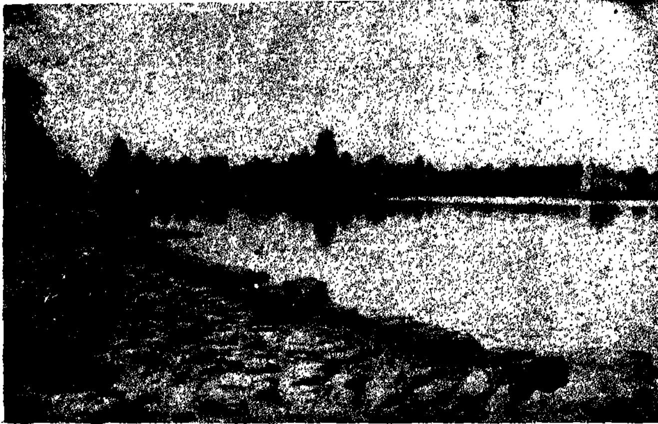
देवमन्दिरों को चुपके-चुपके बिगड़वा देना, और जब लोग उन्हें पूजना छोड़ दें तब ज़ब्त कर लेना। अन्ध विश्वास में मुसलमान भी हिन्दुओं से बहुत पीछे न थे। महमूद के बेटे मसऊद के राज्य पर सेलजुकों का हमला होने पर उसने शुरू में उनका मुकाबला इसलिए नहीं किया कि पच्छिमी तारा उसके प्रतिकूल था!



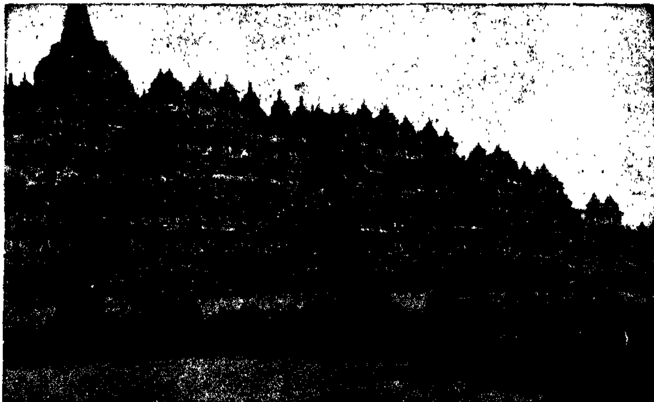
विमलवसही (विमलशाह का बनवाया मन्दिर, १०३१ ई०), देलवाड़ा, आबू, की छत का दृश्य [भा० पु० वि०]

§४. ललित कला—धार्मिक श्रद्धा से कहीं अधिक ललित कला की रुचि थी जो बड़े-बड़े मन्दिर बनाने की प्रेरणा देती थी। पिछले कई युगों से देश में पूँजी जमा हो रही थी। वह फालतू पूँजी अब सुन्दर और विशाल मन्दिर बनाने और अन्य कारीगरी के कामों में खर्च हुई। यही कारण था कि महमूद के अनेक मन्दिर ढहाने और लूटने से भी हिन्दुओं की वह प्रवृत्ति दबने न पायी।

गुजरात के चालुक्य राज्य के दक्खिनी छोर पर महमूद जब सोमनाथ को ढहा



बिन्दु-सरोवर के किनारे लिंगराज और अन्य मन्दिर, भुवनेश्वर, जि० पुरी [भा० पु० वि०]



बोरोबुदुर मन्दिर (८वीं शती ई०)

रहा था, उसी समय उसी राज्य के उत्तरी छोर पर आबू के पास देलवाड़ा



वडनगर (गुजरात) के एक मन्दिर का तोरण—सोलंकी राज्यकाल का।
[राय कृष्णदास के सौजन्य से]

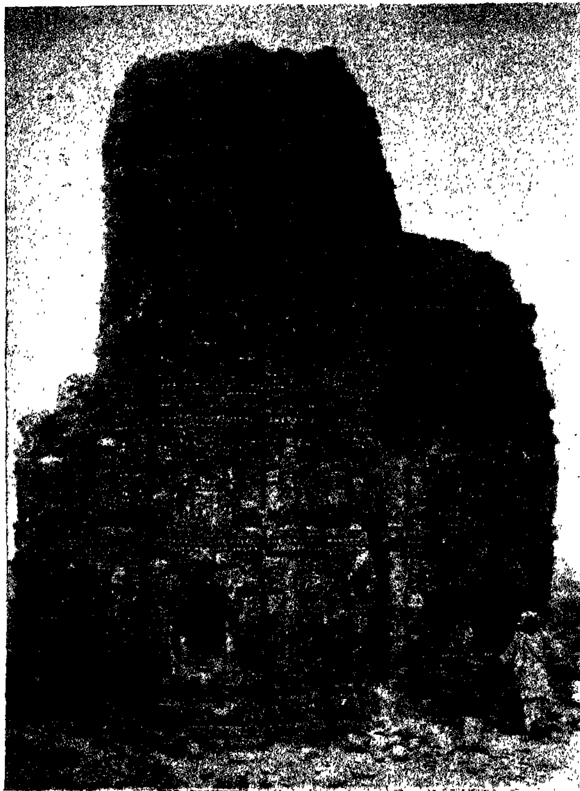
गाँव में आदिनाथ का वह विशाल मन्दिर खड़ा हो रहा था, जो संगमरमर की बारीक नक्काशी के काम में भारत भर में एक अनूठी रचना है! और स्वयम्



उदयपुर (ग्वालियर राज्य) में उदयादित्य का उदयेश्वर मन्दिर [ग्वालियर पु० वि०]

महमूद ने क्या अपनी लूट के बड़े अंश को गज़नी के भव्य महलों और मस्जिदों पर ख़र्च न कर दिया? और पीछे के विजेताओं ने क्या उनकी वही गति न की जो महमूद ने सोमनाथ की की थी?

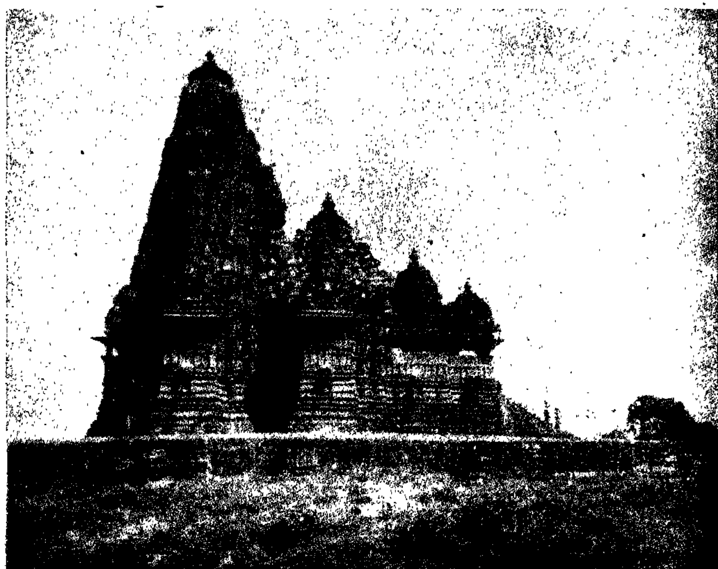
ललित कला की उन्नति में इस युग के भारतवासियों ने सचमुच कमाल किया। अजन्ता और सित्तनवासल की लेणियों के चित्रों, मामल्लपुरम् के



काफ़िरकोट का मन्दिर [भा० पु० वि०]

रथों, वेरूल के कैलाश-मन्दिर और तांजोर के राजराजेश्वर मन्दिर आदि का उल्लेख हो चुका है। मालवा में बाघ के गुहामन्दिरों में, सिंहल के सिगिरिया नामक स्थान में और उपरले हिन्द में दन्दान-ऊलिक, मीरान आदि के अवशेषों

में सातवीं शती की भारतीय चित्रकला के सुन्दर नमूने पाये गये हैं। भारतीय स्थापत्य और मूर्त्तिकला भी मध्य युग में अपने सबसे मनोरम रूप में प्रकट हुई—गुप्त युग का सा ओज उनमें नहीं रहा, पर लालित्य अवश्य बढ़ गया। उड़ीसा में भुवनेश्वर के मन्दिर, खजुराहो में चन्देल राजाओं के बनवाये मन्दिर, डेराइस्माइलखाँ ज़िले में काफ़िरकोट का मन्दिर और मालवा में उदयादित्य का मन्दिर आदि उसके कुछ नमूने हैं। भारत



कन्दार्य-महादेव, खजुराहो [भा० पु० वि०]

और बृहत्तर भारत के किसी भी प्रान्त से इस युग की पत्थर या धातु की जो मूर्त्तियाँ मिलती हैं, उनमें एक अनोखा सौन्दर्य दिखायी देता है। दक्खिन भारत में नटराज की प्रसिद्ध कांस्य-मूर्त्तियाँ इसी युग के अन्त में बनने लगीं। इसी युग में श्रीविजय के बौद्ध शैलेन्द्र राजाओं ने जावा के बोरोबुदुर स्थान में वे अनोखे मन्दिर बनवाये जिनको "पत्थर में तराशे हुए महाकाव्य"

कहा जाता है। नौवीं सदी के अन्त में जावा श्रीविजय से अलग हो गया और तब वहाँ स्वतन्त्र शैव राजा दक्ष ने प्राम्बनन के मन्दिर बनवाये, जिन पर रामायण की सारी कहानी मूर्तियों में चित्रित है।



कुर्किहार, जि० गया, से पायी गयी एक कांस्य बोधिसत्व-मूर्त्ति—पाल-युग में मगध की मूर्त्तिकला का नमूना [पटना म्यू०]

§५. विद्या और साहित्य—विद्या और साहित्य की उन्नति का सिलसिला गुप्त युग के एक दो शती बाद भी जारी रहा। छठी शती में ज्योतिषी वराहमिहिर हुआ, और सातवीं में ब्रह्मगुप्त। भवभूति कवि, जिसे यशोवर्मा की सभा से ललितादित्य कश्मीर ले गया था, अपनी रचनाओं में कालिदास से टक्कर लेता है। दर्शन में धर्मकीर्त्ति, शान्तरक्षित और शङ्कर के ग्रन्थ भारतीय विचार की ऊँची उड़ान को सूचित करते हैं।

इनके बाद भी अनेक कवि, दार्शनिक, लेखक और विचारक होते रहे, किन्तु उनकी रचनाओं में वह मौलिकता और ताज़गी नहीं है जो पहले थी।



सुहानिया (ग्वालियर राज्य) से पायी गयी सरस्वती-मूर्त्ति—आरम्भिक मध्य युग की।

[ग्वालियर पु० वि०]

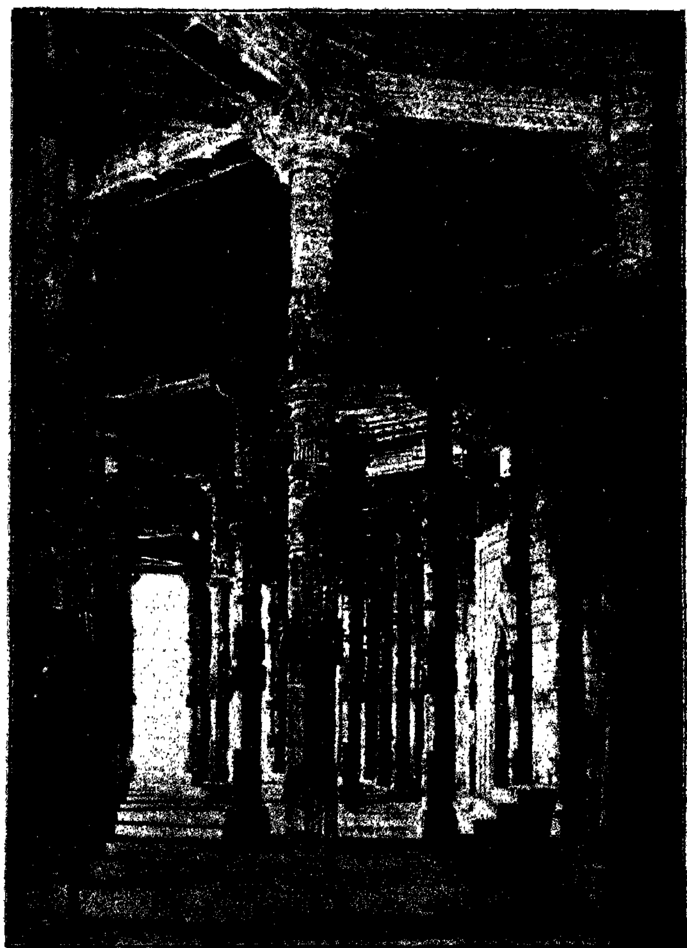
कविता में सहज सुन्दरता का स्थान अलंकारों की भूषा ने ले लिया; दर्शन में नये विचार के बजाय बाल की खाल उधेड़ना शुरू हो गया; विज्ञान की

प्रगति रुक गयी, और कानून के लेखक अपना काम केवल पुराने शास्त्रों की व्याख्या करना समझने लगे। भारतीय विचार आगे बढ़ना छोड़ कर जहाँ तक पहुँच चुका था उतने में ही चक्कर काटने लगा। लगभग ८०० ई० का कश्मीरी दार्शनिक जयन्त भट्ट सीधे शब्दों में कहता है कि "हममें नयी वस्तु की कल्पना करने की शक्ति कहाँ है?"


सम्ये विहार [भदन्त राहुल के सौजन्य से]

परन्तु विचार की प्रगति बन्द हो जाने पर भी इस युग में विद्या और शिक्षा का प्रचार बहुत अधिक रहा। मगध के विहार बौद्ध शिक्षा के बड़े केन्द्र थे; उन में सुदूर देशों से विद्यार्थी आते थे। सन् ६७५ से ६८५ ई० तक इ-चिङ नामक चीनी विद्वान् नालन्दा में रह कर पढ़ा; उस समय वहाँ पर ३५०० से ५००० छात्र पढ़ते थे। राजा देवपाल ने श्रीविजय के राजा बलपुत्रदेववर्मा की प्रेरणा से वहीं एक और विहार बनवाया, और नगरहार (जलालाबाद, अफ़गानिस्तान)

के अफ़ग़ान विद्वान् वीरदेव को उसका मुख्य आचार्य नियत किया। तिब्बत



'अढाई दिन का झोंपड़ा', अजमेर [भा० पु० वि०]

को सभ्यता सिखाने वाले आचार्य शान्तरक्षित नालन्दा के और अतिशा विक्रम-

शिला विहार के थे। शान्तरक्षित ने नालन्दा विहार के ही नमूने पर तिब्बत में सम्ये विहार स्थापित कराया। नालन्दा के ही नमूने पर जापान में नारा विहार बना। जापानी लोग इसी युग में बौद्ध शिक्षा पा कर सभ्य बने। श्रीविजय उन दिनों संस्कृत विद्या का बड़ा केन्द्र था। स्वयम् अतिशा तिब्बत जाने से पहले श्रीविजय के आचार्य धर्मकीर्ति के पास गया था।

मगध और श्रीविजय जैसे बौद्ध शिक्षा के केन्द्र थे, वैसे ही कन्नौज वैदिक और पौराणिक का। कन्नौज के ब्राह्मणों ने इस युग में दूसरे प्रान्तों में जा जा कर भी वैदिक और पौराणिक रीतियों को स्थापित किया। प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल का गुरु प्रसिद्ध कवि राजशेखर था जिसकी रचनाओं में काफ़ी ताज़गी पायी जाती है। किन्तु कन्नौज के राजा जयचन्द्र के दरबारी कवि श्रीहर्ष की रचना में हमें पिछली अलंकारों से लदी कविता का ठीक नमूना मिलता है।



"नालन्दामहाविहारीयार्यभिक्षुसंघस्य" नालन्दा की खुदाई में पाया गया नालन्दा विद्यापीठ का मुहर—असल परिमाण।

[भा० पु० वि०]

दूसरे सब राष्ट्रों में भी विद्या की काफ़ी उन्नति हुई, पर कवियों और विद्वानों की खान के रूप में कश्मीर जैसी प्रसिद्धि शायद ही किसी ने पायी हो। वहाँ के कल्हण पण्डित ने ११४९ ई० में राजतरंगिणी नामक कश्मीर का इतिहास लिखा, जो भारतीय साहित्य का एक रत्न है।

अन्तिम हिन्दू राजाओं में भोज का नाम विद्या-प्रचार के लिए आज तक प्रसिद्ध है। भोज ने सब प्राचीन विद्याओं का फिर से सम्पादन और संकलन करने की एक भारी योजना चलायी। उसने धारा में एक बड़ा विद्यालय बनवाया, जिसकी इमारत अब नहीं बची। दिल्ली के विजेता बीसलदेव चौहान ने भी अजमेर में वैसा ही एक विद्यालय बनवाया; उसकी इमारत अब अढ़ाई दिन का झोंपड़ा कहलाती है। विक्रमांक चालुक्य की

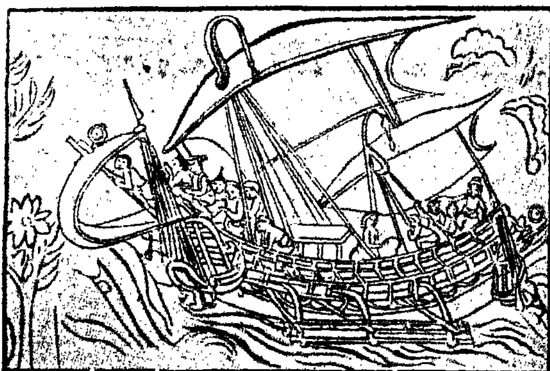
सभा में विज्ञानेश्वर नामक पंडित था, जिसने याज्ञवल्क्य-स्मृति पर मिताक्षरा नामक टीका लिखी। उस तरह की कानूनी टीकाएँ इस युग में और भी लिखी गयीं, पर मिताक्षरा ने बड़ा नाम पाया, और आज तक भारत के बड़े अंश में हिन्दुओं का सामाजिक और पारिवारिक कानून उसी के अनुसार माना जाता है।

§६. **देशी भाषाएँ**—संस्कृत और प्राकृतों में तो पढ़ना-लिखना चलता ही था, पर इस युग से हमारी 'देशी भाषाएँ' भी शुरू हो गयीं। हेमचन्द्र नामक जैन आचार्य सिद्धराज जयसिंह के गुरु के समान था; उसने प्राकृतों का वैसा ही व्याकरण लिखा जैसा पाणिनि ने संस्कृत का लिखा था। ८४ सिद्धों के गीतों और दोहों में हिन्दी कविता का सबसे पहला नमूना है। उन सिद्धों की वाणियों के तिब्बती अनुवाद भी हैं।

तामिल साहित्य सातवाहन युग से शुरू हुआ था। अब उसमें वैष्णव और शैव भक्तों ने अनेक रचनाएँ कीं, जिनका वहाँ वेद और उपनिषदों के समान आदर है। तेलगु साहित्य भी पूरबी चालुक्यों के प्रोत्साहन से दसवीं सदी में शुरू हुआ। गुप्त-युग में जैसे तुखारी और खोतनदेशी भाषाओं में साहित्य शुरू हुआ था, वैसे ही आठवीं सदी से जावा की देशी भाषा में संस्कृत के प्रभाव से ग्रन्थ लिखे जाने लगे। उस भाषा को 'कवि' कहते हैं।

§७. **सामुद्रिक जीवन और परला हिन्द**—गुप्त युग की तरह इस युग में भी भारतवर्ष में बृहत्तर भारत सम्मिलित गिना जाता था, और भारतवासियों का सामुद्रिक जीवन उन्नत दशा में था। आठवीं सदी से भारतीय समुद्र में अरब लोगों की नावें भी चलने लगीं। जब पौराणिक धर्म जनता के निचले दर्जों की उपेक्षा करने और उन्हें घृणित मानने लगा, तब इन दूरगामी मल्लाहों को इस्लाम ने आकर्षित किया। इस युग के अन्त में शिक्षित भारतवासी सामुद्रिक जीवन की तरफ़ से उदासीन होने लगे। गुप्त युग के उपनिवेशों में चम्पा, 'फ़ूनान' और श्रीविजय मुख्य थे। युवान्‌च्वांग जब भारत से लौटा तब दक्खिनी बरमा श्रीक्षेत्र कहलाता था। प्रायः उसी समय फ़ूनान राज्य को

उसके एक कम्बुज सामन्त चित्रसेन ने समाप्त कर उसके स्थान में कम्बुज-राष्ट्र की नींव डाली। परले हिन्द के उस हिस्से का नाम अब तक वही चला आता है। उसका वह नाम भारतीय प्रवासियों ने रक्खा था। वहाँ के असल निवासी ख्मेर लोग हैं, जो हमारे संथाल लोगों से मिलते-जुलते और 'आग्नेय' जाति के हैं। आर्यों के कम्बुज उपनिवेश में होने के कारण वे कम्बुज कहलाने लगे; पर उनका कहना है कि वे महर्षि कम्बु और मेरा अप्सरा की सन्तान हैं !



भारतीय उपनिवेश में मातृभूमि से एक जहाज़ का पहुँचना
बोरोबुदुर मन्दिर का एक मूर्त्त दृश्य।

चित्रसेन भी कम्बु और मेरा की उसी सन्तान में से था। कम्बुज के राजा अपने को सूर्यवंशी मानते थे। नौवीं शती के अन्त में राजा यशोवर्मा (८८६–९०६ ई०) ने नयी राजधानी यशोधरपुर की स्थापना की, जो अब अङ्कोर-थोम कहलाती है। १२ वीं सदी के प्रारम्भ में वहाँ एक वैष्णव मन्दिर बना, जिसकी कारीगरी देख कर आज भी सभ्य जगत् के लोग चकित होते हैं। वह मन्दिर अब अङ्कोर-वाट अर्थात् नगर का मन्दिर कहलाता है। उसमें भी प्राम्बनन के मन्दिरों की तरह रामायण की समूची कहानी मूर्त्त दृश्यों में अंकित है।

§८. **राजनैतिक और आर्थिक जीवन**—मध्य युग के भारतवासी अपने राजनैतिक कर्त्तव्यों और अधिकारों के लिए वैसे सजग नहीं रहे, जैसे उनके पुरखा होते थे। राजकीय मामलों की तरफ प्रजा की उपेक्षा इसी युग



मामल्लपुरम्-समुद्रतट पर नाविकों को रास्ता दिखाने के लिए पल्लव राजाओं का बनवाया ज्योतिःस्तम्भ [भा० पु० वि०]

से होने लगी। इस युग में किसी गण-राष्ट्र का नाम भी नहीं सुना जाता। तो भी गाँवों की पंचायतें ग्यारहवीं-बारहवीं सदी तक खूब सुसंगठित रहीं। चोलों

के अधीन प्रत्येक गाँव में एक बड़ी सभा होती थी; उसके अलग-अलग महकमों के लिए पाँच-पाँच आदमियों की कमिटियाँ होती थीं। उन सभाओं और कमिटियों के चुनाव के नियम बड़ी बारीकी से निश्चित किये गये थे। गाँव की खेती, सिँचाई, मन्दिरों की देख-रेख, कर की वसूली, अपराधियों को पकड़ना सब पंचायत का काम था। मन्दिर उन पंचायतों के सभा-भवन का काम देते थे। साथ ही वे शिक्षा और पूजा के भी केन्द्र थे। चोल राज्य की शासन-पद्धति इन सब ग्राम-पञ्चायतों पर निर्भर थी। दूसरे सब राज्यों का शासन भी नियमित और उदार था, और बहुत कुछ गुप्त शासन के ढाँचे पर चला आता था।

इस युग तक भी राजा देश की भूमि का मालिक न होता था। कश्मीर के इतिहास की एक मनोरञ्जक घटना इस प्रश्न पर प्रकाश डालती है। राजा मुक्ता पीड ललितादित्य का बड़ा भाई चन्द्रापीड वज्रादित्य जब वहाँ का राजा था, उसने एक मन्दिर बनवाने की आज्ञा दी। कुछ समय बाद राज्याधिकारियों ने उसे सूचना दी कि मन्दिर की नींव पड़ चुकी है, पर एक चमार की कुटिया बीच में पड़ती है और वह उस ज़मीन को नहीं देता। राजा उन अधिकारियों से बहुत नाराज़ हुआ कि उन्होंने चमार से पूछे बिना नींव क्यों डाली और कहा कि अब दूसरी जगह इमारत शुरू करो। मन्त्रि-परिषद् ने कोशिश करके चमार को राजा के सामने बुलवाया। तब राजा ने उससे पूछा, "क्यों हमारे पुण्यकार्य में विघ्न डालते हो? अपनी कुटिया के बदले में उससे कीमती ज़मीन या घर क्यों नहीं ले लेते?" चमार ने कहा—"राजन्, आपके लिए जैसे आपका महल है, वैसे मेरे लिए मेरी यह कुटिया है जिसकी दीवार में फूटे घड़ों के मुँह लगा कर झरोखे बनाये गये हैं। वह मेरी माँ के समान जन्म से मेरे सुख-दुःख की साक्षी है; उसका तोड़ा जाना मैं देख नहीं सकता। हाँ, यदि मेरे घर आ कर आप मुझसे उसे माँगें तो मैं सदाचार के अनुरोध से उसे दे दूँगा।" राजा चन्द्रापीड ने तब उस चमार के झोंपड़े पर जा कर भिक्षा माँगी और उस चमार ने दान का पुण्य पाया।

§६. **सामाजिक जीवन, जात-पाँत**—विचारों की प्रगति और प्रवाह बन्द होने का प्रभाव भारतवासियों के सामाजिक जीवन पर भी पड़ा और

उससे जात-पाँत की सृष्टि हुई। जात-पाँत का आरम्भ वस्तुतः इसी युग में हुआ। बहुत बार यह पूछा जाता है कि मध्य-युग में जो एकाएक चारों तरफ़ राजपूत लोग दिखायी देने लगे, वे कौन थे और कहाँ से आये? असल में राजपूत कोई नयी जाति न थी। राजाओं के पुत्र इस देश में सदा से पैदा होते थे, और अपने बराबर वालों में ही ब्याह-शादी की जाय, ऐसा रुझान भी लोगों में सदा से रहा है। ११वीं सदी में भारत में जो राजघराने थे, उनमें भी यही चलन था। किन्तु उस समय से एक नयी बात होने लगी। जीवन में संकीर्णता आ जाने के कारण लोगों को दूर के और अपरिचित लोगों से शङ्का और डर प्रतीत होने लगा कि कहीं उन से मिल कर हमारा कुल बिगड़ न जाय। इस कारण उस समय के सब राजघराने गिन लिये गये और उनका राजपूतपन पत्थर की लकीर हो गया। आगे चल कर उनके बेटों-पोतों के हाथ में राज न रहे तो भी वे राजपूत बने रहे और दूसरे कुलों के लोग राज पा लेने पर भी राजपूत नहीं माने गये। इसी तरह सरकारी दफ़्तरों में जो छोटे लेखक या अमले होते थे वे कायस्थ कहलाते थे। उनमें भी सब तरह के लोग थे, जो एक सी हैसियत होने से प्रायः आपस में सम्बन्ध करते थे। उन्होंने भी अब अपनी तमाम खाँपें गिन डालीं और अपना ब्याह-शादी का दायरा हमेशा के लिए सीमित कर लिया। सामाजिक ऊँच-नीच के और जितने दरजे थे वे सब भी इसी प्रकार पथरा कर जात-पाँत बन गये। नदी का प्रवाह बन्द हो जाने से जैसे छोटे-छोटे जोहड़ बन जाते हैं, वैसे ही भारतीय समाज में ये जातें बन गयीं। तो भी हम देखेंगे कि १२वीं-१३वीं सदी तक इन जातों में भी बाहर के आदमियों के आ मिलने की गुञ्जाइश बनी रही।

स्त्रियों को समाज में अब भी पूरी स्वतन्त्रता थी। उनमें पर्दा नहीं था, और विवाह सयानी होने पर होता था। शिक्षा का प्रचार बहुत था। राजघरानों तक की कन्याएँ गाना-नाचना सीखती थीं।

आठवाँ प्रकरण

दिल्ली की पहली सल्तनत

(११९४—१५०६ ई०)

अध्याय १

दिल्ली और लखनौती में मुस्लिम राज्य की स्थापना

(११७५—१२०६ ई०)

§१. **शहाबुद्दीन ग़ोरी के आरम्भिक प्रयत्न**—महमूद के बाद ग़ज़नी की सल्तनत धीरे-धीरे क्षीण होती गयी। ग़ज़नी से हरात के रास्ते में फ़रारूद नदी की दून में ग़ोर नामक प्रदेश है। वहाँ के पठान सरदार अलाउद्दीन ने महमूद के वंशज बहराम (१११८–५१ ई०) को हरा कर ग़ज़नी से भगा दिया; फिर उसके बेटे खुसरो (११५२–६० ई०) के समय में ग़ज़नी को सात दिन तक लूटा और जला कर ख़ाक कर दिया! अलाउद्दीन का भतीजा शहाबुद्दीन-बिन-साम या मुहम्मद-बिन-साम (साम का बेटा मुहम्मद) था, जो इतिहास में शहाबुद्दीन ग़ोरी के नाम से प्रसिद्ध है।

शहाबुद्दीन ने हिन्दुस्तान जीतने का संकल्प किया। यद्यपि वह महमूद की तरह असाधारण आदमी नहीं था, तो भी बुलन्दहिम्मत और दृढ़व्रती था। ग़ज़नी लेने के बाद उसने उच्च के राजा की रानी को अपनी तरफ़ मिला कर वह राज्य जीत लिया, और तब मुल्तान और सिन्ध पर भी अधिकार कर लिया। ११७८ ई० में उसने गुजरात पर चढ़ाई की। वहाँ का राजा मूलराज सोलंकी (२य) अभी छोटा था। उसकी माँ ने आबू के नीचे कायद्राँ गाँव पर शत्रु का मुक़ाबला किया। ग़ोरी बुरी तरह हार कर भाग गया और उसकी

फ़ौज का बड़ा अंश क़ैद हो गया। क़ैदियों को हिन्दू बना कर गुजरातियों ने अपनी जातों में मिला लिया।

§२. **अजमेर और दिल्ली का पतन**—गुजरात की तरफ़ दाल न गलती देख कर शहाबुद्दीन ने ठेठ हिन्दुस्तान की ओर मुँह फेरा। गज़नी छिन जाने पर खुसरो लाहौर भाग आया था, मगर ग़ोरी ने उसके बेटे से पंजाब भी छीन लिया (११८५-८६ ई०)। फिर दिल्ली प्रदेश की सीमा पर सरहिन्द का क़िला ले लिया। यह प्रदेश तीस-चालीस बरस से अजमेर के राजाओं के अधीन था। राजा पृथ्वीराज, जो अब तक जझौती में अपनी शक्ति नष्ट कर रहा था, अब शहाबुद्दीन के मुकाबले के लिए आगे बढ़ा। पानीपत के पास तरावड़ी के युद्ध में शहाबुद्दीन घायल हो कर भाग गया (११९१ ई०)। पृथ्वीराज ने सरहिन्द भी ले लिया, किन्तु शहाबुद्दीन ने हिम्मत न हारी। दूसरे बरस वह फिर फ़ौज ले कर चढ़ आया और तरावड़ी पर ही फिर युद्ध हुआ, जिसमें पृथ्वीराज क़ैद हो कर मारा गया। जीत के बाद ग़ोरी सीधा अजमेर पर टूट पड़ा और वहाँ पृथ्वीराज के बेटे गोविन्दराज को अपना सामन्त बनाया। दिल्ली के इलाक़े पर दख़ल करने के लिए अपने तुर्क दास कुतुबुद्दीन ऐबक को छोड़ कर वह गज़नी लौट गया। कुतुबुद्दीन ने दिल्ली पर अधिकार कर उसे अपनी राजधानी बनाया। इस तरह गुजरात और कन्नौज के राज्य तुर्कों के पड़ोसी हो गये।

ग़ोरी का नन्दी-छाप टंका



एक तरफ़—घुड़सवार; नागरी में लेख—स्री हमीर। दूसरी तरफ़—नन्दी बैठे हुए; चारों तरफ़ नागरी लेख—स्री महमद साम [श्री०सा०सं०]

११९४ ई० में शहाबुद्दीन कन्नौज पर चढ़ाई करने को फिर एक बड़ी फ़ौज ले कर आया। राजा जयचन्द्र इटावा के पास चन्दावर पर लड़ता हुआ मारा गया। उसके बेटे हरिचन्द्र ने अपने राज्य के पूरबी छोर अवध में हट कर लड़ाई जारी रक्खी। वह जब तक ज़िन्दा रहा उसने कन्नौज का किला भी अपने हाथ से न जाने दिया।

पृथ्वीराज के भाई हरिराज ने चम्बल के किनारे रणथम्भोर में चौहानों की नयी राजधानी स्थापित की (११६५ ई०)। अजमेर के साथ उत्तरी मारवाड़—नागोर—का इलाक़ा भी मुसलमानों के हाथ में चला गया, किन्तु दक्खिनी मारवाड़-जालोर-में चौहानों की एक शाखा का राज्य बना रहा*।

गोरी का लक्ष्मी-छाप टंका




एक तरफ़—लक्ष्मी की भद्दी मूर्त्ति। दूसरी तरफ़—नागरी लेख-श्रीमह्मीर महम द साम।

[दिल्ली म्यू०; भा० पु० वि०]

§३. बिहार-बङ्गाल में तुर्क सल्तनत—अजमेर और कन्नौज राज्यों के जिन अंशों पर मुसलमान विजेता काबू कर सके, वे मुस्लिम अमीरों में बाँट दिये गये। कन्नौज के क़िले को छोड़ कर गंगा-जमुना के समूचे दोआब में, गंगा पार सम्भल और बदाऊँ के इलाक़े में और दक्खिनी अवध में, जगह-जगह उनके केन्द्र स्थापित हो गये। ११९७ ई० के बाद मुसलमानों ने चुनार का इलाका कन्नौज के सामन्तों से ले लिया, और वह मुहम्मद-बिन-बख्तियार खिलजी नामक तुर्क सरदार को सौंप दिया गया। चुनार से मुहम्मद ने मगध के इलाकों पर हमले करना शुरू किया। मगध में पिछली शती भर कोई स्थिर राज्य न रहा था; वहाँ राजा गोविन्दपाल की हैसियत एक मामूली सरदार की सी रह गयी थी। उद्दण्डपुर आदि नगर उसके अधिकार में थे। ११९९ ई० में मुहम्मद ने २०० सवारों के साथ उद्दण्ड-पुर पर हमला किया और पहाड़ी पर बौद्ध भिक्खुओं के विहार को क़िला समझ कर घेर लिया। कोई चारा न देख भिक्खुओं ने भी शस्त्र उठाये और युद्ध किया; किन्तु उनमें से एक भी ज़िन्दा न बचा। विजेताओं को जब यह मालूम हुआ कि वह स्थान क़िला नहीं विहार था, और उस विहार की पुस्तकों को पढ़

* पृथ्वीराज और जयचन्द्र के विषय में बहुत सी निर्मूल कहानियाँ प्रचलित हैं, जो चन्द बरदाई के पृथ्वीराजरासो पर निर्भर हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि चन्द बरदाई १६वीं शती से पहले का नहीं है। जयचन्द्र की बेटी संयोगिता सर्वथा कल्पित व्यक्ति है। पृथ्वीराज और जयचन्द्र में द्वेष होने की बात भी निरी काव्य-कल्पना है।

कर सुना सकने वाला भी कोई आदमी जीवित नहीं बचा, तो उन्होंने शताब्दियों से जमा हुए पुस्तकों के उस संग्रह को आग की भेंट कर दिया। उस विहार के नाम से उस शहर को भी वे बिहार कहने लगे, और इस प्रकार समूचे मगध प्रान्त का भी वही नाम पड़ गया।*

बिहार जीत लेने के बाद मुहम्मद-बिन-बख्तियार ने सेन राजाओं के गौड़ देश पर चढ़ाई की और उनकी राजधानी लखनौती ले कर उसने वहीं अपनी राजधानी स्थापित की।† बंगाल में उसका राज्य तब लखनौती के चौगिर्द प्रायः ४०-४० कोस तक था। लक्ष्मणसेन के बेटे केशवसेन और विश्वरूपसेन उससे बराबर लड़ते रहे। वे अपनी राजधानी ढाका के पास सुवर्णग्राम (सोनारगाँव) में ले गये और दक्खिनी और पूरबी बंगाल अगले सवा सौ बरस तक सेन राजाओं के अधिकार में बना रहा।

§४. विन्ध्य और हिमालय की तरफ़ बढ़ने की विफल चेष्टाएँ—गंगा-जमना का दोआब कुतुबुद्दीन के हाथ आ जाने से जझौती का चन्देल राज्य उसका पड़ोसी बन गया। १२०२ ई० में उसने उसपर चढ़ाई कर राजा परमर्दी चन्देल से कालंजर का गढ़ छीन लिया; परन्तु उसके मुँह फेरते ही हिन्दुओं ने कालंजर फिर वापिस ले लिया; तो भी जझौती का उत्तरी मैदान—अर्थात् कालपी का प्रदेश—तुर्कों के हाथ में रहा।

---

* पहले मुस्लिम युग में बिहार से केवल मगध ही समझा जाता था। अर्थात् वह प्रदेश जो सोन नदी के पूरब, गंगा के दक्खिन, गया की पहाड़ियों के उत्तर और राजमहल की पहाड़ियों के पच्छिम में है।

† यह कहानी प्रसिद्ध है कि सिर्फ़ १८ सवारों के साथ, जिन्हें लोग घोड़े बेचने वाले समझते रहे, बख्तियार के बेटे ने नदिया के राजमहल के रक्षकों पर एकाएक हमला कर दिया, और राजा लक्ष्मणसेन महल के दूसरी तरफ़ से भाग निकला। परन्तु नदिया कभी सेनों की राजधानी न थी; और राजा लक्ष्मणसेन ११७० ई० से पहले ही मर चुका था। तीसरे लखनौती जीतने के ५५ बरस पीछे १२५५ ई० में नदिया पहले-पहल मुसल्मानों के कब्जे में आया।

इधर मुहम्मद-बिन-बख्तियार ने एक और साहस का काम किया। गौड़ और हिमालय के बीच मेच, कोच और थारू जातियाँ रहती थीं। एक मेच सरदार को पकड़ कर मुहम्मद ने उसे मुसलमान बना लिया और उसी अली मेच की पथप्रदर्शकता में ११-१२ हज़ार सवारों के साथ वह हिमालय के एक हिन्दू राज्य को लूटने के लिए आगे बढ़ा। कामरूप के पच्छिम हिमालय की तराई के उस राजा ने तुर्कों को अपने राज्य में बढ़ जाने दिया, पर पीछे से उन्हें घेर कर लौटते समय करतोया नदी में समूचे दल को नष्ट कर दिया। मुहम्मद-बिन-बख्तियार इने-गिने साथियों के साथ बच कर देवकोट पहुँचा और वहाँ अपने सिपाहियों की विधवाओं के अभिशापों के डर से उसे घर से बाहर निकलना दूभर हो गया। उसी दशा में उसकी मृत्यु हुई (१२०५-६ ई०)।

उधर उसी समय जेहलम नदी पर रहने वाली खोकर नाम की जाति ने अपने राजा राय साल के नेतृत्व में, जो एक बार मुसलमान बन कर फिर हिन्दू हो गया था, विद्रोह करके लाहौर ले लिया। शहाबुद्दीन ग़ज़नी से और कुतुबुद्दीन दिल्ली से खोकरों के खिलाफ़ बढ़े। उनका दमन करने के बाद शहाबुद्दीन जब ग़ज़नी लौट रहा था, तो एक खोकर ने सिन्ध के किनारे उसे मार डाला (१२०६ ई०)। इसके बाद पहले मुस्लिम युग के अन्त तक दिल्ली के सुल्तान खोकरों को अधीन न रख सके। ग़ज़नी से दिल्ली आने वाला रास्ता तब दूर तक सिन्ध के दाहिने किनारे जा कर उच्च के सामने उसे लाँघता था और उच्च से मुलतान और भटिंडा हो कर दिल्ली पहुँचता था।

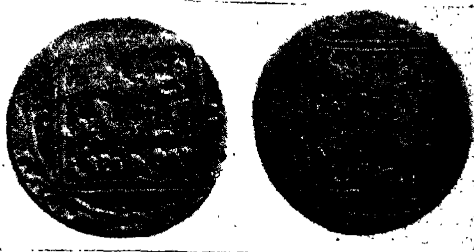
अध्याय २

दिल्ली की पहली सल्तनत—गुलाम वंश

(१२०६–१२९० ई०)

§१. कुतुबुद्दीन ऐबक—शहाबुद्दीन के मरने पर उसके उत्तराधिकारी ने दिल्ली का राज्य दास कुतुबुद्दीन को सौंप दिया। उसके बाद भी दिल्ली की गद्दी पर कई गुलाम बादशाह बैठे; इसी कारण वह गुलाम वंश कहलाता है। शहाबुद्दीन पठान था, पर कुतुबुद्दीन और दूसरे गुलाम तुर्क थे। इस प्रकार दिल्ली की यह सल्तनत असल में तुर्कों की थी। चार बरस के दृढ़ न्यायपूर्ण शासन के बाद कुतुबुद्दीन लाहौर में मर गया (१२१० ई०)। दिल्ली की कुतुब मीनार उसकी बनवायी हुई कही जाती है।

§२. इल्तुतमिश—कुतुबुद्दीन का गुलाम और दामाद इल्तुतमिश उसके बेटे आरामशाह को हटा कर खुद सुल्तान बन बैठा। इस समय तक भारत में तुर्कों के जीते हुए प्रदेश एक सुसंगठित राज्य के अन्तर्गत न थे। लखनौती का राज्य शुरू से ही दिल्ली से अलग था। गोरी की मृत्यु के बाद से गज़नी भी एक अलग सल्तनत थी। यह सल्तनत ताजुद्दीन एलदोज़ नाम के एक तुर्क सरदार को सौंपी गयी थी।



इल्तुतमिश की कन्नौज-विजय का स्मारक टंका

[दिल्ली म्यू०; भा० पु० वि०]

सिन्ध का सूबा नासिरुद्दीन कुबाचा को मिला था। इल्तुतमिश के गद्दी पर बैठते ही एलदोज़ ने लाहौर ले लिया। कुबाचा के दाँत भी लाहौर पर गड़े थे। इल्तुतमिश ने एल्दोज़ को कैद कर लाहौर पर अधिकार किया। पीछे उसने कुबाचा का भी उसी तरह दमन किया।

दूसरी तरफ़ उसे अन्तर्वेद में राजपूतों का भी मुकाबला करना पड़ा। कन्नौज का किला अब तक फ़तह न हुआ था। अवध की सीमा पर लगातार युद्ध जारी था, जहाँ 'वर्त्तु' नामक हिन्दू सरदार से लड़ते हुए एक लाख से अधिक तुर्क मारे जा चुके थे। इल्तुतमिश के समय में 'वर्त्तु' मारा गया और कन्नौज का किला भी जीत लिया गया। इसकी खुशी में उसने नये सिक्के चलाये।

§३. मङ्गोलों का आतङ्क—इसी समय उत्तर-पूरबी एशिया में एक भारी लहर उठी जिसने समूची दुनिया का नक्शा बदल दिया। जैसे पाँचवीं, छठी और सातवीं शती में हूण, तुर्क और अरब दुनिया को जीतने निकले थे, वैसे ही अब मङ्गोलों ने अपनी विजय-यात्रा शुरू की। उनका नेता चिङ-हिर हान (चंगेज़ खान*) था। मङ्गोलों ने तुर्किस्तान के तमाम मुस्लिम राज्यों को उखाड़ फेंका (१२१६ ई०), मुसलमान बस्तियों में खून की नदियाँ बहा दीं, और महल और मस्जिदें फूँक दीं। अफगानिस्तान को भी चंगेज़ ने तुर्कों से छीन लिया। इसके बाद पौने दो शताब्दियों तक अफ़गानिस्तान मङ्गोलों के अधिकार में बना रहा और वे दिल्ली के तुर्कों के लिए सदा आतङ्क का कारण रहे।

पहले-पहल वह आतङ्क १२२१ ई० में इस तरह उपस्थित हुआ। ख्वारिज़्म (खीवा-प्रदेश) के तुर्क शाह जलालुद्दीन का पीछा करता हुआ चंगेज़ सिन्ध नदी के किनारे तक आ पहुँचा। जलालुद्दीन सिन्ध में भाग आया था। पञ्जाब और सिन्ध में इस से खलबली मच गयी। चङ्गेज़ के लौट जाने पर ही इल्तुतमिश उन प्रान्तों पर पूरी तरह काबू कर सका।

---

* हान या खान मङ्गोली में एक सम्मानसूचक शब्द था। दूसरी जातियों ने उसे उन्हीं से लिया है।

मुहम्मद-बिन-बख्तियार की मृत्यु हो जाने पर लखनौती में ५-६ बरस की मार-काट के बाद खिलजी अमीरों ने गयासुद्दीन उवज़ को गद्दी पर बैठाया। उसके समय में (१२११–२६ ई०) गौड सल्तनत की सीमा गङ्गा के पूरब तरफ़ देवकोट तक और दक्खिन-पच्छिम तरफ़ लखनोर तक पहुँच गयी। पञ्जाब और सिन्ध के दमन के बाद इल्तुतमिश ने बिहार और गौड की मुस्लिम सल्तनत को भी जीत लिया। तब से १२८८ ई० तक गौड प्रायः दिल्ली के अधीन रहा।




इल्तुतमिश के बंगाल-विजय का स्मारक टंका
[बर्लिन म्यू०; नेल्सन राइट के ग्रन्थ से]

§४. जझौती और मालवा पर चढ़ाइयाँ— गाहड्वालों को परास्त करने और उत्तर भारत के सब तुर्क प्रान्तों को एक शासन में लाने के बाद इल्तुतमिश ने पड़ोसी राजपूत राज्यों की तरफ़ ध्यान दिया। उसने रणथम्भोर और ग्वालियर पर अधिकार किया और परमर्दी चन्देल के बेटे त्रैलोक्यवर्मा पर चढ़ाई कर जझौती को लूट लिया (१२३३-३४ ई०)। तब मालवा के परमार राज्य पर चढ़ाई कर उज्जैन और भेलसा लूटे, और उज्जैन के महाकाल-मन्दिर को तोड़ डाला (१२३४ ई०)। मालवा से वह गुजरात की तरफ़ बढ़ा। रास्ते में उसने मेवाड़ की राजधानी नागदा को, जो आधुनिक एकलिङ्ग की जगह पर थी, उजाड़ डाला। पर राजा जैत्रसिंह से हार कर उसे लौटना पड़ा। मेवाड़ का नाम बाद के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हुआ। सुराष्ट्र के मैत्रक वंश में भटार्क का पोता राजा गुहसेन या गुहिल हुआ था। मेवाड़ के राजा उसी के वंशज थे। वे पहले गुजरात के चालुक्यों के सामन्त थे। १२वीं सदी के अन्त में गुजरात के कमज़ोर होने पर वे स्वतंत्र हो गये और इस स्वतन्त्र हैसियत में उन्होंने अनेक बार दिल्ली के तुर्कों का मुकाबला किया। इल्तुतमिश के नागदा को उजाड़ने के बाद चित्तौड़ मेवाड़ की राजधानी हो गयी।

§५. सुल्ताना रज़िया—मालवा-मेवाड़ की चढ़ाइयों से लौटने पर इल्तुतमिश मर गया (१२३६ ई०)। वह कह गया था कि उसकी बेटी रज़िया उसकी उत्तराधिकारिणी हो। लेकिन तुर्क सरदारों ने उसके एक बेटे को गद्दी दी। छः मास बाद वह उनके हाथ मारा गया। तब कुमारी रज़िया गद्दी पर बैठी। वह कुशल और वीर स्त्री थी। मरदाने कपड़े पहन कर वह खुले मुंह दरबार में बैठती और युद्ध में सेना का संचालन भी करती थी। किन्तु एक स्त्री का शासन उस समय के तुर्क कहाँ सह सकते थे? उन्होंने फिर बग़ावत की, जिसे दबाते हुए रज़िया मारी गयी (१२४० ई०)। उसके बाद उसका एक भाई सुलतान बना। डेढ़ बरस बाद वह भी मारा गया और उसके एक भतीजे को राज मिला। चार बरस बाद उसकी भी वही गति हुई।

इस बीच दिल्ली की सल्तनत की बड़ी दुर्दशा रही। चौहान राजा वाग्भट ने रणथम्भोर वापिस ले लिया। बङ्गाल, मुलतान और सिन्ध के प्रान्त अलग हो गये थे। बिहार के हिन्दू स्वतन्त्र हो गये थे। पञ्जाब के बड़े भाग पर खोकरों ने अधिकार कर लिया था। गङ्गा-जमना दोआब में अनेक हिन्दू सरदारों ने दिल्ली के विरुद्ध सिर उठाया। दिल्ली से बिलकुल लगे हुए अलवर के इलाके (प्राचीन मत्स्य देश) में मेव लोग रहते हैं और वह इसी कारण मेवात कहलाता है। मेवों या मेवातियों ने दिल्ली के मुसलमानों को लूटना-मारना ही अपना धन्धा बना लिया था। उत्तर-पच्छिम से मङ्गोलों के हमले जारी थे। अफ़ग़ानिस्तान और ग़ज़नी पर उनका अधिकार था; ग़ज़नी से मुलतान के रास्ते पञ्जाब और सिन्ध पर वे झपट्टा मारते थे। १२४१ ई० में उन्होंने लाहौर पर चढ़ाई कर वहाँ के मुसलमानों की बड़ी मार-काट की।

उधर पूरबी सीमान्त पर भी ऐसी ही विपत्ति उपस्थित थी। उड़ीसा के गङ्ग-वंशी राजा नरसिंहदेव १म ने गौड़ पर चढ़ाई की। केवल ५० उड़िया सवारों और २०० पैदल सिपाहियों के एकाएक हमला करने पर तुर्क सेना सीमान्त का एक किला छोड़ कर भाग गयी। नरसिंहदेव के सेनापति सामन्तराज ने लखनोर के तुर्कों से वह किला छीन लिया। गङ्गा के उत्तर भी तुर्कों की जहाँ-तहाँ हार हुई और सामन्तराज ने लखनौती पर घेरा डाल

दिया। अन्त में अवध से मुस्लिम सेना आने पर उसे लौटना पड़ा (१२४४ ई०)। मेदिनीपुर, हावड़ा और हुगली ज़िले नरसिंहदेव के अधीन रहे। यह नरसिंह (१२३८–६४ ई०) अनन्तवर्मा चोडगङ्ग के पोते का पोता था। कोणार्क का प्रसिद्ध सूर्य-मन्दिर इसी ने बनवाया था।

§६. नासिरुद्दीन और बलबन—१२४५ ई० में फिर मङ्गोलों के एक दल ने उच्च के किले को घेर लिया। तब गयासुद्दीन बलबन, जो



कोणार्क के सूर्य-मन्दिर में एक घोड़े की मूर्त्ति

नरसिंहदेव की विजयों का सुन्दर स्मारक। [भा० पु० वि०]

इल्तुतमिश का दामाद था, सेना ले कर उनके विरुद्ध बढ़ा और उन्हें मार भगाया। दिल्ली की गद्दी पर सरदारों ने अब रज़िया के छोटे भाई नासिरुद्दीन महमूद को बैठाया। उसने बलबन को अपना मन्त्री नियुक्त कर राजकाज उसके हाथ सौंप दिया। तब से दिल्ली के शासन में फिर जान पड़ गयी। बलबन ने तुर्क सरदारों को दृढ़ता से दबाया और सेना और क़िलों को ठीक किया।

सन् १२४७ में उसने सुलतान के साथ खोकरों पर चढ़ाई की। नासिरुद्दीन को चनाब पर छोड़ कर बलबन खोकरों के देश में घुसा, और सिन्ध के किनारे उसने उनके राजा जसपाल सेहरा को हराया। लेकिन खोकरों ने सिन्ध और जेहलम के बीच तमाम बस्ती और खेती उजाड़ दी थी, इससे बलबन को शीघ्र लौटना पड़ा। वहाँ से लौट कर उसने दोआब और मेवात पर चढ़ाइयाँ कीं, और रणथम्भोर को वापिस लेने की विफल चेष्टा की।

नासिरुद्दीन ने मालवा तथा जझौती की सीमा पर के नरवर, चन्देरी, तथा कालञ्जर प्रदेशों पर भी विफल चढ़ाइयाँ कीं। वह इन पर अधिकार न कर सका, तो भी काफ़ी लूट उसके हाथ लगी।

१२५७ ई० में मङ्गोलों का एक दल मुलतान ले कर सतलज तक आ पहुँचा और बड़ी मुश्किल से वापिस किया गया। बलबन ने सीमान्त के किलों को ठीक कर योग्य सैनिक तैनात किये।

इसी समय लखनौती के हाकिम उज़बक ने गंगा के दक्खिन नदिया तक और उत्तर की ओर वर्धनकोट (ज़ि० बगुड़ा) तक तुर्क राज्य की सीमा पहुँचा दी (१२५५ ई०)। उसने कामरूप पर भी चढ़ाई की, पर वहाँ उसकी वही गति बनायी गयी जो मुहम्मद-इब्न-बख्तियार की बनी थी और वह कामरूप के राजा की कैद में ही मरा।

दोआब और मेवात के हिन्दुओं की उच्छृंखलता अभी जारी थी। इसलिए १२५९-६० में बल्बन ने उन पर फिर चढ़ाइयाँ कीं, और १,२०,००० मेवों को मार डाला। १२६४ में उसे कटेहर (आधुनिक रुहेलखण्ड) के हिन्दुओं पर चढ़ाई करनी पड़ी।

१२६६ ई० में नासिरुद्दीन की मृत्यु होने पर बलबन स्वयम् सुलतान बना। मेवात, दोआब और कटेहर के हिन्दुओं ने पिछली सज़ाओं से कुछ सबक़ न सीखा था। मेव तो अब हिमालय की तराई तक और दिल्ली शहर के भीतर तक धावे मारने लगे थे। उनके कारण दिल्ली की पनिहारिनों का कुओं पर जाना दूभर हो गया था और शहर के पच्छिमी दरवाज़े सन्ध्या से पहले ही बन्द कर देने पड़ते थे। बलबन ने अब दिल्ली के पड़ोस के वे सब जङ्गल साफ़ कर

दिये जिनमें मेव शरण पाते थे। उसने दोआब और कटेहर पर भी फिर चढ़ाइयाँ कीं। इल्तुतमिश की तरह उसने भी मालवा की तरफ़ से गुजरात पर चढ़ाई करने का जतन किया, पर रास्ते में चित्तौड़ के राजा समरसिंह (१२७३–१३०२ ई०) से हार कर लौट आया।

अपने बेटे मुहम्मद को उसने मंगोलों पर निगाह रखने को मुलतान का हाकिम बनाया। यह ध्यान देने की बात है कि इस युग में अफ़ग़ानिस्तान और दिल्ली के बीच का रास्ता मुलतान हो कर जाता था। उत्तर-पच्छिमी पंजाब की गक्खड़, खोकर आदि जातियाँ कभी दिल्ली के अधीन नहीं हुईं। इसी कारण दिल्ली सल्तनत का मुल्तान-उच्च वाला इलाका एक तरफ़ को बढ़ा हुआ था और मंगोलों को अधिक आकर्षित करता था। ब्यास नदी तब सतलज में मिलने के बजाय मुलतान के नीचे चिनाब में मिलती थी*, जिससे रावी और सतलज के बीच आज जो 'बार' (बाँगर, सूखी ऊँची बियाबान भूमि) है, वह हरा भरा प्रदेश था। इन कारणों से सीमान्त का रास्ता तब ग़ज़नी से उच्च, मुलतान और दीपालपुर हो कर दिल्ली पहुँचता था। दीपालपुर तब ब्यास के किनारे दिल्ली सल्तनत का बड़ा सीमान्त नाका था। सीमान्त का रास्ता उधर से होने के कारण नागोर और अजमेर भी तब सरहद के नज़दीक पड़ते थे।

लखनौती में भी बलबन ने अपने एक विश्वासपात्र को नियुक्त किया था। उसने कामरूप और उड़ीसा पर चढ़ाइयाँ कीं, जिनमें उसे बड़ी लूट मिली। इससे उसका दिमाग़ फिर गया और बलबन को पच्छिमी सीमान्त पर व्यस्त देख कर वह मुग़ीसुद्दीन तोग़रल नाम से स्वतन्त्र बन बैठा। उसके खिलाफ़ दो बार सेना भेजने के बाद बलबन ने स्वयम् उस पर चढ़ाई की। तोग़रल तब लखनौती से भाग निकला। बलबन ने सोनारगाँव की तरफ़ बढ़ कर राजा दनुजराय से, जो पूरबी और दक्खिनी बंगाल का स्वामी था, वचन लिया कि वह उधर के किसी जल-मार्ग से तोग़रल को भागने न देगा। फिर उसने तोग़रल का पीछा कर उड़ीसा की सीमा पर उसे जा पकड़ा, और

* ब्यास के उस पुराने पाट के चिह्न अब भी मौजूद हैं। उन्हीं के अनुसार इस प्रकरण के नक़्शों में ब्यास नदी अंकित की गयी है।

लखनौती के बाज़ार में खुली फाँसियाँ टाँग कर विद्रोहियों को लटकवा दिया (१२८२ ई०)। इसके बाद अपने बेटे नासिरुद्दीन महमूद उर्फ़ बुगरा को गौड का हाकिम बना कर वह दिल्ली लौट आया।

१२८५ ई० में मङ्गोलों ने पञ्जाब पर फिर चढ़ाई की। युवराज मुहम्मद उनसे लड़ता हुआ मारा गया। फ़ारसी और हिन्दी का प्रसिद्ध कवि मलिक खुसरो, जो मुहम्मद का साथी था, उसी युद्ध में क़ैद हुआ। दूसरे बरस बलबन भी चल बसा। मरने से पहले उसने बुगराख़ाँ को दिल्ली की सल्तनत सौंपनी चाही थी, पर बुगरा ने उस काँटों के ताज से गौड की सूबेदारी अधिक आराम की समझी। बुगरा का बेटा कैकोबाद चार बरस ही उस गद्दी को कलंकित कर पाया था जब एक खिलजी सेनापति ने उसका काम तमाम कर उसकी लाश जमना में फेंकवा दी। इस तरह दिल्ली में गुलाम वंश का अन्त हुआ (१२९० ई०)।

९७. **तेरहवीं सदी के हिन्दू राज्य**—हम देख चुके हैं कि बारहवीं शती के शुरू में समूचा दक्खिन भारत चालुक्य और चोल राज्यों में बँटा था; पर उस शती के अन्त तक चालुक्य राज्य के बजाय महाराष्ट्र (देवगिरि), आन्ध्र (ओरंगल) और कर्णाटक (धोरसमुद्र) के अलग-अलग राज्य हो गये थे। चोल राज्य के पास तब तामिल और केरल प्रान्त बचे थे। १३वीं शती की मुख्य घटना है चोल राज्य का टूटना और उसके स्थान पर पाण्ड्य राज्य का स्थापित होना।

राजराज ३य के शासन-काल (१२१६–४५ ई०) में १२२५ ई० से पहले उसके मदुरा के सामन्त मारवर्मा सुन्दर पांड्य ने ठेठ चोल देश अर्थात् कावेरी-काँठे पर चढ़ाई कर उरैपुर (त्रिचनापल्ली) और तांजोर को ले लिया, कोंगु-देश (कोयम्बतूर) पर अपना प्रभाव स्थापित किया और चिदम्बरम् तक चढ़ाई की। तब चोल राजा को भागना पड़ा। उस दशा में कुड्डलूर के उसके पल्लव सामन्त ने उसे क़ैद कर लिया। राजराज चोल ने तब अपने सम्बन्धी होयसल राजा वीर-नरसिंह २य (१२१८–३५ ई०) से मदद ली। १२४४ ई० में राजराज और उसके भाई राजेन्द्र ३य में युद्ध छिड़ा। तब फिर राजराज ने

वीर-नरसिंह के बेटे वीर-सोमेश्वर से मदद ली। राजराज मारा गया और राजेन्द्र ने गद्दी पायी। लेकिन होयसल राजा ने अब श्रीरंगम् के ५ मील उत्तर खण्डन-पुर (कण्णनूर) में छावनी डाल दी और कर्णाटक पठार के साथ लगे हुए तामिल प्रदेश पर दखल कर लिया। तभी काकतीय राजा गणपति (१२००–१२६० ई०) ने नेल्लूर से काञ्ची तक उत्तरी तामिल प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया।

राजेन्द्र ने गणपति से अपना इलाक़ा वापिस लिया, और सोमेश्वर की भी कुछ रोक-थाम करके २१ बरस राज किया (१२४४–६७ ई०)। परन्तु इस बीच मारवर्मा का दूसरा उत्तराधिकारी जटावर्मा सुन्दर पांड्य (१२५१–७४ ई०) अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। उसने पहले केरल को अधीन किया; फिर कावेरी-काँठे पर चढ़ाई कर राजेन्द्र चोल को करद बनाया। उसने सोमेश्वर को कण्ण-नूर से भगा दिया और कोंगुदेश को जीत लिया। उधर उसके भाई वीर पांड्य ने इस समय तक सिंहल को जीत लिया था। उत्तर तरफ़ बढ़ कर जटावर्मा ने काञ्ची जीत ली और नेल्लूर तक समूचे तामिल प्रदेश पर दखल किया। उत्तरी पैण्णार को पार कर उसने तैलंग गणपति को उसी के देश में हराया और कृष्णा पार भगा दिया। इस समय गणपति की मृत्यु हो गयी और उसकी बेटी रुद्रम्मा आन्ध्र देश की गद्दी पर बैठी। जटावर्मा ने उससे लड़ाई नहीं की।

लौटते हुए उसकी सोमेश्वर से फिर लड़ाई हुई, जिसमें सोमेश्वर खेत रहा (१२६२ ई०)। तब जटावर्मा ने श्रीरंगम् के मन्दिर में प्रवेश कर उसे १८ लाख सुवर्ण मुद्रा का दान दिया। श्रीरंगम् त्रिचनापल्ली का उपनगर है, जो कावेरी के बीच एक टापू पर बसा है। समूचा शहर रंगनाथ के विशाल मन्दिर के सात परकोटों के बीच आबाद है और उस मन्दिर का एक अंश जान पड़ता है। जटावर्मा और उसकी रानी चेरकुलवल्ली की सादी मूर्तियाँ उस मन्दिर में अब भी मौजूद हैं।

रानी रुद्रम्मा ने आन्ध्रदेश पर ३१ बरस राज किया (१२६०-६१ ई०)। उसके बाद अपने पोते प्रतापरुद्र को राज दे स्वयं अलग हो गयी। मार्को पोलो नामक इटालियन यात्री १३वीं शती के अन्त में स्थल के रास्ते इटली से

चीन तक गया था। रुद्रम्मा के बारे में वह लिखता है कि वह बड़ी विवेकशील और न्यायपरायण स्त्री थी, "और उसकी प्रजा उसे ऐसा चाहती थी जैसा पहले किसी राजा या रानी को नहीं चाहती थी।...और इस राज्य में बढ़िया नफ़ीस कपड़े बनते हैं, जो सचमुच मकड़ी के जाले से लगते हैं। दुनियाँ का कोई राजा या रानी ऐसा नहीं है जो उन्हें पहन कर खुश न हो।" रुद्रम्मा के राज्य में हीरे की खानें थीं। उन हीरों के विषय में मार्को पोलो ने अनेक कहानियाँ लिखी हैं।

जटावर्मा के उत्तराधिकारी मारवर्मा कुलशेखर ने १३११ ई० तक राज्य किया। वह तामिल देश का अत्यन्त समृद्धि का युग था। अरब लोग, जो उस समय युरोप और चीन के बीच मुख्य व्यापारी थे, तामिलनाड को संसार का सबसे समृद्ध देश मानते थे। खम्भात से कनारा तक का भारत का पच्छिमी तट उन्हें पसन्द न था, क्योंकि वहां समुद्री डाकुओं के अनेक अड्डे थे, और उसके अलावा वहाँ यह कायदा था कि यदि कोई जहाज़ विप्रणष्ट हो कर किसी बन्दर पर आ लगे तो वह वहाँ के राजा का हो जाता था। इसके विपरीत केरल, तामिल और आन्ध्र तटों पर विदेशी व्यापारियों को अनेक सुविधाएँ थीं। राजा गणपति के वे शासनपत्र अभी तक मौजूद हैं जिनमें उसने विदेशी व्यापारियों को आश्वासन दिलाया है कि उसके राज्य में उनसे 'कूपशुल्क' (ज़कात) के सिवाय और कोई चुंगी न ली जायगी। वैसी ही सुविधा तामिलदेश में भी थी; इसी से "कूलम (कोल्लम) से निलावर (नेल्लूर) तक" के प्रदेश को अर्थात् केरल और तामिलनाड को अरब लोग "मअबर" यानी रास्ता कहते थे—वह उनके लिए चीन जाने का खुला रास्ता था। इस मअबर में तीन बड़े बन्दरगाह तब प्रसिद्ध थे—रामेश्वरम् का पट्टण, देवीपट्टणम् तथा ताम्रपर्णी के मुहाने में कायलपट्टणम्। "चीन और महाचीन की अद्भुत कला की वस्तुएँ और हिन्द और सिन्ध की सब उपज लादे हुए जंक कहलाने वाले जहाज़, जो पानी पर हवा के पंख फैलाए हुए पहाड़ से लगते थे", सदा इन पट्टणों को घेरे रहते थे। ओरमुज़, ईरान और अरब से वहाँ बड़ी तादाद में घोड़े आते थे। राजा कुलशेखर हर साल १० हज़ार घोड़े ईरान और अरब में ख़रीदता था, जिसके लिए ईरान की खाड़ी में कैस टापू के

सरदार मलिक जमालुद्दीन को ठेका दिया गया था। जो घोड़े राह में मर जाते उनके दाम भी कुलशेखर चुका देता था। जमालुद्दीन की एक कोठी कायलपट्टणम् में थी, जहाँ उसका भाई रहता था। उसे इन पट्टणों की ज़कात का ठेका भी दिया गया था। अरब लोगों की दृष्टि में "ईरान की खाड़ी के द्वीपों और इराक से रोम और युरोप तक सब देशों की समृद्धि मअबर पर निर्भर थी।" राजा "कलेस देवर" (कुलशेखर देव) के न्याय शासन की उन्होंने बड़ी प्रशंसा की है।

आन्ध्र और महाराष्ट्र के उत्तर तरफ़ उड़ीसा के गङ्गों और गुजरात के चालुक्यों का सम्बन्ध उत्तर और दक्खिन दोनों से था। जब इल्तुतमिश गुजरात पर चढ़ाई करना चाहता था उसी समय देवगिरि का राजा सिंघण भी उस पर घात लगाये था। भोला भीम के मन्त्री वीरधवल ने दोनों से गुजरात को बचाया, परन्तु उसके उत्तराधिकारी से १२४३ ई० में वीरधवल के बेटे ने राज्य छीन लिया। वीरधवल भी गुजरात के सोलंकियों की एक दूसरी शाखा में से था। उस शाखा के पास व्याघ्रपल्ली या बघेल गाँव की जागीर थी। इस कारण ये बघेल-सोलंकी कहलाते हैं।

महाराष्ट्र और उड़ीसा के बीच त्रिपुरी का चेदि राज्य था, जिसकी स्वाभाविक सीमा वर्धा नदी से मगध के दक्खिन-पच्छिम तक थी। उस राज्य पर कोई मुस्लिम हमला नहीं हुआ, तो भी १२वीं सदी के अन्त में वह भी आप से आप छिन्न-भिन्न हो गया, और उसके इलाक़ों में जहाँ-तहाँ छोटे-मोटे सरदार खड़े हो गये। उत्तर-पूरबी चेदि में गुजरात के बघेल सोलंकियों की एक शाखा जा बसी, जिससे वह प्रदेश बघेलखण्ड कहलाने लगा। इन बघेलों ने जझौती के चन्देलों से कालंजर ले लिया। महाकोशल अर्थात् छत्तीसगढ़ में चेदि राजवंश की एक छोटी शाखा राज्य करती थी। उनकी राजधानी रत्नपुर थी। मालवा के परमारों की शक्ति भी इस शताब्दी में अत्यन्त क्षीण रही। पृथ्वीराज ने जब धसान नदी तक का प्रदेश उनसे ले लिया, तभी से उनका सम्बन्ध उत्तर के मैदान से टूट गया था। उनके और दिल्ली-सल्तनत के बीच रणथम्भोर का चौहान राज्य बना रहा। जझौती के चन्देलों से कालपी

का मैदान और कालंजर छिन गया, तो भी वे निःशक्त न हुए। गुलाम वंश के समय उनके केवल दो राजाओं त्रैलोक्यवर्मा (१२१२-६१ ई०) और वीरवर्मा (१२६१-८६ ई०) ने राज्य किया।

उड़ीसा के गङ्ग राजा इस शती में बड़े प्रबल थे। आन्ध्र और छत्तीसगढ़ की सीमा से हुगली ज़िले के मन्दारण क़िले तक उनका इलाक़ा था। उनकी राजधानी जाजपुर थी। उसके नाम से मुसलमान लेखक उन्हें जाजनगर के राजा कहते थे। सुवर्णग्राम के सेन राजा इस शती भर दुर्बल रहे। गौड़ के तुर्कों के अलावा अराकान के मग भी उनपर अनेक हमले करते रहे। १२३८ ई० में कामरूप राज्य से, जैसा हम अभी देखेंगे, पूरबी आसाम छिन चुका था, और बङ्गाल में भी वह राज्य अन्तिम सांस ले रहा था। तिरहुत में नान्यदेव के वंशज कर्णाट राजा दिल्ली और लखनौती के बीच सवा सौ बरस तक अपनी स्वतन्त्रता बनाये रहे।

कश्मीर से नेपाल तक सब पहाड़ी प्रदेशों में हिन्दू राज्य अभी बने हुए थे।

अध्याय ३

मङ्गोलों का विश्व-साम्राज्य

(१२१६—१३७० ई०)

§१. **मङ्गोल साम्राज्य का विस्तार**—मङ्गोलों के सम्राट् चंगेज़ख़ाँ का ज़िक्र हो चुका है। वह सन् १२०३ में मङ्गोलों का ख़ान बना, और १२१६ ई० तक उसने उत्तरी और मध्य एशिया से पच्छिमी एशिया तक सब तुर्क राज्यों को उखाड़ फेंका। १२२७ ई० में उसकी मृत्यु के समय मङ्गोल साम्राज्य प्रशान्त महासागर से रूस, बुलगारिया और हुंगरी के अन्दर तक पहुँच चुका था। चीन और तिब्बत उसके अन्तर्गत थे। इस तरह मङ्गोल साम्राज्य की दक्खिनी सीमा भारत को छूती थी। अफ़ग़ानिस्तान लेने के बाद चंगेज़ख़ाँ ने भारत हो कर कामरूप के रास्ते वापिस जाने का इरादा किया पर हमारे देश की गरमी वह न सह सका और लौट गया। अफ़ग़ानिस्तान में अब जो हज़ारा नाम की जाति है वह चंगेज़ के मङ्गोलों की ही वंशज है।

चंगेज़ के वंशज उसी की तरह प्रतापी हुए। उनके समय में मङ्गोल साम्राज्य प्रशान्त महासागर से बाल्टिक सागर और दक्खिनी चीन सागर तक फैला हुआ था। इस साम्राज्य की राजधानी मङ्गोलिया में ही रही। चंगेज़ के बाद उसके बेटे ओगोताई ने राज्य किया (१२२७–४१ ई०), फिर ओगोताई के भतीजे मानक़ू ख़ान ने (१२४१–५६ ई०), और उसके पीछे मानकू के भाई कुबलैख़ान ने (१२५६–६४ ई०)। पूरबी तुर्किस्तान, आमू-सीर का दोआब, बलख़ और ग़ज़नी के सूबे चंगेज़ के बेटे चगताई को दिये गये, जिससे उस इलाके का नाम ही बाद में चगताई पड़ गया, और वहाँ के तुर्क चगताई-तुर्क कहलाने लगे। ओगोताई और मानक़ू के समय सारा चीन जीत लिया गया। मानक़ू के भाई हलाक़ू ख़ान की राजधानी तबरेज़ (ईरान) में थी। उसने

१२५८ ई० में बगदाद के खलीफा मोतसिम-बिल्ला का वध कर खिलाफत की जड़ उखाड़ डाली। कुबलै ने अपना बेड़ा सुमात्रा-जावा को जीतने भी भेजा (१२६३ ई०)। वे द्वीप उसके साम्राज्य में शामिल तो न हुए, पर उसकी चढ़ाई से वहाँ के पुराने राज्य समाप्त हो गये। १२८६ ई० में "मअबर" के राजा मारवर्मा कुलशेखर ने कुब्लै के पास दूत भेजा।

§२. परले हिन्द और आसाम में चीन-किरात जातियों का आना—मंगोलों की इस प्रगति से चीन और तिब्बत की कई जातियों में भी खलबली मच गयी, और वे दक्खिन की ओर बढ़ीं। आजकल हम जिस प्रायद्वीप को हिन्द-चीन कहते हैं उसमें चीनी-तिब्बती जातियों की प्रधानता तभी से हुई। उससे पहले वहाँ आग्नेय लोग रहते थे, जिनमें भारतीय प्रवासी खूब घुल-मिल चुके थे। कम्बुज राष्ट्र में उस समय सुखोदय नाम का एक प्रान्त था। अब चीनी जाति शान या साम के आ बसने से उसका नाम स्याम हो गया। हिन्द-चीन के इन नये विजेताओं ने पुराने हिन्दू राज्य तो दबा या मिटा दिये, पर स्वयम् उनके धर्म, सभ्यता और लिपि की दीक्षा ले ली। उसी शान जाति की एक शाखा अहोम ने कामरूप का पूरबी भाग जीत लिया, जिससे वह प्रान्त आसाम कहलाने लगा। अगली एक शताब्दी में कामरूप का पच्छिमी अंश भी जीता गया, पर अहोम लोग स्वयम् धीरे-धीरे हिन्दुओं में घुल-मिल गये। आसाम के हिन्दुओं में अब भी फूकन, बरुआ आदि जो उपनाम हैं, वे अहोमों के ही हैं। जावा से कुब्लै की सेना चली जाने पर वहाँ जयवर्धन नामक व्यक्ति ने एक नया राज्य खड़ा किया (१२६४ ई०), जिसकी राजधानी बिल्वतिक्त या मजपहित नगरी थी। आगे चल कर वह एक बड़ा समुद्री साम्राज्य बन गया।

§३. संसार की सभ्यता को मंगोलों की देन—मध्य-युग के संसार की अन्य जातियाँ जब अपने-अपने तंग दायरों में कूपमंडूकों की तरह सीमित और सन्तुष्ट थीं, तब मंगोलों ने एक विश्व-साम्राज्य खड़ा किया। भूमण्डल की किसी भी रुकावट की उन्होंने परवा न की। अनेक प्रकार की सभ्यताओं, विचारों और धर्मों से सम्पर्क में आने के कारण उनकी दृष्टि भी बड़ी उदार हो गयी थी।

मुहम्मद-बिन-बख्त्यार ने जब विहार जीता तब विक्रमशिला-महाविहार का आचार्य श्रीभद्र नामी एक कश्मीरी था। वह भाग कर नेपाल पहुँचा, और वहाँ से तिब्बत के साक्य विहार में बुलाया गया। उसका तिब्बती शिष्य कुङ्ग-ग्येंछुन पीछे साक्य विहार का महन्त बना। चंगेज़ ने जब अफ़ग़ानिस्तान जीता उसी समय कुङ्ग्ग्येंछुन मंगोलिया की धर्म-विजय करने लगा (१२२२ ई०)। सम्राट् ओगोताई उसका चेला बन गया। सम्राट् मानकू खान ने अपनी राज-



उत्तरी चीन की राजधानी पेपिङ में कुबलै खान की बनवायी वेधशाला के खँडहरों में काँसे का गोल यन्त्र (अन्तरिक्ष में राशियों की आपेक्षिक स्थिति देखने का यन्त्र)—मङ्गोलों के विज्ञान-प्रेम का प्रमाण।

धानी में एक सभा बुला कर यह तय करना चाहा कि संसार का कौन सा मत सब से अच्छा है। पहले तो उस सभा में ईसाई और इस्लाम मतों की जीत होती दिखायी दी, पर अन्त में कुङ्ग्ग्येंछुन के भतीजे फग्पा का भाषण सुन कर मानकू ने कहा, "हाथ की हथेली से जैसे पाँचों अंगुलियाँ निकली हैं, वैसे ही बौद्ध मत

से सब मत निकले हैं।" कुब्लै ने फग्पा को अपना राज-गुरु बनाया। तिब्बत से बौद्ध ग्रन्थों के मंगोल भाषा में अनुवाद कराये गये, और फग्पा ने तिब्बत वाली भारतीय लिपि में मंगोल भाषा को लिखने की रीति भी निकाली। मंगोल सम्राटों ने अपने इन गुरुओं को तिब्बत में जागीरें दीं, जिससे वहाँ लामा-शासन की नींव पड़ी।

मंगोलों द्वारा चीन से बारूद का ज्ञान यूरोप पहुँचा, जिससे अगले युग में संसार की काया पलट गयी। मध्य युग के पूरबी और पच्छिमी संसार की सभ्यताएँ जब बिलकुल निश्चेष्ट और मन्द हो चुकीं थीं तब मंगोलों ने उन्हें मानों मथ कर उनमें गति और जीवन पैदा किया।

अध्याय ४

दिल्ली साम्राज्य का चरम उत्कर्ष

(१२९०—१३२५ ई०)

§१. **जलालुद्दीन खिलजी—मालवा की विजय**—जलालुद्दीन जब दिल्ली की गद्दी पर बैठा, तब वह ७० बरस का था। वह स्वभाव का नरम था, और प्रायः अपराधियों को भी क्षमा कर देता था। सन् १२९१ में उसने रणथम्भोर पर चढ़ाई की। वहाँ सफलता की आशा न देख वह उज्जैन की तरफ़ चला गया, और उसे लूटने में सफल हुआ। दो बरस बाद उसके भतीजे और दामाद अलाउद्दीन ने मालवा पर फिर चढ़ाई करके भेलसा अर्थात् पूरबी मालवा पर अधिकार कर लिया। उसी समय से मालवा दिल्ली का एक सूबा बन गया। इधर १२९२ ई० में मंगोल सतलज पार कर सूनम (पटियाला के पास) तक बढ़ आये, किन्तु वहाँ उनकी हार हुई, और उन में से तीन हज़ार ने मुसलमान बन कर सुल्तान की सेवा स्वीकार की।

मालवा का मुख्य अंश फ़तह हो जाने से गुजरात और दक्खिन का सीधा रास्ता तुर्कों के हाथ आ गया। आजकल के इलाहाबाद ज़िले का मुख्य स्थान तब कड़ा-मानिकपुर था। अलाउद्दीन वहाँ का हाकिम था। वह बड़ा महत्त्वाकाँक्षी था। पहले उसने बंगाल जीतने का इरादा किया, पर पीछे उसे दक्खिन जीतना उपयुक्त मालूम हुआ। मालवा की पूरबी सीमा पर चन्देरी प्रदेश जीतने को बाकी था। आठ हज़ार सेना के साथ उस पर चढ़ाई करने के बहाने अला-उद्दीन दक्खिन की ओर बढ़ा और चन्देरी से इलिचपुर होते हुए एकाएक

देवगिरि को जा घेरा (१२९४ ई०)। राजा रामदेव ने हार कर इलिचपुर का इलाका (उत्तरी बराड़) और बहुत अधिक धन उसे दिया। अपनी उस लूट के लिये वह कड़ा वापिस आया। वहाँ उसने सुल्तान को वह लूट भेंट करने के बहाने बुलाया। बूढ़ा चचा जब उसे छाती से लगा रहा था तब उसे क़त्ल करा दिया और ख़ुद दिल्ली का सुल्तान बन बैठा (१२९५ ई०)।



देवगिरि का क़िला

§२. अलाउद्दीन खिलजी—गुजरात, राजपूताना और दक्खिन की विजय—राज संभालते ही अलाउद्दीन को मंगोलों का सामना करना पड़ा। १२९६ ई० में एक लाख मंगोल मुलतान, पंजाब और सिन्ध जीतने को चढ़ आये। सेनापति ज़फ़र खाँ ने जालन्धर के पास उन्हें हरा दिया और वे लौट गये।

१२९७ ई० में अलाउद्दीन ने अपने भाई उलूग खाँ और सेनापति नसरत खाँ को गुजरात पर चढ़ाई करने भेजा। मालवा से उन्होंने मेवाड़ के रास्ते बढ़ना चाहा, किन्तु राजा समरसिंह ने उन्हें मार भगाया। तब मेवाड़ के दक्खिन घूम कर वे आसावल जा पहुँचे। यह वह स्थान है जहाँ अब अहमदाबाद बसा

है। वहाँ से उन्होंने अणहिलपाटन पर चढ़ाई कर उसे ले लिया। राजा कर्ण, जिसे गुजरात में करण घेलो (पगला कर्ण) कहते हैं, भाग कर देवगिरि चला गया। तुर्कों ने खम्भात का प्रदेश खूब लूटा और उजाड़ा। वहाँ से जो दास पकड़ कर लाये गये उनमें से एक, आगे चल कर, मलिक काफ़ूर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

गुजरात की चढ़ाई से लौटते हुए नौमुस्लिम मंगोलों ने विद्रोह किया। वे बड़ी संख्या में मारे गये और बहुत से जहाँ-तहाँ भाग गये। अलाउद्दीन ने दिल्ली में उनकी स्त्रियों और बच्चों पर भी दिल की कसक निकाली। १२९९ ई० में दो लाख मंगोल सेना कुतलग नामक सरदार के नेतृत्व में दिल्ली तक आ पहुँची। इस बार उन्होंने रास्ते में लूट-मार कहीं न की क्योंकि दिल्ली को जीत लेना ही उनका उद्देश था। घोर युद्ध के बाद उनकी हार हुई। इस युद्ध में सेनापति ज़फ़र ख़ाँ काम आया।

मालवा और गुजरात के दिल्ली साम्राज्य में शामिल हो जाने से राजपूताना के राज्य तीन तरफ़ से घिर गये। अलाउद्दीन ने एक तरफ़ इन राज्यों को जीतना तथा दूसरी तरफ़ ताप्ती के आगे दक्खिन की ओर बढ़ना अपना उद्देश बना लिया। राजपूताना में रणथम्भोर का चौहान राज्य उसका सबसे पहला पड़ोसी था। वहाँ के राजा हम्मीर ने इसी समय एक भागे हुए मंगोल सरदार को शरण दी, और अलाउद्दीन के माँगने पर उसे लौटाने से इनकार कर दिया। अलाउद्दीन ने उस पर चढ़ाई की। एक बरस के सख़्त युद्ध के बाद हम्मीर के मारे जाने पर क़िला सुल्तान के हाथ लगा। सेनापति नसरतख़ाँ भी इस युद्ध में काम आया (१३०१ ई०)। रणथम्भोर की जीत से दिल्ली-सल्तनत की सीमा मेवाड़ से जा लगी। समरसिंह के बेटे रत्नसिंह को मेवाड़ की गद्दी पर बैठे अभी कुछ महीने बीते थे कि अलाउद्दीन ने चित्तोड़ को घेर लिया (१३०२ ई०)। ६ महीने घिरे रहने के बाद जब रसद और पानी चुक गये तो किला अलाउद्दीन के हाथ आया। रत्नसिंह मारा गया और उसकी रानी पद्मिनी ने बहुत सी स्त्रियों के साथ जौहर कर लिया। अलाउद्दीन ने चित्तोड़ का राज्य अपने बेटे ख़िज़र ख़ाँ को दे कर उसका नाम ख़िज़राबाद रक्खा।

अलाउद्दीन चित्तोड़ को मुश्किल से ले ही पाया था कि दिल्ली से मंगोलों के नये हमले की ख़बर आयी। तरग़ी नामक मंगोल सरदार ने एक बड़ी सेना के साथ जमना किनारे डेरा आ डाला और दिल्ली को घेर लिया। अलाउद्दीन के आने पर वह हट गया। मंगोलों को क़िलों को सर करने का अभ्यास न था। इसीसे वे दिल्ली के घेरे से ऊब गये थे। १३०४ ई० में फिर एक मंगोल हमला हुआ। तब अलाउद्दीन ने ग़ाज़ी तुग़लक नामक सेनापति को मंगोलों को रोकने के लिए दीपालपुर के सरहद्दी थाने पर नियुक्त किया। उसके बाद भी दो बार मंगोल फिर सिन्ध पार कर आये, पर ग़ाज़ी तुगलक ने उनका दृढ़ता से मुकाबला किया, और फिर तो उसने कई बार काबुल और लमग़ान तक उन का पीछा किया। सन् १३०५ से १३०८ ई० तक अलाउद्दीन ने मारवाड़ पर सेनाएँ भेज जालोर और सिवाना के हिन्दू राज्य जीत लिये।

राजा रामदेव ने इलिचपुर का कर भेजना बन्द कर दिया था, इसलिए १३०६-७ ई० में अलाउद्दीन ने एक बड़ी सेना मलिक काफ़ूर के नेतृत्व में उधर रवाना की। मालवा और गुजरात होते हुए काफ़ूर ने बागलान के साल्हेरगढ़ में कर्ण सोलंकी को जा घेरा और उसे हराया। देवगिरि का यादव राजा रामदेव और उसका बेटा शङ्कर भी क़ैद हो कर दिल्ली पहुँचे, और अधीनता मानने पर अपने देश को वापिस भेजे गये। इलिचपुर प्रान्त पर काफ़ूर ने दख़ल कर लिया।

दूसरे बरस काफ़ूर को ओरङ्गल की चढ़ाई पर भेजा गया (१३०८ ई०)। एक बरस क़िले में घिरे रहने के बाद राजा प्रतापरुद्र ने बहुत सा ख़ज़ाना और वार्षिक कर का वचन दे कर छुटकारा पाया। एक हज़ार ऊँटों पर उस लूट को लादे हुए काफ़ूर दिल्ली वापिस पहुँचा। १३१० ई० के अन्त में वह फिर रवाना हुआ, और इस बार धोरसमुद्र के राजा वीर बल्लाल को हरा कर उस से भारी रक़म वसूल की और अधीनता का वचन लिया।

तामिल देश के राजा कुलशेखर ने अपने छोटे-बेटे वीर पांड्य को अधिक योग्य जान कर उत्तराधिकारी बनाया था। इस पर बड़े बेटे सुन्दर पांड्य ने पिता को मार डाला (१३११ ई०), और जब वीर पांड्य ने उस पर हमला

किया तो वह मुसलमानों की मदद लेने पहुँचा। इस दशा में मलिक काफ़ूर ने 'मअबर' पर चढ़ाई की। घाट पार कर वह कावेरी-काँठे में उतरा और कण्णनूर पर छावनी डाली। वहाँ से श्रीरंगम्, चिदम्बरम् आदि की बस्तियों और मन्दिरों को लूटते हुए उसने त्रिचनापल्ली से मदुरा पर चढ़ाई की, और मदुरा से पट्टणम् अर्थात् रामेश्वरपट्टण के सामने तक जा पहुँचा, जहाँ उसने एक मस्जिद बनवायी। वीर पाण्ड्य इस बीच जंगलों में भाग गया था। मदुरा में कुछ सेना छोड़ कर बहुत बड़ी लूट के साथ १३११ ई० के अन्त में काफ़ूर दिल्ली पहुँचा। उसके लौटते ही त्रावंकोर के राजा रविवर्मा कुलशेखर ने समूचे तामिल देश पर अधिकार कर लिया। मदुरा की मुसलमान सेना उस शहर में घिरी रह गयी। वीर पांड्य कोंकण भाग गया।

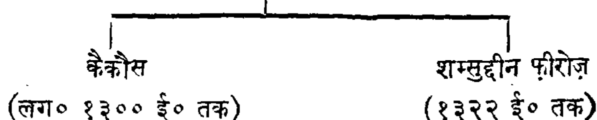
देवगिरि के राजा शङ्कर ने खिराज देना बन्द कर दिया और पिछली चढ़ाई में मदद भी न की थी। इस कारण १३१३ ई० में चौथी बार दक्खिन पर चढ़ाई कर काफ़ूर ने उसे हराया, और समूचे महाराष्ट्र को लूटा।

§३. अलाउद्दीन का शासन—अलाउद्दीन कठोर शासक था। तुर्क सरदारों की उच्छृंखलता दबाने के लिए उसने उनके पारस्परिक प्रीतिभोजों तक को बन्द कर दिया था। उसने स्वयम् शराब पीना छोड़ा और राज्य में उसकी सख्त मनाही कर दी। उसने सब मुफ़्तखोरों की वक़्फ़, जागीरें आदि ज़ब्त कर लीं। पिछले सुल्तान शरीअत अर्थात् इस्लामी क़ानून के अनुसार शासन करते थे; उसने अपने राजकीय अधिकार को उससे भी ऊँचा माना और स्वतन्त्रता से नियम बनाये। वह अपने जासूसों द्वारा अपने हाकिमों के कार्यों का पूरा-पूरा पता रखता था—सेना तो सुसङ्गठित थी ही।

दोआब के हिन्दू ज़मींदारों को उसने बुरी तरह दबाया, और उन पर ५० फ़ी सदी तक कर लगा दिया। कहते हैं हिन्दुओं की यह हालत हो गयी कि वे न घोड़े पर चढ़ सकते थे और न अच्छे कपड़े पहन सकते थे। व्यापार और बाज़ारों का उसने पूरा नियन्त्रण किया, यहाँ तक कि चीज़ों के भाव तक तय कर दिये। वैसा करने का प्रयोजन शायद यह था कि ज़मींदार और बिचवानिये ग़रीब प्रजा को न लूट पावें। कहते हैं कि इस प्रबन्ध से राज्य में सुभिक्ष हो गया था।

§४. **लखनौती-सल्तनत का विस्तार**—बलबन के मरने पर जब कैको-बाद दिल्ली की गद्दी पर बैठा, तब उसका बाप नासिरुद्दीन महमूद लखनौती में स्वतन्त्र हो गया था। दिल्ली राज्य के विस्तार के साथ-साथ लखनौती-राज्य का भी विस्तार हुआ। बिहार भी लखनौती के सुल्तानों के अधीन रहा। कड़ा-मानिकपुर तब दिल्ली-सल्तनत का सबसे पूरबी इलाका था। लखनौती के इन सुलतानों के राज्य-काल यों हैं—

नासिरुद्दीन महमूद
(१२८७–९१ ई०)



कैकौस
(लग० १३०० ई० तक)

शम्सुद्दीन फ़ीरोज़
(१३२२ ई० तक)

१२९८ ई० में दक्खिनी बङ्गाल का मुख्य नगर सातगाँव जीता गया। फिर शम्सुद्दीन फ़ीरोज़ के शासन-काल में उसके बाग़ी बेटे गयासुद्दीन बहादुर ने सोनारगाँव छीन कर सेन राजवंश का अन्त कर दिया। इस प्रकार बङ्गाल का मुख्य भाग लखनौती के अधीन हुआ। पूरब में सिलहट और त्रिपुरा, और दक्खिन में यशोहर-खुलना आदि समुद्रतट के इलाकों में छोटे-छोटे हिन्दू राज्य बने रहे। उत्तर बङ्गाल में कामरूप राज्य तो अहोमों के हाथों खतम हो गया, पर कामतापुर में एक हिन्दू राज्य बना रहा।

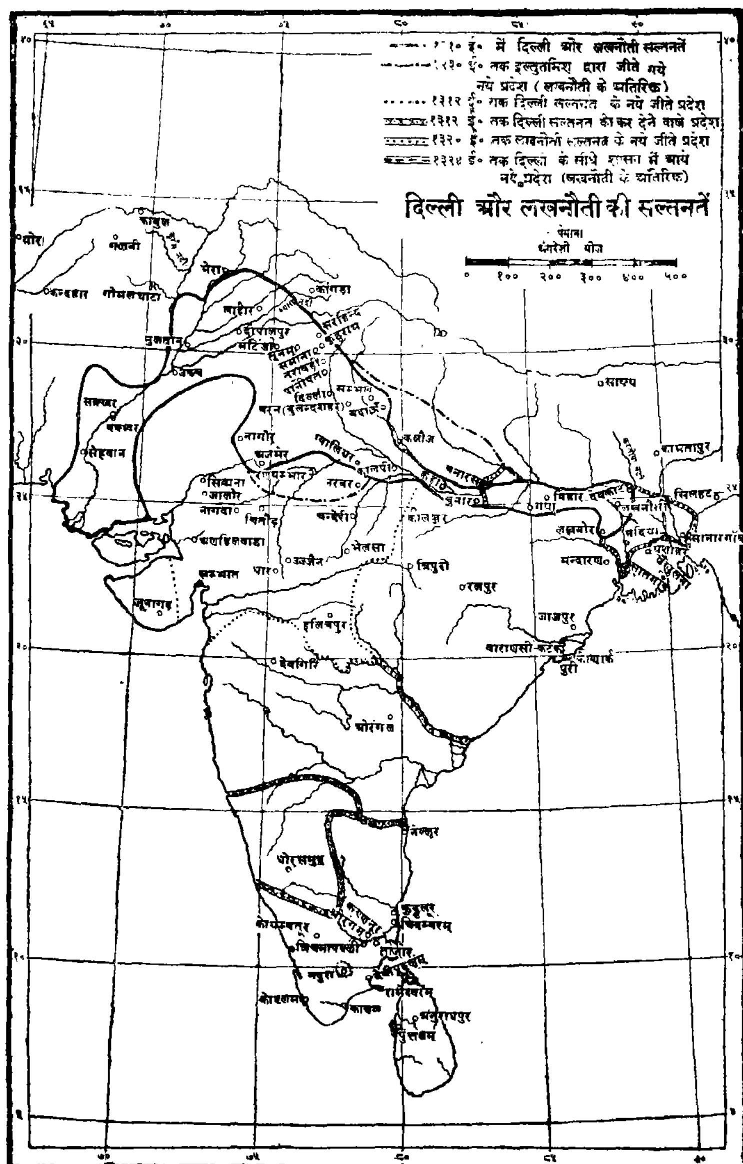
§५. **खिलजी वंश का अन्त**—अलाउद्दीन के बूढ़े होते-होते दिल्ली राज्य का सङ्गठन ढीला पड़ने लगा। उसकी मृत्यु (१३१६ ई०) के बाद मलिक काफ़ूर ने उसके दो बेटों की आँखें निकलवा दीं, पर तीसरा मुबारक बच निकला। काफ़ूर को मार कर वह गद्दी पर बैठा। दिल्ली के इस राजविप्लव के समय दक्खिन के राज्य स्वतन्त्र हो गये। वीर बल्लाल ने धोरसमुद्र को फिर से बसाया (१३१६ ई०), और देवगिरि तथा ओरंगल ने भी कर देना छोड़ दिया। मुबारक ने देवगिरि के राजा हरपालदेव पर, जो रामदेव का दामाद था, चढ़ाई की, और उसे पकड़ कर उसकी खाल उधड़वा दी। तब उसने

महाराष्ट्र से हिन्दू राज्य मिटा कर देवगिरि को दिल्ली का सूबा बना दिया और वहाँ अपने हाकिम नियत किये (१३१८ ई०)। उसने सेनापति खुसरो को ओरंगल पर भेजा। राजा प्रतापरुद्र ने फिर कर देना स्वीकार किया और राज्य के पाँच परगने सौंप दिये। ओरंगल से देवगिरि लौट कर खुसरो ने मअबर पर चढ़ाई की, जहां बरसात के कारण उसे छावनी में बन्द पड़ा रहना पड़ा।

खुसरो भी हिन्दू से मुसलमान बना था। पहले वह एक 'नीच जाति' का गुजराती था। दिल्ली लौट कर उसने मुबारकशाह को अपने हाथ की कठ-पुतली बना लिया। पीछे उसका काम तमाम कर खुसरो नासिरुद्दीन के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा (१३२० ई०)। पुराने सरदारों को दबा कर उसने अपनी जाति के लोगों को बड़े-बड़े पदों पर पहुँचा दिया। उसके दिल में हिन्दू संस्कार बाकी थे। मस्जिदों में कुरानों के ऊपर उसने मूर्त्तियाँ रखवा दीं। उसके जोर-जुल्म से तुर्क तङ्ग आ गये। दीपालपुर के हाकिम गाज़ी तुग़लक ने दिल्ली पर चढ़ाई की और खुसरो को मार डाला (१३२० ई०)। कुल ३० बरस शासन करके खिलजी राजवंश मिट गया, और ग़ाज़ी तुग़लक गयासुद्दीन के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा।

§६. **गयासुद्दीन तुग़लक**—गयासुद्दीन तुग़लक एक ग़रीब तुर्क का बेटा था। उसकी माँ पञ्जाब की एक जट्टी (जाटनी) थी। उसने दिल्ली के राज्य को फिर से व्यवस्थित किया। ओरङ्गल के राजा प्रतापरुद्र ने कर देना फिर बन्द कर दिया था। उसके दमन के लिए ग़यासुद्दीन ने अपने बेटे जूना को भेजा, जो एक बार (१३२१ ई०) विफल लौट कर दूसरी बार सफल हुआ (१३२३ ई०)। राजा प्रतापरुद्र कैदी बना कर दिल्ली भेजा गया, और तेलंगण को दिल्ली का सूबा बना दिया गया। ओरंगल से जूना ने राजमहेन्द्री पर चढ़ाई की, और उस शहर को ले लिया। वहाँ से उसने उड़ीसा के राज्य पर एक धावा किया। उड़ीसा में इस समय नरसिंह १म का पड़पोता भानुदेव २य राज कर रहा था।

ग़यासुद्दीन के दीपालपुर से दिल्ली जाते ही सिन्ध के समरा राजपूत, जो वहाँ के असल शासक थे, विद्रोह कर स्वतन्त्र हो गये। ग़यासुद्दीन इधर ध्यान न दे सका। इसके बाद सिन्ध नाम को ही दिल्ली के अधीन रहा।


दिल्ली और लखनौती की सल्तनतें
१२१० ई० में दिल्ली और लखनौती सल्तनतें
१२३० ई० तक इल्तुतमिश द्वारा जीते गये नये प्रदेश (लखनौती के अतिरिक्त)
१३१२ ई० तक दिल्ली सल्तनत के नये जीते प्रदेश
१३१२ ई० तक दिल्ली सल्तनत को कर देने वाले प्रदेश
१३२० ई० तक लखनौती सल्तनत के नये जीते प्रदेश
१३२४ ई० तक दिल्ली के सीधे शासन में आये नये प्रदेश (लखनौती के अतिरिक्त)
पैमाना
अंगरेजी मील
० १०० २०० ३०० ४०० ५००
काबुल
गजनी
लाहौर
मुलतान
दीपालपुर
भटिण्डा
सरहिन्द
उच्छ
सक्खर
सेहवान
नागौर
अजमेर
ग्वालियर
कालपी
कन्नौज
बदाऊँ
बनारस
चुनार
नरवर
सिवाना
जालौर
चित्तौड़
चन्देरी
उज्जैन
भेलसा
धार
खम्बात
जूनागढ़
त्रिपुरी
रतनपुर
जाजपुर
पुरी
कोणार्क
देवगिरि
ओरंगल
लखनौती
सिलहट
मन्दारण
नेल्लूर
द्वारसमुद्र
कुड्डलूर
चिदम्बरम
तन्जौर
रामेश्वरम

बङ्गाल में शम्सुद्दीन फ़ीरोज़ के मरने पर उसके बेटे आपस में लड़ने लगे। उनमें से दो दिल्ली के सुल्तान से मदद लेने पहुँचे। १३२० ई० में ग़यासुद्दीन ने बंगाल पर चढ़ाई की। वह गङ्गा के उत्तर-उत्तर तिरहुत के रास्ते बढ़ा। इस कारण तिरहुत के कर्णाट-वंशी राजा हरसिंहदेव से उसका युद्ध हुआ। हरसिंहदेव के मन्त्री चण्डेश्वर ने चौदहवीं सदी के शुरू में ही नेपाल को जीता था। हरसिंह वहीं भाग गया। बङ्गाल को जीत कर ग़यासुद्दीन ने लखनौती, सातगाँव और सोनारगाँव के अलग-अलग प्रान्त बनाये और उनमें अपने हाकिम नियुक्त किये।

जब वह लौट कर दिल्ली आया तो उसके बेटे जूना ने उसके स्वागत को शहर के बाहर लकड़ी का एक तोरण (कुश्क) खड़ा किया, जो ठीक मौके पर सुल्तान के ऊपर गिर पड़ा (१३२५ ई०)। ग़यासुद्दीन एक सीधा सादा कर्तव्य-परायण आदमी था। दिल्ली के पास तुग़लक़ाबाद क़िले की इमारत में, जो उसने बनवायी थी, उसका वही गौरवयुक्त सीधापन झलकता है।

§७. दिल्ली साम्राज्य की सीमाएँ—पहले मुस्लिम युग में दिल्ली का साम्राज्य ग़यास तुग़लक़ के समय अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। मुलतान, दीपालपुर और लाहौर से सोनारगाँव और सातगाँव तक केवल तिरहुत का एक प्रान्त बाक़ी था, जो उसके अधीन न हुआ था। पर तिरहुत का भी पराभव हो चुका था। राजपूताना, मालवा और गुजरात (कच्छ-काठियावाड़ के बिना) उसमें सम्मिलित थे। मालवा के ठीक पूरब लगा हुआ चन्देरी का सूबा (=सागर-दमोह ज़िले) भी, जो पुराने चेदि राज्य में था, ग़यासुद्दीन के अधीन था। ठेठ दक्खिन में महाराष्ट्र और तेलङ्गण दिल्ली साम्राज्य के अन्तर्गत थे और कर्णाटक (धोरसमुद्र) का राजा उसे कर देता था। सुदूर दक्खिन में 'मअबर' का भी पराभव हो चुका था, और उस पर दिल्ली-साम्राज्य का दावा था। भारतवर्ष का मुख्य भाग जो दिल्ली के अधीन न हुआ था, वह बङ्गाल, ओरङ्गल, मालवा, चन्देरी और कड़ा-मानिकपुर के बीच का था, जिसमें जझौती, चेदि, छत्तीसगढ़ (महाकोशल) और उड़ीसा के प्रान्त शामिल थे। सिन्ध भी इस समय वस्तुतः स्वतन्त्र था।



अध्याय ५

दिल्ली साम्राज्य का ह्रास और प्रादेशिक राज्यों का उदय

(१३२५—१३६८ ई०)

§१. **मुहम्मद तुग़लक**—ग़यासुद्दीन की मृत्यु के बाद मुहम्मद तुग़लक के नाम से जूना गद्दी पर बैठा (१३२५ ई०)। वह पढ़ा-लिखा और विद्वान् होने के साथ-साथ सनकी, क्रूर और मूर्ख भी था।

कृष्णा के काँठे में सगर के इलाके का हाकिम बहाउद्दीन गुर्शास्प था। उस ने मुहम्मद को सुलतान मानने से इनकार किया और देवगिरि पर चढ़ाई की। मुहम्मद ने तब दक्खिन पर चढ़ाई की (१३२७ ई०), और बहाउद्दीन, जो धोरसमुद्र के राजा के पास भाग गया था, पकड़ा और मारा गया। इसी प्रसंग में मुहम्मद ने धोरसमुद्र राज्य पर भी दखल करना चाहा और मअबर को एक नयी फ़ौज भेजी। उसने दिल्ली के बजाय देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया और उसका नाम दौलताबाद रक्खा। बहाउद्दीन की खाल में भुस भरवा कर उसे प्रान्तों में घुमा दिया कि फिर कोई विद्रोह करने की न सोचे। उसका उलटा फल हुआ। मुलतान के नाज़िम ने, जिसे गयासुद्दीन तुगलक अपने भाई की तरह मानता था, उस लाश को दफ़नवा दिया और स्वयम् विद्रोह किया (१३२८ ई०)। तब मुहम्मद को अपनी दक्खिन की योजनाएँ छोड़ कर पंजाब जाना पड़ा। मुलतान का प्रबन्ध करके वह लौटता ही था कि मंगोलों की एक सेना पंजाब लांघ कर जमना तक चढ़ आयी। उन्हें हरा कर उसने कलानौर (जि० गुरदासपुर) तक उनका पीछा किया। उसके दिल्ली वापिस आने पर दिल्ली की प्रजा ने शिकायत की कि राजधानी बदल देने से उनका सब कारोबार चौपट हो गया है। इस पर खीझ कर उसने हुक्म दिया कि दिल्ली के तमाम निवासी दौलताबाद जाँय, एक भी आदमी दिल्ली में न रहने दिया जाय।

इसी समय सुलतान के दिमाग में कई बड़ी योजनाएँ समायीं थीं, जिनके लिए रुपये की ज़रूरत थी। इसलिए उसने दोआब के किसानों पर एकदम दूना-तिगुना कर बढ़ा दिया। दूसरे, उसने ताँबे का सिक्का चलाया और उसे सोने-चाँदी के बराबर ठहराया। यदि शाही टकसालों में सिक्के ढल सकते थे तो लोगों के घरों में भी ढल सकते थे। इसलिए ताँबे के सिक्के इतने बन गये कि उनका मूल्य ताँबे के ही बराबर रहा। तब बादशाह ने उनका चलन बन्द किया, और उन्हें ख़ज़ाने में लौटाने का हुक्म दिया। लोग उन्हें लौटा-लौटा कर चाँदी-सोने के सिक्के ले गये, जिससे ख़ज़ाने को भारी नुक़सान हुआ। ये नये प्रबन्ध कर के सन् १३३० में मुहम्मद अपनी राजधानी (दौलताबाद) पहुँचा। तब उसे सोनारगाँव के हाकिम के विद्रोह की खबर मिली। विद्रोही पकड़ कर मार डाला गया। उसी प्रसंग में तिरहुत का प्रान्त भी जीत कर वहाँ एक तुगलकपुर की स्थापना की गयी। इसी बीच में किसानों के प्रति सुलतान की नयी नीति फल लाने लगी। किसानों ने जब देखा कि वे बढ़ा हुआ कर किसी तरह अदा नहीं कर सकते तब वे खेत छोड़ कर भागने लगे। उन्हें दंड देने को मुहम्मद फिर दिल्ली आया और दोआब पर चढ़ाई की। बरन (बुलन्दशहर), दलमऊ, कनौज आदि के इलाके उसने ऐसे उजाड़े मानों किसी शत्रु के देश पर चढ़ाई कर रहा हो! और किसानों को जंगलों में घेर-घेर कर ऐसे मारा मानो जंगली जानवरों का शिकार करता हो!

दिल्ली लौटने पर उसे खबर मिली कि मअबर में जिस सेनापति जलालुद्दीन को भेजा गया था वह वहाँ स्वतन्त्र सुलतान बन बैठा है (१३३५ ई०)। वह फिर दक्खिन चला, पर ओरंगल पहुँचने पर उसकी सेना में बीमारी फैल गयी और वह खुद भी बीमार पड़ गया और उसे देवगिरि लौटना पड़ा।

अब से उसने सूबों की मालगुज़ारी नीलाम करना शुरू किया, अर्थात् सूबों का शासन वह ऐसे व्यक्तियों को देने लगा जो अधिक से अधिक मालगुज़ारी उगाहने का वचन दें। इसी समय उसके दिमाग में खुरासान जीतने की सनक समायी। उसके लिए एक बड़ी फ़ौज खड़ी की गयी, पर एक साल बाद जब तनख्वाह देने को ख़ज़ाने में रुपया न रहा तब वह तितर-बितर हो गयी। वह

खुरासान जीतने के सपने देख रहा था, कि इधर हुलागू नामक एक मंगोल सरदार और कुलचन्द्र खोकर ने मिल कर लाहौर पर कब्ज़ा कर लिया और वे वहाँ के राजा और मन्त्री बन बैठे। मुहम्मद फिर दिल्ली के लिए रवाना हुआ। अब उसने दिल्ली की निर्वासित प्रजा को भी वापिस लौटने की इजाज़त दे दी। हुलागू और कुलचन्द्र को इस बीच सुल्तान के वज़ीर ने हरा दिया था।

मुहम्मद जब दिल्ली पहुँचा (१३३६ ई०) तब दिल्ली और दोआब के प्रदेशों में घोर दुर्भिक्ष शुरू हो चुका था, जो सात साल तक जारी रहा। बहुत अंश तक यह उसकी ही करतूतों का फल था। अवध के सूबे में तब सुभिक्ष था, इसलिए एक साल तक वह अपनी राजधानी फ़र्रुखाबाद ज़िले में गंगा के किनारे ले गया। इस दशा में भी उस पर चीन जीतने की सनक सवार हुई! और एक लाख सवार उसने हिमालय की तरफ़ भेजे, जिन में से साल भर बाद १० वापिस आये! दिल्ली के चौगिर्द के इलाकों में हिन्दू प्रजा ने कृषि छोड़ कर लुटेरे जत्थे बना लिये थे। सुलतान की एक लाख सेना नष्ट हो जाने से दूर के प्रान्तों से उसका डर उठ गया। मालगुज़ारी की नीलामी से प्रान्तों के शासक भी अयोग्य रह गये थे। यों अब सारा साम्राज्य टूटने लगा था।

§२. मेवाड़, कर्णाटक और तेलंगण का स्वतन्त्र होना—मेवाड़ १३२६ ई० ही में स्वतन्त्र हो चुका था। वहाँ का राजा हम्मीर, जो गुहिलोत वंश की एक छोटी शाखा का कुमार था, मुहम्मद के गद्दी पर बैठते ही स्वतन्त्र हो गया था। उस शाखा के पास तब तक सीसोदा गाँव की जागीर होने से हम्मीर के वंशज सीसोदिया कहलाये।

होयसल राजा वीर बल्लाल ३य ने १३२७ ई० में जब यह देखा कि दिल्ली का सुलतान उससे कर ले कर ही सन्तुष्ट होने वाला नहीं है, प्रत्युत उसके राज्य पर दखल करना चाहता है, तब वह अपने राज्य की किलाबन्दी करने लगा। उत्तरी सीमा पर उसने हाम्पी की किलाबन्दी शुरू की; वह स्थान आगे चल कर विजयनगर कहलाया। पांच यादव (वोडेयार) भाई उसकी सेवा में थे, जिनमें से बड़े तीन—हरिहर, कम्पन और बुक्क—के नाम प्रसिद्ध हैं। गोवा से नेल्लूर तक की उत्तरी दुर्ग-पंक्ति इन्हें सौंपी गयी थी। तामिल मैदान में बल्लाल

ने तिरुवण्णामलै की किलाबन्दी की—दिल्ली से मअबर के रास्ते पर वह बहुत अच्छा नाका था। जब १३३५ ई० में जलालुद्दीन अहसानशाह मअबर में स्वतन्त्र हो गया तो बल्लाल उसे चारों तरफ़ से घेरने लगा। मअबर के मुसलमानों के हाथ में तब केवल कण्णनूर और मदुरा शहर रह गये थे। मदुरा में इस समय चौथा सुल्तान राज्य कर रहा था। बल्लाल ने कण्णनूर को भी घेर लिया, तब मदुरा के सुल्तान ने उस पर हमला किया। अस्सी बरस का बूढ़ा बल्लाल उस युद्ध में मारा गया (१३४३ ई०)। उसके बेटे विरूपाक्ष बल्लाल ने मुकाबला जारी रक्खा। तीन बरस बाद वह भी मारा गया। बुक्क के बेटे कुमार कम्पन ने तब अपने राजा की मृत्यु का बदला चुकाया, और समूचे तामिल तट पर अधिकार कर लिया। मदुरा शहर में ही मुसलमानों का थोड़ा-बहुत अधिकार बाक़ी रह गया था।

होयसल राजवंश के समाप्त हो जाने से वोडेयार हरिहर और बुक्क क्रम से कर्णाटक-तामिलनाड के राजा हुए। पाँचों वोडेयार भाई अपने देश को स्वतन्त्र रखने का व्रत लिये हुए थे। विद्यारण्य और सायण नामक दो विद्वान ब्राह्मण भाई उनके परामर्शदाता थे।

इनकी देखादेखी प्रतापरुद्र के बेटे कृष्णय्या नायक ने भी १३४५ ई० में ओरङ्गल राज्य की पुनःस्थापना की।

§३. बङ्गाल, कश्मीर और महाराष्ट्र की नयी सल्तनतें—१३३६ ई० में बङ्गाल भी स्वतन्त्र हो गया। सोनारगाँव-सातगाँव में फ़खरुद्दीन नामक एक व्यक्ति सुल्तान बन बैठा। लखनौती की गद्दी सन् १३४६ ई० में शम्सुद्दीन इलियास ने छीन ली। उसने तिरहुत पर भी अधिकार कर लिया, और नेपाल की राजधानी काठमाँडू पर चढ़ाई कर उसे लूटा और उजाड़ा (दिसम्बर १३४६ ई०)। उसके बाद उसने बिहार-बनारस तक क़ब्ज़ा करना चाहा।

इसी समय कश्मीर में मुस्लिम सल्तनत स्थापित हुई (१३४६ ई०)। वहाँ अब तक हिन्दू राज्य बना हुआ था। किन्तु राजाओं की सेना में तुर्क सैनिक काफ़ी थे। अब उनके नेता शाह मीर ने हिन्दू राजा की विधवा कोटा को गद्दी से हटा कर राज्य ले लिया।

गुजरात और महाराष्ट्र में भी बहुत से मुस्लिम सरदारों ने विद्रोह किया। मुहम्मद उन्हें दबाने के लिए १३४५ ई० में दिल्ली से निकला और छः बरस बाद उसी कोशिश में मर गया। गुजरात का विद्रोह दबा कर वह देवगिरि पहुँचा। तब देवगिरि के विद्रोही कुलबर्गा भाग गये। इसी समय गुजरात में फिर विद्रोह हुआ। मुहम्मद के उधर जाने पर दक्खिनी विद्रोहियों के नेता हसन गंगू या काँगू ने महाराष्ट्र में एक नये राज्य की नींव डाली। कांगू अपने को ईरान के प्राचीन सम्राट् बहमन का वंशज मानता था, इस कारण इस वंश का नाम बहमनी पड़ा। बहमनी राज्य की राजधानी पहले कुलबर्गा (कलबर्ग) और फिर बिदर (बदरकोट) में रही।

गुजरात का दूसरा विद्रोह दबा कर मुहम्मद ने सुराष्ट्र या सोरठ (काठिया-वाड़) को जीतने की बड़ी चेष्टाएँ कीं, पर चूड़ासमा वंश के राजा मण्डलीक ने उसका बहादुरी से मुकाबला किया। गुजरात का विद्रोही सरदार सिन्ध भाग गया था। मुहम्मद ने तब सिन्ध पर चढ़ाई की और वहीं उसका देहान्त हुआ (१३५१ ई०)।



दिल्ली में फ़ीरोजशाह का कोटला

हिमालय की तराई से अशोक की एक लाट को फ़ीरोज उठवा लाया था। वह इसके ऊपर खड़ी है।

§४. फ़ीरोज तुगलक़—मुहम्मद तुगलक़ के पीछे उसका चचेरा भाई फ़ीरोज़ सन् १३५१ से १३८८ ई० तक दिल्ली की गद्दी पर रहा। वह मुहम्मद की तरह पागल नहीं था। उसने दूर के प्रान्तों में दखल देने के बजाय अपने उपस्थित राज्य को

संगठित करने की ओर ध्यान दिया। दिल्ली साम्राज्य में जौनपुर, मालवा और गुजरात ही दूर के प्रान्त बचे थे इनमें फ़ीरोज़ ने योग्य शासक नियुक्त किये। थानेसर के एक टांक राजपूत को ज़फ़रख़ाँ नाम से मुसलमान बना कर उसने गुजरात का शासन सौंपा। आगे चल कर इन्हीं हाकिमों के वंशजों ने उन प्रान्तों में स्वतन्त्र राज्य स्थापित किये। फ़ीरोज़ तुग़लक में सैनिक क्षमता न थी, पर वह सच्चरित्र और योग्य शासक था। उसने प्रजा की भलाई के लिए बहुत से काम किये। दिल्ली के आस-पास सैकड़ों बगीचे लगवाये, और सतलज और जमना से पाँच नहरें निकलवायीं, जिनमें से एक-आध अब तक बची है। उसके सुशासन का बहुत कुछ श्रेय उसके सुयोग्य मन्त्री खाने-जहान मक़बूल को है। खाने-जहान जन्म से तेलङ्गण का हिन्दू था। फ़ीरोज़ ने हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए पहले के सब सुल्तानों से अधिक जतन किये। अलाउद्दीन और मुहम्मद तुग़लक न्याय और शासन में मुल्लों और मौलवियों की कुछ न सुनते थे, पर फ़ीरोज़ पूरी तरह उनके हाथ में था।

§५. **इलियासशाह और गणेश्वर**—इलियासशाह बङ्गाली की काठमाँडू की चढ़ाई का उल्लेख हो चुका है। १३५२ ई० में उड़ीसा के राजा नरसिंह ३य की मृत्यु हुई, और उसका बेटा भानुदेव ३य राजा बना। इलियासशाह ने तब एकाएक उड़ीसा पर धावा किया और उसे लूटा। उसके बाद जब वह बिहार और तिरहुत पर भी हमले करने लगा तब फ़ीरोज तुग़लक को उससे लड़ना पड़ा। फ़ीरोज़ के आने पर इलियास तिरहुत से हट गया, पर बंगाल में फ़ीरोज़ उसे न हरा सका। १३५४ ई० में जब वह लौटा तो इलियास ने सोनारगाँव भी जीत लिया था। तब से इलियासशाह बङ्गाल के तीनों हिस्सों का सुलतान हुआ। १३५७ ई० में उसकी मृत्यु हुई और उसका बेटा सिकन्दर तख्त-नशीन हुआ। फ़ीरोज़ तुगलक ने तब फिर बङ्गाल पर चढ़ाई की; पर वह सिकन्दर को हरा न सका। इलियास तथा उसके वंशजों के शासन में बङ्गाल में सुख-समृद्धि बनी रही। १३६० ई० से १५३८ ई० तक दिल्ली के किसी सुल्तान ने बङ्गाल पर चढ़ाई नहीं की।

बङ्गाल की इन चढ़ाइयों में फ़ीरोज़ गोरखपुर और तिरहुत हो कर गया था। गोरखपुर तब दिल्ली का सीमान्त गिना जाता था। इस इलाके में फ़ीरोज़ ने जौनपुर बसाया, और पहले-पहल तिरहुत में दिल्ली के कर्मचारी कर वसूल करने के लिए रक्खे। दूसरी चढ़ाई से जौनपुर लौट कर १३६० ई० में उसने कड़ा से गढ़कंटका (या गढ़ा) के रास्ते उड़ीसा पर चढ़ाई की। गढ़कंटका पुराने चेदि राज्य की राजधानी त्रिपुरी के पास है। फ़ीरोज़ के आने पर उड़ीसा का राजा भानुदेव (३य) तेलंगण भाग गया। फ़ीरोज़ ने वाराणसी-कटक (= कटक) को लूटा और पुरी से जगन्नाथ की मूर्त्ति उठा लाया।

उसके दिल्ली वापिस पहुँचने पर तिरहुत उसके हाथ से निकल गया। वह सूबा कुल ३०-३५ बरस ही दिल्ली के अधीन रहा था। कर्णाट* राज्य के पतन के समय कामेश्वर नाम के एक ब्राह्मण ने मिथिला में एक नया राज्य दिल्ली की अधीनता में खड़ा कर लिया था। कामेश्वर का बेटा भोगेश्वर फ़ीरोज़ का मित्र था। उसने या उसके पुत्र गणेश्वर ने मिथिला में फिर से स्वतन्त्र हिन्दू राज्य स्थापित किया। १३७० ई० में गणेश्वर दिल्ली या बंगाल की सेना से लड़ता हुआ मारा गया, पर उसके पुत्र कीर्त्तिसिंह ने "पिता के वैरियों से अपनी राज्यलक्ष्मी की रक्षा की"। प्रसिद्ध मैथिल कवि विद्यापति ने कीर्त्तिलता नामक काव्य में उसकी कीर्त्ति गायी है। तिरहुत के स्वतन्त्र हो जाने पर भी बिहार (मगध) फ़ीरोज़ और उसके वंशजों के अधिकार में बना रहा।

§६. **सिन्ध क जाम**—सिन्ध के विद्रोही समरों का दमन करते हुए मुहम्मद तुग़लक़ की मृत्यु हुई थी। फ़ीरोज़ ने उन्हें शान्त किया। लेकिन उसी समय सम्मा राजपूतों ने विद्रोह कर दक्खिनी और उत्तरी सिन्ध की राजधानियों—सेहवान और बक्खर—पर काबू कर लिया (१३५१ ई०)। सिन्ध के सम्मा और सोरठ के चूड़ासमा एक ही वंश के थे। सिन्ध में वे मुसलमान हो गये और उनके मुखिया 'जाम' कहलाते थे।

१३६२ ई० में फ़ीरोज़ ने सिन्ध पर चढ़ाई की। उसकी सेना के साथ सिन्ध नदी में एक बेड़ा भी था। जाम माली और उसका भतीजा बाबनिया

* तिरहुत का नान्यदेव वाला वंश कर्णाट कहलाता है।

वीरता से लड़े। उन्होंने फ़ीरोज़ का बेड़ा छीन लिया और उसे हरा कर ठट्ठा से रन के रास्ते गुजरात भगा दिया। एक बरस की तैयारी के बाद फ़ीरोज़ ने गुजरात से फिर ठट्ठा पर चढ़ाई की। इस बार उसकी जीत हुई। जाम माली और बाबनिया को वह दिल्ली ले गया, और आधीनता मानने पर छोड़ा। किन्तु १३७२ ई० में सम्मों ने सिन्ध से फ़ीरोज़ की सब सेना को भगा दिया और वहाँ जामों का वंश स्वतन्त्र हो कर राज्य करने लगा।

§७. दक्खिनी रियासतें १३५८–९७ ई०—१३५८ ई० में हसन बहमन शाह की मृत्यु हुई और उसका बेटा मुहम्मद १म उत्तराधिकारी हुआ। उसने अपनी रियासत का सोने का सिक्का चलाना चाहा, पर दक्खिन के सुनार उस सिक्के को पाते ही गला देते थे और विजयनगर और ओरङ्गल राज्यों के सिक्के को ही चलाते थे। मुहम्मद ने राज्य भर के सुनारों को मरवा दिया और उत्तर भारत के खत्रियों को उनकी जगह स्थापित किया। कृष्णय्या नायक और बुक्कराय को भी धमकी दी। फलस्वरूप कृष्णय्या से उसका दो साल तक युद्ध हुआ, जिसके अन्त में गोलकुण्डा का प्रदेश उसके हाथ आया। १३६५-६७ ई० में उसने कृष्णा पार कर विजयनगर पर चढ़ाई की। बुक्कराय की हार हुई, और लाखों की संख्या में जनता कत्ल हुई। अन्त में सन्धि हुई और यह तय हुआ कि आगे से युद्धों में असैनिक जनता को न मारा जाय।

१३७७ ई० में मुहम्मद १म की मृत्यु हुई; उसके उत्तराधिकारी मुजाहिद ने घटप्रभा से तुंगभद्रा तक का इलाका बुक्कराय से तलब किया, और विजयनगर पर चढ़ाई की। लेकिन उसे निष्फल लौटना पड़ा और लौटते समय उसकी बुरी दशा हुई।

मदुरा की मुस्लिम सल्तनत ने १३५६ ई० के बाद फिर सिर उठाना चाहा, लेकिन १३७७ ई० तक बुक्कराय ने उसको बिलकुल मिटा दिया। अगले वर्ष बुक्क की मृत्यु हुई और हरिहर २य उसका उत्तराधिकारी हुआ। मुजाहिद भी तभी मारा गया। १३७८ से १३९७ ई० तक मुहम्मद २य ने शान्तिपूर्वक राज किया। उस ज़माने में खानदेश बहमनी सल्तनत से निकल गया और वहाँ एक स्वतन्त्र रियासत स्थापित हुई (१३८२ ई०)।

६८. तैमूर की चढ़ाई—फ़ीरोज़ के वंशज बिलकुल ही निकम्मे निकले। उनके समय राज्य की यह हालत हो गयी कि पुरानी दिल्ली और फ़ीरोज़ की



तैमूर

अकबर के समय लिखा गया सचित्र तारीख़-ए-ख़ानदान-ए-तैमूरिया का अप्रकाशित हस्तलिखित प्रति में से। खुदाबख़्श पुस्तकालय, पटना के ट्रस्टियों के सौजन्य से।

[कापीराइट, खु० पु०]

नयी बसायी हुई दिल्ली में दो अलग-अलग सुलतान थे। वे नाम के बादशाह

जब दिल्ली के तख्त के लिए झगड़ते थे, उस समय मध्य एशिया में एक महान् विजेता प्रकट हो चुका था। उसका नाम तैमूर था, और वह चग़ताई प्रदेश का तुर्क था। मध्य एशिया में चंगेज़ख़ाँ के वंशजों के दो राज्य चले आते थे। उनकी उसने सफ़ाई कर दी (१३७० ई०)। एक तरफ़ उसने रूस की वोल्गा नदी तक के देश जीते; दूसरी तरफ़ ईरान पार करते हुए काकेशस पर्वत और पच्छिमी एशिया तक के देशों पर अधिकार किया। उसके विशाल साम्राज्य की राजधानी समरकन्द थी। इधर दिल्ली राज्य की दुर्दशा सुन कर उसने भारत पर चढ़ाई की (१३९८ ई०)। उसका पोता पीर मुहम्मद एक साल पहले आ कर उच्च और मुलतान ले चुका था। अफ़ग़ानिस्तान पहुँच कर तैमूर ने सिकन्दर की तरह पहले काबुल नदी के उत्तर का काफ़िरिस्तान* इलाका जीता। फिर सिन्ध, जेहलम और रावी पार कर मुलतान के नज़दीक तुलम्बा की बस्ती पर आ टूटा। उसे लूट कर पाकपट्टन और भटनेर के रास्ते वह दिल्ली की तरफ़ बढ़ा। जहाँ-जहाँ से उसकी फ़ौज गुज़री, लूटना, मारना, फूँकना, उजाड़ना उसके साथ-साथ चलता गया। अन्त में दिल्ली से मेरठ होते हुए वह हरद्वार के पास आ निकला, और शिवालक के साथ-साथ काँगड़ा होते हुए जम्मू पहुँचा। वहीं कश्मीर के सुलतान सिकन्दर का दूत अधीनता का सन्देश लाया। लाहौर पर इस समय शेखा खोकर का कब्ज़ा था। तैमूर ने उसे पकड़ मँगवाया और मरवा डाला। उसके भाई जसरथ ने तैमूर का सामान लूटना चाहा, तब तैमूर उसे कैद कर अपने साथ ले गया। सिन्ध पार कर बन्नू होते हुए वह समरकन्द लौट गया।

दिल्ली साम्राज्य की शक्ति तैमूर के आने से पहले ही प्रान्तीय शासकों के हाथों में जा चुकी थी। जो प्रान्तीय शासक अब तक नाम को दिल्ली के अधीन थे, वे भी अब स्पष्ट रूप से स्वतन्त्र हो गये। दिल्ली साम्राज्य यों मटियामेट हो गया।

---

* काफ़िरिस्तान का नाम कापिशी नगरी से है। अरबी लिपि में पहले काफ़िसिस्तान लिखा गया था, जो गलती से काफ़िरिस्तान बन गया।

§९. प्रादेशिक राज्यों का युग—अलाउद्दीन खिलजी और ग़यासुद्दीन तुग़लक के समय दिल्ली की सल्तनत ने जिन दूर के प्रान्तों को पहले-पहल जीता उनमें उसका शासन २५-३० बरस भी न टिक पाया। इसी से उनके जीते हुए देशों को एक साम्राज्य नहीं कह सकते। तो भी उनकी विजयों से एक राजनीतिक युग-परिवर्तन हो गया। उन्होंने मालवा, गुजरात, राजपूताना, दक्खिन और पूरब के पुराने जीर्ण राज्यों को तोड़-फोड़ कर नये राज्यों के उदय के लिए मैदान साफ़ कर दिया। यदि उनके उत्तराधिकारी अधिक योग्य होते तो भी उनका खड़ा किया हुआ साम्राज्य अधिक टिकाऊ न हो पाता। इसका कारण यह था कि चौदहवीं-पन्द्रहवीं शती की अवस्थाएँ एक विशाल साम्राज्य के बजाय प्रादेशिक राज्यों के अधिक अनुकूल थीं। हिन्दुओं में तब यदि इतनी जीवट न थी कि वे भारत में अपना एक साम्राज्य खड़ा कर सकते तो वे इतने मुर्दा भी न थे कि दूर के प्रान्तों में भी अपनी स्वतन्त्रता बनाये न रख सकते। दूसरी तरफ़ मुसलमान सरदारों में भी अब दिल्ली का शासन मानने की प्रवृत्ति अधिक न थी। तुर्कों ने जब पहले-पहल भारत को विजय किया तो वे एक नये और अपरिचित विशाल देश में एक छोटे से दल की तरह थे। अपनी रक्षा के लिए ही तब यह जरूरी था कि वे आपस में मिल कर और एक शासन में संगठित हो कर रहते। किन्तु डेढ़ शताब्दी में वे भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों से परिचित हो चुके थे। प्रत्येक प्रान्त में कुछ लोग मुसलमान बन चुके थे और बाहर से आये हुए तुर्क उनमें घुल मिल गये थे। अब जब अपने-अपने प्रदेश में वे निःशङ्कता के साथ राज्य खड़े कर सकते और चला सकते थे, तब उन्हें किसी सम्राट् की आज्ञा मानने की ज़रूरत न थी।

अध्याय ६

पिछले मध्य युग के प्रादेशिक राज्य

(१३९८–१५०६ ई०)

§१. मेवाड़, १३८२–१४३३ ई०—मेवाड़ में राणा लक्षसिंह या लाखा का राज्यकाल (१३८२–१४१६ ई०) अलाउद्दीन के समय की क्षतिपूर्त्ति और जीर्णोद्धार करने में बीता। उसी समय राज्य में एक चाँदी और सीसे की खान निकल आने से उसे बड़ी मदद मिली। लाखा के बेटे मोकल (१४१६–३३ ई०) ने साम्भर और अजमेर तक के इलाकों पर अधिकार कर लिया।

§२. राजा गणेश और शिवसिंह—तिरहुत में कामेश्वर के वंशजों का राज्य जारी था। बङ्गाल में इलियासशाह के पोते ग़यासुद्दीन आज़मशाह (१३८९–९६ ई०) के समय गणेश नाम का एक प्रबल ज़मींदार सल्तनत का कर्ता-धर्ता बन गया। उसने अन्त में आज़मशाह को मरवा डाला और फिर आज़मशाह का बेटा और पोता उसके हाथ की कठपुतली बने रहे। १४०६ ई० में आज़मशाह के पोते को मरवा कर गणेश स्वयम् बङ्गाल का राजा बना। वह तिरहुत के राजा शिवसिंह का समकालीन और पड़ोसी था। वह उदार शासक था और प्रजा उससे सन्तुष्ट थी, तो भी पीरों और फ़कीरों ने मुस्लिम प्रजा को हिन्दू राजा के विरुद्ध भड़काना शुरू किया। गणेश ने उनका दमन किया। उसके समय में बङ्गाल में संस्कृत पढ़ने-लिखने की फिर से उन्नति हुई। हिन्दू धर्म को नयी स्फूर्ति मिली। गणेश ने सात बरस (१४०६–१५ ई०) शासन किया। उसका बेटा यदु मुसलमान हो गया। गणेश ने उसे

प्रायश्चित्त करा के हिन्दू बनाया, पर पीछे वह फिर मुसलमान हो गया और उसका नाम जलालुद्दीन हुआ। वह एक बरस ही राज्य कर पाया था कि दनुजमर्दन नाम के एक हिन्दू सरदार ने उससे गौड़ छीन लिया, और दक्खिनी और पूरबी बङ्गाल को भी अधीन कर लिया (१४१७ ई०)। इस प्रकार दनुजमर्दन सारे बङ्गाल का राजा बन गया। उसने अपने नाम के सिक्के भी चलाये, पर वह दूसरे ही बरस मर गया। उसके बेटे महेन्द्र से जलालुद्दीन ने फिर राज्य छीन लिया। जलालुद्दीन तिरहुत के शिवसिंह से लड़ कर हारा। १४३० ई० से पहले उसने चटगाँव जीत लिया। उसका अत्याचारी बेटा १४४२ ई० में क़त्ल किया गया, और बङ्गाल का राज्य फिर इलियासशाह के एक वंशज के अधिकार में आया।

§३. इब्राहीम शर्क़ी—दिल्ली साम्राज्य के टूटने पर जो नयी रियासतें उठ खड़ी हुईं उनमें से तीन—जौनपुर, मालवा और गुजरात—बहुत शक्तिशाली और प्रसिद्ध हुईं। पिछले तुग़लक़ों के समय से जौनपुर में एक हाकिम रहता था, जो मलिक्-उस्-शर्क़ अर्थात् पूरब का स्वामी कहलाता था। कन्नौज के पूरब बङ्गाल की सीमा तक साम्राज्य का सब इलाका उसके अधीन था। तैमूर की चढ़ाई के बाद, उस का बेटा मुबारकशाह के नाम से स्वतन्त्र सुल्तान बन बैठा। मुबारक का भाई इब्राहीमशाह शर्क़ी (१४००–१४३६ ई०) जौनपुर का पहला प्रसिद्ध सुल्तान हुआ। बिहार और बनारस के इलाक़ों पर उसका शुरू ही से क़ब्ज़ा था। उसने जौनपुर के ठीक पूरब तिरहुत की तरफ़ आगे बढ़ना चाहा, पर राजा शिवसिंह से उसे हारना पड़ा। किन्तु पच्छिम का रास्ता शर्क़ी के लिए खुला था। कालपी और कन्नौज जीत कर वह दिल्ली की तरफ़ बढ़ा। दोआब में बुलन्दशहर और गंगा के उत्तर सम्भल को भी उसने ले लिया। यह तब आजकल के रुहेलखंड की राजधानी थी। दिल्ली के परकोटे तक उसका अधिकार पहुँच गया, तब मालवा के नये सुल्तान ने कालपी छीन कर उसे पीछे हटने को बाधित किया। अपने ज़माने में इब्राहीम शर्क़ी उत्तर भारत का एक-मात्र प्रबल सुल्तान था। उसका दरबार विद्या और संस्कृति का केन्द्र था। जौनपुर की प्रसिद्ध अतला-देवी मस्जिद उसी के समय बनी।

§४. हुशंग गोरी और अहमदशाह गुजराती—मालवा का हाकिम दिलावरख़ाँ गोरी १४०१ ई० में स्वतन्त्र हो गया। उसका बेटा हुशङ्ग गोरी (१४०५–३४ ई०) मालवा का पहला प्रसिद्ध सुल्तान हुआ। मालवा के साथ चेदि देश का पच्छिमी अंश यानी चन्देरी का प्रदेश (सागर और दमोह ज़िले) भी इन सुल्तानों के अधिकार में था। हुशंग ने उत्तर की तरफ़ कालपी और ग्वालियर तक अपना राज्य पहुँचा दिया।



ग्वालियर में मानसिंह तोमर का महल
१५वीं सदी के हिन्दू शिल्प का नमूना [ग्वालियर पु० वि०]

ग्वालियर के इलाके पर तैमूर के जाने के बाद हरसिंह तोमर ने अधिकार कर लिया था; १५१८ ई० तक उसके वंश में वह राज्य बना रहा।

गुजरात के सुल्तान अहमदशाह (१४११–४१ ई०) के मुकाबले में हुशङ्ग को दबना पड़ा। गुजरात का हाकिम ज़फ़रख़ाँ दिलावरख़ाँ गोरी के साथ-साथ स्वतन्त्र हो कर मुज़फ़्फ़रशाह बन गया था। पच्छिम की तरफ़ गिरनार, पूरब की तरफ़ चाँपानेर, उत्तर-पूरब की ओर ईडर और उत्तर की तरफ़ जालोर और

सिरोही के हिन्दू राज्यों तक गुजरात सल्तनत की सीमाएँ थीं। इसके अलावा इस तरफ़ दिल्ली सल्तनत के जितने इलाके थे उन पर गुजरात के सुल्तान अपना अधिकार मानते थे, इसीलिए मुज़फ़्फ़रशाह ने सुदूर नागोर में भी अपना एक सामन्त नियुक्त किया था। मुज़फ़्फ़र का पोता अहमदशाह एक प्रबल विजेता और न्यायी शासक था। वह गुजरात की राजधानी अणहिलपाटन से उठा कर आसावल (आशापल्ली) नामक प्राचीन बस्ती में ले आया, जिसका नाम



मांडू में हुशङ्ग गोरी की बनवायी जामा मस्जिद [मा० पु० वि०]

उसने अहमदाबाद रक्खा। उसे उसने सुन्दर भव्य इमारतों से भूषित किया। हुशङ्ग ग़ोरी से उसकी बरसों खटपट चलती रही, और १४२१ ई० में उसने मालवा की राजधानी मांडू को जा घेरा।

§५. उत्तरपच्छिमी प्रान्त, १३९८–१४५० ई०—जसरथ खोकर और ज़ैनुलआबिदीन—सिन्ध पर तैमूर की चढ़ाई का कुछ प्रभाव नहीं पड़ा, और वहाँ जामों का राज्य शान्तिपूर्वक क़ायम रहा। अब काबुल तैमूर के वंशजों के हाथ में रहा।

मुलतान का प्रान्त तैमूर एक सैयद खिज्रखाँ को दे गया था। तैमूर की मृत्यु (१४०५ ई०) के बाद जसरथ खोकर भी समरकन्द से भाग आया और उत्तरी पञ्जाब में उसने फिर अपना राज्य स्थापित किया। कश्मीर के जिस सिकन्दर ने तैमूर के पास दूत भेजा था, उसके शासन-काल (१३९४–१४१६ ई०) में बाल्तिस्तान या बोलोर का प्रान्त भी जीता गया। यह सिकन्दर बुतशिकन नाम से प्रसिद्ध है। उससे पहले के कश्मीर के पाँच सुल्तानों में कोई भी धर्मान्ध न हुआ था, पर सिकन्दर ने अपनी हिन्दू प्रजा को ज़बर्दस्ती मुसलमान बनाने में कोई कसर उठा न रक्खी। उसके बाद उसके बेटों में लड़ाई हुई; उसके दूसरे बेटे ज़ैनुलआबिदीन ने जसरथ खोकर की मदद से राज्य पाया। ज़ैनुलआबिदीन सच्चरित्र, योग्य, शक्तिशाली तथा न्यायी शासक था; उसकी शासन-नीति अपने पिता से ठीक उलटी थी। उसने देश की सिंचाई के लिए नहरें निकलवायीं तथा रास्ते और पुल बनवाये। निर्वासित हिन्दुओं को वापिस आने दिया; जो दिल से मुसलमान न बने थे उन्हें फिर हिन्दू हो जाने दिया; उनके टूटे मन्दिरों का स्वयम् जीर्णोद्धार करवाया और जज़िया कर उठा दिया। उसने और भी बहुत से कर उठा दिये, और खानों की उपज से राज्य की आमदनी बढ़ायी। अधिकांश क़ैदियों को छोड़ कर उसने उन्हें खानों, सड़कों आदि पर काम में लगाया। ज़ैनुलआबिदीन फ़ारसी और संस्कृत का अच्छा विद्वान् था, उसे सङ्गीत और साहित्य से तथा विद्वानों की संगति से भी खूब प्रेम था। उसने आजन्म एकपत्नीव्रत निबाहा। व्यक्तिगत जीवन में वह पक्का मुसलमान था, तो भी अपनी हिन्दू प्रजा की तीर्थयात्राओं और त्योहारों में भाग लेता था। उसके ५० वर्ष (१४२०–७० ई०) के रामराज्य की याद कश्मीर में आज भी बनी है।

खास दिल्ली में फ़ीरोज तुग़लक का एक वंशज १४१३ ई० तक जैसे-तैसे राज करता रहा। खिज्रखाँ सैयद ने उससे रोहतक, नारनौल तक का प्रान्त छीन लिया था। १४१४ ई० में उसकी मृत्यु होने पर खिज्रखाँ ने दिल्ली भी ले ली। खिज्रखाँ के वंशज मुलतान पर अधिकार न रख सके और १४४० ई० में वहाँ सिन्धी के एक पठान ने अपना राज्य स्थापित किया।

§६. **बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड, छत्तीसगढ़ और गोंडवाना**—मालवा, जौनपुर, बिहार, बंगाल, तेलङ्गण और बहमनी रियासत के बीच प्राचीन चेदि और उड़ीसा के विशाल प्रदेश मुस्लिम शासन के बाहर थे। चेदि का उत्तरी और पच्छिमी किनारा—कालपी और चन्देरी—अब मालवा में शामिल था। बाकी उत्तरपच्छिमी अंश—जभौती—पहले चन्देलों के अधीन था। पन्द्रहवीं सदी के शुरू से चन्देलों का पता नहीं मिलता। अब वहाँ अनेक बुन्देले सरदार राज्य करने लगे थे, जिससे वह बुन्देलखण्ड कहलाने लगा। बुन्देले गाहड्वालों के वंशज थे, जो विन्ध्य में रहने के कारण बुन्देले कहलाये। चेदि का पूरबी भाग बघेलखण्ड बन चुका था। दक्खिन-पूरब में महाकोशल या छत्तीसगढ़ का राज्य बना हुआ था। तीनों के बीच गढ़ा (जबलपुर) में एक गोंड राज्य स्थापित होने से इस इलाके को इसके पड़ोसी गोंडवाना कहने लगे। इस राज्य की स्थापना एक गोंड ने की थी, पर पीछे यह राज्य उसके क्षत्रिय दामाद के वंश में रहा। उड़ीसा का गङ्ग राज्य १३२७ ई० से बराबर दुर्बल रहा।

§७. **फ़ीरोज़ और अहमद बहमनी**—१३६७ से १४२२ ई० तक बहमनी रियासत में सुल्तान फ़ीरोज़ ने राज्य किया, और १४२२ से १४३५ ई० तक उसके भाई अहमद ने। फ़ीरोज़ के समय विजयनगर से तीन युद्ध हुए। १३६८ ई० में ही हरिहर २य ने कृष्णा काँठे पर चढ़ाई की; तभी कृष्णा के उत्तरी किनारे के कोलियों ने तथा बराड के एक हिन्दू सरदार ने विद्रोह किया। हिन्दू सेना विशृंखल रूप में कृष्णा के दक्खिन तट पर पड़ी थी; उनकी बड़ी संख्या के कारण फ़ीरोज़ कृष्णा पार करने से डरता था। उस समय एक क़ाज़ी ने साहस का काम किया। वह गाने-नाचने में निपुण था। भेस बदल कर एक नाच-मण्डली बना कर वह हिन्दू छावनी में घुसा, और धीरे-धीरे प्रसिद्धि पा कर हरिहर के बेटे के पास पहुँच गया। तलवार का नाच दिखाते हुए वह एकाएक युवराज पर टूट पड़ा और उसका काम तमाम कर दिया। हरिहर अपने बेटे की लाश ले कर विजयनगर लौटा और उसकी भागती हुई सेना को फ़ीरोज़ ने पूरी तरह हरा दिया।

इसके बाद गुजरात, मालवा और खानदेश के सुलतानों ने विजयनगर के राजा को बहमनी सुल्तान के खिलाफ़ मदद करने का वचन दिया। १४०६ ई० में हरिहर २य की मृत्यु हुई और उसका पुत्र देवराय १म राजा बना। उसी बरस उसकी सेना ने मुद्गल पर चढ़ाई की। उन्हें हरा कर फ़ीरोज़ ने विजयनगर पर चढ़ाई की जिसमें वह घायल हुआ। देवराय ने आठ बार उस पर हमला किया; पर मालवा आदि से कोई मदद न मिली। फ़ीरोज़ की फिर जीत हुई और तुङ्गभद्रा नदी दोनों राज्यों की सीमा बनी।

१४१८ ई० में देवराय के बेटे वीरविजय (१४१३–१४२५ ई०) के समय तेलङ्गण और विजयनगर के राजाओं ने मिल कर फिर फ़ीरोज़ से युद्ध किया। इस बार फ़ीरोज़ की पूरी हार हुई और हिन्दुओं ने पुरानी हत्याओं का पूरा बदला चुकाया।

उस हार का बदला चुकाने के लिए अहमदशाह बहमनी ने १४२३ ई० में चढ़ाई की। यह युद्ध पिछले पाँचों युद्धों से भयंकर हुआ। युद्ध के समय असैनिकों को न मारने का वचन हिन्दुओं ने तोड़ दिया था, इसलिए अहमद-शाह ने इस बार दिल खोल कर क़त्लेआम किये। वीरविजय कर देने को बाधित हुआ। इस युद्ध के क़ैदियों में दो ब्राह्मण थे, जिनके वंशजों ने बाद में अहमदनगर और बराड की रियासतें स्थापित कीं।

१४२४ ई० में अहमद बहमनी ने ओरङ्गल पर दखल करके उस राज्य को मिटा दिया, और पूरबी समुद्र तक अपनी सीमा पहुँचा दी। ओरङ्गल के सब इलाक़ों पर वह कब्ज़ा न कर सका, क्योंकि कृष्णा के दक्खिन कोंडवीडु क़िले (गुंटूर के पास) और उसके इलाके पर देवराय २य (१४२५–४६ ई०) ने अधिकार कर लिया था। इसके बाद अहमद बहमनी की मालवा और गुजरात से लड़ाइयाँ हुईं। अहमदशाह गुजराती से उसकी हार हुई (१४३० ई०), जिससे मुम्बई का द्वीप गुजरात के अधिकार में रहा।

§८. **कुम्भा और महमूद खिलजी**—राणा मोकल के बेटे कुम्भा के समय (१४३३–६८ ई०) पच्छिमी भारत की राजनीति में एक नया अध्याय शुरू हुआ। मालवा में हुशङ्ग ग़ोरी के बेटे को मार कर उसका वज़ीर महमूद

खिलजी गद्दी पर बैठा। वह कुम्भा का समकालीन था (१४३६–६६ ई०)। १४३७ ई० से कुम्भा ने अपनी अग्रसर नीति शुरू की। उसी बरस उसने सिरोही के राजा से आबू छीन लिया, और मालवा में सारंगपुर तक पहुँच कर महमूद खिलजी को हराया। आबू ले कर उसने गुजराती सुल्तान का पच्छिमी राजपूताना की तरफ़ रास्ता काट दिया, और महमूद का पराभव कर पूरबी राजस्थान में अपना रास्ता सुगम कर लिया। फिर दो बरस में उसने मारवाड़ में आबू से नागोर तक, मध्य राजपूताना में अजमेर तक, उत्तर-पूरब में आम्बेर तक, और दक्खिन-पूरब में माँडलगढ़ से गागरौन तक अर्थात् बनास से काली सिन्ध तक अपना अधिकार फैला लिया। कुम्भा को रोकने के लिए महमूद खिलजी ने सन् १४४३, ४६ तथा ५४ में तीन युद्ध किये। पहली बार वह चित्तौड़ तक जा पहुँचा, पर फिर कभी मांडलगढ़ से आगे न बढ़ सका। किन्तु दूसरे युद्ध में भरतपुर के पास बयाना के क़िले पर अधिकार कर वह कुम्भा का दिल्ली-आगरा की तरफ़ वाला रास्ता काट देने में सफल हुआ। इसी बीच राणा ने रणथम्भोर, आम्बेर, टोडा और डीडवाणा तक अधिकार कर लिया।

नागोर पर कुम्भा ने आधिपत्य कर ही लिया था। १४५६ ई० में उसने गुजराती सुल्तान की विडम्बना करते हुए वह "गढ़ तोड़ दिया, खाई भरवा दी और नागोर को जो तुर्की शक्ति की जड़ था, उजाड़ कर फूँक डाला, और उसका क़िस्सा ख़तम कर दिया।" तब गुजरात के सुल्तान कुतुबशाह (१४५१–५६ ई०) ने मेवाड़ पर चढ़ाई की, पर वह आबू भी न ले सका। दूसरे बरस गुजरात और मालवा के सुल्तानों ने एक साथ मेवाड़ पर चढ़ाई की। पर न कुतुबशाह सिरोही से आगे बढ़ पाया, और न महमूद ही मेवाड़ के अन्दर घुस सका। कुम्भा ने दोनों को एक साथ परास्त कर दिया।

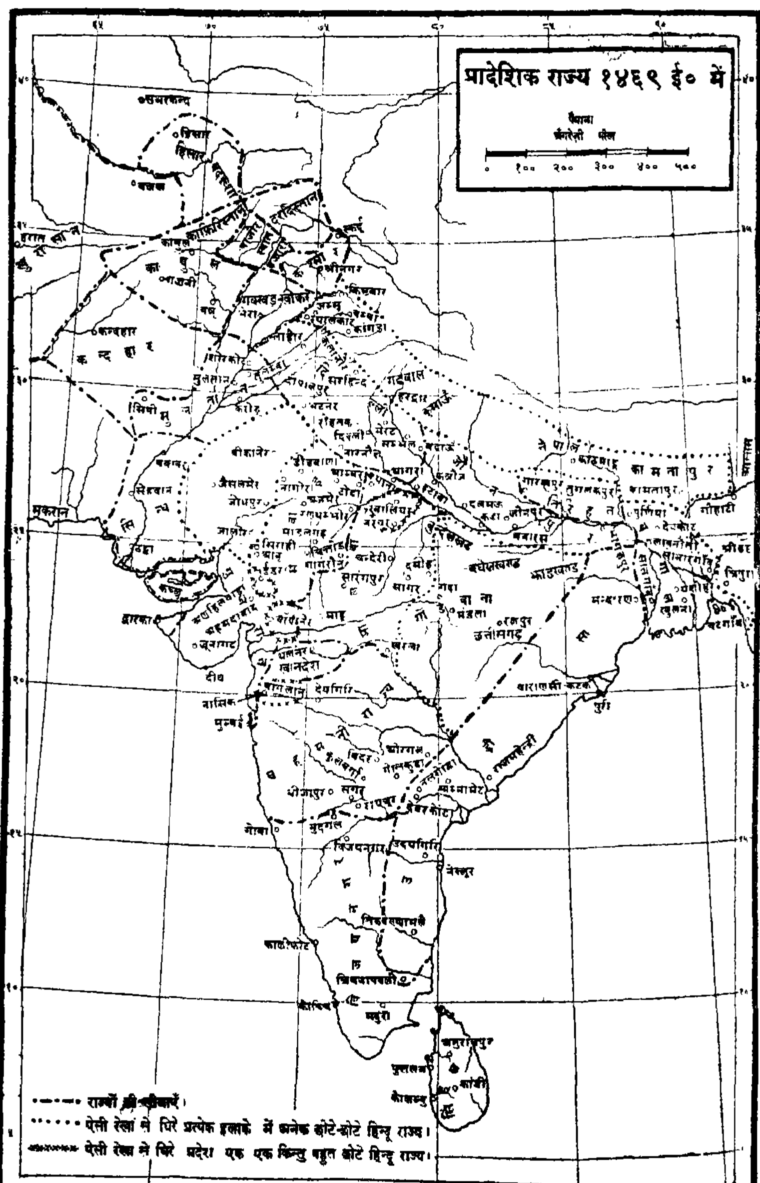
राणा कुम्भा अपनी बनवायी हुई इमारतों के लिए भी प्रसिद्ध है। चित्तौड़गढ़ के बुर्ज, दरवाज़े, रथमार्ग (चौड़ा रास्ता) तथा कीर्त्तिस्तम्भ उसी के बनवाये हुए हैं। साहित्य, संगीत, नाट्यशास्त्र, वास्तुशास्त्र इत्यादि पर कुम्भा ने अनेक ग्रन्थ लिखे और लिखवाये। बुढ़ापे में उसे उन्माद-रोग हो गया, और उसके बेटे उदयसिंह ने उसे मार डाला। पितृघातक उदयसिंह को

भगा कर सरदारों ने उसके भाई रायमल को गद्दी दी। रायमल ने मालवा के मुकाबले में मेवाड़ का गौरव बनाये रक्खा (१४७३–१५०६ ई०)।

§१. कपिलेन्द्र और पुरुषोत्तम—पूरबी और दक्खिनी भारत (१४३५–१५०९ ई०)—उड़ीसा का गंग राजवंश जीर्ण हो चुका था। १४३५ ई० में गंग राजा को हटा कर उसके सूर्यवंशी मंत्री कपिलेन्द्र ने राज्य ले लिया। उसी साल बिदर में अहमदशाह बहमनी का बेटा अलाउद्दीन तख्तनशीन हुआ। अलाउद्दीन ने पच्छिमी और पूरबी घाटों के छोटे-छोटे स्वतन्त्र हिन्दू सरदारों को वश में करने को फौजें भेजीं। कोंकण में तो उसे सफलता हुई (१४३७ ई०), पर तेलंगण में कपिलेन्द्र ने उसे रोक दिया।

विजयनगर के देवराय ने एक परिषद् इस बात पर विचार करने को बुलायी कि मुसलमान बार-बार युद्ध में क्यों जीत जाते हैं। विचार का परिणाम यह निकला कि उनके पास अच्छे घोड़े हैं तथा उनकी सेना में ऐसे सवार हैं जो घोड़े पर चढ़े-चढ़े निशाने पर तीर मार सकते हैं। उत्तर और पच्छिम के देशों में अच्छे घोड़ों की नस्लें पैदा होती हैं, और उनसे मुसलमानों का सम्पर्क था। तब से घोड़ों के व्यापार को उत्साहित करना और जिस तरह बने, अच्छे घोड़े उपलब्ध करना विजयनगर राज्य की नीति हो गयी। ईरान से बहमनी रियासत में घोड़े लाने वाली नावों को लूटने पर इनाम दिया जाने लगा। देवराज ने अपने राज्य में निशानची मुसलमानों को जागीरें देकर बसाना भी शुरू किया। सवार तीरन्दाजों की अपनी नयी सेना तैयार कर उसने बहमनी रियासत पर चढ़ाई की और कृष्णा नदी तक के प्रदेश पर दखल कर लिया (१४४३ ई०)। लेकिन अलाउद्दीन ने बदला लेने और जनता को क़त्ल करने की धमकी दी, जिससे वह डर गया और उसके कैदियों को छोड़ दिया।

१४४६ ई० में देवराय की मृत्यु हुई और उसका बेटा मल्लिकार्जुन उत्तराधिकारी हुआ। १४५८ ई० में अलाउद्दीन मरा और उसका बेटा हुमायूँ तख्तनशीन हुआ। कपिलेन्द्र इस समय तक गोदावरी-कृष्णा दोआब को जीत चुका था। अब उसने कृष्णा से कावेरी तक समूचा तट और कावेरी पार त्रिचनापल्ली तक जीत लिया। हुमायूँ ने देवरकोंडा के तेलुगु सरदार पर


प्रादेशिक राज्य १४६९ ई० में
पैमाना
अंगरेजी मील
० १०० २०० ३०० ४०० ५००
समरकन्द
हिसार
बलख
काबुल
गजनी
कन्दहार
क न्द हा र
मुलतान
लाहौर
कांगड़ा
जम्मू
कश्मीर
सरहिन्द
गढ़वाल
हरद्वार
दिल्ली
मेरठ
सम्भल
आगरा
कन्नौज
बीकानेर
जैसलमेर
जोधपुर
नागोर
ग्वालियर
चन्देरी
सारंगपुर
सागर
गढ़ा
मंडला
रतनपुर
ने पाल
का म ता पु र
कामतापुर
गोहाटी
पुर्णिया
बनारस
जौनपुर
बघेलखण्ड
झारखण्ड
त्रिपुरा
कच्छ
द्वारका
अहमदाबाद
जूनागढ़
दीव
माडू
खानदेश
देवगिरि
नासिक
मुम्बई
बारानसी कटक
पुरी
बिदर
गोलकुण्डा
राजमहेन्द्री
बीजापुर
गोआ
मुदगल
विजयनगर
उदयगिरि
नेल्लूर
कालीकोट
मदुरा
अनुराधपुर
कोलम्बु
----- राज्यों की सीमायें।
...... ऐसी रेखा से घिरे प्रत्येक इलाके में अनेक छोटे-छोटे हिन्दू राज्य।
ऐसी रेखा से घिरे प्रदेश एक एक किन्तु बहुत छोटे हिन्दू राज्य।

चढ़ाई की; उसने कपिलेन्द्र से मदद मांगी। कपिलेन्द्र के तुरन्त पहुँच जाने से हुमायूँ को भागना पड़ा (१४५६ ई०)। यह हुमायूँ दक्खिन में अब तक हुमायूँ ज़ालिम के नाम से याद किया जाता है। १४६१ ई० में वह मारा गया। तब कपिलेन्द्र बिदर के पास आ पहुँचा और बड़ी रकम ले कर लौटा। आन्ध्रदेश के पहाड़ी जिलों—खम्मामेट और नलगोंडा—पर भी उसने दख़ल कर लिया। उत्तर की ओर उसने दामोदर से गङ्गा तक का पहाड़ी प्रदेश लेकर भागलपुर के पास जौनपुर रियासत से अपनी सीमा मिला दी। हुसेनशाह शर्की ने तब तीन लाख फ़ौज के साथ उस पर चढ़ाई की (१४६५ ई०)। इस युद्ध में दोनों पक्ष अपनी जीत हुई बताते हैं—परिणाम अनिश्चित रहा।

१४७० ई० में कपिलेन्द्र की मृत्यु हुई और उसका बेटा पुरुषोत्तम उत्तराधिकारी हुआ। हुमायूँ शाह के बेटे मुहम्मद ३य ने तब अपने सेनापति हसन बहरी को भेजकर राजमहेन्द्री ले ली। विजयनगर के राजा का एक सामन्त सालुव नरसिंह, जो चन्द्रगिरि का सरदार था, नेल्लूर और उदयगिरि को लेते हुए कृष्णा के तट तक आ पहुँचा। उसने बहमनी सेना को कृष्णा के दक्खिन आगे न जाने दिया। गोदावरी-कृष्णा-दोआब के लिए पुरुषोत्तम और बहमनी सुलतान में छीनझपट जारी रही। बहमनी रियासत में दक्खिनी और विदेशी अमीरों में सदा से लड़ाई चली आती थी। मुहम्मद ३य का मंत्री महमूद गवाँ नामक एक चतुर विदेशी अमीर था। हसन बहरी ने उसके नाम से जाली चिट्ठियाँ बना कर मुहम्मदशाह के मन में यह बैठा दिया कि वह पुरुषोत्तम से मिल गया है। इस पर मुहम्मद ने उसे मरवा डाला (१४८१ ई०)। इधर मल्लिकार्जुन के बाद उसका भाई विरूपाक्ष विजयनगर का राजा हुआ। उसके कुशासन से राज्य की बुरी दशा थी। इस दशा में पुरुषोत्तम ने राजमहेन्द्री से नेल्लूर तक का तट तथा खम्मामेट और नलगोंडा जिले फिर जीत लिये।

मुहम्मद ३य के बाद बहमनी सुलतान सर्वथा निःशक्त हो गये। १४८७ ई० से बरीद नामक वंश के सरदार बिदर में सल्तनत के कर्ता-धर्ता होने लगे, और बहमनी सुलतान उनके हाथ में कैदी की भाँति रह गये। उसी बरस सालुव नरसिंह ने विरूपाक्ष को पदच्युत कर विजयनगर का राज्य ले लिया।

बङ्गाल में इस समय इलियासशाही वंश का राज्य जारी था। १४५४ ई० से १४८२ ई० तक दक्खिनी बङ्गाल के यशोहर, खुलना आदि ज़िले जीते गये, और हिन्दू राजा गौरगोविन्द से सिलहट छीन लिया गया। किन्तु कामतापुर (उत्तरी बङ्गाल) के राजा से मुस्लिम सेनापति की दीनाजपुर ज़िले में हार हुई। १४८७ ई० में इलियास-वंश का राज्य समाप्त हुआ और बङ्गाल में अराजकता उमड़ पड़ी।

१४९० ई० में हसन बहरी के बेटे अहमद ने, जो अहमदनगर का संस्थापक तथा उत्तरी महाराष्ट्र का हाकिम था, बीजापुर और बराड के हाकिमों को लिखा कि हम तीनों स्वतन्त्र सुलतान बन जाँय। यों अब एक बहमनी रियासत के बजाय चार रियासतें हो गयीं।

पुरुषोत्तम का बेटा प्रतापरुद्र जब उड़ीसा का राजा हुआ (१४९७ ई०), तो उसका राज्य हुगली से नेल्लूर तक था। पुरुषोत्तम बंगाली सन्त चैतन्य का शिष्य बन गया और उसकी देखादेखी उसके सरदार भी वैष्णव हो गये। राज-काज के बजाय भजन-कीर्तन इनका मुख्य काम बन गया। तब से उड़ीसा राज्य की शीघ्र अवनति हुई।

सालुव नरसिंह का सेनापति तुलुव वंश का नरस नायक था। १५०५ ई० में उसकी मृत्यु होने पर उसके बेटे वीर-नरसिंह ने सालुव नरसिंह के बेटे को पदच्युत कर स्वयम् राज्य ले लिया। यों विजयनगर का तीसरा राजवंश शुरू हुआ।

§१०. बहलोल लोदी और दिल्ली की नयी सल्तनत (१४५१–८८ ई०)—१४५१ ई० में बहलोल लोदी नाम के पठान ने, जो सरहिन्द का शासक था और जिसने जसरथ खोकर से मैत्री कर ली थी, दिल्ली ले कर वहाँ पहले पठान राजवंश की स्थापना की। बहलोल गो दिल्ली को एक साम्राज्य न बना सका, तो भी वह उसे एक मज़बूत राज्य बनाने में सफल हुआ। दिल्ली के इलाक़े सब से अधिक शर्की सुल्तानों ने दबा रक्खे थे। भागलपुर-मुंगेर से कन्नौज और अवध तक तो उनका राज्य निर्विवाद था। बहलोल ने हुसेनशाह शर्की को अनेक लड़ाइयों में हरा कर जौनपुर जीत लिया (१४७९ ई०)। हुसेनशाह तब बिहार भाग गया।

§११. **महमूद बेगड़ा**—गुजरात के महमूद बेगड़ा (१४५६–१५११ ई०) को १५वीं सदी के उत्तरार्ध में भारत का प्रमुख सुल्तान कहना चाहिए। महमूद ने गुजरात के पच्छिम और पूरब के दो दुर्जेय गढ़, जूनागढ़ और चाँपानेर, हिन्दू राजाओं से जीते, इस कारण वह बेगड़ा (बे=दो, गढ़=किला) कह-



महमूदाबाद (चांपानेर) में सैयद मुबारक का मक़बरा;
गुजराती मुस्लिम-शिल्प का सर्वोत्कृष्ट नमूना। [भा० पु० वि०]

लाया। चाँपानेर का नाम उसने महमूदाबाद रक्खा। राणा कुम्भा के दामाद जूनागढ़ के राव मण्डलीक को हराने और उसे मुसलमान बनाने के बाद उसने द्वारिका और कच्छ पर भी काबू कर लिया। इस प्रकार बेगड़ा के समय में समूचे गुजरात पर मुस्लिम सल्तनत क़ायम हो गयी।

§१२. **हुसेनशाह बङ्गाली और सिकन्दर लोदी**—बङ्गाल की अराजकता का अन्त अलाउद्दीन हुसेनशाह ने किया (१४६३ ई०)। गौड़ पर अधिकार पाते ही उसने अपनी सेना को लूटने से रोका। पर उच्छृंखल सेना जब न मानी, तब उसने १२ हज़ार सैनिकों को फाँसी दे दी। पुरन्दरखाँ वसु हुसेन का वज़ीर था। सनातन उसका दबीरे-खास (निजी मन्त्री) था। सनातन के दो भाई रूप और अनूप भी ऊँचे पदों पर थे।

बङ्गाल की गद्दी पाते ही हुसेन ने शर्की सुल्तान से भागलपुर और मुंगेर जीत लिये। दिल्ली की गद्दी पर बहलोल के बाद सिकन्दर लोदी बैठा (१४८८–१५१७ ई०)। उसने हुसेनशाह शर्की से बिहार भी छीन लिया (१४६४ ई०)। हुसेन शर्की तब हुसेन बङ्गाली की शरण में चला आया। तब सिकन्दर ने उस पर भी चढ़ाई की। सन्धि होने पर पटना के ३७ मील पूरब बाढ़ नाम के कस्बे पर बङ्गाल और दिल्ली सल्तनतों की सीमा मानी गयी।

शर्की शक्ति का यों अन्त होने पर सिकन्दर जमना के दक्खिन दिल्ली के पुराने इलाक़ों को ग्वालियर राज्य से वापिस लेने में लग गया। सिकन्दर लोदी धर्मान्ध मुसलमान था। उसके राज्य में हिन्दू धर्म को भरसक दबाया गया। दिल्ली के साथ-साथ आगरा को भी उसने अपनी राजधानी बनाया।

उधर हुसेनशाह ने अपने पड़ोस के हिन्दू राज्यों से लोहा लिया। कामतापुर के राज्य का अन्त करके उसने अपनी सीमा आसाम से मिला दी। तब से बंगाल आसाम का जल-स्थल-युद्ध जारी हुआ, जो ३५ बरस तक चलता रहा। उधर मिथिला के राजा से उसने सारन ज़िले तक का इलाक़ा छीन लिया; हिन्दू राज्य तब उत्तर की तराई भर में रह गया। हुसेन के एक सेनापति ने उड़ीसा पर चढ़ाई कर पुरी को लूटा (१५०६ ई०)। प्रतापरुद्र ने दक्खिन से लौट कर उसका पीछा किया और उसे गंगा पर हराया। तो भी मन्दारण का क़िला प्रताप के हाथ से निकल गया। त्रिपुरा के राजा धन्यमाणिक्य से तीन बार हारने के बाद चौथी बार हुसेन ने उसका कुछ इलाक़ा जीत लिया।

§१३. **हिन्द महासागर पर पुर्तगालियों का अधिकार होना**—महमूद बेगड़ा के समय में विश्व के इतिहास की एक भारी घटना घट रही थी।

बीच में तेरहवीं-चौदहवीं सदी छोड़ कर सातवीं से पन्द्रहवीं सदी तक संसार पर इस्लाम का आतङ्क छाया हुआ था। आठवीं सदी में जब अरबों ने सिन्ध से स्पेन तक जीत लिया, तब से दक्खिनी स्पेन में इस्लाम के पैर जम गये थे। १५वीं सदी के शुरू में तुर्कों का बल फिर प्रकट हुआ और १४५३ ई० में जब उन्होंने कुस्तुन्तुनियाँ को और बालकन प्रायद्वीप के रोम-साम्राज्य के बचे-खुचे अंश को भी ले लिया, तब युरोप अपने दोनों दक्खिनी पहलुओं पर इस्लाम का दबाव अनुभव करने लगा। मुस्लिम राज्यों के बीच में उठ खड़े होने से रोम और भारत का सीधा व्यापार-सम्बन्ध टूट गया था। मध्य युग में 'मूर' अर्थात् अरब और अन्य मुसल्मान भारत और लाल सागर के बीच व्यापार करते थे, और इटली के वेनिस आदि नगरों के व्यापारी आगे मिस्र से युरोप तक माल लाते और ले जाते थे।

पन्द्रहवीं सदी में पच्छिमी युरोप की जातियों में एक गहरी जाग्रति हुई। प्राचीन यूनानी विद्याओं की तरफ़ लोगों की रुचि फिरी और उनके ज्ञानचक्षु खुलने लगे। लोगों में नये-नये और साहसपूर्ण विचार प्रकट होने लगे। स्पेन-पुर्तगाल वालों की मुसलमानों से विशेष शत्रुता थी। आफ़्रिका के पच्छिमी तट पर वे कुछ दूर तक जाते थे। उन्हें तब यह मालूम न था कि आफ़्रिका कितना बड़ा महाद्वीप है। उनमें यह एक विश्वास भी प्रचलित था कि आफ़्रिका के पूरबी छोर पर हब्शदेश (अबोसीनिया) में प्रेस्तर जौन नाम का एक ईसाई राजा है। उनके दिलों में यह उमङ्ग उठी कि यदि वे आफ़्रिका के दक्खिन छोर से घूम सकें तो एक तो उनका मुस्लिम शत्रु दोनों तरफ़ से घिर जाय, जिसे वह पीठ पीछे से ज़ोर की चोट लगा सकें—इस काम में शायद उन्हें प्रेस्तर जौन की भी मदद मिल जाय—और दूसरे भारतवर्ष के व्यापार में उन्हें अपने शत्रुओं पर निर्भर न रहना पड़े।

यह उमङ्ग उन्हें आफ़्रिका के पच्छिमी तट पर आगे-आगे ढकेलने लगी। उस महाद्वीप के पहले पूरबी घुमाव पर पहुँच कर (१४४२ ई०) उन्होंने जाना कि अब रास्ता पा लिया। किन्तु जब आगे स्थल का किनारा दक्खिन की तरफ़ बढ़ा हुआ निकला और वह आगे-आगे बढ़ता ही गया, तब वे निराश

होने लगे। अन्त में दियाज़ नामक नाविक जब उसकी नोक पर पहुँच गया (१४८७ ई०), तो फिर से उनकी आस बँधी। इसीलिए उस नोक का नाम "आशा-अन्तरीप" रक्खा गया। इसी समय कोलम्बस नामक नाविक को एक नयी बात सूझी। प्राचीन यूनानियों का विचार था कि ज़मीन गोल है। कोलम्बस ने सोचा यदि ऐसा है तो पच्छिम की तरफ़ बढ़ते-बढ़ते भारत पहुँच जाना सम्भव है। स्पेन की राज्ञी इसाबेला ने उसे जहाज़ दिये, जिनके द्वारा उसने अतलान्तिक पार किया, और पच्छिमी अमेरिका के द्वीपों पर पहुँच कर समझा कि भारत मिल गया (१४६२ ई०)। छः बरस पीछे वास्को द-गामा नामक एक पुर्तगाली नाविक आशा अन्तरीप का चक्कर लगा कर कालीकट आ पहुँचा (१४६८ ई०)। तब यह समझा गया कि कोलम्बस भारत के एक छोर पर पहुँचा है और वास्को द-गामा ने उसी का दूसरा छोर पाया है। रोम का पोप ईसाइयों का सब से बड़ा महन्त था। पोप ने अतलान्तिक के बीच एक रेखा निश्चित कर फ़तवा दे दिया कि उसके पच्छिम के सब नये ग़ैर-ईसाई देश स्पेन के और पूरब के पुर्तगाल वालों के होंगे।



वास्को द-गामा

मलबार-तट के सरदारों ने अपना व्यापार बढ़ाने की ग़रज़ से इन आगन्तुकों को अपने यहाँ कोठियाँ बनाने दीं। पुर्तगालियों के भारतीय समुद्र में पहुँचने पर

"मूर" अर्थात् मुस्लिम सामुद्रिक उनका विरोध करने लगे। अपने बचाव के लिए पुर्तगाली लोग तट पर, जहाँ जैसे दाव लगा, किलाबन्दी करने लगे। सबसे पहले १५०३ ई० में उन्हों ने कोचि (कोचीन) में अपनी कोठी की किलाबन्दी की। फिर आफ्रिका के तट पर कई किले बनाये। गुजरात प्रान्त भारत के पच्छिमी व्यापार में सदा से प्रमुख रहा है। गुजराती सुल्तान महमूद बेगड़ा ने इन नये आगन्तुकों को भारतीय समुद्र से निकालना अपना कर्त्तव्य समझा। १५०७ ई० में मिश्र के सुल्तान ने इस कार्य में उसकी मदद के लिए मीर होज़ेम की नायकता में १२ जंगी जहाज़ों में पन्द्रह हज़ार सैनिक भेजे। पहले युद्ध में पुर्तगाली बेड़ा डुबाया गया, किन्तु आलमीदा और आलबुकर्क नामक पुर्तगाली सेनापतियों ने फिर तैयारी करके १५०६ ई० के दूसरे युद्ध में दीव के सामने मुस्लिम बेड़े को जला कर लूट लिया। फिर उन्हों ने हिन्द महासागर में जहाँ तहाँ "मूरों" के जहाज़ों का संहार कर उस समुद्र पर एकाधिकार कर लिया। १५१० ई० में आलबुकर्क ने बीजापुर से गोवा छीन कर उसे पुर्तगालियों के सामुद्रिक साम्राज्य की राजधानी बनाया, तथा १५११ और १५१५ ई० में मलक्का और ओर्मुज़ ले कर हिन्द महासागर की दो मुख्य खाड़ियाँ काबू में कर लीं।

मसाले पैदा करने वाले पूरबी द्वीपों के लिए स्पेन वाले भी तरसते थे। पोप की सीमान्त-रेखा से पच्छिम जाते हुए उन द्वीपों तक पहुँचने का उन्हें विचार हुआ। मैगलान नामक नाविक इस दृष्टि से पृथ्वी की परिक्रमा करने को तैयार हुआ। इसाबेला के पोते चार्ल्स ने उसे पांच जहाज़ दिये, जिनमें २०० आदमी रवाना हुए (१५१६ ई०)। मैगलान ने कोलम्बस से कहीं अधिक हिम्मत और बहादुरी का काम किया। अमेरिका के दक्खिनी छोर से वह पहले-पहल प्रशान्त महासागर में घुसा। दो बरस पीछे उसे एक द्वीपावली मिली, जिसका नाम उसने चार्ल्स के बेटे फ़िलिप के नाम पर फ़िलिपाइन रक्खा। वहीं उसकी मृत्यु हुई। उसके १८ बचे हुए साथी एक जहाज़ ले कर दूसरे बरस स्पेन पहुँचे (१५२२ ई०)। तब लोगों ने जाना कि अमेरिका और भारत अलग-अलग देश हैं।

———

अध्याय ७

पिछले मध्य काल का भारतीय जीवन

§१. हिन्दुओं का राजनीतिक पतन और उसके कारण—पिछला मध्य युग हिन्दू सभ्यता की सड़ाँद और अधोगति का युग था। हिन्दुओं की राजशक्ति इस युग में विशृंखल हो गयी। हिन्दू इस युग में प्रायः सदा ही क्यों हारते रहे, इस प्रश्न के बहुत से उत्तर प्रचलित हैं। यह कहा जाता है कि (१) ठंडे देशों के निवासी और मांसाहारी होने के कारण मुसलमान हिन्दुओं से अधिक हृष्ट-पुष्ट होते थे, (२) युद्ध में हिन्दू अपने लस्टमपस्टम हाथियों पर भरोसा रखते थे, जो फुर्तीले घुड़सवारों के मुकाबले में निकम्मे निकलते थे; और (३) हिन्दुओं में एकता न थी। हर्षवर्धन के बाद से भारत में कोई सम्राट् पैदा नहीं हुआ और अराजकता छायी रही; छोटे छोटे राजपूत राज्य सदा आपस में लड़ कर कमज़ोर होते रहे।

इनमें से कोई भी व्याख्या परीक्षा करने पर सन्तोषजनक नहीं ठहरती। भारतवर्ष के गरम मैदानों में पैदा होने वाली नस्लें ठंडे देशों के लोगों से कभी कमज़ोर नहीं रही हैं। राजपूत तुर्कों से शारीरिक बल में कम न थे। अब भी भारत के गरम प्रदेशों के निवासी राजपूत, जाट, सिक्ख और भोजपुरी संसार की सब से बलिष्ठ सैनिक जातियों से टक्कर लेते हैं। यदि गरम और ठंडे देश में पैदा होने से ही यह भेद होता तो अफ़ग़ान जब हिन्दू थे, तब वे महमूद से क्यों हारते रहे? और कश्मीर से नेपाल तक के ठंडे प्रदेशों के हिन्दू राज्य इस युग में क्यों मुर्दा पड़े रहे? मलिक काफ़ूर किसी ठंडे देश में पैदा न हुआ था। हिन्दू रहते हुए उसी काफ़ूर ने वह योग्यता क्यों न दिखलायी? मांसाहार की बात भी वैसी ही है। दाक्षिणात्य और गौड़ ब्राह्मणों, बनियों और जैनों

को छोड़ कर आज भी प्रायः सब हिन्दू मांसाहारी हैं। हाथियों वाली बात भी ग़लत है। स्वयम् महमूद गज़नवी ने अपने विरोधी तुर्कों के मुकाबले में भारतीय हाथियों का प्रयोग किया था। उसका वृत्तान्त मनोरञ्जक है। उसके हाथी शत्रु के सवारों को अपनी सूंड़ों से पकड़ कर उन्हें काठियों में से खींच लेते और नीचे पटक कर पैरों तले रौंद देते थे।

तीसरी बात भी अज्ञानमूलक है। गुर्जर-प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों के साम्राज्य हर्ष और पुलकेशी के साम्राज्यों के प्रायः बराबर थे। आठवीं, नवीं और दसवीं सदी में जितने बड़े राज्य भारतवर्ष में रहे, उतने बड़े राज्यों का परस्पर लड़ना यदि अराजकता कहलाये तो संसार के सब देशों में सदा ही अराजकता रही है। समय-समय पर उनके परस्पर लड़ने से तो उलटा उन का पौरुष बना रहा। भारत जैसे बड़े देश में यदि तीन सदियों तक कोई लड़ाई न होती तो लोग शायद युद्ध करना ही भूल जाते। तुर्क क़ौमें भी आपस की लड़ाइयों में हिन्दुओं से क्या कुछ कम थीं? महमूद आमू पार के तुर्कों से लगातार लड़ता रहा। यदि महमूद ने हिन्दू राज्यों की लड़ाइयों से लाभ उठाया तो क्यों नहीं किसी हिन्दू राजा ने तुर्कों की आपस की लड़ाइयों से लाभ उठाने की चेष्टा की? सच बात यह है कि यदि हिन्दुओं का राजनीतिक जीवन मन्द न हो गया होता तो एक-एक हिन्दू राज्य अकेले-अकेले भी शत्रु का मुक़ाबला कर सकता और यदि महमूद जैसा कोई असाधारण सेनापति उसे पछाड़ भी देता, तो भी अवसर पाते ही वह फिर उठ खड़ा होता।

इस प्रसंग में हमें इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि इस युग में हिन्दुओं ने जितनी लड़ाइयाँ लड़ीं, वे प्रायः सब अपनी रक्षा के लिए थीं। कभी उन्हें आगे बढ़ कर शत्रु पर चढ़ाई करने की न सूझी, और सूझी भी तो बहुत दूर की नहीं। शहाबुद्दीन गोरी यदि कई हमलों में हारा भी तो उन हारों से उसे अपने राज्य का कोई हिस्सा न देना पड़ा। और हिन्दू राजा यदि उसके मुक़ाबले में जीते भी तो अधिक से अधिक अपना घर बचाने में ही सफल हुए। राजपूतों की जिस वीरता की बड़ी प्रशंसा की जाती है, वह वीरता सदा रक्षापरक युद्धों में ही प्रकट हुई। वह अपना अन्त निकट देख

निराश हो कर मरने मारने पर तुले हुए आदमियों की वीरता होती थी। उसमें महत्त्वा-कांक्षा की वह प्रेरणा, विशाल दृष्टि का वह स्वप्न, वह ऊँची साध कभी न होती थी जो मनुष्यों को नयी भूमियाँ खोजने और जीतने के खतरे उठाने के लिए आगे बढ़ाती है। बेशक, कायर बन कर अधीनता मानने की अपेक्षा वैसी वीरता की मौत मरना भी अच्छा था। किन्तु वह बहादुरी का मरना ही था, बहादुरी का जीना नहीं कहा जा सकता।

हिन्दुओं की हार का एक यह कारण भी कहा जाता है कि उन में अनेक देशद्रोही पैदा हो गये थे। देश-द्रोह की बहुत सी बातें तो कल्पित हैं, जैसे पृथ्वीराज के विरुद्ध जयचन्द्र की। अनेक सच भी हैं, जैसे मुहम्मद गोरी के समय उच्च की रानी की या अलाउद्दीन के गुजरात पर चढ़ाई करने के समय कर्ण के उस मंत्री के निमंत्रण की जिसका कर्ण ने मूर्खतावश अपमान किया था। इन उदाहरणों के विषय में यह सोचना चाहिए कि हिन्दू राज्यों के नेता इतने जागरूक क्यों न रहते थे कि देशद्रोह के अंकुर को ही कुचल देते? प्रजा का कोई आदमी ज्योंही देश-द्रोह करने लगता, राजा उसे पकड़ कर दण्ड क्यों नहीं देता था? और यदि राजा ही देश बेचने लगता तो प्रजा उसके विरुद्ध क्यों नहीं उठ खड़ी होती थी? इस प्रकार देश-द्रोह के इन दृष्टान्तों से वास्तव में राजनीतिक जीवन की मन्दता ही सूचित होती है।

§२. तुर्कों और हिन्दुओं के राजनीतिक जीवन और शासन की तुलना—इस युग के तुर्क सरदार और सैनिक निःसन्देह बहुत उच्छृंखल और उपद्रवी थे। सन् ११९३ से १५२६ ई० तक दिल्ली की गद्दी पर कुल ५ वंशों के ३५ बादशाह बैठे। उसी अवसर में मेवाड़ में १३ राजाओं ने राज्य किया। दिल्ली के उन बादशाहों में से १६ तथा मेवाड़ के राजाओं में से ३ स्वाभाविक मृत्यु के बिना मारे गये। सन् ११९९ से १५३८ ई० तक गौड़ में कुल ४२ मुस्लिम शासकों ने शासन किया। उसी अरसे में उसके पड़ोसी उड़ीसा में केवल १४ हिन्दू राजाओं का शासन रहा।

इन अङ्कों से तुर्क शासन की कमज़ोरी प्रकट होती है। किन्तु यदि कोई हिन्दू राजा इस कमज़ोरी से लाभ उठा कर दिल्ली पर चढ़ाई करता तो क्या

होता ? तुर्कों में कोई न कोई गयास तुगलक उठ खड़ा होता, और सब तुर्क अपने उपद्रव छोड़ कर उस के झंडे के नीचे जमा हो जाते। हमें यह समझना चाहिए कि तुर्क सल्तनत में वास्तविक शासन तुर्कों के सैनिक दल के हाथ में था। उस दल के नेता कब खिलजी रहे, कब तुगलक, आदि, सो गौण बात है। वह दल एक जाति के लोगों का था, जिनका जीवन, रहन-सहन, भाषा और मज़हब एक था। उस तरुण जाति में नये-नये देश जीतने की उमंग सहज ही मौजूद थी। इस्लाम ने उनमें यह विश्वास पैदा कर दिया था कि उनकी वह उमंग और लूटमार की प्रवृत्ति भी एक ईश्वरीय प्रेरणा है।

यों वे उमंगें उनके लिए एक ऊँचा आदर्श बन गयीं। यह आदर्श उन्हें सदा आगे बढ़ने को प्रेरित करता था। उनके दल में छोटे-बड़े सब बराबर थे, योग्यता से कोई भी आगे बढ़ सकता था। वे लोग काफ़ी उत्पाती और उच्छृंखल थे, तो भी इस्लाम की शरीअत ने उनके समाज में कुछ नियम बाँध दिये थे, और वे नियम क्योंकि उनकी दृष्टि में ईश्वरीय कानून थे, इसलिए उनका उल्लंघन करने की एक आन्तरिक रुकावट उनके लिए उपस्थित रहती थी। यदि उनका शासन उपद्रवमय था तो इसका समूचा दोष भी उन्हें नहीं दिया जा सकता। इसके लिए मुख्य दोषी शासित प्रजा थी जो निश्चेष्ट हो कर सब कुछ सहने को तैयार थी, और अपने राजनीतिक कर्त्तव्यों के प्रति बिलकुल बेहोश हो गयी थी। यदि हिन्दू सभ्यता में पहले सा जीवन होता तो वह शकों की तरह तुर्कों को भी पालतू बना लेती; इस्लाम ने तुर्कों के दल में जो व्यवस्था पैदा की वह उससे भी अधिक अच्छी व्यवस्था पैदा कर देती।

खिलजियों के पतन-काल में यदि कोई हिन्दू सरदार दिल्ली पर अधिकार कर भी लेता तो जहाँ उसे तुर्कों के उस जीवित दल का मुकाबला करना पड़ता, वहाँ उसके अपने पक्ष में कौन सी शक्तियाँ उपस्थित होतीं? यदि वह 'नीच' जात का होता—जैसा कि खुसरो था ही—तो उसे कहीं से भी सहयोग न मिलता। और यदि वह कुलीन होता तो भी उसकी दशा प्रायः वही होती जो बंगाल में राजा गणेश की हुई। गणेश के बेटे के मुसलमान होने के विषय में कई कहानियां प्रसिद्ध हैं, पर असलियत यह मालूम होती

है कि उसके अधीन हिन्दू सरदार निश्चेष्ट थे जिनसे सहयोग पाने की उसे कोई आशा न थी, और सचेष्ट मुस्लिम सरदारों और पीरों-फ़कीरों का अकेले मुकाबला करने लायक दृढ़ता, जो उसके बाप में थी, उसमें न थी।

चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी में उत्तर भारत के मैदान, मालवा, गुजरात और बहमनी रियासत के सिवाय समूचे भारत में हिन्दू राज्य थे। यदि उनमें राजनीतिक सचेष्टता और जागरूकता होती तो वे एक बड़ी शक्ति संगठित कर सकते थे। किन्तु उनकी दृष्टि संकीर्ण और शून्य थी। पुरानी लकीर पर चलने के अतिरिक्त कोई दूर का या ऊंचा लक्ष्य उनके सामने आता ही न था।

जिन राज्यों के संचालक अपने चारों तरफ़ की परिस्थिति को देखने और समझने में इतने बेसुध और जागरूकताहीन थे, उनके अन्दर का शासन भी कैसा रहा होगा? हमने दिल्ली और लखनौती के तुर्क शासन की, एक अंश में मेवाड़ और उड़ीसा के मुक़ाबले में कमज़ोरी देखी है। हिन्दू शासन में एक दूसरी कमज़ोरी थी। जहाँ राज्य के नेता ऊँघने वाले और उपेक्षाशील होते हैं, वहाँ उसका संगठन बाहर के किसी हमले के बिना ही ढीला हो जाता है और चारों तरफ़ उपद्रव होने लगते हैं। चेदि देश का इतिहास इसका उदाहरण है। पहले मुस्लिम युग में उसका बड़ा अंश प्रायः स्वतन्त्र रहा; किन्तु बारहवीं सदी के अन्त में वह राज्य आप से आप ही टूट गया। इसके बाद उसके स्थान में कोई सुसंगठित राज्य पैदा न हुआ; जहाँ-तहाँ छोटे-मोटे सरदारों की रियासतें खड़ी हो गयीं, जिनकी सीमाओं पर हमेशा ही अशान्ति रहती होगी। यदि भारत में तुर्क न आते तो प्रायः समूचे भारत की वही दशा हो जाती। इस प्रकार यदि तुर्कों के राज्य में शासक दल की असंयत सचेष्टता के कारण उत्पात और उपद्रव होते रहते थे, तो हिन्दुओं के राज्य में शासकों की निश्चेष्टता के कारण वैसे ही उपद्रव जारी थे। प्रजा में राजनीतिक चेतनता न रहने के कारण उस युग में देश की वैसी दुर्दशा होना अवश्यम्भावी था।

§३. **भारतीय उपनिवेशों का अन्त**—इस दशा में भारत का अपने बाहरी उपनिवेशों से सम्बन्ध टूट जाना स्वाभाविक ही था। तेरहवीं सदी से

परले हिन्द में तिब्बती और चीनी जातियों की प्रधानता हो गयी थी। किन्तु उन विजेताओं पर भी विजितों के धर्म, सभ्यता, भाषा आदि का बहुत प्रभाव पड़ा। कम्बुज, स्याम और बरमा की जनताएँ अब भी बौद्ध हैं; वे भारतीय लिपियों में अपनी भाषाएँ लिखती हैं; उनकी भाषाओं में पाली और संस्कृत के शब्द भरपूर हैं।

भारतीय द्वीपों के राज्य भी कुबलैखान के हमले से टूट गये (१२९३ ई०), पर उसके ठीक बाद ही जावा में बिल्वतिक्त का राज्य खड़ा हो गया। उसका संस्थापक कृतरजस जयवर्धन था। उसकी लड़की त्रिभुवनोत्तुंगदेवी जयविष्णुवर्द्धनी भी बड़ी योग्य स्त्री थी। अपने निकम्मे भाई के बाद वह बिल्वतिक्त की रानी बनी। उसकी बहन राजदेवी और माँ गायत्री भी उसके साथ शासन करती थीं। उसका पति राज्य का मुख्य न्यायाधीश था। उसके मंत्री गजमद ने एक बार सभा में प्रण किया कि वह पहांग, सिंहपुर (सिंगापुर) और श्रीविजय (सुमात्रा) से ले कर बकुलपुर (दक्खिनी बोर्नियो) तक सब राज्यों को जीत कर छोड़ेगा। सब लोगों ने उसकी हँसी की; लेकिन रानी ने हँसी करने वालों को निकाल कर गजमद के हाथ में पूरी शक्ति दे दी। गजमद ने जो कहा था उससे अधिक कर दिखाया। क्रा की स्थलग्रीवा और सुमात्रा से न्यूगिनी द्वीप तक के सब प्रदेश बिल्वत्तिक्त के साम्राज्य में सम्मिलित हो गये। उनमें से बहुतों को जयविष्णुवर्धनी के 'जलधिमंत्री' (जल-सेनापति) नल ने जीता था। आनाम, चम्पा, कम्बुज, अयोध्या और राजपुरी* तथा मरुत्म (मर्त्तबान, बरमा के तट पर) के राज्य बिल्वतिक्त की मैत्री चाहने लगे थे।

किन्तु इस विशाल समुद्री साम्राज्य के पच्छिम भारतीय समुद्र पर अब "मूरों" (मुस्लिम नाविकों) का ही अधिकार था। बिल्वतिक्त के साम्राज्य में भी बौद्ध और शैव मत के तान्त्रिक रूप ज़ोरों पर थे। १३८९ ई० में जयविष्णुवर्धनी के बेटे रजसनगर की मृत्यु के बाद से अवनति होने लगी। पन्द्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में राजा कृतविजय हुआ, जिसने चम्पा की एक राजकुमारी से विवाह किया। वह इस्लाम की पक्षपातिनी थी। इससे जावा में

* अयोध्या और राजपुरी दोनों स्याम में हैं।

इस्लाम के पैर जम गये। १४४८ ई० में वह मरी, और १४७८ ई० में *बिल्वतिक्त का साम्राज्य भी समाप्त हो गया। हिन्दुओं के अन्य* राज्यों की तरह वह भी अपने अन्दर की जीर्णता से खण्डित हो गया।

§४. **सामन्त शासनप्रणाली और जागीर-पद्धति**—हिन्दू जनता की राजनीतिक निश्चेष्टता तथा तुर्कों की विजयों से मध्य युग में शासन और भू-स्वत्व की एक नयी पद्धति चल पड़ी थी। पहले किसान अपनी ज़मीन का ख़ुद मालिक होता था। अब तुर्क और दूसरे विजेता विजय के बाद ज़मीन आपस में बाँट लेते थे। किन्तु वे पहले किसानों को हटा कर उनके स्थान में ख़ुद खेती करने के बजाय उन्हीं को खेती-बाड़ी करने देते थे और ख़ुद उनके ऊपर मालिक बन कर बैठ जाते थे। वास्तव में वे अपने इलाके के मालिक होते थे या शासक, सो कहना कठिन है। जनता के अपने स्वत्वों के प्रति उदासीन हो जाने के कारण इन दोनों बातों में विशेष अन्तर न रह गया था। जहाँ नये विजेता न पहुँचे, वहाँ भी पुराने कर वसूल करने वाले और अन्य राजकीय अधिकारी उसी तरह किसानों के ऊपर ज़मीन के मालिक से बन बैठे। जहाँ पहले किसान ज़मीन के मालिक थे, वहाँ अब राजा सब भूमि का स्वामी माना जाने लगा। वह अपने बड़े सरदारों या सामन्तों को मानों ज़मीन ठेके पर देता—या जागीर देता—था और वे अपने छोटे सरदारों और सैनिकों को देते थे। इस ठेके की परम्परा में प्रत्येक ठेके की यह शर्त होती थी कि सैनिक या सरदार अपने 'स्वामी' को बदले में सैनिक-सेवा देंगे। इसी को हम सामन्त-शासनपद्धति या जागीर-पद्धति कहते हैं।

§५. **सामाजिक जीवन—जातपाँत, परदा, और बालविवाह**—अब न केवल हिन्दुओं के राजनीतिक जीवन में, प्रत्युत उनकी सभ्यता के सब पहलुओं में जीर्णता आ गयी थी। उस सभ्यता में प्रगति और प्रवाह बन्द हो गये थे। किन्तु जीर्ण होने पर भी हिन्दू सभ्यता ने अपने को बचाये रखने की अनुपम शक्ति दिखलायी। पहले मध्य युग में जात-पाँत का विकास हो चुका था और ब्याह-शादी, खान-पान पर कड़े बन्धन लग चुके थे। वे बन्धन अब और भी कड़े हो गये, जिससे हिन्दू-समाज के अन्दर के जीवन पर बाहर से कोई प्रभाव

पड़ना बहुत कठिन हो गया। हिन्दुओं ने अपने विजेताओं को अपने से ऊँचा मानने के बजाय उलटा नीच बताया। तो भी इस युग तक वे अपनी जातों में बाहर के आदमियों को मिला लेते थे। इसका एक उदाहरण, शहाबुद्दीन गोरी के हारे हुए कैदियों का गुजराती हिन्दुओं में मिलाये जाने का, दिया जा चुका है। दूसरा बड़ा उदाहरण अहोम लोगों के हिन्दुओं में मिलने का है। तेरहवीं सदीं में जब वे आसाम में आये तो वे अपनी बोली बोलते थे और गो-मांस खाते थे। धीरे-धीरे उन्हों ने एक आर्य भाषा अपना ली, और पूरे हिन्दू बन गये। परदा और बालविवाह की प्रथाएँ भी इसी युग में परिपक्व हुईं।

§६. **धार्मिक जीवन (अ) तौहीद और मूर्तिपूजा**—इस्लाम के धार्मिक विचारों में शिक्षित हिन्दुओं के लिए कोई नयी बात न थी। एक ब्रह्म का विचार उपनिषदों के समय से स्पष्ट रूप में मौजूद था। शिक्षित समाज की दृष्टि में ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि केवल उसकी विभिन्न शक्तियों के सूचक थे। उनकी मूर्त्तियाँ केवल संकेत थीं, जिनकी रचना में कला को अपना कौशल दिखाने का अवसर मिलता था। राणा कुम्भा के प्रसिद्ध कीर्ति-स्तम्भ में हिन्दुओं के सब देवी-देवताओं की मूर्त्तियाँ हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव से शुरू कर राग-रागनियों तक को मूर्त्त किया गया है। इससे स्पष्ट है कि वे सब मूर्त्तियाँ पूजा के लिए न थीं। वहाँ प्रतिमा का अर्थ केवल भाव का मूर्त्त रूप है। वह पत्थर में तराशी गयी कविता है। धार्मिक विचारों में हिन्दू कितने उदार थे, इसका उदाहरण भी उसी कीर्त्तिस्तम्भ में मौजूद है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव की मूर्त्तियों के साथ-साथ अरबी अक्षरों में अल्लाह का नाम भी वहाँ लिखा है। वह निराकार ब्रह्म का अरबी नाम है। इस प्रकार इस युग में इस्लाम के बुनियादी विचार को हिन्दुओं ने खुशी-खुशी स्वीकार कर लिया था।

(इ) **जड़पूजा, वाम मार्ग और अन्धविश्वास**—किन्तु जनसाधारण में मूर्तिपूजा जड़-पूजा के रूप में प्रचलित थी। इसके अलावा, पहले मध्य युग तक हिन्दुओं के प्रायः सभी पन्थों के कोई न कोई विषयी या घोर रूप चल चुके थे। तीसरे, अलौकिक और असाधारण सिद्धियाँ ऊँचे जीवन का मुख्य चिन्ह मानी जाने लगी थीं। चौथे, पौराणिक धर्म में अर्थहीन क्रियाकलाप

बहुत बढ़ गया था, और उस रूप में उसे निभाना फ़ुरसत वाले निठल्ले लोगों के लिए ही शक्य था। देवगिरि के अन्तिम यादव राजा के मंत्री हेमाद्रि (हेमाड पन्त) ने हिन्दू धर्म-कर्म का एक ग्रन्थ लिखा जिस में बरस भर में करने के लिए प्रायः २,००० व्रतों और अनुष्ठानों का विधान है। उसी तरह के ग्रन्थ काशी और मिथिला में शूलपाणि उपाध्याय, कमलाकर भट्ट, नीलकण्ठ आदि ने लिखे, जिन में हिन्दू धर्म का वही जटिल रूप दिखायी देता है।

(उ) सन्त और सूफ़ी सुधारक सम्प्रदाय—इस प्रवृत्ति के खिलाफ़ बाद में सुधार की एक लहर चली। वह लहर मुख्यतः सन्त लोगों ने चलायी जो सब वैष्णव भक्त थे। उन्हों ने जनता का ध्यान मूर्त्तियों के जड़ रूप से हटा कर उनके भाव और आदर्श की तरफ़ खींचा, विषयासक्त पूजाओं की उपेक्षा कर शुद्ध पूजाओं को उज्ज्वल और आकर्षक रूप में उपस्थित किया, तथा पूजा विधि और क्रिया-कलाप के बजाय भाव और भक्ति पर ज़ोर दिया। हिन्दू वेदान्त के सम्पर्क से इस्लाम में भी एक रहस्यवाद चला। उसके प्रवक्ता सूफ़ी कहलाये। उनकी धार्मिक दृष्टि बहुत उदार थी।

इस युग के सब से पहले बड़े सुधारक प्रयाग के रामानन्द तथा पण्ढरपुर (महाराष्ट्र) के विसोबा खेचर थे, जो दोनों चौदहवीं सदी हुए। रामानन्द ने गोपियों से घिरे कृष्ण के बजाय राम को भगवान् माना, संस्कृत के बजाय देशी भाषा में उपदेश दिया और नीच कहलाने वाली जातियों के लोगों, स्त्रियों तथा मुसलमानों को भी शिष्य बनाया। भक्ति छोटे-बड़े सब को पवित्र बना सकती है, इसलिए भक्त सन्तों ने 'नीच' जातों को भी सहज ही ऊँचा उठा दिया। विसोबा खेचर ने खुले शब्दों में मूर्त्ति-पूजा को धिक्कारा—"पत्थर का देवता नहीं बोलता…वह चोट से टूट जाता है।…पत्थर के देवताओं के पुजारी मूर्खतावश सब खो बैठते हैं।"

चौदहवीं सदी में ही ईरान में हाफ़िज़ नामी प्रसिद्ध सूफ़ी कवि हुआ। उसे बहमनी रियासत के मुहम्मदशाह २य तथा बंगाल के ग़यास आज़मशाह दोनों ने अपने यहाँ आने का निमंत्रण दिया था। इससे जान पड़ता है कि भारतीय मुसलमानों पर हाफ़िज़ का बड़ा प्रभाव पड़ा था।

विसोबा के शिष्य नामदेव तथा रामानन्द के शिष्य कबीर कहे जाते हैं। नामदेव ने तीर्थ, व्रत, उपवास आदि धर्म के सब बाह्य साधनों को व्यर्थ कह कर मन की शुद्धि और हरि के ध्यान को असल मार्ग बतलाया। कबीर एक मुस्लिम जुलाहा था। हिन्दू और मुसलमान दोनों में उसके अनुयायी हैं, और दोनों को उसने खरी-खरी सुनायीं। वह भी राम का उपासक था। हिन्दुओं से उसने कहा—

पाहन पूजे हरि मिलैं,
तो मैं पुजौं पहार!
तातैं ये चाकी भली
पीस खाय संसार!

और मुसलमानों से—

कांकर पाथर जोरि कै
मसजिद लई चुनाय,
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे,
क्या बहरा हुआ खुदाय?

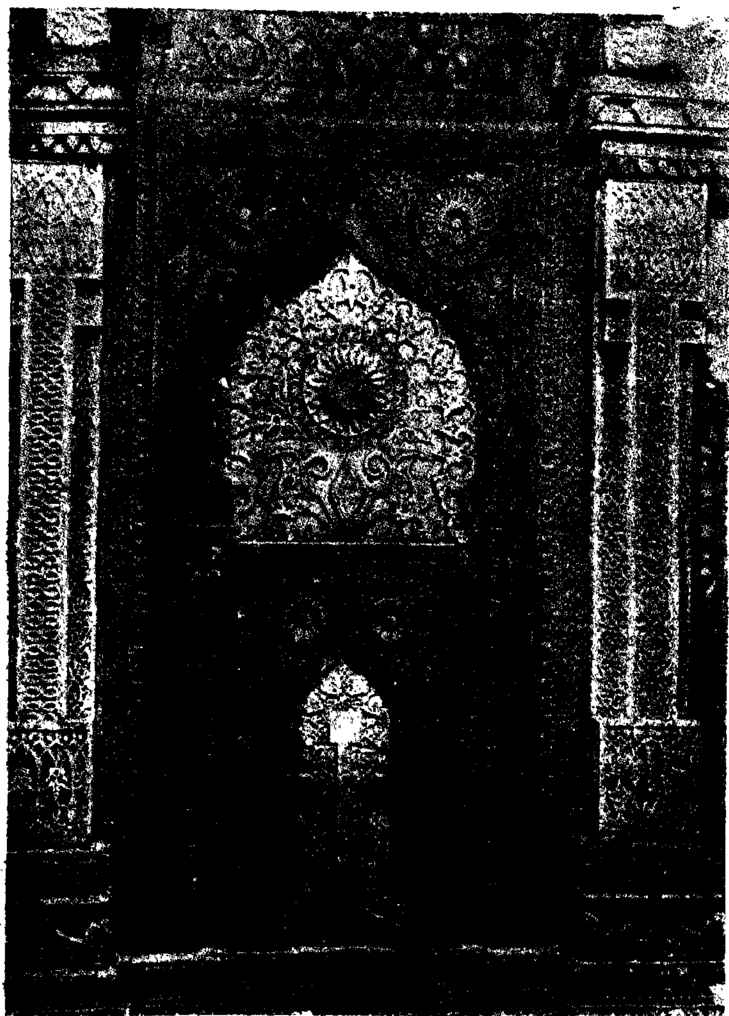


कबीरदास

[ब्रिटिश म्यूजियम में रक्खे एक पुराने चित्र की प्रतिलिपि, भारत कलाभवन]

कबीर के बाद सब से अधिक उल्लेखयोग्य नाम पंजाब के गुरु नानकदेव (१४६८-१५३८ ई०) का है। नानक एक अंश में रामानन्द और कबीर से भी आगे बढ़ गये। वे सन्त होते हुए भी गृहस्थ थे। संसार के कर्त्तव्यों को करते हुए भी सदाचरण और भक्ति से मनुष्य धर्मात्मा हो सकता है, यह नानक की शिक्षा थी।

नानक और हुसेनशाह का समकालीन बंगाली सन्त चैतन्य था (१४८५-१५३३ ई०)। राजा गणेश के प्रधान मंत्री का पोता अद्वैताचार्य चैतन्य का साथी था। इन दोनों ने बंगाल को वज्रयान और शाक्त वाम मार्ग से उबारा।



चन्देरी के एक मक़बरे की मेहराब—मालवा की १५वीं सदी की कारीगरी।
[ग्वालियर पु० वि०]

इनके वैष्णव धर्म में जटिल दार्शनिकता न थी, भाव-प्रधान भक्ति ही उसका सार था। इन्होंने जाति-भेद को दूर किया और मुसलमानों को भी अपना शिष्य बनाया। बंगाल में बौद्ध भिक्खु-भिक्खुनियों का एक बड़ा दल था, जो हिन्दू समाज से अलग था। वे नेड़ा-नेड़ी कहलाते थे। अद्वैताचार्य ने उन सब को वैष्णव दीक्षा दे हिन्दुओं में मिला लिया। आसाम के अहोमों को हिन्दू बनाने का श्रेय भी वैष्णव भक्तों को है। किन्तु इन भक्तों के द्वारा भजन-कीर्त्तन को ही जीवन का मुख्य धन्धा बना देने का प्रभाव अच्छा न हुआ।

मारवाड़ की प्रसिद्ध मीराबाई, जो राणा साँगा की पतोहू थी, चैतन्य से १३ बरस पीछे हुई (१४९८–१५४६ ई०)। उसने अपने दादा और पिता की परम्परा से वैष्णव भक्ति पायी थी।

(ऋ) **भारतीय इस्लाम**—चौदहवीं सदी से—प्रादेशिक मुस्लिम राज्यों की स्थापना के साथ-साथ—इस्लाम भी भारतवर्ष में विदेशी न रहा। तुर्क लोग तब तक भारतीय हो गये थे और बहुत से भारतीय भी मुसलमान बन चुके थे। लोदी और अन्य पठान भी भारतीय मुसलमान—अर्थात् हिन्दू से बने हुए मुसलमान—थे। भारतवर्ष में इस्लाम का वास्तविक प्रचार प्रादेशिक मुस्लिम राज्यों द्वारा ही हुआ। उन राज्यों के शासकों में से कई इस्लाम के उग्र प्रचारक थे और उन हिन्दी मुसलमानों ने तुर्कों से बढ़ कर इस्लाम को फैलाया। फ़ीरोज़ तुगलक, सिकन्दर बुतशिकन, अहमदशाह गुजराती, महमूद बेगड़ा तथा सिकन्दर लोदी उस प्रकार के इस्लाम-प्रचारक थे। दूसरी तरफ़ ज़ैनुलआबिदीन जैसे सुशासक थे जिन्होंने अपने चरित्र के उदाहरण से इस्लाम का गौरव बढ़ाया।

§७. **शिल्प-कला**—१४वीं-१५वीं सदी के सभी प्रादेशिक शासकों ने भारतीय सभ्यता, साहित्य और कला को अपनाया और पुष्ट किया। भारतीय कला के बहुत से पुराने चिन्ह तुर्कों ने मिटा दिये थे, तो भी भारतीय कारीगरों का कौशल न मिट गया था, और वह कौशल अब नयी मुस्लिम इमारतों में प्रकट हुआ। इनमें से बहुत सी तो पुरानी हिन्दू इमारतों का केवल रूपान्तर थीं। बङ्गाल में इलियास के बेटे सिकन्दरशाह की बनवायी पाण्डुआ (ज़ि० मालदा) की



प्रज्ञापारमिता (जावा, १३वीं सदी)

अदीना मसजिद, जो एक बौद्ध स्तूप की सामग्री से बनी, तथा जिसके बराबर बड़ी मसजिद भारत में कभी कोई नहीं बन पायी, जौनपुर की अतला देवी मसजिद तथा मालवा, गुजरात और दक्खिन की इस युग की इमारतें भारतीय वास्तु-कला के बढ़िया नमूनों में से हैं। उनमें से प्रत्येक पर अपने-अपने प्रान्त की पुरानी शैली की छाप है।



अदीना मस्जिद का एक दरवाजा [भा० पु० वि०]



नटराज (ताण्डव करते हुए शिव) दक्खिन भारत, १५वीं सदी का कांस्य। [म्युज़े गुइमें, पेरिस]

हिन्दू राज्यों में पुराना शिल्प बदस्तूर मौजूद रहा। मूर्ति-कला के लिए मुस्लिम दरबारों में कोई स्थान न था, और हिन्दू राज्यों में भी वह अवनति पर थी। चित्तौड़ के कीर्ति-स्तम्भ की मूर्त्तियाँ भद्दी हैं; किन्तु दक्खिन की नटराज की मूर्त्तियाँ अत्यन्त सुन्दर और सजीव हैं। इस युग की मूर्त्ति-कला का बहुत बढ़िया नमूना जावा से पायी गयी राजा रजसंग अमुर्वभूमि (१२२०–२७ ई०) के समय की प्रज्ञा-पारमिता की प्रतिमा है, जो उस राजा की सुन्दरी रानी देदेस

की प्रतिकृति मानी जाती है। पारमिता का अर्थ है बड़प्पन या परम उत्कर्ष। बौद्ध कला में भिन्न भिन्न पारमिताओं को भी मूर्त्त रूप दिया गया है।

§८. **साहित्य**—चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी में देशी भाषाओं के साहित्यों को एक तरफ़ तो प्रादेशिक राज्यों से प्रोत्साहन मिला, दूसरी तरफ़ उन्हें सन्त-सुधारकों ने अपना कर पुष्ट किया। देशी भाषाओं को उत्साहित करने का श्रेय मुसलमानों को अधिक है, क्योंकि हिन्दू विद्वान् तब तक प्रायः संस्कृत में ही लिखते थे। मलिक खुसरो (१२५३–१३२५ ई०) ने खड़ी बोली में सबसे पहले कविता की। बंगला साहित्य का उदय राजा गणेश के समय से हुआ। चण्डीदास के पद उस में सब से पहली प्रसिद्ध रचना हैं। उसी प्रकार के पद विद्यापति ने मैथिली में लिखे। हुसेनशाह, उस के पुत्र और सरदारों ने बंगला में भागवत और महाभारत के अनुवाद करवाये। बंगाली कवियों ने भी 'श्रीयुत हसन जगतभूषण' के नाम को अपने गीतों में चिरस्थायी किया। द्राविड भाषाओं में से तामिल और कन्नड में पहले भी साहित्य था। तेलुगु में राजा गणपति और उसके सामन्तों तथा मध्य काल के भक्तों के प्रोत्साहन और प्रयत्न से शुरू हुआ। १३वीं शती के तामिल कवि कम्बन् की रामायण तथा कवयित्री आण्डाल के गीत भारतीय साहित्य के उज्ज्वल रत्न हैं। कम्ब-रामायण के नमूने पर पीछे दूसरी भाषाओं में भी रामायणें लिखी गयीं।

सब मुस्लिम दरबारों के इतिहास फ़ारसी में लिखे जाते थे। भारतीय तुर्कों की साहित्यिक भाषा फ़ारसी थी। वे इतिहास महत्त्वपूर्ण हैं। आसाम के अहोम राजाओं के वृत्तान्त असामिया भाषा में बराबर लिखे गये। वे बुरंजी कहलाते हैं।

§९. **मध्य काल का ज्ञान, और अर्वाचीन काल का आरम्भ**—हम कह चुके हैं कि गुप्त युग में भारतवर्ष का ज्ञान और सभ्यता जहाँ तक पहुँच गये थे, उसके आगे प्रायः एक हज़ार बरस तक संसार ने कुछ उन्नति न की। इस बीच में पहले अरबों और फिर मंगोलों द्वारा भारत और चीन का ज्ञान पच्छिमी युरोप की जातियों तक पहुँचता रहा। दशगुणोत्तर गणना अरब लोगों ने भारत से सीखी, इसी कारण उन्होंने हमारे अंकों को हिन्दसे कहा।

युरोप वालों ने वह गणना अरबवालों से सीखी। लकड़ी के ठप्पों (ब्लाकों) से कागज़ पर छापने की विद्या चीनवालों से सीख कर अरबों ने युरोप तक पहुँचायी। मंगोलों ने युरोप में बारूद पहुँचाया। इसी प्रकार और बहुत सी बातों का ज्ञान युरोप में पूरब से गया। रोम के पतन के समय से जब युरोप की जातियों ने ईसाई मत को अपनाया, तब से वे अज्ञान की निद्रा में रहीं। अब धीरे-धीरे यह ज्ञान पा कर उनमें एक गहरी जागृति पैदा हुई। प्राचीन यूनान की विद्याओं के लिए वे तरसने लगीं। १४५३ ई० में तुर्कों के कुस्तुन्तुनिया जीत लेने पर प्राचीन यूनानी विद्याओं के अनेक विद्वान् भाग कर युरोप के देशों में पहुँचे।

पूरब और यूनान के ज्ञान से युरोप में एक नयी जागृति पैदा हो गयी। वहाँ की तरुण आर्य जातियों के विचार जहाँ एक बार उस ज्ञान से जाग उठे कि उन्होंने स्वयम् नयी-नयी खोजें करना शुरू कर दिया। नये देशों की खोज की बात पीछे कही जा चुकी है। गुट्टनबर्ग नामक एक जर्मन ने इसी समय सीसे के चल टाइप से छापने की कला निकाली (१४५४-५६ ई०), जिससे नयी पुस्तकें छापने में बड़ी सुविधा हो गयी। इस प्रकार दुनियाँ में एक नया युग उपस्थित हुआ। उस नये युग को लाने में तीन वस्तुओं के ज्ञान का विशेष प्रभाव हुआ। एक नाविकों के दिग्दर्शक यन्त्र का, दूसरे बारूद का, और तीसरे पुस्तक छापने की कला का। ज्ञान के क्षेत्र में भारतवासी अब भी वैसे ही सोये रहे जैसे गुप्त युग के बाद से सोये थे। लेकिन पच्छिमी लोगों के जाग जाने का प्रभाव हमारे देश पर भी हुए बिना न रह सकता था। नयी जागृति के जोश में स्पेन वालों ने अपने दक्खिनी और रूसियों ने अपने पूरबी प्रान्त से मूरों और मंगोलों को निकाल दिया।

नवाँ प्रकरण

मुग़ल साम्राज्य

(१५०६—१७२० ई०)

अध्याय १

साम्राज्य के लिए पहली कशमकश

(१५०६—१५३० ई०)

§१. राणा साँगा—पच्छिमी मण्डल की राजनीतिक जद्दोजहद—(१५०६–२० ई०)—उसी साल जब दीव का युद्ध हुआ, मेवाड़ में रायमल का बेटा साँगा और विजयनगर में वीर-नरसिंह का भाई कृष्णदेवराय गद्दी पर बैठे। दोनों योग्य और शक्तिशाली राजा थे। साँगा ने अपने दादा की नीति को पुनरुज्जीवित कर मारवाड़, बीकानेर, आम्बेर आदि सहित समूचे राजपूताना पर प्रभुत्व जमा लिया। वह दिल्ली के इलाक़ों पर भी हाथ साफ़ करने लगा। तब सिकन्दर लोदी के बेटे इब्राहीम लोदी ने उस पर दो चढ़ाइयाँ कीं (१५१७–१८ ई०), जिनमें हार कर इब्राहीम को चम्बल की दून में धौलपुर तक का इलाक़ा देना पड़ा। सिकन्दर और इब्राहीम ने ग्वालियर राज्य जीता था वह अब साँगा के हाथ आ गया; आगरा के पास पीलिया खाल उसके राज्य की सीमा बनी। दिल्ली और मालवा के बीच साँगा ने यों एक पच्चर ठोंक दिया।

१५१० ई० में महमूद २य मालवा की गद्दी पर बैठा। उसके भाई ने मुस्लिम सरदारों से मिल कर विद्रोह किया, और दिल्ली और गुजरात से मदद मँगवायी। गुजरात का मुज़फ़्फ़रशाह २य (१५११–२६ ई०) ख़ुद फ़ौज के साथ आया। चन्देरी के जागीरदार मेदिनीराय ने, जो महमूद का मन्त्री था, दिल्ली, मालवा और गुजरात की सम्मिलित सेनाओं को हरा कर विद्रोह मिटा दिया। पीछे उन्हीं अमीरों के बहकाने से महमूद ने मेदिनी को धोखे से मरवाना चाहा, और उस प्रयत्न में निष्फल हो कर वह मुज़फ़्फ़रशाह के पास गुजरात भाग गया। मेदिनीराय ने राणा साँगा से मदद ली। पर साँगा से पहले मुज़फ़्फ़रशाह ने मांडू जीत लिया, और गुजराती फ़ौज की मदद से महमूद मेवाड़ की तरफ़ बढ़ा। गागरौन की लड़ाई में वह साँगा का क़ैदी हुआ। तीन महीने बाद साँगा ने आधा राज्य वापिस दे कर उसे छोड़ दिया। रणथम्भोर, गागरौन, भेलसा, चन्देरी और कालपी के प्रदेश अर्थात् उत्तरी इलाक़े राणा के पास रहे, जिससे दिल्ली और मालवा की सल्तनतें एक-दूसरे से बिलकुल अलग हो गयीं, और चित्तौड़ राज्य की सीमा बुन्देलखण्ड और गढ़कटंका से जा लगी। गढ़कटंका का राजा संग्रामशाह राणा संग्रामसिंह का समकालीन था, और उसने अपने आधी शताब्दी (लग० १४६१–१५४१ ई०) के शासन में भोपाल से मंडला तक—अर्थात् मालवा और छत्तीसगढ़ के बीच के—सब क़िले जीत कर एक मज़बूत राज्य खड़ा कर दिया। साँगा ने उसके उत्तर तरफ़ बघेलखण्ड में बान्धोगढ़ के पास तक अपना प्रभुत्व फैला लिया। गागरौन की जीत के बाद साँगा ने गुजरात पर भी चढ़ाई की (१५२० ई०)।

§२. कृष्णदेवराय—दक्खिनी मण्डल की राजनीतिक जद्दोजहद (१५०६–३० ई०)—नरस नायक अपने बेटों से कह गया था कि बीजापुर से रायचूर दोआब तथा उडीसा से उदयगिरि ज़रूर वापिस लेना। १५१५ ई० तक कृष्णराय ने वे दोनों काम पूरे कर लिये, और कृष्णा नदी तक अपनी सीमा पहुँचा दी। १५१७ ई० में उसने कृष्णा पार कर बेजवाडा और कोंडपल्ली ले लिये, और तब विज़गापट्टम तक चढ़ाई की। खम्मामेट और नलगोंडा ज़िलों सहित कृष्णा-गोदावरी दोआब, उसे प्रतापरुद्र को देना पड़ा। १५१२ ई० से

गोलकुण्डा का प्रान्त बिदर से अलग हो कर स्वतन्त्र रियासत बन गया था। गोलकुण्डा के सुल्तान कुली कुतुबशाह* ने गोदावरी-कृष्णा-दोआब को तथा बीजापुर के इस्माइल आदिलशाह* ने रायचूर दोआब को वापिस लेने की बहुत कोशिश की; पर कृष्णराय के मुकाबले में उनकी एक न चली। हारे हुए शत्रुओं के साथ कृष्णराय का बर्ताव बड़ी उदारता का होता और जीते हुए शहरों में वह कभी लूट-मार न होने देता था।



कृष्णदेवराय और उसकी रानियाँ
तिरुपति (जि० चित्तूर) के मन्दिर की समकालीन कांस्य मूर्त्तियाँ [भा० पु० वि०]

§३. बाबर का पूर्व चरित (१४९४–१५१२ ई०)—**उत्तरी मंडल में राजनीतिक कशमकश**—हम्मीर का वंशज साँगा जब पच्छिमी भारत में अपनी शक्ति स्थापित कर रहा था, तभी उत्तर-पच्छिमी पञ्जाब में, जिसे दिल्ली के सुल्तान कभी अधीन न कर पाये थे, तैमूर का एक वशंज, जो आयु और वीरता में साँगा के जोड़ का था, अपने पैर जमाने की कोशिश में लगा था (१५०९–२० ई०)।

(अ) तुर्किस्तान—तैमूर ने काशगर से ईजियन सागर तक सब देशों को जीता था, पर उसके वंशजों के हाथ में अब केवल खुरासान अर्थात् उत्तरी ईरान, आमू-सीर के प्रदेश और काबुल-गज़नी बचे थे। खुरासान की राजधानी हरात

* अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा के सुल्तान-वंशों के नाम क्रमशः निज़ामशाह, आदिलशाह और कुतुबशाह थे। बराड़ के सुल्तानों का पद इमादशाह तथा बिदर वालों का बरीदशाह था।

थी। आमू-सीर प्रदेश में तीन छोटे-छोटे राज्य थे। एक समरकन्द का, दूसरा हिसार-बदख़्शाँ का जिसकी राजधानी हिसार (आधुनिक स्तालिनाबाद के १२ मील दक्खिन-पच्छिम) थी, तथा तीसरा फ़रग़ाना का, जिसकी राजधानी अन्दिजान थी। फ़रग़ाना के शासक उमरशेख़ के १४८३ ई० में एक बेटा हुआ जो इतिहास में बाबर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। राणा साँगा इससे एक साल पहले पैदा हुआ था। तैमूर के पीछे मध्य एशिया में मंगोल सरदारों ने फिर जहाँ-तहाँ सिर उठा लिया था। फ़रग़ाना के नीचे सीर के काँठे में ताशकन्त तब चंगेज़ख़ाँ के वंशजों की राजधानी थी। बाबर की माँ वहाँ के राजा की बेटी थी। इसी कारण न केवल बाबर और उसके वंशज, प्रत्युत उनके सरदार भी भारत में मुग़ल अर्थात् मंगोल कहलाते रहे। अगली तीन सदियों में भारत के जो मुग़ल बादशाह हुए, वे असल में तूरानी (तुर्क) थे। मध्य एशिया के मंगोल भी इस समय तक मुसलमान हो चुके थे और तुर्कों तथा तुर्किस्तान के पुराने आर्य निवासी ताजिकों में घुल-मिल चुके थे। उनकी शकलें-सूरतें भी बदल कर ताजिकों की सी हो चुकी थीं। पर १४६५ ई० में ख़ालिस मंगोलों की एक नयी शाखा सीर के निचले काँठे में आ गयी। वह अब तैमूरी राज्यों के दिगन्त पर काले बादलों की तरह मंडरा रही थी। इतिहास में वह उज़्बग नाम से प्रसिद्ध है।

जब ११ बरस का कुमार बाबर फ़रग़ाना की गद्दी पर बैठा, तो तैमूर के वंशज इस उज़्बग आतंक के बावजूद आपस के तुच्छ झगड़ों में उलझे हुए थे। १५०३ ई० तक उज़्बगों के नेता मुहम्मद शैबानी ने समरकन्द और फ़रग़ाना से तैमूरियों की सत्ता मिटा दी। बाबर को उसने समरकन्द के पास ज़रफ़्शाँ नदी के पुल पर ऐसा हराया कि शैबानी का नाम सुन कर बाबर काँप उठता था। उसे अपना देश छोड़ कर भागना पड़ा। हरात या काबुल जाने के इरादे से वह बदख़्शाँ से गुज़र रहा था कि ख़बरें आने लगीं कि शैबानी उधर भी चढ़ाई करेगा। बदख़्शाँ में खलबली मच गयी। वहाँ के अनेक भगोड़े भी बाबर के साथ हो गये। रास्ते के 'ईल-ओ-उलूज़' (पहाड़ी जंगली लोगों) की उस सेना के साथ वह काबुल की ओर बढ़ा।

(इ) काबुल—इधर काबुल का शासक बाबर का चचा मर चुका था (१५०१ ई०)। कन्दहार में तब भी चंगेज़खाँ के वंशजों का राज था। उन मंगोलों ने काबुल ले लिया। हिन्दूकुश को पार करके बाबर काबुल की दून में उतरा, और बात की बात में मंगोल शासक से काबुल छीन लिया (१५०४ ई०)।

(उ) उज़्बग—इसके १० बरस बाद तक भी बाबर का ध्यान पीछे (फ़रगाना) की तरफ़ रहा। इसी बीच शैबानी आमू के निचले कांठे—ख्वारिज़्म—को जीत चुका और अराल और बदख़्शां के बीच सीर और आमू के सब प्रदेशों को अधीन करने के बाद खुरासान भी ले चुका था (१५०७ ई०)। यों सोलहवीं सदी के शुरू में मध्य एशिया से तैमूरी राजवंशों का नाम-निशान मिट गया, केवल काबुल की गद्दी पर बाबर उसकी स्मृति में बाक़ी था। उसी बरस शैबानी कन्दहार पहुँचा। बाबर उसके आने की ख़बर सुनते ही काबुल से भाग खड़ा हुआ और जलालाबाद पहुँचा। वहाँ उसे शैबानी के लौटने की ख़बर मिली तो वापिस आ कर उसने बदख़्शां को भी अधीन कर लिया। ये सब घटनाएँ १५०६ ई० से पहले की हैं। उस बरस से ईरान और मध्य एशिया के इतिहास में भी एक नया प्रकरण शुरू हुआ। १५१० ई० में बाबर को ख़बर मिली कि ईरान के सफ़वी राजवंश के संस्थापक शाह इस्माइल से हार कर उज़्बग आमू का मैदान छोड़ कुन्दूज़-दून तक हट गये हैं। इसी बीच मर्व के युद्ध में मरते हुए उज़्बग योद्धाओं और उनके घोड़ों के बीच शैबानी कुचल कर मर गया। बाबर शाह के सामन्त रूप में समरकन्द की गद्दी पर बैठा, पर १५१२ ई० में उज़्बगों ने उसे फिर हरा कर बदख़्शाँ की पच्छिमी सीमा (कुन्दूज़ नदी) तक अधिकार कर लिया। अपने देश से अन्तिम विदाई ले १५१३ या १४ ई० में वह फिर काबुल आया और तब से उसने अपना मुँह भारत की तरफ़ फेरा।

(ऋ) बाबर की पंजाब पर चढ़ाइयाँ—अगले पाँच बरस में बाबर ने काबुल के राज्य को सुसंगठित किया। १५१९ ई० में उसने भारत पर पहली चढ़ाई की। प्राचीन कपिश देश का नाम अब काफ़िरिस्तान पड़ चुका था। उसकी पूरबी सीमा कुनार नदी है। कुनार के पूरब बाजौर के लोग भी बाबर

के समय तक 'इस्लाम के विद्रोही' (हिन्दू) थे। बाबर ने उन पर चढ़ाई की (१५१६ ई०)। बाजौरियों ने कभी बन्दूक न देखी थी। बाबर के पास बन्दूक के साथ तोपें भी थीं। परिणाम निश्चित था। बाजौर के बाद स्वात पार कर बाबर ने बुनेर जीता, और सिन्ध पार कर नमक की पहाड़ियाँ लाँघते हुए भेरा पर, जो तब जेहलम के दाहिने तट पर था, अधिकार कर लिया।

इस रास्ते में उसकी गक्खड़ सरदारों से अनेक मुठभेड़ें हुईं, जिनमें तीर-कमान के मुकाबले में बन्दूकों की जीत हुई। बाबर के मुँह फेरते ही गक्खड़ों ने विद्रोह किया। उनके दमन के लिए उसने पंजाब पर दो और चढ़ाइयाँ कीं। इन हमलों में वह स्यालकोट तक पहुँच गया। उधर उसने कन्दहार भी जीत लिया। तब कन्दहार के मङ्गोल शासकों ने जो अरगून कहलाते थे, सिन्ध आ कर सम्मों से वह प्रान्त जीत लिया (१५२१ ई०)। सात बरस बाद उन्होंने पठानों से मुलतान भी ले लिया।

§४. दिल्ली और पूरब की राजनीति (१५१७–२५ ई०)—इसी बीच दिल्ली के पठान राज्य की बड़ी दुर्दशा थी। दुरभिमानी इब्राहीम लोदी ने अपने अनेक सरदारों को बिगाड़ लिया। पूरब में लोहानी अफ़ग़ानों ने विद्रोह कर बिहार में एक स्वतन्त्र राज्य की नींव डाली (१५२१ ई०)। इसी सीमान्त राज्य में फ़रीद उर्फ़ शेरख़ाँ सूर नाम के एक प्रतिभाशाली पठान को बहारखां लोहानी के मन्त्री की हैसियत से अपनी शासन-नीति परखने का अवसर मिला। उसी समय हुसेनशाह बंगाली के बेटे नसरतशाह (१५१६–३२ ई०) की सेनाओं ने मिथिला के हिन्दू राज्य की अन्तिम सफ़ाई कर हाजीपुर में छावनी डाली।

§५. उत्तर भारत का सम्राट् बाबर (१५२६–३० ई०) (अ) पंजाब और पानीपत—उधर पञ्जाब के हाकिम दौलतख़ाँ लोदी ने भी विद्रोह कर बाबर को बुला भेजा। तभी इब्राहीम लोदी का चचा अलाउद्दीन बाबर के पास पहुँचा और दिल्ली की गद्दी पाने के लिए उसने प्रार्थना की। राणा साँगा के दूतों ने भी काबुल पहुँच कर यह प्रस्ताव किया कि दिल्ली राज्य पर बाबर और साँगा एक साथ हमला करें; बाबर दिल्ली तक ले ले और साँगा आगरे तक।

इस दशा में बाबर ने पञ्जाब पर फिर चढ़ाई कर लाहौर और दीपालपुर तक जीत लिया। दूसरे बरस वह जमना तक चढ़ आया। इब्राहीम ने पानीपत पर



बाबर हिन्दुस्तान की गद्दी पर—सामने हुमायूँ
"तारीखे-खानदाने-तैमूरिया" की हस्तलिखित प्रति से। [खुदाब० पु०]

उसका सामना किया। बाबर के पास ७०० फिरंगी (युरोपियन) तोपें थीं, जिनकी गाड़ियों की पाँतों को चाम के रस्सों से बाँध दिया गया था। प्रत्येक

जोड़ी के बीच तूरे अर्थात् बड़ी ढालें थीं, जिनके पीछे बन्दूकची तैनात थे। उन तोपों की पंक्तियाँ सेना के आगे-आगे बीच में थीं। तोपों को यों बाँधने का तरीका १५१४ ई० में कुस्तुन्तुनियाँ के उस्मानली तुर्कों ने ईरानियों के विरुद्ध युद्ध में बरता था, और बाबर ने यह उन्हीं से सीखा था। पहले-पहल युरोप में बोहीमियाँ के लोगों ने जर्मन रिसालों का हमला तोड़ने को यह तरीका निकाला था, और उनकी नक़ल उस्मानली तुर्कों ने की थी। बाबर के सेना-सञ्चालन और साधनों के सामने अफ़ग़ानों की वीरता किसी काम न आयी। चार-पाँच घंटों की लड़ाई में दिल्ली की फ़ौज तहस-नहस हो गयी (२१-४-१५२६)।

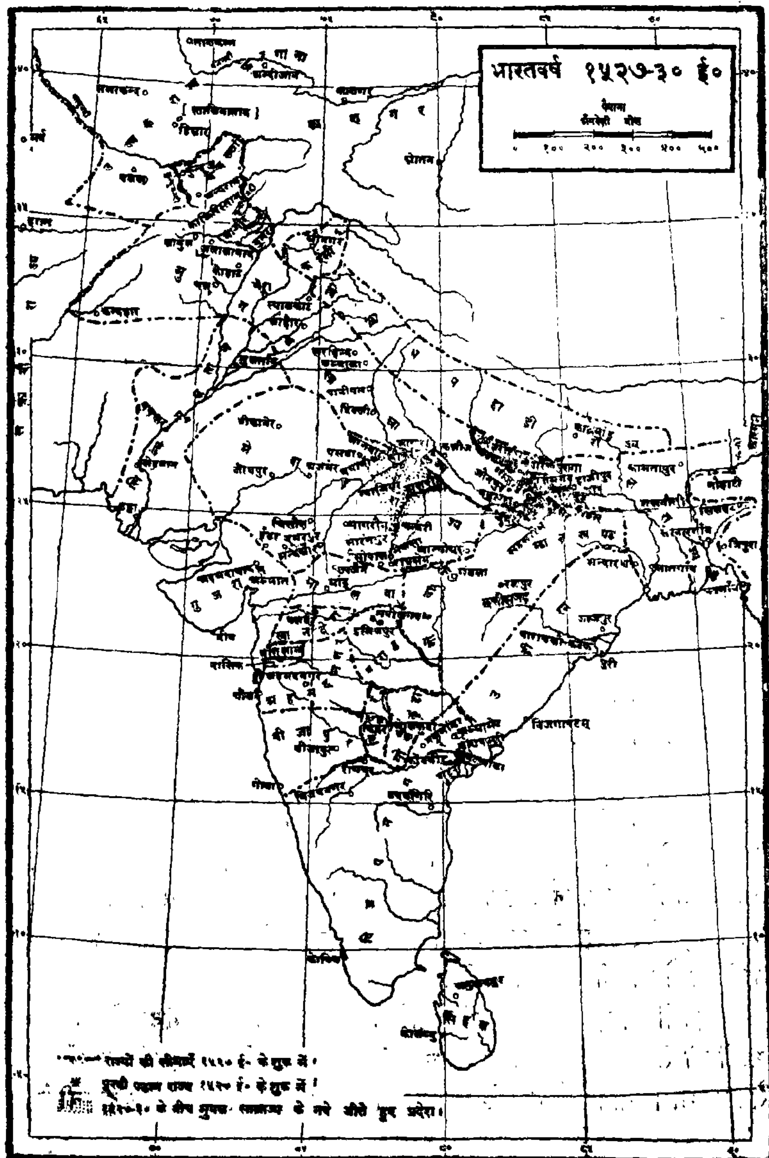
(इ) **हिन्दुस्तान**—पानीपत की हार का समाचार पा बहारखाँ लोहानी ने अपना नाम सुल्तान मुहम्मदखाँ रक्खा, और उसकी नायकता में पूरबी अफ़ग़ान, तुर्कों की बाढ़ रोकने के लिए कन्नौज तक चढ़ आये। पच्छिमी अफ़ग़ानों का नेता हसनखाँ मेवाती था; उसने इब्राहीम के भाई महमूद लोदी को दिल्ली का सुल्तान बना कर खड़ा किया। गरमी के मौसम में तुर्कों को आगे बढ़ता न देख मुहम्मदखाँ बिहार लौट गया। उसके बाद पठानों में अपने घर की फूट प्रकट होने लगी। बाबर के दिल्ली-आगरा पर दखल कर लेने पर दोआब, अवध और जौनपुर के बहुत से अफ़ग़ान सरदारों ने भी उसे अपनी-अपनी सेवाएँ सौंप दीं। उनकी मदद के भरोसे पर उसी चौमासे में उसने अपने बेटे हुमायूं को पूरब की चढ़ाई पर भेजा। हुमायूं ने पाँच महीने में अवध, जौनपुर और गाज़ीपुर तक जीत लिया।

(उ) **खानवा का युद्ध**—हसनखाँ मेवाती और महमूद लोदी राणा साँगा से जा मिले। बाबर ने जमना के दक्खिन की ओर ज्योंही कदम रक्खा कि साँगा से उसकी लड़ाई ठन गयी। वह प्रदेश साँगा का वह उत्तरी सीमान्त था जिसे वह दिल्ली के सुल्तान से छीन चुका था। तो भी वहाँ के क़िलों के क़िलेदार सब पुराने मुसलमान ही थे। बाबर ने उनसे मिल कर बयाना, धौलपुर और ग्वालियर के क़िले ले लिये और बदले में उन्हें दोआब में बड़ी-बड़ी जागीरें दे दीं। सांगा ने तेज़ी से बढ़ कर बाबर की फ़ौज से बयाना छीन लिया। साँगा को

इस प्रकार बढ़ता देख बाबर भी आगरा से बढ़ा और सीकरी पर डेरा डाल दिया (११-२-१५२७ ई०)। एक मुग़ल सेनापति सीकरी से खानवा की ओर बढ़ा, और राजपूतों से बुरी तरह हारा। बयाना की लड़ाई और इस मुठभेड़ के तजुर्बे से मुग़ल सेना में त्रास फैल गया। इस विपत्ति ने बाबर की अन्तरात्मा को जड़ तक हिला दिया। उसने शराब छोड़ने का प्रण किया और अपनी सेना के धर्मभावों को उत्तेजित किया। उधर उसने साँगा से सन्धि की बातचीत भी शुरू की। साँगा ने पहली जीत के बाद एकाएक हमला न कर सुलह की बातों में बाबर को महीना भर तैयारी का मौक़ा दे दिया। बाबर ने इस बीच पानीपत की तरह खाई-खन्दकें खुदवा लीं और तोपों की गाड़ियों को रस्सों से बँधवा लिया।

१७ मार्च १५२७ ई० को खानवा के तंग मैदान में लड़ाई हुई। बाबर ने एक अच्छी खासी रक्षित सेना अपने व्यूह के पीछे दोनों किनारों पर अलग रख ली थी। राजपूत सवारों के दल बाबर की आग बरसाने वाली दीवार पर टूटते और कई बार उसके पासों को पीछे ठेल ले जाते थे। इसी समय सिर में एक तीर खा कर राणा मूर्च्छित हो गया, और उसी बेहोशी में उसे पालकी पर पीछे ले जाया गया। उसका स्थान झाला अज्जा ने ले लिया, और लड़ाई वैसे ही जारी रही। जब सारी राजपूत सेना पूरी तरह लड़ाई में जुट गयी तो बाबर की रक्षित सेना ने तेज़ी से घूम कर चन्दावल (पिछले हिस्से) को घेर कर पीछे से हमला किया। यह मंगोलों की ख़ास चाल थी, जिसे वे तुलुगमा कहते थे। बाबर ने ज़रफ़शां के पुल वाली लड़ाई में शैबानी की इसी चाल से हार कर समरकन्द का मुकुट खोया था। अब इसी की बदौलत उसे हिन्दोस्तान का मुकुट मिला।

साँगा की तरफ़ इस युद्ध में राजपूताना और मालवा के प्रत्येक हिस्से के अतिरिक्त अन्तर्वेद तक के राजपूत लड़ने आये थे। उन सभी प्रदेशों में इस हार का धक्का पहुँचा। झाला अज्जा, हसनखाँ मेवाती, मीराबाई का पिता रत्नसिंह राठौर आदि इस युद्ध में खेत रहे। साँगा को जब बसवा गाँव में (बाँदीकुई के पास) होश आया तब वह इस बात पर बहुत खीझा कि उसे


भारतवर्ष १५२७-३० ई०

लड़ाई के मैदान से दूर क्यों लाया गया। उसने प्रण किया कि बाबर को जीते बिना चित्तौड़ न लौटूँगा, और रणथम्भोर में डेरा डाल कर फिर युद्ध की तैयारी शुरू की।

(ऋ) **राजपूताना-मालवा**—जनवरी १५२८ ई० में बाबर मालवा-राजपूताना की चढ़ाई के लिए निकला और सब से पहले मेदिनीराय के चन्देरी किले की तरफ़ चला। साँगा भी उसी तरफ़ बढ़ा, पर कालपी के पास उसके साथियों ने, जो युद्ध के विरोधी थे, उसे विष दे दिया। चन्देरी के राजपूतों ने वीरता से लड़ कर अपना बलिदान किया।

(ॡ) **पूरब के प्रदेश**—उसके आगे बाबर का इरादा मालवा के दूसरे प्रमुख सरदार सलहदी के क़िलों—रायसेन, भेलसा और सारंगपुर—को ले कर मेवाड़ पर चढ़ाई करने का था। किन्तु उसी समय उसे ख़बर मिली कि अवध और पूरब के अफ़ग़ानों ने विद्रोह कर कन्नौज से मुगल सेना को निकाल दिया है। दूसरे, जब बाबर का ध्यान राजस्थान की ओर था, तभी नसरतशाह बंगाली ने आज़मगढ़ और बहराइच तक अधिकार कर लिया था। बाबर चन्देरी से कालपी के रास्ते सीधा कन्नौज की तरफ़ बढ़ा। अफ़गान विद्रोही उसके आने पर भाग गये। उसी गरमी और चौमासे के शुरू में उसने जौनपुर और बक्सर तक के प्रदेशों पर पूरी तरह काबू कर लिया।

राणा साँगा की मृत्यु के बाद महमूद लोदी पूरब की ओर चला आया। बाबर के पीठ फेरते ही वहाँ फिर विद्रोह की आग सुलगी। लोदी ने लोहानियों से बिहार छीन कर उसी को अपनी राजधानी बनाया, तथा मुगलों से गाज़ीपुर-बनारस छीन कर चुनार और गोरखपुर को घेर लिया। १५२९ ई० के शुरू में बाबर को फिर पूरब लौटना पड़ा। उसके आते ही विद्रोही सेना तितर-बितर हो गयी, और लोहानी नेता जलाल ने उसे एक करोड़ कर दे कर बिहार की गद्दी पर बैठने की स्वीकृति पायी।

मुगलों की इस तीसरी पूरबी चढ़ाई के समय बंगाली सेना गंडक के चौबीस घाटों को रोके खड़ी थी, और घाघरा-गंडक-दोआब के लिए भी लड़ने को तैयार थी। बाबर जौनपुर से घाघरा की ओर बढ़ा। शत्रु चुस्त बंदूकची थे,

इसलिए उसने सावधानी से तैयारी की। घाघरा पार कर पानीपत और खानवा की तरह उसने बंगालियों को भी पीछे से घेर कर पूरी तरह हरा दिया। एक मास के बाद बाबर और नसरतशाह ने सन्धि कर ली।



काबुल में बाबर का मक़बरा [फ़ादर हेरस के सौजन्य से]

पानीपत, खानवा और घाघरा की विजयों से बाबर उत्तर भारत का सम्राट् बन गया, और उस का साम्राज्य बदख्शाँ से बिहार तक फैल गया। १५३० ई० में उसका आगरा में देहान्त हुआ।

———

अध्याय २

साम्राज्य के लिए दूसरी जद्दोजहद और सूर साम्राज्य

(१५३०—१५५४ ई०)

§१. **बादशाह हुमायूँ—पहली परिस्थिति**—हुमायूँ को जब हिन्दुस्तान की गद्दी मिली, तो उसे अपने भाई कामरान को बदख्शां, कन्दहार, काबुल और पञ्जाब सौंपना पड़ा। यों उसके राज्य में केवल अन्तर्वेद बचा। उसका पिता उसके लिए दो काम अधूरे छोड़ गया था—एक पच्छिम की तरफ़ राजपूताना-मालवा को जीतना और दूसरे पूरब में अफ़गानों का विद्रोह दबाना।

मेवाड़ में साँगा के पीछे उसका छोटा बेटा रत्नसिंह राणा हुआ। रत्नसिंह का बड़ा भाई भोजराज—मीराबाई का पति—साँगा से पहले मर चुका था। खानवा की हार से मेवाड़ के गौरव को भारी धक्का लगा, तो भी उसकी सीमा आगरा के पास से केवल बसवा गाँव तक हटी थी। मालवा के महमूद खिलजी ने अब अपने छिने हुए इलाक़ों को वापिस लेना चाहा। रत्नसिंह ने मालवा पर चढ़ाई कर उसे उज्जैन से भगा दिया। गुजरात के मुज़फ्फ़रशाह २य का बेटा बहादुरशाह अपने भाइयों के डर से भाग कर राणा साँगा की शरण में रहता था। साँगा की माँ उसे बहुत प्यार करती और 'बहादुर बेटा' कह कर पुकारती थी। १५२६ ई० में उसने गुजरात की गद्दी पायी। रत्नसिंह से भी उसकी अच्छी मैत्री रही। रत्नसिंह जब उज्जैन से लौट रहा था, उसी समय बहादुरशाह ने भी महमूद पर चढ़ाई की। रत्नसिंह ने सलहदी आदि सरदारों के साथ अपनी बहुत सी सेना उसके साथ कर दी। बहादुरशाह ने महमूद को क़ैद कर दक्खिनी मालवा (उज्जैन और मांडू) भी उससे छीन लिया (१५३० ई०)।

बाबर के मरने से पहले इधर तो पच्छिम में बहादुरशाह का सितारा चमक उठा, उधर पूरब में उससे भी योग्य एक व्यक्ति प्रकट हुआ। १५२९ ई० में जलालखाँ लोहानी को जब बिहार की सल्तनत वापिस मिली, तो उसने अपने बाप के भूतपूर्व मन्त्री और अपने शिक्षक शेरखाँ सूर को फिर अपना मन्त्री बनाया। बाबर की अन्तिम बीमारी के समय शेरखाँ ने चुनार का क़िला ले लिया।

§२. **बहादुरशाह गुजराती**—१५३१ ई० में राणा रत्नसिंह को उसके एक सरदार ने मार डाला; और १५३२ ई० में नसरतशाह बंगाली भी चल बसा। तब बहादुरशाह और शेरखाँ को अपने-अपने मण्डल में प्रमुख शक्ति बनने का अवसर मिल गया। उसी समय मालदेव मारवाड़ की गद्दी पर बैठा। मालदेव के पुरखा बदायूँ के राठौड़ थे, जो १३वीं सदी के अन्त में मारवाड़ में आ बसे थे। अब वे राजपूताना में एक राजशक्ति बनने लगे। गुजरात का पुर्तगालियों से सीधा सम्पर्क होने के कारण बहादुरशाह को तोपें और तोपची पाने की मुगलों से भी अधिक सुविधा थी। उसके पड़ोसी राज्य अब सब पस्त पड़े थे। रत्नसिंह के बाद उसका भाई विक्रमाजीत १४ बरस की उम्र में मेवाड़ का राणा बना। उसके छिछोरे स्वभाव से उकता कर मेवाड़ और मालवा के अधिकांश सरदारों ने उसका साथ छोड़ दिया। उनमें से बहुतों ने अपनी सेवाएँ बहादुरशाह को सौंप दीं। बहादुरशाह ने पूरबी और उत्तरी मालवा (रायसेन, भेलसा, रणथम्भोर आदि) मेवाड़ से ले लिये। मालदेव ने भी उसी समय मेवाड़ के पच्छिमोत्तर के इलाक़े—अजमेर, नागोर आदि—ले लिये। अन्त में बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर उसे भी लूटा। अलाउद्दीन के बाद यह चित्तौड़ का दूसरा "साका" हुआ। उत्तरी मालवा के जिन प्रदेशों को खानवा-युद्ध के बाद से मुगल अपनी मीरास समझे हुए थे, उन्हें हुमायूँ के देखते-देखते बहादुरशाह ने ले लिया। इसलिए दोनों में युद्ध ठन गया।

§३. **हुमायूँ का मालवा गुजरात जीतना**—बहादुरशाह चित्तौड़ घेरे हुए था जब हुमायूँ कालपी, चन्देरी, रायसेन होता हुआ उज्जैन पहुँचा (फ़रवरी १५३५ ई०)। चित्तौड़ ले कर बहादुरशाह उसकी तरफ़ बढ़ा। मन्दसोर पर दोनों का सामना हुआ। दो महीने अपनी मोर्चाबन्दी में घिरे रहने के बाद एक

रात गुजराती सुल्तान अपनी सेना को किस्मत के हवाले छोड़ कुछ साथियों के साथ भाग निकला। इस तरह गुजरात और मालवा हुमायूँ के हाथ आये, किन्तु अपने भाई अस्करी के विद्रोह के कारण उसे जल्द उत्तर को लौटना पड़ा। उसका पीठ फेरना था कि बहादुरशाह और उसके साथियों ने गुजरात, मालवा और खानदेश को फिर वापिस ले लिया (१५३६ ई०)।

§४. **पुर्तगालियों का तट-राज्य**—बहादुरशाह ने पुर्तगालियों की मदद के बदले उन्हें मुम्बई, साष्टी और बसई के द्वीप दिये। किन्तु उन्हें किलाबन्दी करते देख कर उसने उन्हें निकालना चाहा और अहमदनगर और बीजापुर के शाहों को भी वैसा करने को लिखा। वे चिट्ठियाँ पुर्तगालियों के हाथ पड़ गयीं। उनके मुखिया नूनो-दा-कुन्हा ने बहाने से बहादुरशाह को दीव बुलाया, और जब वह वहाँ से लौट रहा था तो उसकी नाव डुबा दी (१५३७ ई०)। महमूद बेगड़ा पुर्तगालियों की समुद्र पर प्रभुता न रोक पाया था, अब उसका पोता उन्हें तट-प्रदेश से भी निकालने में विफल हुआ। करंजा से बुलसाड तक कोंकण के उपजाऊ तट को काबू कर पुर्तगालियों ने उसे अपना 'उत्तरी प्रान्त'* बनाया और उसकी राजधानी बसई में रक्खी। इसी समय स्पेनवालों ने मेक्सिको और दक्खिन अमेरिका में अपना साम्राज्य स्थापित किया (१५१९-३६ ई०)।

§५. **बिहार का बेताज बादशाह शेरखाँ**—नसरतशाह की मृत्यु पर उसका भाई महमूद उसके बेटे को मार कर बंगाल की गद्दी पर बैठा। नसरत-शाह का दामाद मखदूम-ए-आलम उसकी तरफ़ से हाजीपुर का सर-ए-लश्कर था, उसने महमूद को बादशाह न माना। मखदूम ने शेरख़ाँ को अपना मित्र बना लिया था। महमूदशाह ने उन दोनों से लड़ाई छेड़ी। मखदूम मारा गया। बिहार के सब जागीरदार अब शेरख़ाँ के विरोधी हो गये थे, क्योंकि उसने उनकी ज़मीनें नाप कर उन्हें राज्य-कर का ठीक हिस्सा देने को मजबूर किया, उनके सब कोटले ढहा दिये, और उनके लिए प्रजा पर ज़ुल्म करना असम्भव कर दिया था। फल यह हुआ कि प्रजा तो शेरख़ाँ के शासन को

---

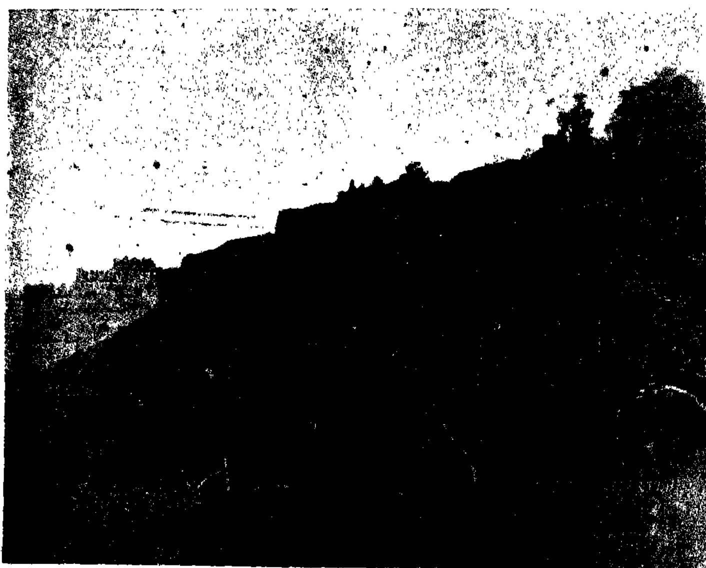
* दक्खिनी प्रान्त गोआ का था।

राम-राज्य मानने लगी, पर सरदार उसके जानी दुश्मन बन गये। बिहार में उसकी वही हालत हो गयी जो मेदिनीराय की मालवा में हुई थी। शेरखाँ के खिलाफ सरदारों ने सुल्तान जलाल लोहानी के कान भरने शुरू किये। जलाल लोहानी अपने मंत्री के शिकंजे से बचने के लिए महमूदशाह बंगाली की शरण में भाग गया। वहाँ से बंगाली फौज के साथ उसने शेरखाँ पर चढ़ाई की। बंगाल-बिहार के बीच के तंग पहाड़ी रास्ते के पच्छिमी मुँह पर किऊल नदी के किनारे सूरजगढ़ पर थोड़ी सी सवार सेना की सहायता से शेरखाँ ने बंगाली फौज को हरा दिया (१५३४ ई०)। उस जीत से वह बिहार का बेताज बादशाह हो गया। बादशाह बनने के प्रलोभन से बच कर वह हुमायूँ का ख़ुतबा पढ़ता रहा। किसानों की खुशहाली के लिए सावधान रहने और सेना को नियम से वेतन देने के विषय में उसकी दूर-दूर तक प्रसिद्धि हो गयी। उसकी सेना शुरू में अफ़गान सवारों की थी। अब उसने बिहार के किसानों की एक पैदल सेना तैयार करके उसे बन्दूकों से सुसज्जित किया। शेरखाँ के ये बक्सरिये बन्दूकची १८वीं सदी के अन्त तक प्रसिद्ध रहे, और फिर उन्हीं की भरती से अङ्गरेज़ों की वह सेना बनी जिसने उन्हें समूचा भारत जीत दिया।

§६. **शेरखाँ का बंगाल जीतना**—हुमायूँ की मालवा की चढ़ाई के समय शेरखाँ ने अपना राज बढ़ाने का अच्छा अवसर देखा। मुंगेर और भागलपुर ज़िलों पर धीरे-धीरे कब्ज़ा कर उसने गौड़ पर चढ़ाई की। महमूद-शाह ने १३ लाख अशर्फ़ियाँ दे कर उसे विदा किया। इस रक़म से वह नयी फ़ौज तैयार हुई जिसकी सहायता से दो बरस पीछे उसने महमूद को बंगाल से निकाल भगाया।

§७. **हुमायूँ की शेरख़ पर चढ़ाई और बंगाल जीतना**—हुमायूँ के मालवा से लौट आने पर शेरखाँ चुप बैठ गया। पर इसी बीच महमूद ने गोवा के पुर्तगाली गवर्नर से मदद माँगी। पुर्तगाली लोग पहले-पहल सन् १५३३ ई० में चटगाँव में उतरे थे। शेरखाँ को अब यह ज़रूरी मालूम हुआ कि पुर्तगाली मदद आने से पहले वह अपने शत्रु से निपट ले। उसने गौड़ का क़िला घेर कर अपनी सेना की टुकड़ियों से बंगाल के प्रत्येक ज़िले पर दख़ल कर लिया।

इस दशा में हुमायूं शेरखाँ के खिलाफ़ रवाना हुआ। शेरखाँ गौड़ पर विश्वस्त सेनापतियों को छोड़ झट चुनार आया और उस किले में खूब रसद-बारूद जमा करके उसने मुगलों को, जब तक बने, वहीं रोकने का प्रबन्ध किया। हुमायूँ शेरखाँ के फन्दे में फँस चुनार को सर करने में लग गया। उधर शेरखाँ अपने लिए एक नया आधार और नया रास्ता बनाने लगा। सहसराम से और ऊपर सोन के किनारे रोहतास का विकट पहाड़ी गढ़ था। शेरखाँ ने रोहतास के



रोहतासगढ़—कथूटिया दरवाजा और बुर्ज [भा० पु० वि०]

राजा से शरण माँगी, और शरण पाने पर धोखे से उस गढ़ पर काबू कर लिया। तब उसने झाड़खंड के राजा से लड़ कर बिहार के दक्खिन का पहाड़ी प्रदेश ले लिया। एप्रिल (१५३८ ई०) में शेरख के सेनापतियों ने गौड़ ले लिया और मई में चुनार मुग़लों के हाथ आया। उधर हुमायूं गौड़ को रवाना हुआ, इधर शेरखाँ गौड़ की अतुल सम्पत्ति ले झाड़खंड के रास्ते रोहतास को

चल दिया। गौड़ के महलों को वह हुमायूँ के आराम के लिए सजा कर छोड़ आया था। बिहार-बंगाल दोनों अब हुमायूँ के हाथ में थे, और शेर झाड़-खंड में जा छिपा था।

§८. **बंगाल और जौनपुर का बादशाह शेरशाह**—उसी साल जाड़े में शेरखाँ ने झाड़खंड से निकल कर समूचे बिहार और जौनपुर पर कब्ज़ा कर लिया। प्रजा और किसानों को लूटने के बजाय उसने मालगुजारी की दो किस्तें ठीक समय पर उगाह लीं। दिल्ली-आगरा का बंगाल से सम्बन्ध टूट गया। हुमायूँ जब गौड़ से रवाना हुआ, तब शेरखाँ ने अपनी सेनाएँ रोहतास में समेट लीं। फिर कर्मनाशा नदी पर चौसा गाँव के पास उसने हुमायूँ का रास्ता रोक लिया। शेरखाँ का चरित्र उस समय की एक घटना से प्रकट होता है। एक दिन जब मुग़ल दूत उसके डेरे में गया तो वह अपने साधारण सिपाहियों के साथ फावड़ा लिये खन्दक खोदने में लगा था! उसी हालत में ज़मीन पर बैठ कर उसने दूत से बातचीत की। सन्धि की बातचीत विफल हुई। शेरखाँ ने एक रात चुपके से कर्मनाशा को पार कर बड़े सवेरे, जब मुग़ल सेना सो रही थी, उस पर हमला कर दिया। हज़ारों मुग़ल अफ़गानों के हाथ मारे गये और गंगा की धार में डूब गये। हुमायूँ एक भिश्ती की मदद से मुश्किल से बच कर भागा। बंगाल, बिहार, जौनपुर और अवध पर शेरखाँ का पूरा अधिकार हो गया। अब वह शेरशाह के नाम से गौड़ की गद्दी पर बैठा (१५३९ ई०)। हुमायूँ के पास सिर्फ़ दोआब, सम्भल तथा जमना का दाहिना काँठा बच गया।

§९. **शेरशाह का हिन्दुस्तान और पंजाब जीतना**—सन् १५३३ ई० में बाबर के मौसेरे भाई मिर्ज़ा हैदर ने काशगर के सुलतान के साथ उत्तर की तरफ़ से कश्मीर पर चढ़ाई की थी। उन दोनों को हारकर भागना पड़ा था। मिर्ज़ा हैदर अब हुमायूँ के पास आ गया। हुमायूँ ने अपने भाई कामरान से बड़ी मिन्नत की कि वह भी उसे शेरशाह के ख़िलाफ़ मदद दे। लेकिन कामरान ने उसकी एक न सुनी। उन्हें आपस में झगड़ते देख शेरशाह ने तमाम मुग़लों को भारतवर्ष से निकालने की ठानी। हुमायूँ उसके मुकाबले को एक भारी

फ़ौज ले कर आया। कन्नौज पर दोनों दल आमने-सामने हुए। हुमायूँ ने गंगा पार कर पानीपत और खानवा की तरह अपनी सेना का व्यूह बनाया। जञ्जीरों से बंधी तोपगाड़ियों की विकट पाँत मिर्ज़ा हैदर के नेतृत्व में सामने बीचोबीच में थी। शेरशाह ने तोपों के जमने से पहले ही मुगल सेना के दोनों पासों पर ज़ोर का धावा बोल दिया। जैसे ही वे पासे टूटे कि उसके रिसाले ने उन्हें घेर कर मुग़ल चन्दावल के साथ उनके केन्द्र की तरफ़ ढकेला। यह भागती हुई भीड़ तोपखाने की जञ्जीरों पर जा पड़ी और उनकी पंक्ति को तोड़ती-फाड़ती आगे निकल गयी। मुगलों की डरावनी तोपों को एक भी गोला फेंकने का अवसर न मिला। अफ़गानों के हमले के पहले वे जमने भी न पायी थीं, और अब उनके सामने अपनी ही सेना के भगोड़े थे! हुमायूँ जान बचा कर आगरे की तरफ़ भागा (१७-५-१५४० ई०)।

शेरशाह ने पंजाब तक मुग़लों का पीछा किया। ग्वालियर के मुगल सेनापति ने वह क़िला न छोड़ा, इसलिए उसपर घेरा डाल दिया गया। पंजाब से कामरान ने काबुल की राह ली और हुमायूँ सिन्ध की तरफ़ भाग गया। मिर्ज़ा हैदर कश्मीर में घुसा, और इस बार वहाँ के एक दल के साथ मिल कर राज्य पर अधिकार कर लिया। कश्मीर और काबुल दोनों से पंजाब उतरने वाले रास्ते नमक-पहाड़ियों में मिलते हैं। इसलिए शेरशाह ने गक्खड़ों के इस देश को पूरी तरह काबू करने के विचार से उसके ठीक केन्द्र में रोहतास नाम का गढ़ बनवाना शुरू किया। वह काम उसने टोडरमल खत्री को सौंपा, जो लाहौर में उसकी सेवा में आया था।

§१०. राजपूताना और मालवा में मालदेव का प्रबल होना—शेरशाह के विस्तृत साम्राज्य का दक्खिनी छोर—राजपूताना, मालवा और बुन्देलखण्ड की तरफ़—बिल्कुल अरक्षित था। बहादुरशाह की मृत्यु के बाद से गुजरात-मालवा में कई छोटे-छोटे सुल्तान और राजा उठ खड़े हुए थे। मेवाड़ की हालत और भी खराब थी। वहाँ कई घरेलू लड़ाइयों के बाद अन्त में चित्तौड़ राणा साँगा के छोटे बेटे उदयसिंह के हाथ में आया। पच्छिमी भारत की प्रमुख शक्ति अब मालदेव के हाथ में थी। राज पाने के पाँच

बरस के अन्दर उसने दक्खिन की तरफ़ आबू तक, उत्तर की तरफ़ आधुनिक बहावलपुर, नागोर, बीकानेर और झुज्झुर तक तथा पूरब की तरफ़ अजमेर को लेते हुए बनास नदी और कछवाड़ा (आम्बेर राज्य) के अन्दर तक अपना राज्य फैला लिया था। हुमायूँ जब बिहार-बंगाल में उलझा था, तब मालदेव ने टोंक से चम्बल के काँठे की तरफ़ बढ़ना शुरू किया। अब उसने हुमायूँ के पास सिन्ध में निमन्त्रण भेजा कि उससे मिल कर वह मालवा की तरफ़ से हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करे। ग्वालियर के क़िले में तब तक कुछ मुगल फ़ौज थी ही। पर हुमायूँ के दिमाग़ में सिन्ध और गुजरात को जीत कर गुजरात से फिर हिन्दुस्तान जीतने की धुन समायी थी। चुनाँचे साल भर वह सिन्ध के क़िलों पर टक्करें मारता रहा।

§११. **शेरशाह की साम्राज्य-वृद्धि (अ) मालवा**—इसी बीच ग्वालियर की मुगल सेना ने आत्म-समर्पण किया, और शेरशाह ने मालवा पर पूरा अधिकार कर लिया। उधर सिन्ध में विफल होने पर हुमायूँ को मालदेव के निमन्त्रण की याद आयी, और उत्तरी सिन्ध से वह फलोदी आ पहुँचा। खबर पाते ही शेरशाह फ़ौज ले कर मालदेव के राज्य में डीडवाणा तक घुस आया, और सन्देश भेजा कि या तो हमारे शत्रु को स्वयम् निकालो, नहीं तो हमें निकालने दो। मालदेव को अब हुमायूँ को खदेड़ना पड़ा और उसके उमरकोट को रवाना हो जाने पर शेरशाह वापिस हुआ।

(इ) पूरबी मालवा और मुलतान-सक्खर—किन्तु मालदेव की शक्ति अभी न टूटी थी। पूरबी मालवा में रायसेन का सरदार अब सलहदी का बेटा पूरणमल चौहान था। मालदेव और पूरणमल कभी साँगा और मेदिनीराय की तरह आपस में मिल सकते थे। शेरशाह ने रायसेन पर चढ़ाई की, और सात महीने के सख़्त घेरे के बाद उसे ले लिया। उधर उसके सेनापतियों ने मुलतान और सक्खर भी जीत लिये। मालवा, मुलतान और सक्खर जीते जाने से मालदेव तीन तरफ़ से घिर गया। अब से शेरशाह का ध्येय यह रहा कि उसे जीत कर सिन्ध को मालवा से और फिर बुन्देलखण्ड जीत कर मालवा को रोहतास-झाड़खण्ड से मिला दिया जाय।

(उ) **राजपूताना**—इसी उद्देश से उसने पहले मालदेव पर चढ़ाई की (१५४४ ई०)। दिल्ली से सीधे जोधपुर जाने के लिए उसने मरुभूमि की राह पकड़ी। मेड़ताँ के नाके पर उसे रुकना पड़ा। मालदेव ने राणा साँगा की तरह शत्रु के तोपखाने पर अपने सवारों को झोंक नहीं दिया। वह इतना सावधान था कि शेरशाह कोई भी चाल न चल सका। जब शेरशाह को लड़ाई में जीतने का कोई रास्ता न दीखा, तब उसने मालदेव के सरदारों के नाम जाली चिट्ठियाँ लिख कर उसके वकील के खेमें में डलवा दीं, जिनसे उसे भ्रम हो कि उसके सरदार शत्रु से मिल रहे हैं। इस तुच्छ चाल से मालदेव बहक गया और अपनी परछाहीं से डर कर भाग निकला। उसके सरदारों ने बहुत मनाया, पर सब व्यर्थ हुआ। तब १२ हज़ार राजपूत केसरिया बाना पहन कर लड़ाई में उतरे और अपने खून से उस कलंक को धो डाला। उनकी वीरता देख कर शेरशाह के मुँह से अनायास निकल पड़ा—"मैं मुट्ठी भर बाजरे के लिए हिन्दुस्तान की बादशाहत खोने लगा था!" अजमेर, आबू, जोधपुर, जहाजपुर, बिना युद्ध के शेरशाह के हाथ आये, और चित्तौड़ ने अधीनता मानी। राजपूताना में शेरशाह ने अपना बन्दोबस्त करने या स्थानीय सरदारों को उखाड़ने का जतन न किया; केवल अजमेर आदि नाकों को अपने काबू में रख कर राजपूत राज्यों को एक दूसरे से अलग कर दिया।

(ऋ) **बुन्देलखण्ड**—राजपूताने की ओर से छुट्टी पा कर उसने कालंजर पर चढ़ाई की और उस किले को घेर लिया। अपने एक सेनापति को वहाँ से पूरब रीवाँ के इलाके पर काबू करने के लिए भेजा। ७ महीने के घेरे के बाद एक दिन बारूद में आग लगने से शेरशाह की देह जल गयी। उसी सांझ को किला लिये जाने के बाद उसने अपने प्राण छोड़ दिये (१५४५ ई०)।

§१२. **शेरशाह के समकालीन भारतीय राज्य**—शेरशाह की मृत्यु के समय उसका साम्राज्य कन्दहार, काबुल और कश्मीर की सीमाओं से कूच-बिहार की सीमा तक पहुँच गया था। पूरबी मालवा के जीते जाने पर सूर साम्राज्य की सीमा गढ़-कटंका राज्य से जा लगी थी। यदि पूरा उत्तरी बुन्देलखण्ड

भी जीता जाता तो उस तरफ़ भी दोनों की सीमाएँ मिल जातीं। वहाँ संग्रामशाह के बाद उसका बेटा दलपतिशाह गद्दी पर बैठ चुका था (लगभग १५४१ ई०)। उसी समय उड़ीसा के राजा प्रातापरुद्रदेव की मृत्यु हुई और वहाँ सूर्य वंश का अन्त हो कर एक नया वंश शुरू हुआ। विजयनगर में कृष्णदेव राय के बाद उसके भाई अच्युतदेव ने राज्य किया (१५३०–४२ ई०); उसके समय में भी विजयनगर की शक्ति और समृद्धि ज्यों की त्यों बनी रही। दक्खिनी रियासतें यथापूर्व थीं, पर गुजरात में अराजकता छायी हुई थी।

§१३. **शेरशाह की शासन-व्यवस्था**—अनेक शताब्दियों के बाद शेरशाह के शासन में भारतवर्ष ने वह शान्ति देखी जो उसे राजा भोज के बाद से न मिली थी। शेरशाह की विजयिनी सेनाएँ जिस देश से लाँघ जातीं, वहीं छः महीने के अन्दर भूमि का माप-बन्दोबस्त हो जाता, सड़कें निकल जातीं, टकसालें खुल जातीं, और अमन-चैन स्थापित हो जाता। तुर्क विजेताओं ने जैसे हिन्दू मन्दिरों के शिखर तोड़ कर कुछ ऊपरी फेरफार कर अपनी मस्जिदें और इमारतें खड़ी की थीं, वैसे ही उन्होंने हिन्दू शासन के जीर्ण ढाँचे के ऊपर अपना आधिपत्य बैठा दिया था। वह ढाँचा उसके बोझ से दब कर बैठ रहा था। शेरशाह ने उसमें फिर से जान फूंकी, और जड़ से एक नयी शासन-योजना खड़ी की। उस योजना की बुनियाद उसने परगनों को बनाया। परगने या प्रतिजागरणक मध्य युग की हिन्दू शासन-योजना के पुराने विभाग थे। शेरशाह ने अपने सारे साम्राज्य को परगनों में बाँट कर प्रत्येक परगने में एक शिकदार और एक आमिन नियुक्त किया। शिकदार का काम शान्ति रखना और आमिन का काम कर वसूल करना था। प्रत्येक परगने में अनेक गाँवों की पंचायतें थीं, जिनके अन्दर की स्वतन्त्रता में शेरशाह ने दखल नहीं दिया। अनेक परगनों को मिला कर एक सरकार बनती थी जो आजकल के ज़िले की तरह होती थी। प्रत्येक सरकार में एक हज़ार से पाँच हज़ार तक सेना के साथ एक शिकदार-ए-शिकदारान और एक मुनसिफ़-ए-मुन्सिफ़ान रहता था। वह मुख्य मुन्सिफ़ दीवानी मामलों को देखता था; मालगुज़ारी के मामले में परगने के आमिन का सीधा सम्बन्ध बादशाह से रहता था। फ़ौजदारी मामलों का निपटारा शिकदार-ए-

शिकदारान करता था। परगनों और सरकारों के हाकिमों की दूसरे बरस बदली हो जाती थी। बंगाल के सब सरकारों के ऊपर केवल निरीक्षक रूप से एक अमिन रक्खा गया था; किन्तु पंजाब, मालवा आदि सीमा पर के प्रान्तों में फ़ौजी हाकिम रक्खे गये थे।

शेरशाह का सब से बड़ा सुधार मालगुज़ारी-विषयक था। पहले सुल्तान अपने सेनानायकों को जागीरें बाँट देते और उन जागीरों से कर वसूल कर अपने सैनिकों को पालने का ज़िम्मा उन पर छोड़ देते थे। कर प्रायः अनुमान से लिया जाता था। शेरशाह ने सैनिकों का सीधा नक़द वेतन देना शुरू किया। उसके अमले सब जगह ज़मीन को नाप कर उनकी मालगुज़ारी निश्चित करते थे। यह नाप और बन्दोबस्त हर साल होता था। पैदावार का चौथाई भाग कर के रूप में लिया जाता था। किसानों को अधिकार था कि कर जिन्स या रुपया किसी भी रूप में दें। किसानों के साथ सीधा बन्दोबस्त करने की यह पद्धति समूचे मुगल युग में 'टोडरमल के बन्दोबस्त' के नाम से जारी रही।





आगरा टकसाल का शेरशाह का रुपया। सीधी तरफ़—कलमा टकसाल का नाम; उलटी तरफ़ फ़ारसी में बादशाह का नाम, नीचे नागरी में स्री सेरसाह [ओ० सा० सं०]

कर की वसूली नियमित करने के लिए देश की मुद्रा-प्रणाली को सुधारना भी ज़रूरी था। शेरशाह ने पेचीदा गणना के और मिश्रित धातों के अनेक सिक्कों को बन्द कर दिया, तथा सोने, चाँदी और ताँबे के ठीक अनुपातों का निश्चय कर एक नयी सरल मुद्रा-प्रणाली शुरू की, और उसके प्रचार के लिए जगह-जगह टकसालें स्थापित कीं। इस तरह सिन्ध से बंगाल तक एक सा

सिक्का चलने लगा। हमारा आजकल का रुपया शेरशाह के रुपये के नमूने पर बना है। उसके सिक्कों पर नागरी और फ़ारसी में उसका नाम खुदा रहता था। उसके कई सिक्के स्वस्तिका के चिन्ह वाले भी पाये गये हैं। सिक्कों के इस सुधार से व्यापारियों को बड़ी सुविधा हो गयी। इसके अलावा देश के रास्तों और घाटों पर जगह-ब-जगह जो अनेक किस्म की चुंगियाँ उन्हें देनी पड़ती थीं, उन सब को शेरशाह ने उठा दिया। केवल सीमान्त तथा बिक्री के स्थान पर चुंगी बाकी रह गयी।



शेरशाह का स्वस्तिका छाप वाला रुपया [दिल्ली म्यू० भा० पु० वि०]

व्यापार की उन्नति को वैसा ही प्रोत्साहन शेरशाह की सड़कों और सरायों से मिला। उसकी बनवायी हुई सड़कें प्रसिद्ध हैं। उन में सब से मुख्य—"सड़के आज़म"—वह थी जो सोनारगांव से रोहतास हो कर अटक तक चली गयी थी। दूसरी आगरा से मांडू हो कर बुरहानपुर तक पहुँचती थी—अर्थात् हिन्दुस्तान को दक्खिन से मिलाती थी। तीसरी आगरा को जोधपुर और चित्तौड़ से मिलाती तथा चौथी लाहौर से मुल्तान को जाती थी। सब सड़कों पर सरायें बनायी गयी थीं। प्रत्येक सराय में हिन्दू और मुस्लिम राहियों के लिए भोजन और पानी का इन्तज़ाम रक्खा जाता था। वे सरायें डाक-चौकियों का भी काम देतीं थीं। सड़कों और डाक के इस प्रबन्ध से साम्राज्य के कोने-कोने की खबरें लगातार शेरशाह को मिलती रहती थीं, और सेनाओं के आने-जाने में बड़ी सुविधा होती थी।

शेरशाह का न्याय प्रसिद्ध था। एक साधारण स्त्री की फ़रियाद पर अपने बेटे को उसने कड़ा दंड दिया था। न्याय करने वाले हाकिमों की रहनुमाई के लिए उसने कई कानून और आईन भी बनाये थे। उसके बेटे इस्लामशाह

के शासनकाल में राजकीय कानून और भी अधिक बने। इस प्रकार शेरशाह ने क़ानून और आइन को शरीयत के बन्धन से मुक्त कर दिया।

शेरशाह का सेना-संगठन भी अत्यन्त पूर्ण था। सेनानायकों को नक़द वेतन नियमित रूप से मिलता था। साधारण सैनिकों की नियुक्ति भी बादशाह की तरफ़ से होती थी। सैनिकों को वेतन भी बादशाह के द्वारा ही मिलता था। अकबर ने शेरशाह की शासन-व्यवस्था की प्रायः सब बातों में नक़ल की, पर वह सेनानायकों (मनसबदारों) की नियुक्ति खुद करता था और सैनिकों की नियुक्ति उनपर छोड़ देता था। सैनिकों का वेतन भी अकबर के ज़माने में मनसबदार की मारफ़त दिया जाता था। यह प्रथा अकबर के बाद समूचे मुग़ल-युग में जारी रही। इसमें यह दोष था कि सैनिक मनसबदार को ही अपना सब कुछ समझते थे और यदि कभी वह बलवा करे तो उसके साथ वे भी बलवे में शामिल हो जाते थे। शेरशाह की पद्धति में यह दोष न था। सेनाएँ छावनियों में रहती थीं। छावनियों के फ़ौजदारों का अपने इलाकों के शासन से कोई वास्ता न था; हाँ, कुछ सीमान्त प्रदेशों के फ़ौजदारों को शिकदार का काम भी सौंपा गया था। शेरशाह की पैदल बन्दूकची सेना सब भोजपुरी (बक्सरिये) हिन्दुओं की थी। उसका एक तोपची दल भी था, और बहुत सी तोपें उसने स्वयम् ढलवायी थीं।

शेरशाह का अपनी फ़ौज पर कड़ा नियन्त्रण रहता था। झगड़ालू खूँख़्वार पठानों को सुश्रृंखल सैनिक बनाना उसी का काम था। सेना के प्रयाण के समय क्या मजाल कि प्रजा को ज़रा भी कष्ट पहुँचे। ऐसी सख़्ती होने पर भी शेरशाह के सैनिक उससे बड़ा स्नेह करते थे। इसका कारण यह था कि वह उनकी मेहनत और मुसीबत में उनका शरीक होता था, उनसे भाई का सा बर्त्ताव करता था और उनके गुणों को तुरन्त पहचान कर उन्हें उचित पुरस्कार देता था।

शेरशाह के चरित्र की छाप उसकी इमारतों पर भी है। सहसराम में उसका मक़बरा, जो उसके आदेशानुसार बना था, बाहर से मुस्लिम ढाँचे का और अन्दर से हिन्दू शैली का है। शेरशाह ने कई नये शहर भी आबाद किये। उसने पटना का पुनरुद्धार किया और शेरगढ़ नाम से पाण्डवों के इन्दरपत

गाँव में अपनी नयी दिल्ली बसायी। हिन्दी साहित्य को उसके राज्य में विशेष प्रोत्साहन मिला। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपना प्रसिद्ध काव्य पदुमावति 'सेरसाहि देहिली सुलतानू' के समय में ही लिखा था। शेरशाह की गिनती भारतवर्ष के सच्चे राष्ट्र-निर्माताओं में है।

§१४. इस्लामशाह सूर (१५४५-५४ ई०)—शेरशाह की मृत्यु पर अफ़ग़ान नेताओं ने उसके दूसरे बेटे जलालखाँ को इस्लामशाह या सलीमशाह



शेरशाह का मकबरा—सहसराम

के नाम से गद्दी पर बैठाया। उसने अपने बड़े भाई को क़ैद करना चाहा। तब शेरशाह के समय के अनेक सरदार उसके विरुद्ध उठ खड़े हुए। उनके दमन के लिए इस्लामशाह को अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। उसी सिलसिले में उसने शिवालक और कुमाऊँ तराई के कई हिन्दू राजाओं को भी अधीन किया। इस्लामशाह के नौ बरस के शासन में शेरशाह की शासन-नीति जारी रही।

कश्मीर में मिर्ज़ा हैदर ने दस बरस राज किया। १५५१ ई० में प्रजा ने उसे और उसके मुग़लों को निकाल भगाया, और फिर पुराने राजवंश को स्थापित किया।

———

अध्याय ३

साम्राज्य के लिए तीसरी जद्दोजहद

(१५५४–७६ ई०)

§१. **हुमायूँ की वापिसी** (१५५५ ई०) – हुमायूँ सिन्ध से कन्दहार की तरफ भागा था और वहाँ से भी उसे अपने भाई के डर से ईरान जाना पड़ा था। शेरशाह की मृत्यु के ४ महीने बाद ईरान के शाह की मदद से उसने कन्दहार जीत लिया, और कामरान से काबुल भी छीन लिया। १५५० ई० तक वह फिर दो बार काबुल खो कर पा चुका था तथा बदख्शाँ पर भी अधिकार कर चुका था।

इस्लामशाह के बाद उसके नाबालिग बेटे को मार कर शेरशाह का एक भतीजा मुहम्मदशाह आदिल या अदालीशाह के नाम से सुल्तान बन बैठा। इस घटना से सूर साम्राज्य में खलबली मच गयी। बिहार-बंगाल के पठान शासकों ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। उसी जाड़े में हुमायूँ ने लाहौर जीत लिया। अदाली ने हेमचन्द्र नामक एक मेवाती हिन्दू को अपना मन्त्री बना कर उसकी मदद से विद्रोह दबाने की चेष्टा की। हेमू पूरबी विद्रोह को दबाने में लगा था जब दूसरे सूर-वंशजों ने दिल्ली आगरा ले लिये। अदाली ने चुनार को अपनी राजधानी बनाया।

हुमायूँ ने दिल्ली पर दखल कर लिया, और अपने १३ बरस के बेटे अकबर को सेनापति बैरमखाँ की संरक्षकता में पञ्जाब का हाकिम नियुक्त किया। फिर से दिल्ली में ६ महीने शासन करने के बाद वह चल बसा।

§२. **अकबर का राज पाना: सूर साम्राज्य का अन्त** (१५५६–५८ ई०)—हुमायूँ की वसीयत के अनुसार पञ्जाब और दिल्ली अकबर को मिले, और काबुल उसके छोटे भाई मुहम्मद हकीम को। हुमायूँ के मरने की खबर पा अदाली ने हेमू को दिल्ली जीतने के लिए भेजा। ग्वालियर, आगरा और

दिल्ली से मुगलों को भगा और स्वयम् अपना राजतिलक करवा के हेमू पञ्जाब की तरफ़ बढ़ा। मुगल अब फिर भागने लगे, पर बैरामखाँ मुक़ाबले के लिए डट गया। पानीपत की भूमि पर युद्ध हुआ (५–११–१५५६ ई०)। हेमू ने मुगल सेना के दोनों पासे तोड़ दिये, पर सिर में तीर लगने से वह घायल हो कर कैद



अकबर—समकालीन चित्र

"तारीखे खानदाने तैमूरिया" की हस्तलिखित प्रति से [खुदा० पु०]

हो गया। दिल्ली और आगरा इस जीत से अकबर के हाथ आये। उधर अदाली सूर बिहार और बंगाल के अपने 'विद्रोही' सरदारों से लड़ता हुआ मारा गया। ग्वालियर और जौनपुर तक तब मुग़लों ने फिर दखल कर लिया।

§३. अन्य भारतीय राज्य. १५४२–५८ ई०—बिहार-बंगाल और मालवा में सूर साम्राज्य के खण्ड अब भी बाकी थे। मालवा में शेरशाह के हाकिम

शुजाअतखाँ का बेटा बाज़बहादुर स्वतन्त्र सुल्तान बन बैठा था (१५५५ ई०)। उसने रूपमती नाम की एक हिन्दू सुन्दरी से ब्याह किया। बाज़बहादुर और रूपमती युद्ध और शिकार में साथ-साथ यात्रा करते थे। उनके पड़ोस में, गोंडवाना के राज्य में, जिसकी राजधानी अब मंडला थी, दलपतिशाह मर चुका था (१५४८ ई०) और उसकी विधवा रानी दुर्गावती अपने बेटे के नाम पर शासन करती थी। बाज़बहादुर ने उस पर अनेक हमले किये, और प्रत्येक लड़ाई में हारा। राजपूताना में उदयसिंह ने रणथम्भोर और अजमेर वापिस ले लिये, आमेर और आबू से फिर मेवाड़ का आधिपत्य मनवाया, और उदयपुर की स्थापना की। गुजरात का राज्य छिन्न-भिन्न ही रहा। बहमनी रियासतें भी दुर्बल रहीं। विजयनगर में अच्युतदेव के बाद उसका भतीजा सदाशिव राजा हुआ (१५४२ ई०)। उसने पहले अहमदनगर की मदद से बीजापुर को हरा कर उसका बहुत सा इलाका छीना, फिर १५५८ ई० में बीजापुर की सहायता से अहमदनगर पर चढ़ाई की। पिछली दो पुश्तों में जो विजयनगर का रोबदाब तमाम बहमनी राज्यों पर जम गया था, उससे सदाशिव का दिमाग़ फिर गया था। अहमदनगर की चढ़ाई में मुसलमानों का अपमान करते समय उसने अपने मित्र-पक्ष की सेना के भावों का भी ध्यान न रक्खा।

§४. मालवा, उत्तरी राजपूताना और गोंडवाना की विजय (१५६०–६४ ई०)—अकबर की विचार-शक्ति इस समय तक जाग चुकी थी। १५६० ई० में उसने बैरमख़ाँ को हज को भेज स्वयम् राज सँभाल लिया और उसी बरस उसने साम्राज्य-निर्माण की चेष्टा शुरू कर दी। सब से पहली चढ़ाई मालवा पर की गयी। अकबर के सेनापतियों ने बाज़बहादुर को हरा कर भगा दिया; उसने चित्तौड़ में जा कर शरण ली। रानी रूपमती ने विष खा कर अपनी इज़्ज़त की रक्षा की। १५६२ ई० में अकबर ने आमेर के राजा भारमल की बेटी से विवाह किया और उसके पोते मानसिंह को अपने दरबार में रखा। इस तरह आमेर का राज्य उदयसिंह के बजाय अकबर की अधीनता में आ गया। उसी बरस मेड़ता का क़िला जीता गया, जिससे उत्तरी मारवाड़ भी अकबर के अधीन हो गया।

मालवा के बाद बुन्देलखण्ड-गोंडवाना की बारी आयी। कड़ा-मानिकपुर के हाकिम आसफ़ख़ाँ ने पन्ना के राजा को अधीन करने के बाद रानी दुर्गावती पर चढ़ाई की। वह बहादुरी से लड़ती हुई मारी गयी (१५६४ ई०)। उस के पड़ोसी छत्तीसगढ़ के राजा कल्याणसिंह ने भी डर कर दिल्ली के दरबार में उपस्थित हो अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली।

§५. **अकबर के पहले सुधार**—एक तरफ़ तो शस्त्रों द्वारा देश विजय किये जा रहे थे और दूसरी ओर एक नयी उदार नीति के द्वारा साम्राज्य की नींव पक्की की जा रही थी। १५६२ ई० में अकबर ने युद्ध के कैदियों को दास



विजयनगर के खँडहर—विहंगम दृश्य, हाम्पी, ज़ि० बेल्लारि [भा० पु० वि०]

बनाने की प्रथा अपने फ़रमान द्वारा रोक दी। अगले बरस उसने हिन्दू तीर्थ-यात्रियों से जो कर लिया जाता था, वह भी उठा दिया। कहते हैं उस कर को छुड़वाने वाले, नानक के प्रशिष्य सिक्खों के तीसरे गुरु अमरदास थे। १५६४ ई० में अकबर ने हिन्दुओं पर से जज़िया कर भी उठा दिया।

§६. **विजयनगर का पतन (१५६५ ई०)**—इसी समय दक्खिन में भी एक भारी परिवर्तन हो गया। १५५८ ई० की लाञ्छना के बाद बीजापुर, बिदर,

गोलकुण्डा और अहमदनगर ने मिल कर विजयनगर का मुकाबला किया। १५६५ ई० में कृष्णा के उत्तर तालीकोट के पास युद्ध हुआ जिसमें सदाशिव अपनी १ लाख सेना के साथ मारा गया। इस हार का समाचार पा कर विजयनगर किले के भीतर की मुस्लिम सेना ने विद्रोह किया और विजेताओं ने हिन्दू राजधानी पर कब्ज़ा कर उसे उजाड़ दिया। सदाशिव के भाई वेङ्कटाद्रि ने तब विजयनगर के १२० मील दक्खिन पेनुकोंडा को अपनी राजधानी बनाया।

§७. **मेवाड़ और उड़ीसा का पतन**--१५६४ ई० में बिहार के पठान शासक सुलेमान कर्रानी ने बंगाल पर अधिकार कर लिया। इसी समय कूचबिहार का राज्य भी शक्तिशाली हो उठा। राजा नरनारायण का भाई शुक्लध्वज उर्फ़ चीलराय उसका सेनापति था। उसने आसाम, कछार, मणिपुर, त्रिपुरा, सिलहट और जयन्तिया को जीत कर कूचबिहार को उत्तर-पूरबी सीमान्त की एकमात्र शक्ति बना दिया। १५६५ ई० में अकबर के उज़बक अमीरों ने जौनपुर में विद्रोह कर के अवध के पच्छिम तक शाही फ़ौजों को खदेड़ दिया। अकबर को गुमान था कि उन्हें कहीं सुलेमान कर्रानी से मदद न मिलती हो, इसलिए उसने उड़ीसा के राजा से सन्धि कर मदद ली। राजा मुकुन्द हरिचन्दनदेव ने बंगाल पर हमला कर सातगाँव ले लिया। इस प्रकार सुलेमान का ध्यान उधर खिंच गया और अकबर ने विद्रोह दबा दिया। किन्तु अकबर के भाई मुहम्मद हकीम ने पूरबी विद्रोह की बात सुन कर पञ्जाब पर चढ़ाई कर दी। उसे भगाने के बाद सन् १५६७ ई० में उड़ीसा से काबुल तक शान्ति हुई।

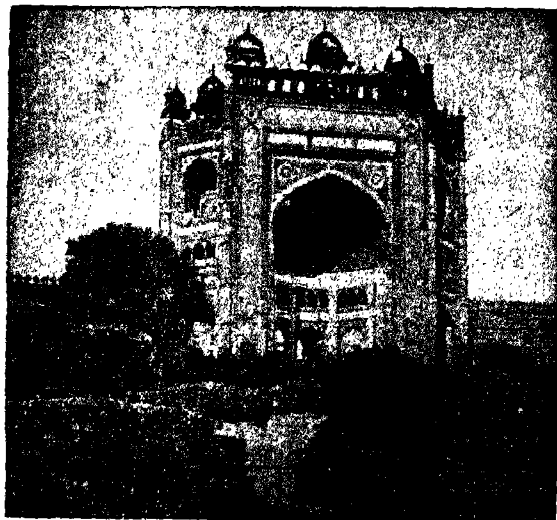
जब इधर से इतमानान हो गया तो अकबर ने भारी तैयारी के साथ मेवाड़ पर चढ़ाई की। मेवाड़ के सरदार निश्चित हार देखते हुए भी आहुति दिये बिना अपना देश देने को तैयार न हुए। उन्होंने राणा उदयसिंह को पहाड़ों में भेज दिया और उसकी भावज मीराबाई के चचेरे भाई जयमल राठोड़ को अपना मुखिया चुना। दूसरा दर्जा पत्ता सीसोदिया को दिया गया। अकबर ने चित्तौड़ घेर लिया। तोपों के तीन मोर्चे किले के सामने लगाये गये, जिनमें से एक स्वयम् अकबर की और एक टोडरमल की देख-रेख में था।

साबातें और सुरङ्गें तैयार होने लगीं। साबात चमड़े के लम्बे छाजन होते थे जिनसे ढके हुए रास्तों से भाला लिये सवार मज़े में गुज़र सकते थे। उनकी रक्षा के बावजूद अकबर के कारीगरों की लाशें कई बार ईंटों की तरह चुनी गयीं। एक दिन किले की दीवार पर जयमल को मरम्मत का आदेश देते देख कर अकबर ने उस पर गोली चलायी। अकबर ने जाना कि वह मर गया, पर असल में वह लँगड़ा हो गया था। किले की रसद चुक जाने पर जयमल ने जौहर की आज्ञा दी। लँगड़ा जयमल अपने एक कुटुम्बी के कन्धों पर चढ़ कर शत्रु दल को काटता हुआ बढ़ा। चित्तौड़गढ़ के सबसे नीचे के दरवाज़ों के बीच जहाँ वह मारा गया, वहाँ ईंटों की एक सीधी-सादी समाधि आज तक खड़ी है। पत्ता सूरजपोल (सूर्यद्वार) पर लड़ता हुआ काम आया। मेवाड़ के किसानों ने भी अकबर को इस युद्ध में खूब सताया था। अकबर ने उन्हें कठिन दण्ड दिया। जब मेवाड़ पर पूरा अधिकार हो गया तो उसने अपने वीर शत्रु जयमल और पत्ता की हाथियों पर चढ़ी मूर्तियाँ बनवा कर आगरे के किले के बाहर स्थापित करायीं। अकबर के चले जाने पर उदयसिंह ने कुम्भलगढ़ को अपनी राजधानी बनाया।



चित्तौड़ का घेरा, १५६७ ई०। "तारीख़-ए-ख़ानदान-ए-तैमूरिया" की हस्त-लिखित प्रति से [खुदा० पु०]

अकबर के चित्तौड़ में व्यस्त रहने पर सुलेमान करानी को उड़ीसा पर हमला करने का मौका मिला। उसने मुकुन्द हरिचन्दनदेव को गंगा से दामोदर तक हटा दिया। पिछली तरफ से उसके सेनापति राजू कालापहाड़ ने दलभूम, मयूरभंज के पहाड़ी रास्ते से कटक पर चढ़ाई की। हरिचन्दनदेव शीघ्र उधर लौटा, पर उसके एक सरदार ने विद्रोह कर उसे मार डाला। कालापहाड़ ने कटक और पुरी को उजाड़ दिया। पीछे से चीलराय का हमला होने से कालापहाड़ को लौटना पड़ा। उड़ीसा में इसके बाद अव्यवस्था मची रही। उत्तरी और दक्खिनी उड़ीसा में दो राज्य खड़े हुए, जिनकी राजधानियाँ खर्दा और गंजाम थीं। लेकिन वे दोनों कमज़ोर थे। उत्तरी उड़ीसा में २४ वर्ष तक पठान और हिन्दू सरदार मारकाट करते रहे। गंजाम का राज्य १६वीं सदी के अन्त तक गोलकुण्डा का मुकाबला करता रहा।



बुलन्द दरवाज़ा, फ़तहपुर सीकरी

उधर चित्तौड़ के बाद रणथम्भोर भी अकबर के हाथ लगा, और तभी बघेलखण्ड (रीवाँ) के राजा का कालञ्जरगढ़ भी फ़तह हो गया। उसी समय सीकरी में आम्बेर की राजकुमारी से अकबर का बेटा पैदा हुआ, जिसका नाम सलीम रक्खा गया। तब से फ़तेहपुर सीकरी को अपनी राजधानी बना कर अकबर ने वहाँ अनेक महल तैयार कराये।

§८. गुजरात और बंगाल पर विजय (१५७२–७६ ई०)—१५७२–७३ ई० में अकबर ने गुजरात को, जो तब कई छोटे-छोटे राज्यों में बँटा था, जीत लिया। उसी समय मेवाड़ का राणा उदयसिंह और बिहार-बंगाल का प्रजाप्रिय शासक सुलेमान चल बसे। उदयसिंह का बेटा प्रताप उजड़े मेवाड़ का राणा हुआ और सुलेमान का बेटा दाऊद बिहार और बंगाल की गद्दी पर बैठा। १५७६ ई० तक बंगाल भी अकबर ने जीत लिया। बंगाल जीतने के लिए कूचबिहार के राजा नरनारायण से मदद ली गयी। गुजरात और बंगाल की विजय से अकबर उत्तर भारत का एकच्छत्र सम्राट् हो गया। दक्खिन में इसी समय अहमदनगर के राज्य ने बराड़ को जीत लिया।



राणा प्रताप
(ब्रिटिश म्यूज़ियम में रक्खा एक पुराना चित्र)

१५७६ ई० में अकबर के साम्राज्य के बराबर दुनियाँ में और कोई भी राज्य न था; तो भी मेवाड़ के अकिञ्चन राणा प्रताप ने उससे लोहा लेने की हिम्मत की। उसने कुम्भलगढ़ और गोघूंदा के पहाड़ी प्रदेश को अपना केन्द्र बना कर मालवा और गुजरात जाने-आने वाली मुग़ल सेनाओं, काफ़िलों, ख़ज़ानों आदि पर आक्रमण करने शुरू किये। इस गुरिल्ला-युद्ध से तङ्ग आ कर अकबर ने मानसिंह को उसके ख़िलाफ़ भेजा। गोघूंदा के रास्ते में हल्दीघाटी पर दोनों की मुठभेड़ हुई (१५७६ ई०)। हकीम सूर नामक एक पठान सरदार भी प्रताप की तरफ़ था। लड़ाई का फल अनिश्चित रहा। प्रताप ने आगे बीस बरस तक स्वाधीनता की जद्दोजहद जारी रक्खी और मेवाड़ का बहुत सा हिस्सा वापिस ले लिया।

अध्याय ४

मुग़ल साम्राज्य का वैभव

(१५७६—१६६६ ई०)

§१. **अकबर की शासन-व्यवस्था**—अकबर की शासन-नीति एक उदार राष्ट्रीय राजा की थी। अपनी हिन्दू और मुस्लिम प्रजा को उसने एक ही दृष्टि से देखा। उससे पहले कश्मीर का ज़ैनुल आबिदीन, हुसेनशाह बङ्गाली और शेरशाह वैसी नीति के लिए रास्ता बना चुके थे।

अकबर ने सुशासन के लिए जो अनेक सुधार किये, उनमें मुख्य स्थान अर्थनीतिक सुधारों का है। उस अंश में उसने शेरशाह का अनुसरण किया। गुजरात जैसे प्रान्त जो शेरशाह के अधीन न हुए थे, वहाँ भी अकबर ने माप-बन्दोबस्त करवाया। टोडरमल इस कार्य में उसका मुख्य सहायक था। माप के लिए लम्बाई और क्षेत्रफल की इकाइयों—गज़ और बीघा- का ठीक मान निश्चित किया गया। मालगुज़ारी-बन्दोबस्त से सम्बन्ध रखने वाले तीन सुधार और थे। पहला, सरकारी कर्मचारियों को जागीर के बजाय नक़द वेतन देना, और जागीरों की ज़मीनों को भरसक "खालसा" (राजकीय सम्पत्ति) बनाना। दूसरा, कुल कर्मचारियों की दर्जा-बन्दी करना। यह दर्जा-बन्दी बिलकुल सैनिक दृष्टि से की गयी थी, क्योंकि राज्य के सभी कर्मचारी सैनिक माने जाते थे। प्रत्येक कर्मचारी का पद और वेतन इस बात पर निर्भर होता था कि वह कितने सवारों का नायक है। सब कर्मचारी मनसबदार कहलाते थे और उनके मनसब १० से १० हज़ार तक के होते थे। ये संख्याएँ उनके वास्तविक सवारों की नहीं, केवल उनकी हैसियत की सूचक होती थी। तीसरा सुधार घोड़ों को दाग़ने का था। उसका प्रयोजन था मनसबदारों को धोखा देने से रोकना।

१५८० ई० में अकबर के साम्राज्य में दिल्ली, आगरा, इलाहाबाद, अवध, बिहार, बंगाल, अजमेर, गुजरात, मालवा, लाहौर, मुलतान और काबुल, कुल १२ सूबे थे। पीछे कश्मीर जीत लिये जाने पर लाहौर या काबुल में, सिन्ध मुल्तान में और उड़ीसा बंगाल में मिलाये गये। दक्खिन विजय होने पर तीन नये सूबे बराड़, खानदेश और अहमदनगर बने, जिससे कुल १५ सूबे हो गये। प्रत्येक सूबे का शासक सिपहसालार कहलाता था। बाद में वह सूबेदार कहलाने लगा। उसके साथ एक दीवान, एक बख्शी (वेतन बाँटने वाला), एक मीर आदिल (न्यायाधिकारी), एक सदर (धर्माधिकारी), एक मीर-बहर (मौर्य युग का नावाध्यक्ष, यानी जहाज़ों, बन्दरगाहों, घाटों आदि का प्रबन्धक), एक वाक़यानवीस (मौर्य युग का प्रतिवेदक), और हर शहर में एक कोतवाल तथा हर सरकार में एक फ़ौजदार रहता था। केन्द्रीय शासन में सम्राट् के नीचे एक वकील अर्थात् प्रधानमन्त्री, एक वज़ीर या दीवान, एक मीर बख्शी और एक सदर-ए-सुदूर (मुख्य धर्माधिकारी), ये चार मुख्य तथा अनेक गौण अधिकारी रहते थे।

अकबर की सेना तीन तरह की थी। एक अधीन राजाओं की, दूसरी मनसबदारों की और तीसरी खास अपनी। मुख्य सेना मनसबदारों वाली थी। शेरशाह की तरह मुग़ल बादशाहों की स्थिर वैतनिक, सधी हुई सेना नहीं रही।

§२. अकबर की धर्म-सम्बन्धी नीति—अकबर स्वभाव से ही विचारशील था। उसके अन्दर सचाई की खोज की उत्कट चाह थी, जिसे ज़माने की लहर ने और पुष्ट कर दिया था। मुस्लिम बादशाह को इस्लाम की शरीयत के अनुसार चलना चाहिए; किन्तु इस्लाम में अनेक फ़िरके हैं, और इस कारण प्रश्न उठता था कि कौन सा फ़िरका सच्चा है और किसके आदेश माने जाँय। इस जिज्ञासा से प्रेरित हो कर अकबर ने फ़तहपुर-सीकरी में एक इबादतखाना (प्रार्थनागृह) बनवाया, जिसमें विभिन्न फ़िरकों के विद्वान् जमा हो कर विचार कर सकें। शुरू में उसमें केवल मुस्लिम विद्वान् बुलाये गये थे। उनके परस्पर विवाद के ढंग से बादशाह का चित्त इस्लाम की तरफ़ से फिरने लगा। गुजरात की विजययात्रा से अकबर को पहले-पहल ईसाई, पारसी और जैन मतों का परिचय मिला। उसके बाद उसके दरबार में शेख़ मुबारक नामक एक सूफ़ी तथा उसके दो

बेटे अबुलफ़ज़ल और फ़ैज़ी उपस्थित हुए। अकबर पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा। तब इबादतख़ाने में इस्लाम के सिवा दूसरे मतों के विद्वान् भी बुलाये जाने लगे। जब एक बार विचार से सचाई का निर्णय करने की नीति मान ली गयी, तब यह बात होनी ही थी। दूसरे, जब दीन के मुखिया आपस में झगड़ते और बादशाह उनके बीच मध्यस्थ बनता, तब मज़हबी मामलों में भी बादशाह की स्थिति उन सब से ऊँची प्रकट होने लगी। १५७६ ई० में अकबर ने खुद साम्राज्य के प्रमुख इमाम की हैसियत से मसजिद के मिम्बर से खुतबा पढ़ा। तभी राज्य के प्रमुख उलमाओं के हस्ताक्षरों से यह घोषणा की गयी कि इमाम-ए-आदिल (प्रमुख इमाम) सब मुजतहिदों (मज़हब के व्याख्याकारों) से बड़ा है, और विवादग्रस्त मामलों में उसका फ़ैसला सबको मान्य होगा, जो न माने उसे दण्ड देना उचित होगा।

इस घोषणा से कुछ मुसल्मान भड़क उठे। वे अकबर के उन शासन-सुधारों से चिढ़े हुए थे, जो उसने जागीरदारों की जागीरें ज़ब्त करने और घोड़ों पर दाग़ लगाने आदि के सम्बन्ध में जारी किये थे। उन्होंने बिहार और बङ्गाल में बलवा कर दिया, और अकबर के भाई मुहम्मद हकीम से मिल कर षड्यन्त्र रचा। जौनपुर के एक क़ाज़ी ने फ़तवा दे दिया कि अकबर के ख़िलाफ़ बलवा करना जायज़ है। अकबर ने बलवा दबाने के लिए टोडरमल को भेजा। उधर मुहम्मद हकीम फ़ौज के साथ पञ्जाब पर चढ़ आया। रोहतास के क़िलेदार ने उसे वह क़िला न दिया, और लाहौर के शासक कुँवर मानसिंह ने शहर के दरवाज़े न खोले। मुहम्मद हकीम की इस आशा पर कि सारी प्रजा उसका साथ देगी, पानी फिर गया और वह लस्टमपस्टम पीछे भागा। अकबर ने बड़ी तैयारी के साथ काबुल पर चढ़ाई की। टोडरमल को बङ्गाल में सफलता हुई और बलवा पूरी तरह कुचल दिया गया।

उसके बाद मज़हबी मामलों में अकबर को पूरी स्वतन्त्रता मिल गयी। अब इबादतख़ाने की ज़रूरत न रह गयी थी। अकबर दूसरे धर्मों की तरफ़ झुकने लगा और उसने घोषणा कर दी कि उसके बेटे चाहे जो मज़हब मानें। ज़रथुश्त्रियों की तरह वह अपने घर में पवित्र आग रखने और सूर्य को

प्रणाम करने लगा और जैनों और हिन्दुओं के प्रभाव से उसने गो-हत्या की मुमानियत कर दी। विशेष अवसरों पर उसने कैदियों को छोड़ना शुरू किया; अपनी दाढ़ी मुँड़ा दी और माथे पर तिलक लगाने लगा। ईसाइयों का एकपत्नीव्रत भी उसे भाया। इस प्रकार सब धर्मों का सामञ्जस्य कर अकबर ने एक व्यापक धर्म बनाने की कोशिश की। उसने लिखा, "एक साम्राज्य में जिसका एक शासक हो, यह अच्छा नहीं है कि प्रजा एक दूसरे के विरोधी विभिन्न मतों में बँटी रहे, इसलिए हमें उन सब को मिला कर एक करना चाहिए; किन्तु इस प्रकार कि वे 'एक' भी हो जाँय और 'अनेक' भी बने रहें।"

अकबर ने अपने नये धर्म का नाम तौहीदे-इलाही रक्खा। उसका उद्देश्य अत्यन्त उदार और ऊँचा था, तो भी तौहीदे-इलाही सौ पन्थों को एक करने के बजाय एक नया पन्थ बन गया, और अकबर के साथ ही समाप्त भी हो गया। १५९३ ई० में अकबर ने धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए कई आज्ञाएँ निकालीं—(१) कोई ज़बरदस्ती मुसल्मान बनाया गया हिन्दू अगर फिर हिन्दू बनना चाहे तो उसे कोई न रोके; (२) किसी व्यक्ति को बाध्य कर दूसरे मज़हब में न लाया जाय; (३) प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म-मन्दिर बनाने की स्वतन्त्रता रहे; (४) अनिच्छुक हिन्दू विधवा को सती न किया जाय; इत्यादि। अकबर की यह नीति अनेक मुल्लाओं को न रुची। उनके कट्टरपन से खीझ कर पिछले जीवन में अकबर को इस्लाम का बहुत कुछ दमन भी करना पड़ा; परन्तु इस्लाम की सब से मुख्य बात तौहीद अकबर के पन्थ में मौजूद थी।

§३. **अकबर के पिछले युद्ध और विजय**—१५७६ ई० के बाद भी अकबर के दिल में दो तरफ़ साम्राज्य बढ़ाने की अभिलाषा थी, और यह उसके वंशजों को भी विरासत में मिली। एक तो वह उत्तर-पच्छिम की तरफ़ बदख़्शाँ और बलख़ के आगे आमू पार तूरान तक अपने पुरखों की भूमि लेना चाहता था; दूसरे दक्खिन की तरफ़ वह अपना साम्राज्य बढ़ाने का इच्छुक था। दक्खिन में "सीमान्त के शासकों की बेपरवाही से तट के अनेक शहर और बन्दरगाह फिरंगियों के हाथ में चले गये थे", उन्हें वापिस लेना भी अकबर का ध्येय था। गुजरात के तट से पुर्त्तगालियों को निकाल देने के अनेक जतन

उसने किये, पर सब व्यर्थ हुए। उनकी विफलता का कारण था समुद्र-विषयक ज्ञान और शक्ति का न होना। उधर पुर्त्तगाल देश स्पेन-सम्राट् के अधीन हो गया था (१५८० ई०), जिसका साम्राज्य तब पच्छिम जगत् में सब से बड़ा था। अमेरिका से पाये हुए धन के ज़ोर से युरोप के कई देशों को भी स्पेन ने अधीन कर लिया था। स्पेन और पुर्त्तगाल के एक हो जाने से संसार के सब समुद्रों पर उस साम्राज्य का अधिकार हो गया। उनकी शक्ति इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि अपने परवाने के बिना वे किसी मुस्लिम जहाज़ को मक्का भी न जाने देते थे। सन् १५९७ ई० में सिंहल द्वीप स्पेन-साम्राज्य में मिला लिया गया। उसका समूचा तट पुर्त्तगालियों ने जीत लिया। हिन्दू राज्य केवल अन्दर के पहाड़ों में रह गया।



बीरबल

[भारत कलाभवन, काशी]

अकबर ने काबुल तो जीत लिया, पर तूरान के उज़बग शासक अब्दुल्लाखाँ ने, जो अकबर के साथ-साथ गद्दी पर बैठा था, बदख़्शाँ को जीत लिया। अकबर को डर था कि कहीं वह भारत पर भी हमला न कर दे। इसलिए अकबर ने मानसिंह को काबुल भेजा और अब्दुल्ला उज़बग की मृत्यु तक ख़ुद भी लाहौर में ही रहा। सीमान्त के पठान तथा स्वात-बाजौर के लोग उसी समय विद्रोह कर बैठे। स्वातियों से लड़ता हुआ अकबर का मित्र बीरबल मारा गया। राजा टोडरमल ने उस हार का बदला लिया, परन्तु पठानों के ठेठ इलाक़ों ने अकबर के वंशजों के समय तक मुग़लों की अधीनता कभी न मानी। उन चढ़ाइयों के सिलसिले में कश्मीर जीता गया। ठट्ठा अर्थात् दक्खिनी सिन्ध जीतने के लिए मुलतान का शासन बैरमख़ाँ के बेटे अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना को सौंपा गया। ख़ानख़ाना को इसमें

सफलता हुई। पीछे सिबी, कन्दहार और मकरान भी अकबर के अधिकार में आ गये।

राजा भारमल के बेटे भगवानदास और टोडरमल की मृत्यु के बाद मानसिंह को बिहार-बंगाल के सूबे सौंपे गये। उसने उत्तरी उड़ीसा को भी जीत लिया। दक्खिनी राज्यों में से खानदेश ने सन्देश पा कर अधीनता मान ली। दूसरों पर फ़ौज भेजी गयी। अहमदनगर में उस फ़ौज का चाँदबीबी



असीरगढ़ [भा० पु० वि०]

ने मुक़ाबला किया। वह अहमदनगर के सुल्तान की बुआ और बीजापुर के बालक-सुल्तान की माँ थी। अन्त में अहमदनगर ने अधीनता मानी और बराड़ का प्रान्त सौंप दिया (१५९६ ई०)। सन् १५९७ में राणा प्रताप और १५९८ ई० में अब्दुल्ला उज़्बग का देहान्त होने पर अकबर स्वयम् दक्खिन गया। १६०० ई० में अहमदनगर तथा खानदेश का असीरगढ़, जो तब भारत भर में सब से विकट क़िला माना जाता था, उसके हाथ आये।

उधर सलीम ने विद्रोह किया और इलाहाबाद में स्वतन्त्र हो बैठा। अकबर को अपनी विजय-योजनाएँ छोड़ कर आगरा लौटना पड़ा। अहमद-नगर सल्तनत पूरी तरह मुग़ल साम्राज्य में न मिल पायी, तथा बीजापुर और गोलकुण्डा तो ज्यों के त्यों बने रहे। उन दोनों के दबाव से कर्णाटक के राजा

वेंकटाद्रि के बेटे को पेनुकोंडा भी छोड़ना पड़ा, और तब तामिल देश के उत्तरी छोर पर चन्द्रगिरि को उसने अपनी राजधानी बनाया (लगभग १६०० ई०)।

विद्रोह के सिलसिले में सलीम ने अकबर के मित्र अबुलफ़ज़ल को ओरछा के राजा वीरसिंहदेव बुन्देले के हाथों मरवा डाला। पीछे बड़ी मुश्किल से उसने अपने पिता से समझौता किया। १६०५ ई० में अकबर बीमार हुआ। तब दरबारियों का एक दल सलीम के बजाय उसके बेटे खुसरो को गद्दी पर बैठाने का जतन करने लगा; किन्तु अन्तिम समय अकबर ने सलीम को उत्तराधिकारी बनाया।

§४. **अकबर-युग में साहित्य और कला**—अकबर ने हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों को मिला कर एक करना चाहा था। इस विचार से उसने वेद, रामायण और महाभारत के फ़ारसी अनुवाद करवाये। उसके समय में फ़ारसी में बहुत से इतिहास-ग्रन्थ भी लिखे गये। उनमें अबुलफ़ज़ल के लिखे अकबर-नामे के अन्तर्गत आईने-अकबरी एक अनमोल ग्रन्थ है। संगीत और चित्रण-कला को भी अकबर ने प्रोत्साहन दिया। १६ वीं सदी के शुरू में राजा मानसिंह तोमर ने ग्वालियर में एक संगीत-विद्यालय स्थापित किया था। वहाँ के गायक तानसेन को अकबर ने अपने दरबार में जगह दी। ईरान के शिया शाहों के आश्रय में तेरहवीं सदी से चित्रणकला का एक सम्प्रदाय चला आता था। अकबर ने दसवन्थ और बसावन आदि हिन्दू चितेरों के साथ शीराज़ के चितेरे अब्दुस्समद को अपने दरबार में रक्खा। हिन्दी और ईरानी क़लमों के मिलने से एक नयी शैली चल पड़ी। शेरशाह के मकबरे में हिन्दू-मुस्लिम शैलियों के समन्वय से जिस नयी शैली का उदय हुआ था, वह मुग़ल-युग में ख़ूब फूली-फली। उसका अन्तिम उत्कर्ष शाहजहाँ के ताजमहल में प्रकट हुआ। अकबर की इमारतों में आगरा और इलाहाबाद के क़िले तथा फ़तहपुर-सीकरी के सुन्दर महल उल्लेखनीय हैं। उसके आश्रित हिन्दू राजाओं ने भी वृन्दावन में कई मन्दिर बनवाये।

दरबारी साहित्य से कहीं अधिक महत्त्व का सन्तों का साहित्य था। सूरदास, तुलसीदास और गुरु अर्जुनदेव तथा रामानन्द के अनुयायी दादू, मलूक, रयि-

दास आदि सन्त कवि अकबर के समय में हुए। अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना ने रहीम नाम से हिन्दी में जो कविता की, उस पर भी स्पष्ट वैष्णव छाप है। तुलसीदास का 'रामचरितमानस' तो हिन्दी-भाषी जनता का धर्म-ग्रन्थ बन गया। उसने सरल और सच्चे जीवन के जो आदर्श अंकित किये, वे आज भी हमारी जनता के आदर्श हैं।

दादू अहमदाबाद का धुना था और रयिदास चमार। पंजाब में गुरु नानक ने अपने 'उदासी' (विरक्त) बेटे के बजाय अपने एक शिष्य को अपना पद और गुरु अंगद का नाम दिया था। अंगद ने नानक की वाणी का संकलन किया। पंजाब में तब महाजनों के कारबार में काम आने वाले टूटे-फूटे अक्षरों के सिवाय कोई लिपि न थी। अंगददेव ने कश्मीर की शारदा लिपि को गुरमुखी नाम से अपना लिया। गुरुओं की वाणियाँ उसी में लिखी गयीं। तीसरे गुरु अमरदास ने अपने दामाद रामदास के वंश में गुरु-गद्दी स्थायी कर दी। रामदास ने अमृतसर की स्थापना की। पांचवें गुरु अर्जुनदेव (१५८२-१६०६ ई०) ने गुरुओं की वाणियों तथा रामानन्द, नामदेव, कबीर, फ़रीद, रयिदास, सूरदास आदि भक्तों के वचनों का संकलन कर एक 'ग्रन्थ' तैयार किया जो 'सिक्खों' का धर्म ग्रन्थ बना। अर्जुन ने अपने शिष्यों को तुर्किस्तान से घोड़ों का व्यापार करने को भी प्रेरित किया, जिससे उनका दूर देश जाने का डर जाता रहे तथा वे अच्छे सवार बन सकें।

§६. जहाँगीर बादशाह—अकबर के पीछे सलीम जहाँगीर के नाम से हिन्दुस्तान के तख़्त पर बैठा। उसका बेटा खुसरो बलवा कर आगरे से पञ्जाब की ओर बढ़ा। चिनाब के किनारे वह पकड़ा गया। उसके साथी और सहायक, जिनमें गुरु अर्जुन भी था, क्रूरता से मारे गये (१६०६ ई०)। अर्जुन के बेटे हरगोविन्द ने बदला चुकाने का प्रण किया, और अपने 'सिक्खों' को शस्त्र धारण करने को कहा। इस जुर्म में उसे १२ बरस ग्वालियर के क़िले में क़ैद रक्खा गया।

जहाँगीर के गद्दी पर बैठते ही ईरानियों ने कन्दहार पर निष्फल हमला किया।

§६. मेवाड़, बुन्देलखण्ड, बङ्गाल, दक्खिन और काँगड़ा—मेवाड़ और दक्खिन की समस्याएँ अकबर के समय से चली आती थीं। जहाँगीर ने राणा प्रताप के बेटे अमरसिंह के खिलाफ़ पहले शाहज़ादा परवेज़ को, फिर महाबतखाँ को और अन्त में शाहज़ादा खुर्रम को भेजा। अमरसिंह को अन्त में हार माननी पड़ी (१६१४ ई०)। मेवाड़ ने इस शर्त पर अधीनता मानी कि महाराणाओं को स्वयम् मुग़लों की सेवा में न जाना पड़े, तथा 'डोला' न देना पड़े। जहाँगीर ने अपने वीर शत्रु अमरसिंह और उसके बेटे करण की हाथियों पर चढ़ी हुई मूर्तियाँ आगरे में स्थापित कीं।

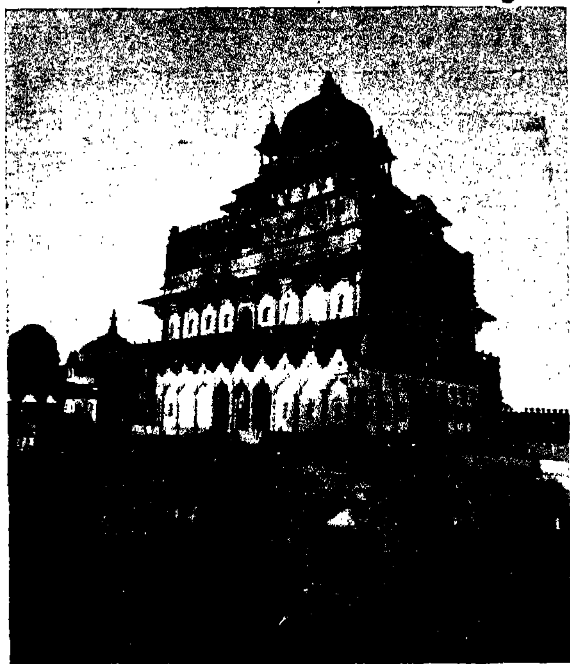
बुन्देलखण्ड का राजा वीरसिंहदेव जहाँगीर का विशेष कृपापात्र था। मंडला (गोंडवाना) राज्य का जो कुछ भाग बाक़ी था, वह उसे जीतने दिया गया।



जहाँगीर शेर का शिकार करते हुए
[भा० क० भ०, काशी]

जहाँगीर ने बङ्गाल की सूबेदारी कुतुबुद्दीन को दी। शेर अफ़गन नामक ईरानी उसके नीचे मनसबदार था। कुतुबुद्दीन को उसे कैद करने का हुक्म मिला। इस कोशिश में कुतुबुद्दीन और शेर अफ़गन दोनों मारे गये (१६०६ ई०)। शेर अफ़गन की सुन्दरी विधवा मेहरुन्निसा

सम्राट् के दरबार में भेजी गयी। चार बरस पीछे उसने जहाँगीर से शादी करना क़बूल कर लिया, और उसे नूरजहाँ का ख़िताब मिला। वह चतुर स्त्री थी, जहाँगीर उसके काबू में था और सब राज-काज वही



दतिया में वीरसिंहदेव का महल
१७ वीं सदी के वास्तु-शिल्प का नमूना [भा० पु० वि०]

चलाती थी। उसका भाई आसफ़ख़ाँ सल्तनत का वज़ीर बना। आसफ़ख़ाँ की बेटी शाहज़ादा ख़ुर्रम को ब्याही गयी और उसे मुमताज़-महल का ख़िताब दिया गया।

कोचविहार और कामरूप में विश्वसिंह कोच के दो वंशजों का राज था। आपस की लड़ाई में कोचविहार ने ढाका के मुग़लों से मदद माँगी। मुग़लों

ने कामरूप जीत लिया (१६१२ ई०); तब से आसाम का आहोम राज्य मुग़ल साम्राज्य को छूने लगा।

दक्खिन से अकबर के लौटते ही वहाँ की अवस्था बदल गयी थी। मलिक अम्बर नाम का एक सुयोग्य हब्शी अब अहमदनगर का वज़ीर था। उसने टोडरमल की पद्धति से अपनी रियासत में पैमाइश और बन्दोबस्त कराया, मुग़लों से अहमदनगर वापिस ले लिया और उन्हें बुरहानपुर तक खदेड़ दिया। इसी समय ठेठ कर्णाटक (मैसूर) में एक हिन्दू सरदार ने श्रीरङ्गपट्टम् का नया राज्य खड़ा किया (१६०६ ई०)। मलिक अम्बर के ख़िलाफ़ शाहज़ादा ख़ुर्रम को भेजा गया (१६१७ ई०)। उसने जो सन्धि की शर्तें भेजीं, उन्हें अहमदनगर के निज़ामशाह ने स्वीकार कर मुग़लों का सब इलाक़ा वापिस कर दिया। ख़ुर्रम को इस सफलता पर शाहजहाँ की पदवी मिली।

पञ्जाब में काँगड़ा के हिन्दू राज्य को अकबर ने जीतना चाहा था, पर वह विफल हुआ था। जहाँगीर के समय में वह जीत लिया गया (१६२० ई०)।

§७. अराकानी और पुर्तगाली—१६वीं सदी में अराकान के तट पर अनेक पुर्तगाली बस गये थे। उनकी दोग़ली सन्तान ने समुद्र और नदियों में लूट-मार करना अपना धन्धा बना लिया था। वे गोवा के शासन में न थे। अराकान के राजा ने अब उनका दमन कर उन्हें अपनी सेवा में ले लिया और वे लूट में आधा हिस्सा राजा को देने लगे। चटगाँव इन फिरंगियों का अड्डा था। इनकी मदद से अराकान के राजा ने बाकरगञ्ज जीत लिया (१६२० ई०), और ढाका को लूटा (१६२५ ई०)। उसके बाद अराकानियों और फिरंगियों के धावे बङ्गाल पर बराबर होने रहे। उनकी नावों के 'हरमद' (Armada) को देख कर बंगाली नव्वारा (बेड़ा) भाग जाता। वे असहाय जनता को पकड़ ले जाते और उनके एक-एक हाथ में छेद कर एक रस्सी पिरो कर पशुओं की तरह अपनी नावों में भर ले जाते थे। अराकानी उन्हें दास बना कर काम लेते थे। फिरङ्गी उन्हें दक्खिन के बन्दरगाहों पर या फिलिपाइन आदि द्वीपों में दूसरे फिरंगियों के हाथ बेच देते थे। प्रजा की लूटमार और विध्वंस का यह सिलसिला साल-ब-साल जहाँगीर और उसके बेटे शाहजहाँ के शासन-काल में जारी रहा।

६८. भारतीय समुद्र में ओलन्देज़, अंगरेज़ और फ़्रांसीसी—नयी और पुरानी दुनिया में स्पेन का साम्राज्य कैसे फैल गया था, यह हम देख चुके हैं। स्पेन ने अपने अधीन छोटी जातियों को कुचलना चाहा, परन्तु १५७६ ई० में छोटे से राज्य हालैण्ड ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया।

युरोप में मानसिक जागृति के बाद धार्मिक सुधार की लहर उठी। लूथर और काल्विन नामक सुधारकों ने १६वीं सदी के शुरू में पोप की महन्ती का प्रतिवाद किया। उनके अनुयायी 'प्रतिवादी' (प्रोटेस्टेंट) कहलाये और पोप के अनुयायी 'रोमन सनातनी' (रोमन कैथोलिक)। स्पेन-सम्राट् ने पोप का साथ दिया। युरोप के कई राज्यों में आधे से भी अधिक सम्पत्ति गिर्जों के हाथों में थी, और गिर्जों के पुजारी नियत करना पोप के हाथ में था। स्वाधीन-वृत्ति राष्ट्र अब प्रतिवादी बनने लगे। इंग्लैण्ड के राजा ने पोप से सम्बन्ध तोड़ कर अनेक गिर्जों की जागीरें जब्त कर लीं। स्पेन ने इंग्लैण्ड को भी दबाना चाहा। जिस फ़िलिप (१५५६–९८ ई०) के नाम से फ़िलिपाइन द्वीपों का नाम पड़ा था, वह तथा इंग्लैण्ड की रानी एलिज़ाबेथ (१५५८–१६०३ ई०) अकबर के समकालीन थे। फ़िलिप ने इंग्लैण्ड पर जङ्गी बेड़ा भेजा, जिसे अंगरेज़ों ने हरा कर फूँक दिया (१५८८ ई०)। इससे पहले कई अंगरेज़ नाविक भी पृथ्वी-परिक्रमा कर आये थे। उधर ४० बरस की घोर कशमकश के बाद हालैण्ड ने भी स्पेन से स्वतन्त्रता पा ली।

ओलन्देज़ और अंगरेज़ सुदूर समुद्रों पर भी स्पेन-पुर्तगाल के एकाधिकार को तोड़ने लगे। ओलन्देज़ों ने पुर्तगालियों को चीन सागर से निकाल दिया। १६०० ई० के अन्तिम दिन इंग्लैण्ड में पूरब के व्यापार के लिए 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' बनी, जिसे राज्य की तरफ़ से उस व्यापार का एकाधिकार मिला। ईसाई मत के प्रचार के लिए पुर्तगाली जो ज़ोर-ज़ुल्म करते थे, उससे भारत के शासक परेशान थे। अंगरेज़ और ओलन्देज़ 'प्रतिवादी' होने के कारण वैसे कट्टर न थे। उन्हें केवल अपने व्यापार से मतलब रहता था। भारतवर्ष के शासकों ने पुर्तगालियों के मुकाबले में उनका स्वागत किया। अंगरेज़ों ने सूरत में व्यापारी कोठी खोली, और सूरत के पास पुर्तगाली बेड़े

को हराया। उन के राजा जेम्स १म का दूत सर टामस रो अजमेर में जहाँगीर से मिला। अंगरेज़ों को भारत में व्यापार करने की इजाज़त तो मिली ही, साथ ही अपनी बस्तियों में अपने क़ानून के अनुसार स्वयम् शासन करने का अधिकार भी उन्हें मिल गया। १६१६ ई० में ओलन्देज़ व्यापारी वान डर ब्रोक सूरत आया। तब ओलन्देज़ों को भी सूरत, बड़ोदा, अहमदाबाद और आगरा में कोठियाँ खोलने की आज्ञा मिल गयी। १६२० ई० में फ्रांसीसी व्यापारी भी सूरत आये।

§९. **कन्दहार का पतन तथा शाहजहाँ और महाबतख़ाँ के विद्रोह**—१६२२ ई० में ईरान के शाह अब्बास ने कन्दहार को फिर घेरा। शाहजहाँ के नेतृत्व में एक बड़ी फ़ौज उसके ख़िलाफ़ जाने वाली थी, पर शाहजहाँ उस समय विद्रोह कर बैठा। ईरानियों ने कन्दहार ले लिया। चार वर्ष बाद शाहजहाँ ने पिता से सुलह की। इसकी बग़ावत का मुख्य कारण नूरजहाँ की ईर्ष्या थी। इसी से महाबतख़ाँ भी बिगड़ उठा। बादशाह लाहौर से काबुल जाता था। जेहलम पर महाबतख़ाँ ने अपने ५००० राजपूतों द्वारा उसे क़ैद कर लिया। नूरजहाँ की कुशलता से वह क़ैद से छूटा। दूसरे बरस (१६२७ ई०) उसकी मृत्यु हो गयी।

§१०. **शाहजहाँ बादशाह**—जहाँगीर के बेटों में शाहजहाँ सब से योग्य था। जोधपुर की राजकुमारी उसकी माँ थी। अपने सब प्रतिद्वन्द्वियों का आसानी से अन्त कर वह हिन्द का बादशाह बना। जहाँगीर की मृत्यु के एक बरस आगे-पीछे ईरान के शाह अब्बास, ओरछा के राजा वीरसिंहदेव तथा मलिक अम्बर की भी मृत्यु हुई। शाहजहाँ के प्रायः साथ ही बीजापुर में मुहम्मद आदिलशाह, और गोलकुण्डा में अब्दुल्ला कुतुबशाह गद्दी पर बैठे।

यद्यपि शाहजहाँ ने अपने को इस्लाम का पक्का अनुयायी प्रकट किया, और अपने दादा और पिता की उदार नीति को अंशतः बदल दिया, तो भी अपनी समूची प्रजा के प्रति उसका बर्ताव अच्छा रहा, और हिन्दुओं को उस पर विश्वास बना रहा।

§११. बुन्देलों से युद्ध; सिक्खों और जाटों के विद्रोह—वीरसिंहदेव का बेटा जुझारसिंह नये बादशाह का रुख़ अपने खिलाफ़ देख कर आगरा से बुन्देलखण्ड भाग गया। शाहजहाँ ने आगरा, कन्नौज और मालवा से उसके खिलाफ़ फ़ौजें भेजीं। बेतवा नदी के तट पर उसका क़िला इरिच ले लिया गया, तब जुझार ने अधीनता मानी (१६२६ ई०)। पाँच बरस पीछे फिर युद्ध छिड़ गया। छिन्दवाड़ा के २४ मील दक्खिन देवगढ़ में गोंडों की एक राजधानी थी। जुझारसिंह ने नर्मदा के दक्खिन उस देवगढ़ राज्य का चौरागढ़ क़िला छीन लिया। शाहजहाँ ने जुझार से चौरागढ़ तलब किया। उसके न देने पर शाहज़ादा औरङ्गज़ेब तथा उसके मामा शाइस्ताखाँ को फिर बुन्देलखण्ड की चढ़ाई पर भेजा गया। ओरछा पर दख़ल कर वहाँ का राज्य वीरसिंहदेव के भतीजे देवीसिंह को दिया गया। मुग़ल सेनाएँ बुन्देलखण्ड के आर-पार चाँदा तक जा निकलीं। जुझार और उसका बेटा जगराज जंगलों में गोंडों के हाथ मारे गये। जुझार की रानी पार्वती घायल हो कर मरी। उनका बेटा उदयभान और मन्त्री श्यामदेव क़ैद हो कर मारे गये।

चम्पतराय नाम के सरदार ने जुझार के बेटे पृथ्वीराज को राजा घोषित कर फिर स्वाधीनता की लड़ाई छेड़ी। पृथ्वीराज को मुग़लों ने क़ैद कर लिया, तब भी चम्पत जंगलों में भाग कर लड़ता रहा। जुझार के भाई पहाड़सिंह ने मुग़लों की सेवा में जा कर चम्पत और उसके बन्धुओं को नष्ट करने का वचन दिया। उस से लड़ना उचित न जान कर चम्पत ने भी सन्धि की (१६४२ ई०)। उसके बाद भी पहाड़सिंह ने उसे विष दे कर मारना चाहा, पर चम्पत के एक मित्र ने उसका प्याला बदल कर स्वयम् पी लिया। तब चम्पतराय ने अपनी माँ की सलाह से शाहजहाँ के बड़े बेटे दाराशिकोह की सेवा स्वीकार की।

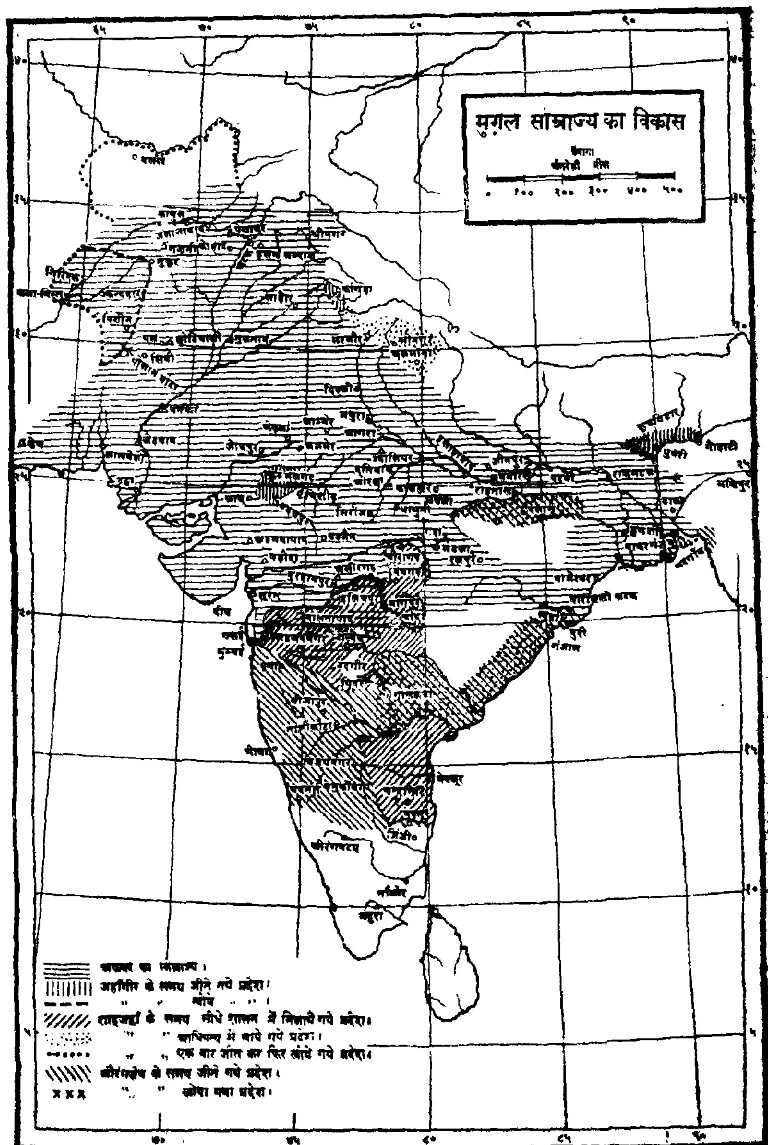
पंजाब में गुरु हरगोविन्द ने, जो क़ैद से छूट चुका था, साम्राज्य से मुठभेड़ जारी रक्खी (१६२८–३४ ई०)। अन्त में उसे कीरतपुर के पहाड़ों में भागना पड़ा और वहीं उसकी मृत्यु हुई (१६४४ ई०)।

१६३७ ई० में मथुरा के जाटों ने विद्रोह किया, जो शीघ्र कुचल दिया गया।

§१२. दक्खिन (१६२८-४५ ई०)—शाहजहाँ ने तख्त पर बैठते ही दक्खिन की रियासतों को दबाना शुरू किया। मलिक अम्बर के बेटे फ़तहखाँ ने अहमदनगर के निज़ामशाह को कैद कर मार डाला और दौलताबाद मुग़लों को सौंप दिया। परन्तु शाहजी भोंसले नामक अहमदनगर के एक सरदार ने एक नये निज़ामशाह को खड़ा कर लड़ाई जारी रक्खी। १६३६ ई० में शाहजहाँ ने दक्खिन में चार सूबे—खानदेश, बराड, दौलताबाद और तेलंगाना—बनाये, तथा औरंगज़ेब को उनके शासन के लिए भेजा। स्वयम् शाहजहाँ भी भारी फ़ौज ले कर दौलताबाद आया। गोलकुण्डा ने उससे डर कर सालाना खिराज देना स्वीकार किया। बीजापुर पर मुगल फ़ौजों ने चढ़ाई की, तब उसने भी नाम को मुगलों का आधिपत्य माना और भूतपूर्व अहमदनगर रियासत के ५० परगने उसे मिले। शाहजी ने अपने बादशाह को मुग़लों को समर्पण कर बीजापुर राज्य की सेवा स्वीकार की (१६३६ ई०)। १६४५ ई० तक औरंगज़ेब दक्खिन में रहा और वहाँ बहुत अच्छा बन्दोबस्त किया।

बीजापुर और गोलकुण्डा जब उत्तर की तरफ़ रोके गये तो भूतपूर्व विजयनगर राज्य के इलाक़ों पर दखल करने लगे। बीजापुरी अपने सेनापति अफ़ज़लखाँ के नेतृत्व में बेदनोर, सेरा और बेंगलूर को विजय करते हुए कावेरी तक जा पहुँचे। गोलकुण्डा वालों ने समुद्र-तट के साथ-साथ उत्तर तरफ़ शिकाकोल और चिलिका तक और कृष्णा के दक्खिन नल्लमलै के प्रदेशों तक अधिकार कर लिया।

§१३. कन्दहार बलख, बदख़्शाँ (१६३७-५३ ई०)—शाहजहाँ ने बीजापुर और गोलकुण्डा से अधीनता मनवाने के एक बरस पीछे कन्दहार के ईरानी हाकिम से साज़िश कर उस पर भी अधिकार कर लिया (१६३८ ई०)। हिन्दूकुश के उस पार बलख और बदख़्शाँ के सूबे बुखारा के उज़्बग सुलतान के अधीन थे। बुखारा सल्तनत की अव्यवस्था से लाभ उठा कर उन्हें भी हिन्दुस्तान की फ़ौजों ने जीत लिया, पर वहाँ उनका अधिकार केवल दो बरस (१६४६-४७ ई०) तक रह पाया। कन्दहार को भी शाह अब्बास २य ने वापिस ले लिया (१६४८ ई०), क्योंकि शाहजहाँ अपनी घिरी हुई फ़ौज के


मुग़ल साम्राज्य का विकास
० १०० २०० ३०० ४०० ५००
जहाँगीर के समय जीते गये प्रदेश।
शाहजहाँ के समय सीधे शासन में मिलाये गये प्रदेश।
" " एक बार जीत कर फिर खोये गये प्रदेश।
औरंगज़ेब के समय जीते गये प्रदेश।
" " खोया गया प्रदेश।

पास वक्त पर कुमुक न भेज सका। इसके बाद उसने तीन बार कन्दहार वापिस लेने का जतन किया, पर सब व्यर्थ हुआ। इस विफलता का मुख्य कारण हिन्दुस्तानी तोपचियों का निकम्मापन था। इन विफलताओं के कारण हिन्दुस्तानियों पर ईरानियों की धाक बैठ गयी, और आगे एक शती तक ईरानी हौआ हिन्दुस्तानी शासकों के दिमाग पर मँडराता रहा।

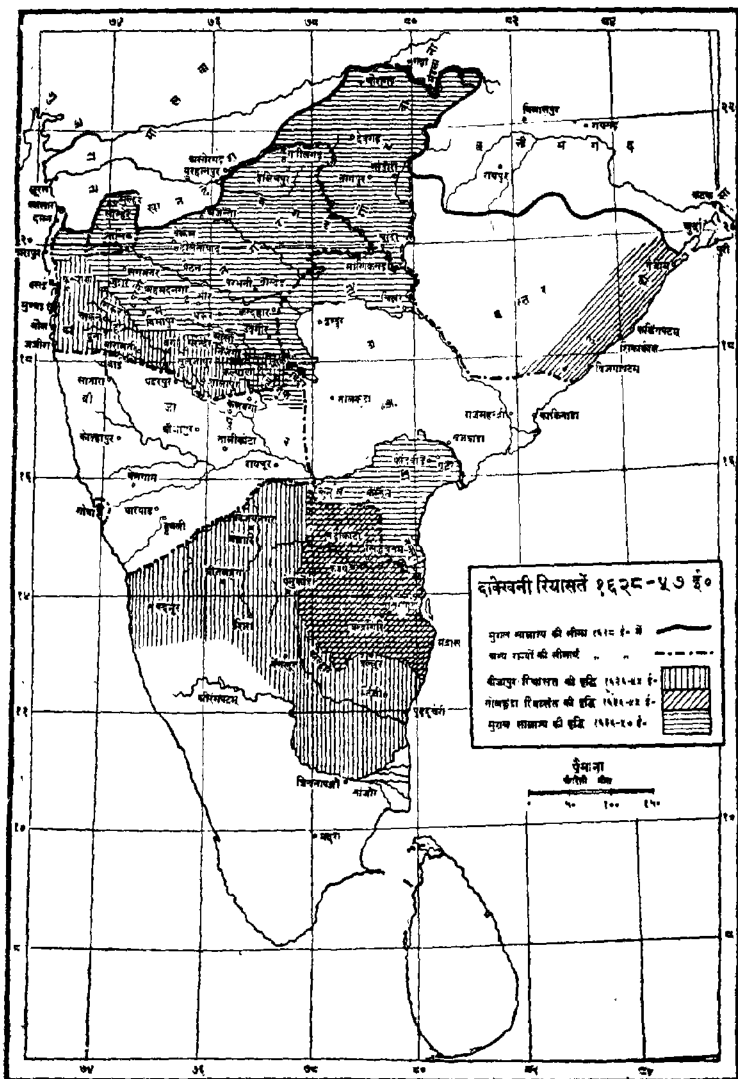
§१४. शाहजहाँ के शासन-काल में पुर्तगाली, ओलन्देज़ और अँगरेज़—बंगाल में पुर्तगालियों की करतूतों का हाल कहा जा चुका है। १६३१ ई० में शाहजहाँ की फौज ने उनके हुगली के किले पर चढ़ाई कर दस हज़ार आदमियों का संहार किया, और ४-५ हज़ार को कैद कर लिया। उनके युरोपियन शत्रु ओलन्देज़ों ने १६५८ ई० तक उनसे समूचा सिंहल और आशा अन्तरीप की बस्तियां भी छीन लीं। शाहजहाँ के शासन-काल में अंगरेज़ों ने पूरबी तट पर भी बसना शुरू किया। मसुलीपट्टम्, बालेश्वर और हुगली में कोठियाँ बनायीं, और चन्द्रगिरि के राजा से मद्रास का वह स्थान पाया जहाँ पहले-पहल अंगरेजों ने किला बनाया। इसी समय पुर्त्तगाल स्पेन से स्वतन्त्र हो गया (१६४० ई०), और तब से पुर्त्तगाल की नीति इंग्लैण्ड से मैत्री रखने की रही। हुगली के अंगरेजों ने बंगाल के सूबेदार शाहज़ादा शुजा से विशेष सुविधाएँ प्राप्त कीं। ३०००) वार्षिक एकमुश्त दे कर उन्हें बंगाल में बिना चुंगी व्यापार करने का अधिकार मिल गया। वे शोरा, खांड और रेशम बिहार-बंगाल से बाहर ले जाते, और बदले में सोना-चाँदी लाते थे, जो तब दक्खिनी अमेरिका की खानों से आ रहा था। फ्रांसीसियों ने भी १६४२ ई० में सूरत में अपनी कोठी खोली।

उधर इन जातियों के बदमाशों ने भारतीय समुद्र में डकैती भी शुरू की। जहाँगीर के समय में भी एक ऐसी घटना हुई थी। सन् १६३५ और ३८ ई० में इंग्लैण्ड के राजा से परवाना पाये हुए जहाज़ों ने भी वैसी ही हरकतें कीं। मुग़ल सरकार ने इस पर सूरत के सब अंगरेज़ों को कैद कर लिया, और भारी हरजाना ले कर छोड़ा।

§१५. शिवाजी का उदय और दक्खिन की राजनीति, (१६४६–५८ ई०)—जिस साल जहाँगीर की मृत्यु हुई, उसी साल शाहजी भोंसले की पत्नी जीजाबाई ने जुन्नर के पास शिवनेरी के किले में शिवाजी को जन्म दिया था। शाहजी जब बीजापुर की सेवा में कर्णाटक और तामिलनाड में लड़ रहा था, तब शिवाजी उसकी पूना की जागीर में जीजाबाई से ऊँचे आदर्शों की शिक्षा पाता था। उस शिक्षा से उस के हृदय में स्वतन्त्र होने की अदम्य प्रेरणा जाग उठी।

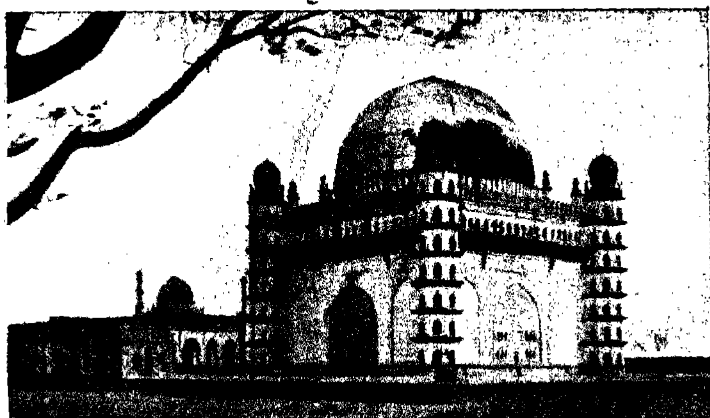
उन्नीस बरस की उम्र से उसने अपनी उमंगों को चरितार्थ करना शुरू कर दिया। तीन किले उसकी जागीर में थे। १६४६ ई० से उसने दूसरे बीजापुरी किले छीन कर कोंकण जीतना शुरू किया। सह्याद्रि की मावलों (दूनों) और कोंकण को उसने अपना आधार बनाया। बीजापुर दरबार ने इस पर शाहजी को कैद कर लिया (१६४८ ई०), और एक बरस बाद इस शर्त पर छोड़ा कि शिवाजी आगे ऐसा न करे। इसलिए छः बरस तक शिवाजी को चुप रहना पड़ा। इस बीच में उसने अपने राज्य और सेना का संगठन किया।

इस बीच मुगलों के दक्खिन के सूबे अव्यवस्थित थे; बीजापुर और गोलकुण्डा का दक्खिन की तरफ फैलना जारी था। गोलकुण्डा वाले कृष्णा से उत्तरी पेण्णार तक जीत कर चन्द्रगिरि राज्य की सीमा पर जा पहुँचे। बीजापुर वाले कावेरी की दून से तामिल-तट में उतरे, और जिंजी का किला जीत कर दक्खिन से चन्द्रगिरि को दबाने लगे। तब चन्द्रगिरि के राजा ने शाहजहाँ से शरण माँगी। इस प्रकार चोलमण्डल के उपजाऊ मैदान के लिए तीन शक्तियों में स्पर्द्धा पैदा हुई। बाद में तट की दो नयी शक्तियाँ, शिवाजी और युरोपियन, भी इस छीनाझपटी में कूद पड़ीं। इस मैदान की डेढ़ सौ बरस की यह पेचीदा कशमकश भारतीय इतिहास में भाग्यनिर्णायक सिद्ध हुई। यह तामिल मैदान पहले विजयनगर या चन्द्रगिरि के कर्णाटकी राजाओं के अधीन था, इस कारण इस युग में बाहर के लोग इसे कर्णाटक कहने लगे थे। असल में इसे कर्णाटक कहना गलत है। कर्णाटक तो वह ऊँचा पठार है जिसमें कन्नड भाषा बोली जाती है और जिसका केन्द्र मैसूर है।


दाक्खनी रियासतें १६२८-५७ ई०
पैमाना
५० १०० १५०

मीर जुमला नाम का एक ईरानी सौदागर इस समय अब्दुल्ला कुतुबशाह का मन्त्री बन गया था। तामिल मैदान को जीतने में उसने विशेष भाग लिया और अब वह इसका बेताज बादशाह बन बैठा। बीजापुर और गोलकुण्डा ने मिल कर उस पर चढ़ाई करना तय किया, तब मीर जुमला ने शाहजहाँ से शरण माँगी।

औरङ्गज़ेब कन्दहार से सीधा दक्खिन के शासन पर भेजा गया था (१६५३ ई०)। उसके आने से दक्खिन के मुग़ल सूबों में फिर सुव्यवस्था आ गयी। उसने गोलकुण्डा पर एकदम चढ़ाई कर उसे घेर लिया और



बीजापुर का सर्वोत्तम इमारत, मुहम्मद आदिलशाह का मकबरा, जो गोल गुम्बज़ नाम से प्रसिद्ध है [भा० पु० वि०]

भारी हरजाना लेकर सन्धि की (१६५६ ई०)। मीर जुमला शाहजहाँ की सेवा में आया, और उसकी 'कर्णाटक' की जागीर भी मुग़ल-साम्राज्य में शामिल हो गयी। उसी बरस मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु होने से बीजापुर में गोलमाल होने लगा। औरङ्गज़ेब जब गोलकुण्डा घेरे हुए था, उस समय शिवाजी ने रत्नागिरि तक सब कोंकण जीत लिया। इधर औरङ्गज़ेब ने भी बीजापुर पर चढ़ाई की (१६५७ ई०)। शिवाजी ने बीजापुर से सहयोग किया और मुग़लों के अधीन जुन्नर के किले में एकाएक

घुस कर उसे लूट लिया, और अहमदनगर तक हमले करते हुए उत्तरी रास्ते बन्द कर दिये। औरङ्गज़ेब बीजापुर तक न बढ़ सका और सीमान्त के किले—बिदर, कल्याण, परेन्दा—ले कर उसने बीजापुर से सन्धि कर ली। मुग़ल-बीजापुर-सन्धि से उत्तरी कोंकण, जो शिवाजी की जागीर था, मुग़ल साम्राज्य के हिस्से में आ गया। इसी समय शाहजहाँ की बीमारी की ख़बर आयी और औरङ्गज़ेब उत्तर को बढ़ा। मीर जुमला को दक्खिन में छोड़ते हुए उसने उसे शिवाजी से सावधान रहने को लिखा।

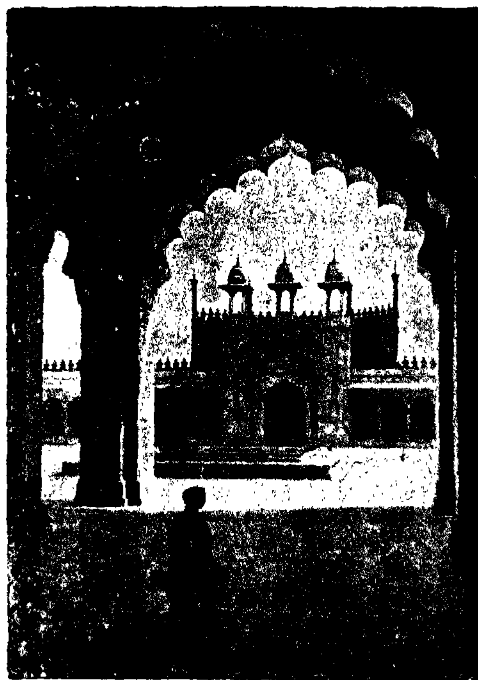
§१६. **मुग़ल साम्राज्य का वैभव**—शाहजहाँ के शासन-काल में मुग़ल साम्राज्य का वैभव खूब चमका। उसे देख कर विदेशी चकित होते थे। शाहजहाँ ने तख्त-ताऊस और ताजमहल बनवाये। ताजमहल में उसने अपनी सुन्दरी और साध्वी स्त्री मुमताज़महल की स्मृति अमर की। उसकी अन्य रचनाओं में आगरा के किले की मोती-मसजिद तथा आधुनिक दिल्ली शहर उर्फ़ शाहजहानाबाद विशेष प्रसिद्ध हैं।



शाहजहाँ तख्त-ए-ताऊस पर—समकालीन चित्र
[रोथशील्ड-संग्रह, पेरिस; पर्सी ब्रौन के ग्रन्थ से]

मुग़ल बादशाहत के जागीरदार, मनसबदार और रईस भी बड़े समृद्ध थे। मनसबदारों को बड़ी तनख्वाहें मिलती थीं, किन्तु उनकी मृत्यु के बाद उनकी

सब सम्पत्ति का वारिस बादशाह होता था, इससे वे अपनी कमाई को खुले दिल से खर्च करते थे। बादशाह की और उनकी ऐयाशी के कारण प्रजा का रुपया फिर प्रजा के पास लौट आता था। देश के कारीगर उससे लाभ उठाते थे। बादशाह और प्रान्तीय सूबेदारों के अनेक कारखाने देश के कारीगरों का बड़ा सहारा थे। बादशाह को प्रजा के सुख-दुःख का ध्यान रहता था। १६३०–३१ ई० में गुजरात, खानदेश और दक्खिन में घोर दुर्भिक्ष पड़ा। शाहजहाँ ने उस समय उन प्रान्तों के लगान में बहुत सी छूट कर दी, और जनता में अनाज मुफ्त बँटवाया।



मोती मस्जिद, आगरा

देश की कारीगरी का उल्लेख करते समय यह याद रखना चाहिए कि भारतवासी पच्छिमी जातियों से इस समय ज्ञानक्षेत्र में पिछड़ गये थे। जहाज़रानी और सामुद्रिक व्यापार में, भौगोलिक ज्ञान में तथा तोपें बनाने और चलाने की कला में, पच्छिमी जातियाँ तब हमसे बहुत आगे बढ़ गयीं थीं। गोवा में पुर्तगाली पुस्तकें छापते थे, पर भारतवासियों को कभी उनसे वह कला सीखने की न सूझी। पच्छिम से कुछ नये व्यसन और रोग भी इस युग में

आये। सन् १६०५ में बीजापुर में पहले-पहल पुर्तगाली तमाकू लाये, जिसको युरोप वालों ने अमेरिका में पाया था। १६१६ ई० में पञ्जाब में और १६१८-१६ ई० में दिल्ली-आगरा में ताऊन या प्लेग पहले-पहल पच्छिम से आयी।

स्थापत्य, चित्रकला, सङ्गीत और साहित्य के लिए यह समृद्धि का युग था; पर देशी भाषाओं के साहित्य में उस समय काव्य के अतिरिक्त और कुछ न था, और काव्य भी भक्तों के उद्गारों के सिवाय सब कृत्रिम शैली के थे। हिन्दी कवि बिहारी (१६०२-६३ ई०) की 'सतसई' में मुग़ल-वैभव-युग की ऐयाशी का पूरा प्रतिबिम्ब है। आसाम की भाषा में बुरंजी नाम के इतिहास-ग्रन्थ लिखे जाते थे। भारतीय राज्यों के इतिहास सब फ़ारसी में ही लिखे जाते थे। इस युग के भक्त कवियों में से सब से उज्ज्वल नाम महाराष्ट्र के तुकाराम (१६०७-४६ ई०) और समर्थ रामदास (१६०८-८१ ई०) के हैं। तुका-राम के कीर्त्तनों में शिवाजी शामिल होते थे और रामदास को तो शिवाजी का गुरु ही कहना चाहिए।

§१७. **मुग़लों का भ्रातृ-युद्ध** (१६५८-६० ई०)—शाहजहाँ की बीमारी की ख़बर से चारों तरफ़ अव्यवस्था फैलने लगी। आसाम के आहोम राजा जयध्वज ने कामरूप और गौहाटी ले लिये। कोचबिहार के राजा प्राणनारायण ने उत्तरी बङ्गाल पर धावे किये। बङ्गाल में शुजा ने मुकुट धारण कर बनारस पर चढ़ाई की। गुजरात में उसके भाई मुराद ने भी बादशाह बन कर सूरत लूट लिया। औरङ्गज़ेब ने नर्मदा के घाट ऐसे रोके कि उसकी तैयारी की कोई ख़बर उस पार न जा सके। बादशाह ने सब राजकाज दाराशिकोह को सौंप रक्खा था। दारा ने शुजा के खिलाफ़ अपने बेटे सुलैमान को भेजा, और मुराद के खिलाफ़ मारवाड़ के राजा जसवन्तसिंह को। औरङ्गज़ेब मुराद से मिल गया। जसवन्त के पास दोनों से लड़ने को शक्ति न थी। उज्जैन के पास धर्मट में वह हार कर भागा। सुलेमान शुजा को हरा कर मुङ्गेर भगा चुका था। तब उसने धर्मट की हार की ख़बर सुनी। इधर औरङ्गज़ेब ने चम्बल पार कर सामूगढ़ पर दारा को हराया और आगरा को घेर कर क़िले से जमना का

रास्ता बन्द कर दिया। उसके बूढ़े बाप को पानी के लिए गिड़गिड़ाते हुए क़िला सौंप कर क़ैदी बनना पड़ा। दारा दिल्ली से पञ्जाब की ओर भागा और औरङ्गज़ेब ने उसका पीछा किया। मथुरा के पास उसने मुराद को शराब पिला कर क़ैद कर लिया और दिल्ली में अपने को बादशाह घोषित किया। दारा पञ्जाब से सिन्ध और सिन्ध से कच्छ भगा दिया गया।

शुजा अपने पिता को क़ैद से छुड़ाने को बढ़ा। दारा ने अपने मित्रों को उसकी मदद करने को लिखा। पञ्जाब से औरङ्गज़ेब उसके मुकाबले को बढ़ा और इलाहाबाद के पच्छिम खजवा पर दोनों का सामना हुआ। शुजा हार कर बङ्गाल की तरफ़ भागा। मीर जुमला उसके पीछे गया। सुलेमान ने श्रीनगर (गढ़वाल) के राजा के यहाँ शरण ली। उधर गुजरात में औरङ्गज़ेब के ससुर शाहनवाज़ ने दारा को शरण दी; जसवन्तसिंह ने उसे अजमेर आने को कहा। खजवा से औरङ्गज़ेब उधर लौटा। अजमेर के पास दोराई में लड़ाई हुई, जहाँ शाहनवाज़ मारा गया और दारा फिर हार कर भागा। राजा जयसिंह उसके पीछे भेजा गया। दर्रा बोलान के पास एक पठान ने उसे पकड़ा दिया। सुलेमान की ख़ातिर गढ़वाल के राजा पृथ्वीसिंह पर चढ़ाई की गयी, पर वह व्यर्थ हुई। तब जयसिंह ने उसके बेटे को रिशवत दे कर सुलेमान को पकड़वा लिया। शुजा को अराकान भागना पड़ा, जहाँ उसका अन्त हुआ। औरङ्गज़ेब का बेटा मुहम्मद सुलतान शुजा से मिल गया था; वह पकड़ा गया और अपने बाप की क़ैद में मरा। दारा, मुराद और सुलेमान भी मारे गये।

§१८. औरङ्गज़ेब बादशाह; आरम्भिक शान्ति-स्थापना (१६५८–६१ ई०)—औरङ्गज़ेब आलमगीर नाम से गद्दी पर बैठा और उसने उन प्रान्तों में शान्ति स्थापित की जिन में भ्रातृ-युद्ध के समय अव्यवस्था मच गयी थी। मथुरा के पास जाटों के नेता नन्दराम ने लगान देना बन्द कर दिया था। उसे अब दबना पड़ा। चम्पतराय बुन्देला ने मालवा के रास्ते रोक लिये थे। उसके ख़िलाफ़ दतिया और ओरछा के बुन्देले राजा भेजे गये। वीरता से लड़ते हुए और अनेक विपत्तियाँ झेलते हुए चम्पत और उसकी स्त्री कालीकुमारी ने मालवा में प्राण दिये (१६६१ ई०)। उनका बेटा छत्रसाल बच कर भाग

गया। सिक्ख गुरु हरगोविन्द के पोते हरराय ने दारा की मदद की थी। उसे सफ़ाई देने को बुलाया गया; उसने अपने बेटे रामराय को भेजा। रामराय ने दरबार में चापलूसी से काम लिया, तब हरराय ने अपनी मृत्यु से पहले छोटे बेटे को उत्तराधिकारी बनाया। वह बालक दिल्ली बुलाया गया, और वहीं चेचक की बीमारी से मर गया। तब उसका चचा तेग़बहादुर सिक्खों का गुरु बना (१६६४ ई०)।

§१६. शिवाजी के ख़िलाफ़ अफ़ज़लखाँ और शाइस्ताखाँ; सूरत की लूट (१६५८-६४ ई०)—औरङ्गज़ेब के लौट जाने पर बीजापुर सरकार ने विद्रोही शिवाजी को कुचलने का निश्चय किया। सेनापति अफ़ज़लखाँ बड़ी सेना के साथ पच्छिम भेजा गया। उसने शिवाजी को अपने पास हाज़िर होने का हुक्म भेजा। शिवाजी के मन्त्रियों ने अधीनता मानने की सलाह दी, पर जीजाबाई ने यह बात न मानी। प्रतापगढ़ के पहाड़ी किले के नीचे दोनों का मिलना तय हुआ। अफ़ज़ल ने शिवाजी को छाती लगाते हुए उसका गला घोंट कर छुरी मारनी चाही, तब शिवाजी ने आस्तीन में छिपाये हुए बघनखे और बिछुए से उसका पेट फाड़ दिया (१६५६ ई०)। छिपे हुए मावलियों ने बीजापुरी फ़ौज को तहस-नहस कर दिया। तब शिवाजी ने दक्खिन कोंकण, कोल्हापुर ज़िला और पन्हाला का किला जीत लिये।

मीरजुमला के बाद शाइस्ताखाँ दक्खिन में मुग़ल सूबेदार बन कर आया था। अब उसने और बीजापुर के शाह ने मिल कर शिवाजी को दबाना चाहा। शाइस्ताख़ाँ और उसके सहायक राजा जसवन्तसिंह ने, जो अब औरङ्गज़ेब की सेवा में आ गया था, उत्तरी कोंकण के अतिरिक्त शिवाजी की असल जागीर पूना पर भी दख़ल कर लिया। उधर बीजापुर के अली आदिलशाह ने दक्खिनी इलाक़े छीन कर शिवाजी को पन्हाला के क़िले में घेरना चाहा (१६६० ई०)। शिवाजी क़िले में से निकल गया। उसके विश्वस्त सरदार बाजी प्रभु ने अपनी जान दे कर बीजापुरी फ़ौज का रास्ता तब तक रोके रक्खा, जब तक शिवाजी विशालगढ़ न पहुँच गया। बीजापुरी पन्हाला से आगे न बढ़े। अब शिवाजी के पास वही थोड़ा सा इलाक़ा बच गया।

शाइस्ताखाँ और जसवन्तसिंह ने पूना में छावनी डाल दी। शिवाजी एक रात अपने चुने साथियों के साथ छावनी में जा घुसा, और ठीक शाइस्ता-खाँ के मकान में पहुँच कर मारकाट शुरू कर दी (१६६३ ई०)। शाइस्ता-खाँ खिड़की से निकल भागा। फ़ौज के सँभलने से पहले शिवाजी निकल गया। शाइस्ताखाँ पूना में जसवन्तसिंह को छोड़ स्वयम् औरङ्गाबाद चला गया। उधर बीजापुर के सुल्तान से शिवाजी ने दक्खिनी कोंकण (रत्नागिरि) और उत्तरी कनाडा तट जीत लिये।

उत्तरी कोंकण को वापिस ले कर दूसरे बरस शिवाजी ने सूरत पर चढ़ाई की (जनवरी १६६४ ई०)। वह मुग़ल साम्राज्य का सबसे समृद्ध बन्दरगाह था। मुग़ल फ़ौज क़िले में जा छिपी। चार दिन में एक करोड़ रुपया ले कर शिवाजी लौट गया। फिर बरसात में उसने अहमदनगर और उसी जाड़े में कनाडा के समृद्ध शहर हुबली और कारवार को लूटा।

§२०. आसाम और चटगाँव की विजय (१६६०–६६ ई०)—शुजा को अराकान भगाने के बाद मीरजुमला ने कोचबिहार, कामरूप और आसाम पर चढ़ाइयाँ कीं। वहाँ से लौट कर उसकी शीघ्र मृत्यु हो गयी (१६६३ ई०)। तब शाइस्ताखाँ दक्खिन से बङ्गाल भेजा गया। बङ्गाल में उसने ख़ूब नेकनामी कमायी। चटगाँव को जीत कर १६६६ ई० में उसने पुर्तगाली और अराकानी डकैतों का अड्डा तोड़ दिया। सारे बङ्गाल में इस पर ख़ुशियाँ मनायी गयीं। आगे २१ बरस तक शाइस्ताखाँ के न्यायपूर्ण शासन में बङ्गाल ने मुग़ल साम्राज्य का पूरा वैभव देखा।

§२१. पुरन्दर की सन्धि: शिवाजी का क़ैद होना और भागना (१६६५-६६ ई०)—दक्खिन में शाइस्ताखाँ और जसवन्तसिंह की जगह शाहज़ादा मुअज़्ज़म और राजा जयसिंह कछवाहा को भेजा गया। जयसिंह ने शिवाजी के सब शत्रुओं को मिलाया और पूना के चारों तरफ़ उसके इलाके उजाड़ना शुरू किया। फिर उसने पुरन्दर के क़िले पर चढ़ाई की। शिवाजी कनाडा से लौट आया, पर पुरन्दर का घेरा न उठा सका। तब उसने जयसिंह से भेंट कर सन्धि की बात शुरू की, और

अपने ३५ क़िलों में से २३ दे कर दक्खिन में बादशाह की सेवा करना स्वीकार किया।

अब शिवाजी और जयसिंह मिल कर बीजापुर की चढ़ाई पर चले; पर वहाँ से वे विफल लौटे। जयसिंह की सलाह से शिवाजी ने आगरा जाना तय किया। इस बहाने उसे मुग़ल बादशाहत तथा उत्तर भारत की हालत अपनी आँखों देखने का मौक़ा मिला। जीजाबाई को शासन-सूत्र सौंप कर वह आगरा गया। जयसिंह के बेटे रामसिंह ने उसे औरङ्ग़ज़ेब के दरबार में पेश किया (१२-५-१६६६ ई०); लेकिन दरबारियों का सा बरताव शिवाजी से न बन पड़ा। औरङ्ग़ज़ेब ने उसे क़ैद में डाल दिया। तीन महीने पीछे मिठाई के टोकरे में अपने को छिपा कर वह उस क़ैद से निकल भागा, और भेस बदल कर बनारस, गया, पुरी और गोलकुण्डा के रास्ते महाराष्ट्र पहुँचा। दूसरे वर्ष दक्खिन से लौटते हुए बुरहानपुर में जयसिंह मर गया।

शिवाजी का भागना मुग़ल-वैभव-युग के अन्त का सूचक था। पानीपत के दूसरे युद्ध के बाद से सौ बरस तक मुग़ल बादशाहत का गौरव बढ़ता ही गया था। मुग़लों के शस्त्र तब अजेय समझे जाते थे और उनके साम्राज्य की सीमाएँ अनुल्लंघनीय। शिवाजी ने उस धाक को तोड़ दिया। औरङ्ग़ज़ेब जैसे पराक्रमी, प्रतिभाशाली, कर्तव्यपरायण, संयमी, सजग सुशासक के गद्दी पर बैठने पर यह आशा की गयी थी कि साम्राज्य का वैभव और बढ़ेगा। बेशक साम्राज्य की सीमाएँ औरङ्ग़ज़ेब ने बहुत बढ़ा दीं; पर उसकी आँखों के सामने ही वह साम्राज्य थोदा और दिवालिया हो गया। विरोधी शक्तियाँ अब इतनी जाग उठीं कि औरङ्ग़ज़ेब की अनुपम दृढ़ता भी उनसे लड़ते-लड़ते चूर हो गयी। एक अंश तक उसकी अपनी धर्मान्धता उन विरोधी शक्तियों को जगाने और भड़काने का कारण थी; किन्तु सच बात यह है कि शिवाजी की स्वाधीनता-चेष्टा औरङ्ग़ज़ेब के राज्य से पहले प्रकट हो चुकी थी।

सन् १६६६ ई० में ही क़ैदी शाहजहाँ का देहान्त हुआ।

अध्याय ५

मुग़ल साम्राज्य का अन्तिम विस्तार

(१६६७—१७२० ई०)

§१. **सीमान्तों पर अशान्ति**—मुग़ल साम्राज्य के इतिहास का यह नया पन्ना खुलते ही सीमान्तों की अशान्ति और औरंगज़ेब की हिन्दू-विरोधी नीति सामने आती है। शिवाजी दक्खिन पहुँच कर अपनी तैयारी में लग गया, इससे दक्खिनी सीमान्त पर फ़िलहाल शान्ति रही। किन्तु आहोम राजा चक्रध्वज ने धुबड़ी तक समूचा आसाम वापिस ले लिया (१६६७ ई०)। राजा रामसिंह कछवाहा को आसाम भेजा गया, जो आठ बरस के निरन्तर युद्धों के बाद अन्त में विफल लौटा। तब मुगलों ने रिशवत दे कर गौहाटी पर कब्जा कर लिया; पर राजा गदाधरसिंह ने उसे वापिस ले लिया और साथ ही कामरूप भी छीन लिया (१६८१ ई०)। यह स्थिति अन्त तक बनी रही।

उत्तर-पच्छिमी सीमान्त पर भी वही दशा थी। पुराने ज़माने में काबुल नदी के काँठे और उसके उत्तर में पठान लोग न रहते थे। बाबर ने जब स्वात और बाजौर जीता, तब यूसुफ़ज़ई पठान पहले-पहल कन्दहार से स्वात के काँठे में आये थे। अब वे सिन्ध पार कर पखली (आजकल के हज़ारा ज़िले) पर दखल करने लगे। इस प्रवास के सिलसिले में उन्होंने काबुल, पेशावर और अटक में लूट मचा दी। तीन बरस की चढ़ाइयों के बाद मुग़ल सरकार उन्हें सिन्ध के पूरब से निकाल सकी। उसी सिलसिले में राजा जसवन्तसिंह को जमरूद का थानेदार नियत किया गया।

किन्तु पठानों और मुगलों में बाबर के समय से अस्थिवैर चला आता था। सन् १६७२ में अकमल के नेतृत्व में अफ़रीदी उठ खड़े हुए। उन्होंने मीर जुमला के बेटे से, जो काबुल की सूबेदारी पर जाता था, दो करोड़ रुपया लूट लिया, और ख़ैबर का रास्ता बन्द कर दिया। खटक अफ़ग़ानों का नेता

खुशालखाँ नामक कवि था। वह भी अकमल से जा मिला और कन्दहार से अटक तक सब पठान विद्रोह में शामिल हो गये। शाहज़ादा अकबर को कोहाट के रास्ते काबुल भेजा गया। आगरखाँ तुर्क और जसवन्तसिंह को कई घमासान लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। औरंगज़ेब खुद हसन-अब्दाल तक आया। पाँच वर्ष बाद पठानों को घूस दे कर खैबर का रास्ता खुलवाया गया। तब अमीरखाँ को काबुल की सूबेदारी दी गयी। वह पठान फ़िरकों को एक दूसरे के खिलाफ़ उभाड़ने में सिद्धहस्त था। इस नीति से उसने २१ वर्ष तक शासन किया (१६७७-६८ ई०)। इस बीच में अकमल मर गया और खुशाल को उसके बेटे ही ने पकड़वा दिया (१६६० ई०)।

§२. **शिवाजी की शासन-व्यवस्था**—शिवाजी ने तीन वर्ष मुगलों से शान्ति रक्खी। इस बीच में उसने एक बार पुर्त्तगालियों से गोवा छीनने की विफल चेष्टा की। शाहज़ादा मुअज़्ज़म अब दक्खिन का सूबेदार था। शिवाजी ने अपने बेटे सम्भाजी और सेनापति प्रतापराव गूजर को उसके दरबार में रक्खा। इस बीच शिवाजी का ध्यान अपने 'स्वराज्य' का सुप्रबन्ध करने में लगा था। उसकी शासनव्यवस्था में निम्नलिखित विशेषताएँ थीं—

(१) लगान वसूल करने वाले ठेकेदारों को हटा कर उसने कृषकों के साथ राज्य का सीधा सम्बन्ध कर दिया।

(२) सैनिक और मुल्की कर्मचारियों का कार्य बहुत अंश तक अलग-अलग कर दिया, और कर की वसूली तथा देश-प्रबन्ध मुल्की कर्मचारियों को सौंप दिया।

(३) कर्मचारियों को जागीर के बजाय नक़द वेतन देने का प्रबन्ध किया।

(४) 'अष्ट प्रधान' नाम की मन्त्रियों की एक समिति स्थापित की। इसकी कोई स्वतन्त्र शक्ति न थी, तथा इसका मुख्य नेता पेशवा कहलाता था।

(५) सुनियन्त्रित सेना और क़िलों की सुशृंखल व्यवस्था की।

(६) अपने शासन में उदार धार्मिक नीति से काम लिया। लूट के समय भी शिवाजी की सेना को सख़्त ताकीद थी कि बच्चों और स्त्रियों को कभी न पकड़ें, और मन्दिरों-मस्जिदों तथा धर्मपुस्तकों को कभी न बिगाड़ें।

(७) अपने "स्वराज्य" के बाहर "मुगलाई" के इलाकों से "चौथ" और "सरदेशमुखी" तलब की। चौथ अर्थात् मालगुज़ारी का चौथाई माँगने में उसकी दलील यह होती थी कि "तुम्हारे बादशाह ने मुझे अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए फ़ौज रखने को बाधित किया है। उसका ख़र्चा तुम्हें देना होगा।" चौथ न देने वालों को लूटा जाता था; देने वालों की रक्षा का भार लिया जाता था। वह एक क़िस्म का ख़िराज था। ज़मीन के ज़मींदार, देशमुख या वतनदार का मालगुज़ारी में १० रुपया सैकड़े का हक सरदेशमुखी कहलाता था। यह लगान वसूल करने की ज़िम्मेदारी के बदले में था। इस प्रकार शिवाजी का दावा था कि वह सारे दक्खिन की मालगुज़ारी स्वयम् वसूल करेगा और उसकी रक्षा का ज़िम्मा अपने ऊपर लेगा।

§३. औरङ्गज़ेब की हिन्दू-विरोधी नीति—औरङ्गज़ेब अपनी धर्मान्धता का प्रमाण पहले ही दे चुका था। प्रसिद्ध सन्त मियाँमीर के शिष्य शाह मुहम्मद को बुला कर उसने डाँटा, तथा सरमद नामक सूफ़ी को फाँसी दिला दी थी। अब उसकी नीति उग्र रूप में प्रकट हुई। बिक्री के माल पर अढ़ाई रुपया सैकड़ा चुङ्गी लगती थी। हिन्दुओं पर वह चुङ्गी पाँच रुपये सैकड़ा कर दी गयी। इसके बाद मुसलमानों के माल पर से महसूल बिलकुल उठा दिया गया। मुसलमान बनने वालों को सरकारी ओहदे, तरक्क़ी तथा कैद की माफ़ी आदि मिलने लगीं। दिल्ली और अन्य बड़े-बड़े शहरों में सङ्गीत बन्द करा दिया गया। शहरों में होली, दिवाली और मुहर्रम के जुलूस निकालना तथा स्त्रियों का क़ब्रें पूजना रोका गया। 'काफ़िरों' के मन्दिर और विद्यालय ढहा देने का हुक्म निकाला गया (१६६९ ई०)। उसके बाद सब हिन्दू पेशकारों और दीवानों को राजकीय सेवा से निकालने का हुक्म हुआ; पर पीछे आधे पद हिन्दुओं को देने पड़े। इसके बाद मूर्तिपूजा रोकने का फ़रमान निकाला गया। अन्त में औरङ्गज़ेब ने ग़ैर-मुस्लिमों पर फिर से जज़िया लगा दिया (१६७९ ई०)। जज़िया एक किस्म का मुंड-कर था, इसलिए ग़रीबों पर उसका बोझ अधिक पड़ता था।

§४. शिवाजी का पिछला चरित (१६७०–८० ई०)—सन् १६७० ई० से शिवाजी ने फिर लड़ाई छेड़ दी। पुरन्दर की सन्धि के अनुसार जो क़िले



शिवाजी
(मीर मुहम्मद कृत १६८६ ई० से पहले का चित्र जो अब पैरिस के राष्ट्रीय पुस्तकालय में है ।

उसने मुग़लों को दे दिये थे, उनको एक-एक कर के फिर छीन लिया। उसने सूरत को फिर लूटा और बराड तथा बागलान (नासिक और सूरत के बीच के पहाड़ी इलाके) पर चढ़ाई कर साल्हेर का गढ़ ले लिया (१६७० ई०)। सन् १६७१ के अन्त में बहादुरखाँ को दक्खिन का सूबेदार बना कर भेजा गया। दिलेरखाँ पठान उसका सहायक था। उन्हें कोई स्थायी सफलता न हुई। शिवाजी ने बागलान का दूसरा बड़ा गढ़ मुल्हेर भी ले लिया। इसके बाद उसने सूरत के ठीक दक्खिन के कोंकण के प्रदेश—कोलवन—और नासिक ज़िले के कुछ अंश पर भी दख़ल कर लिया (१६७२ ई०)। फिर बराड और तेलङ्गाना तक कई धावे मारे। सन् १६७२ से १६७७ ई० तक शिवाजी मुग़ल इलाक़ों पर बराबर धावे मारता रहा। बहादुरखाँ और दिलेरखाँ ने उसे किसी और इलाक़े पर दख़ल न करने दिया, पर वे उसके धावे न रोक पाते थे। सन् १६७२ में बीजापुर का अली आदिलशाह मर गया। तब शिवाजी ने दक्खिन की ओर बढ़ कर पन्हाला और सतारा ले लिये, तथा हुबली और कनाडा पर भी धावे किये।

सन् १६७४ के शुरू में दिलेरखाँ ने कोंकण पर और बीजापुरियों ने पन्हाला तथा सतारा पर एक साथ चढ़ाई की; पर उन्हें कोई सफलता न मिली। उसी समय दिलेरखाँ को अपने पठान भाइयों से लड़ने के लिए उत्तरी सीमान्त पर बुला लिया गया। उसी बरस शिवाजी ने रायगढ़ में अपना अभिषेक कराया और तब से वह शिव छत्रपति कहलाने लगा। अब वह एक विद्रोही सरदार नहीं था, बल्कि स्वतन्त्र राजा हो गया था। अभिषेक के एक महीना पीछे उसने बहादुरखाँ की छावनी पर धावा बोल कर एक करोड़ रुपया लूट लिया। दूसरे बरस बहादुरखाँ को सन्धि की बातों में बहका कर उसने बीजापुर से फोंडा (गोवा के पास) का किला, कोल्हापुर और कनाडा का तट (कारवार, अंकोला) छीन लिये। इसी समय बेदनूर की रानी ने शिवाजी की अधीनता मान कर वार्षिक कर देना शुरू किया।

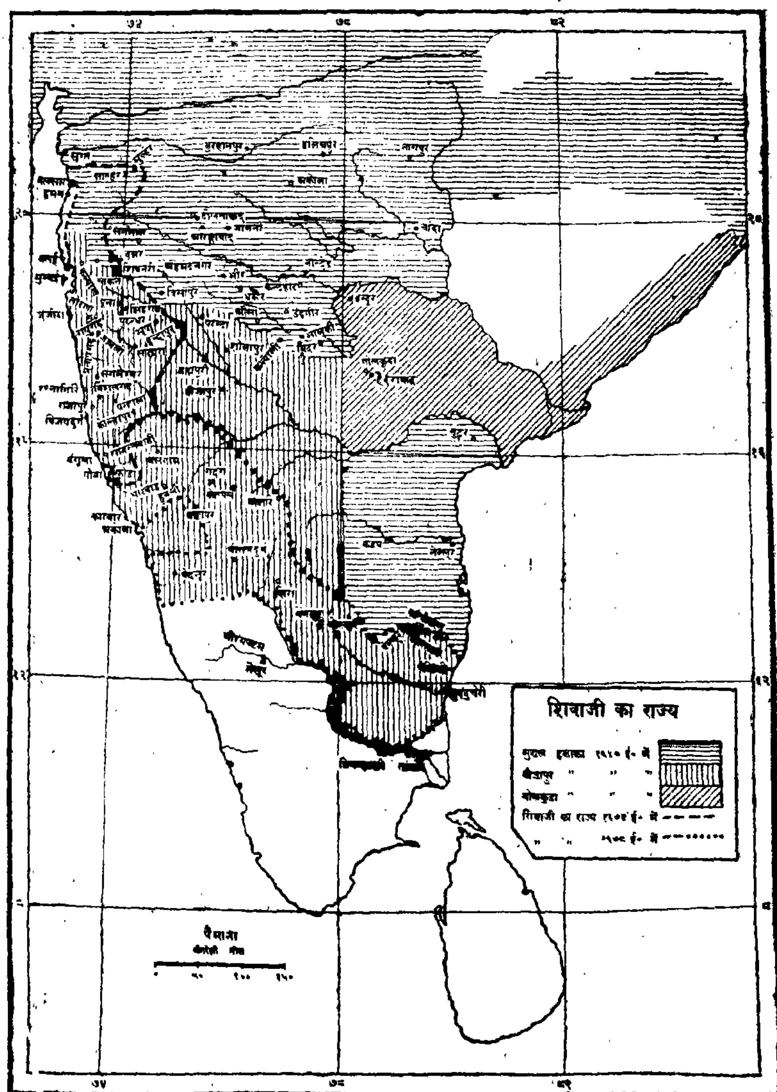
ताञ्जोर में शाहजी की जागीर का उत्तराधिकारी उसका छोटा बेटा व्यङ्कोजी हुआ था। उसका मन्त्री रघुनाथ नारायण हनुमन्ते था। हनुमन्ते व्यङ्कोजी को

छोड़ कर शिवाजी की तरफ़ चला आया, और रास्ते में गोलकुण्डा के वज़ीर मदन्न पण्डित से मिला। उनकी योजना के अनुसार कुतुबशाह ने एक लाख होन (सोने का सिक्का) वार्षिक शिवाजी को देना क़बूल कर के मुग़लों से गोलकुण्डा की रक्षा का भार उसे सौंप दिया (१६७६ ई०)। शिवाजी का दूत प्रह्लाद नीराजी गोलकुण्डा में रक्खा गया। बहादुरख़ाँ अब बीजापुर को



सेनापति अक्कन्न—एक समकालीन ओलन्देज चित्र [भा० पु० वि०]

दबाने में लगा था, और शिवाजी को भी दूर जाना था, इसलिए दोनों ने समझौता कर लिया। शिवाजी ने महाराष्ट्र का राज्य-कार्य पेशवा मोरो पिङ्गले को सौंपा और स्वयम् सन् १६७७ के शुरू में रायगढ़ से सीधे हैदराबाद की ओर प्रस्थान किया। वहाँ उसका ख़ूब स्वागत किया गया। कुतुबशाह ने


शिवाजी का राज्य
बीजापुर
शिवाजी का राज्य
बुरहानपुर
एलिचपुर
नागपुर
अकोला
औरंगाबाद
अहमदनगर
बीड
उदगीर
चाँदा
पूना
रत्नागिरि
राजापुर
विजयदुर्ग
गोआ
कारवार
मैसूर
श्रीरंगपट्टम
पांडुचेरी
पैमाना

५,००० हज़ार सेना, तोपखाना तथा चढ़ाई का तमाम खर्चा दे कर शिवाजी को विदाई दी। कृष्णा नदी पार कर शिवाजी ने "कर्णाटक" पर चढ़ाई की, और वेल्लूर से ताञ्जोर की सीमा तक सब देश जीत कर महाराष्ट्र के ढङ्ग पर उसका फ़ौजी और माली बन्दोबस्त किया। हनुमन्ते के हाथ में उसका प्रबन्ध छोड़ कर असल कर्णाटक के पूरबी छोर से वह वापिस लौटा। कर्णाटक में कोल्हार, बेङ्गलूर, सेरा, बेल्लारि, कोप्पल और धारवाड़ को अधीन करके और उसका एक प्रान्त बना कर वह पन्हाला लौट आया (१६७८ ई०)। उसके बाद उसने पन्हाला से तुङ्गभद्रा तक बीजापुर का इलाका जीत कर अपने कर्णाटक के प्रान्त को महाराष्ट्र से जोड़ दिया।

इस बीच दिलेरखाँ फिर दक्खिन लौट आया था। शिवाजी को मदद देने के दण्ड में उसने कुतुबशाह से एक करोड़ रुपया तलब किया, जिससे दोनों मे युद्ध छिड़ गया। गोलकुण्डा के सेनापति अक्कन्न ने उसे हराया। यह वज़ीर मदन्न का भाई था। शिवाजी ने 'कर्णाटक' की विजयों में से कुतुबशाह को कुछ भी न दिया। इससे कुतुबशाह ने अब उससे लड़ना चाहा, पर वह कुछ न कर सका।

शिवाजी का बड़ा बेटा सम्भाजी दुश्चरित्र था। उसके एक अपराध के कारण उसे पन्हाला में नज़रबन्द किया गया था; वह भाग कर दिलेरखाँ से जा मिला! किन्तु कुछ समय बाद वह ऊब कर वापिस आ गया।

जब औरङ्गज़ेब ने जज़िया लगाया, तो शिवाजी ने एक पत्र लिख कर उसका प्रतिवाद किया। दूसरे वर्ष, कुछ दिन की बीमारी के बाद, एकाएक शिवाजी का देहान्त हो गया (५-४-१६८० ई०)।

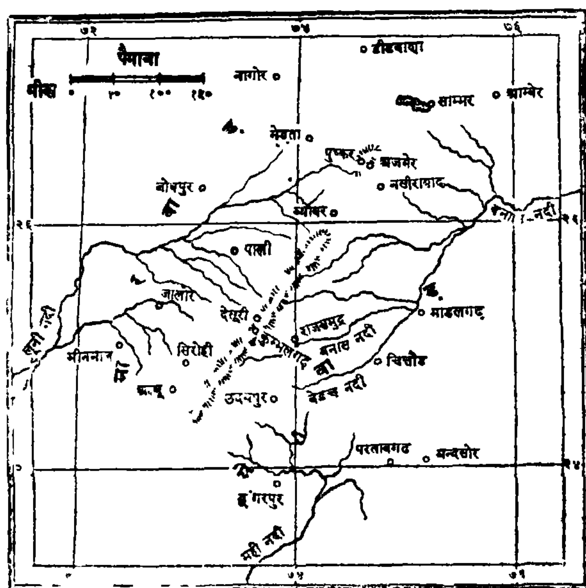
§५. उत्तर भारत में हिन्दुओं के विद्रोह (१६६६-७६ई०)—औरङ्गज़ेब के हुक्म के मुताबिक जब मथुरा में मन्दिर तोड़े गये, तब गोकला जाट के नेतृत्व में वहाँ के किसान बिगड़ उठे (१६६६ ई०)। मथुरा का फ़ौजदार उनसे लड़ता हुआ मारा गया। दोआब और आगरा तक बलवा फैल गया, जिसे दबाने के लिए बादशाह को स्वयम् जाना पड़ा। अन्त में तोपों के मुकाबले में जाट हार गये तथा गोकला कैद हुआ और मार डाला गया।

उज्जैन में जो शाही कर्मचारी मन्दिर तोड़ने गये, उन्हें प्रजा ने मार डाला। ओरछा में उन्हें बुन्देलों ने मार भगाया। दिल्ली के पच्छिम नारनौल का ज़िला सतनामी पन्थ का केन्द्र था। वह पन्थ राजपूत, बनिये इत्यादि कमी ज़ातों के मिश्रण से बना था। १६७२ ई० में सतनामियों ने विद्रोह किया और वे दिल्ली के पास तक जा पहुँचे। अन्त में तोपों और बड़ी फ़ौजों के मुकाबले में वे भी परास्त हुए।

तेग़बहादुर जब सिक्खों के गुरु बने तो औरंगज़ेब ने उन्हें दिल्ली बुलाया। वहाँ से राजा रामसिंह उन्हें आसाम ले गया। आसाम से लौट कर गुरु ने पंजाब में फिर छेड़-छाड़ शुरू कर दी और कश्मीर के हिन्दुओं को भड़काया कि वे मुसलमान न बनें। बादशाह ने तेग़बहादुर को दिल्ली बुला कर मुसलमान होने को कहा, परन्तु उसका हुक्म न मानने पर उन्हें अपनी जान देनी पड़ी (१६७५ ई०)। दिल्ली में सीसगंज गुरुद्वारा उस घटना का स्मारक है।

§६. छत्रसाल का उदय (१६७१–७६ ई०)—अपने माता-पिता की मृत्यु पर छत्रसाल बुन्देला केवल ग्यारह बरस का था। अपने देश में तब उसे कोई शरण न देता था। उस दशा में उसने राजा जयसिंह की सेवा स्वीकार कर ली थी। जयसिंह के साथ वह पुरन्दर और बीजापुर गया, और फिर दिलेरखाँ के साथ गोंडवाना की चढ़ाई में। वहाँ से वह एक दिन अपनी स्त्री कमलावती के साथ खिसक गया और महाराष्ट्र में पहुँच कर शिवाजी से मिला (१६७१ ई०)। शिवाजी ने उसे अपने देश में जा कर सिर उठाने की सलाह दी। छत्रसाल तब दतिया के राजा शुभकर्ण बुन्देला से मिला, जो मुग़लों की तरफ़ से दक्खिन में लड़ रहा था। छत्रसाल के राष्ट्रीय विद्रोह के प्रस्ताव को शुभकर्ण ने पागलपन कहा और उसे एक अच्छा मनसब दिलाना चाहा। छत्रसाल ने वह मंजूर न किया। ५ सवारों और २५ पियादों की अपनी सेना लिये वह बुन्देलखंड पहुँचा, और पूरबी बुन्देलखंड को आधार बना कर धामुनी ज़िले पर धावे करने लगा। वहाँ के कई फ़ौजदारों को उसने बारी-बारी से हराया।

§७. **राजपूत युद्ध** (१६७९–८१ ई०)—१६७८ ई० के अन्त में राजा जसवन्तसिंह जमरूद में ही मर गया। उसके पीछे कोई सन्तान न थी। औरंगज़ेब ने मारवाड़ राज्य को ज़ब्त करना तय कर तुरन्त शाही फ़ौजदार भेज दिये और स्वयम् बड़ी फौज के साथ अजमेर पहुँच गया। उधर जसवन्त की विधवा ने लाहौर में एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम अजित रक्खा गया।



राजपूत युद्ध

दुर्गादास राठौड़ राजपरिवार को दिल्ली ले आया। मारवाड़ से औरंगज़ेब जिस दिन दिल्ली पहुँचा (२ ४-७९ ई०), उसी दिन उसने सारे साम्राज्य में जज़िया लगा दिया। उसने दुर्गादास से अजित को तलब किया, और उसे मुसलमान बनने की शर्त पर राज्य देना स्वीकार किया। मुट्ठी भर साथियों के साथ दुर्गादास रानियों और उस बालक को ले कर निकल भागा। मुग़ल फ़ौज

ने तब मारवाड़ पर चढ़ाई की। बादशाह ने खुद अजमेर में डेरा जमाया। पुष्कर घाटी की लड़ाई में राजपूतों का भारी संहार हुआ। मारवाड़ के मैदान पर शाही फौज ने कब्ज़ा कर लिया और राजपूतों ने पहाड़ों और जङ्गलों की शरण ली।

मेवाड़ के राणा राजसिंह ने अजित का पक्ष लिया। तब औरङ्गज़ेब ने उदयपुर पर भी चढ़ाई की। राणा पहाड़ों में और अन्दर चला गया। शाही फौज ने चित्तौड को अपना आधार बनाया। राजसिंह का आधार तब आडावला की चोटी पर कुम्भलमेर का गढ़ था। उसके पच्छिम मारवाड़ में और पूरब मेवाड़ में दोनों तरफ़ मुग़ल फ़ौजें थीं। औरङ्गज़ेब ने तीन तरफ़ से राणा के केन्द्र तक घुसने की योजना की। शाहज़ादा अकबर को मारवाड़ से देसूरी और झीलवाड़ा घाटियों द्वारा, शाहज़ादा मुअज़्ज़म उर्फ़ शाहआलम को उत्तर से राजसमुद्र के रास्ते, तथा शाहज़ादा आज़म को उदयपुर के रास्ते कुम्भलमेर पहुँचने का आदेश मिला। मुअज़्ज़म और आज़म एक पग भी न बढ़ सके। अकबर ने अपने हरावल को झीलवाड़ा तक पहुँचा दिया। आगे आठ मील पर कुम्भलमेर था। राजसिंह और दुर्गादास ने तब अकबर को फोड़ लिया। उन्होंने उसे समझा कर कहा कि तुम्हारा बाप अपनी धर्मान्धता से साम्राज्य को नष्ट किये डालता है, तुम अपनी बपौती को बचाओ। बात पक्की हुई, पर उस समय राजसिंह का देहान्त हो गया और एक मास शोक मनाने में टल गया।

१ जनवरी सन् १६८१ को अकबर ने अपने को बादशाह घोषित किया। चार मुल्लाओं ने औरङ्गज़ेब के खिलाफ़ फ़तवा दे दिया। पर एकाएक अजमेर पर टूटने के बजाय अकबर ने वहाँ तक पहुँचने में १५ दिन लगा दिये। इस बीच में सब फ़ौजें वहाँ आ जुटी थीं। राजपूत सेना के निकट आने पर औरङ्गज़ेब ने झूठी चिट्ठी की वही चाल चली जिस से शेरशाह ने मेड़तों पर सफलता पायी थी। ग़लती मालूम होने पर दुर्गादास ने अकबर को शरण दी। राजपूताना में उसे सुरक्षित न जान, उसने मुग़ल सूबों को चीरते हुए उसे सम्भाजी के दरबार में रायगढ़ पहुँचा दिया।

इधर कुछ मास बाद राजसिंह के बेटे जयसिंह ने बादशाह से सन्धि कर ली। जज़िये की माँग के बदले में उसने तीन परगने सौंप दिये। मारवाड़ बादशाह के कब्ज़े में रहा।

§८. **मुग़ल साम्राज्य का अन्तिम विस्तार** (१६८१–८६ ई०)—शिवाजी की मृत्यु के बाद अष्ट प्रधान ने रायगढ़ में उस के छोटे बेटे राजाराम को राजा घोषित किया; पर सम्भाजी ने तुरन्त रायगढ़ पर चढ़ाई कर उसे क़ैद में डाल दिया और उसके साथियों का दमन किया। उसने अष्ट प्रधान की परवा न की, और प्रयाग के एक कनौजिया पंडे 'कविकुलेश' को, जो मन्त्र-तन्त्र और कृत्या-अभिचार में कुशल था, अपना सलाहकार बनाया। महाराष्ट्र के लोग इस कारण उससे और भी घृणा करने लगे।

मराठों और अकबर का मेल ख़तरनाक था, इसलिए राणा जयसिंह से सन्धि कर औरङ्गज़ेब सीधा दक्खिन आया। उसने महाराष्ट्र के ख़िलाफ़ बीजापुर से भी मदद लेनी चाही। परन्तु बीजापुर और गोलकुण्डा के सुल्तान अब यह *अनुभव करने लगे थे कि उनके राज्य यदि मुग़लों के हाथ में जाने से बचे हैं* तो केवल मराठा राज्य की बदौलत; इसलिए उन्होंने मराठों को मदद दी।

औरङ्गज़ेब के दक्खिन आने पर सम्भाजी जंजीरा द्वीप के सिद्दियों से लड़ने में लगा था। एक मुग़ल फौज ने उत्तरी कोंकण से घुस कर कल्याण का क़िला ले लिया (१६८२ ई०)। तब वह जंजीरा छोड़ कर उधर मुड़ा और मुग़लों को कोंकण से निकाल कर उसने कल्याण को घेर लिया। मुग़ल इलाकों पर धावे करने ही में उसने अपनी रक्षा का उपाय माना, और औरङ्गाबाद, बिदर, नान्देड और चाँदा तक धावे किये। १६८३ ई० में मुग़लों को कल्याण भी छोड़ना पड़ा। तब सम्भाजी ने कोंकण की विजय पूरी करने के लिए अकबर के साथ गोवा पर चढ़ाई की।

किन्तु मुग़लों ने फिर युद्ध छेड़ दिया। शाहआलम एक फ़ौज ले कर दक्खिनी कोंकण में घुसा, तब गोवा सम्भाजी के हाथ जाते-जाते बच गया (१६८४ ई०)। उत्तरी कोंकण में भी एक मुग़ल फ़ौज घुस आयी। इन दोनों फ़ौजों को कोंकण से निकाल कर सम्भाजी विलास में डूब गया।

औरङ्गज़ेब ने अब यह समझ लिया था कि महाराष्ट्र का दमन करने के लिए बीजापुर और गोलकुण्डा को लेना आवश्यक है। इसलिए बीजापुर पर चढ़ाई कर घेरा डाला गया। मदन्न पण्डित ने बीजापुर को मदद भेजी; तब शाहआलम को गोलकुण्डा भेजा गया। उसने हैदराबाद ले लिया। कुतुबशाह गोलकुण्डा के क़िले में भाग गया। उससे भारी हरजाना, बहुत सा इलाक़ा तथा मदन्न और अकन्न को पदच्युत करने का वचन ले कर शाहआलम वापस आया। डेढ़ बरस तक घिरे रहने के बाद इधर बीजापुर भी औरङ्गज़ेब के हाथ आ गया (१६८६ ई०)। अकबर तब कोंकण से ईरान चला गया।

बीजापुर के बाद गोलकुण्डा की बारी आयी। कुतुबशाह ने शाहआलम से मिन्नत की कि पिछले बरस की सन्धि के अनुसार उसे बचा रहने दिया जाय। पर औरङ्गज़ेब ने इस बातचीत के अपराध में ही अपने बेटे को उसके बेटों सहित क़ैद में डाल दिया! मीर शहाबुद्दीन नामक एक तूरानी सेनापति ने मेवाड़-युद्ध में बहादुरी दिखायी थी और फिर मराठा युद्ध में फ़ीरोज़जङ्ग का पद पाया था। शाहआलम की अनुपस्थिति में उसे गोलकुण्डा का घेरा सौंपा गया। अन्तिम समय कुतुबशाह ने बड़ी वीरता दिखायी। एक बरस के घोर युद्ध के बाद गोलकुण्डा का पतन हुआ (१६८७ ई०)।

मुग़ल सेना तब कर्णाटक और तामिल प्रान्तों की ओर बढ़ी और मसुलीपट्टम से पलार नदी तक उन्होंने सब इलाक़ा ले लिया; पर वहाँ उन्हें जिंजी के मराठों ने रोक दिया। उधर एक मुग़ल सेना फिर कोंकण भेजी गयी। बदहोश सम्भाजी संगमेश्वर पर पकड़ा गया (जनवरी १६८९ ई०) और औरङ्गज़ेब ने उसे अन्धा करवा कर मरवा डाला।

महाराष्ट्र के अष्ट प्रधानों ने राजाराम को क़ैद से छुड़ा कर रायगढ़ में सभा की। सम्भाजी के बेटे शिवाजी २य (उर्फ़ शाहू) का अभिषेक किया गया। उसकी माँ येसूबाई के प्रस्ताव पर राजाराम स्थानापन्न राजा बना वज़ीर आसदखाँ के बेटे इत्तिक़ादखाँ ने तब रायगढ़ को आ घेरा। राजाराम

वहाँ से निकल कर पन्हाला चला गया और रायगढ़ फ़तह हो गया। येसूबाई शाहू के साथ क़ैद हुई। इत्तिक़ाद को इसके उपहार में जुल्फ़िक़ारखाँ का पद मिला। येसूबाई के लिखने से राजाराम ने राजमुकुट धारण किया। उसने मराठा शासन का पुनर्संघटन किया, स्वयम् अपने मन्त्रियों के साथ, जिनमें प्रल्हाद नीराजी मुख्य था, जिंजी जाना तय किया, और महाराष्ट्र की रक्षा एक 'हकूमतपनाह' (अधिनायक) के हाथ में सौंप दी, जिसे राजा के सब अधिकार दिये गये। उस अधिनायक का नाम था रामचन्द्र नीलकण्ठ बावडेकर। शङ्कर मल्हार उसका सचिव था। पन्हाला से राजाराम की मण्डली अनेक जगह बाल-बाल बचती हुई जिंजी जा निकली (१६६० ई०)।

दक्खिनी छोर के सिवाय समूचा भारत अब औरङ्गज़ेब के अधिकार में आ चुका था; पर तेईस बरस पहले जैसे शिवाजी उसके हाथ से निकल गया था, वैसे ही इस बार राजाराम निकल गया।

६६. **महाराष्ट्र का स्वतन्त्रता-युद्ध** (१६६०–१७०७ ई०)—राजाराम जब जिंजी पहुँचा तो उसके पास न कोई इलाक़ा था, न कोष और न सेना। तो भी उसने अपने शासन का फिर से संघटन किया। उसने पेशवा से भी ऊँचा 'प्रतिनिधि' का एक नया पद बनाया, और उस पर प्रह्लाद नीराजी को नियुक्त किया। शिवाजी की जागीर न देने की नीति अब उसने छोड़ दी और मराठा सरदारों को मुग़ल इलाक़ों में जागीरें बाँट कर उन्हें जीतने की इजाज़त और प्रेरणा दी। सेनापति सन्ताजी घोरपडे और धनाजी जादव राजाराम को जिंजी पहुँचा कर महाराष्ट्र लौट आये। जुल्फ़िक़ारखाँ ने जिंजी का घेरा डाल दिया।

महाराष्ट्र में केवल तीन क़िले मराठों के पास बचे थे; पर रामचन्द्र ने तीन और वापस ले लिये। उधर जिंजी का घेरा और मज़बूत किया गया। वज़ीर आसादखाँ और शाहज़ादा कामबख़्श भी वहाँ भेजे गये। रामचन्द्र ने महाराष्ट्र से ३० हज़ार सेना जमा कर सन्ताजी और धनाजी को उधर भेजा। सन्ताजी ने तामिलनाड में पहुँचते ही दो मुग़ल फ़ौजदार पकड़ लिये और

कडप से काञ्ची तक सब मुग़ल थाने उठा कर अपने फ़ौजदार बैठा दिये। ज़ुल्फ़िक़ार को अपनी फ़ौज समेटनी पड़ी। अब सन्ताजी ने उल्टा उसे घेर लिया (१६६२ ई०)। औरङ्गज़ेब ने यह देख कर घिरी हुई फ़ौज को कुमुक भेज कर बचाया। सन्ताजी का स्वभाव उग्र था, अतः राजाराम ने अब मुख्य सेनापति का पद धनाजी को दिया (१६६३ ई०)। इससे सन्ताजी रूठ कर महाराष्ट्र चला आया। इधर उसने हैदराबाद तक धावे मारे और ज़ुल्फ़िक़ार ने फिर जिञ्जी को घेर लिया।

दक्खिन के सब सूबों में मराठों ने अपने सूबेदार, कामविशदार और राहदार नियत कर दिये। कामविशदार मालगुज़ारी की चौथाई वसूल करते और राहदार चुङ्गी लेते थे; सूबेदार उनकी मदद के लिए ७ हज़ार सेना के साथ रहते थे। हर सूबे के दुर्गम स्थानों में उन्होंने गढ़ियाँ बना लीं, जहाँ वे कठिनाई के समय शरण ले सकें। अनेक गाँवों के मुखियों ने मराठों से मिल कर मुग़लों को कर देना बन्द कर दिया; अनेक मुग़ल हाकिम ख़ुद चौथ देने लगे। स्थानीय प्रजा दुहरे हाकिमों से तङ्ग आ कर सभी जगह मुग़लों के ख़िलाफ़ लड़ने को तैयार हो गयी। उत्तर भारत पर भी दक्खिन का प्रभाव पड़ने लगा। औरङ्गज़ेब ने जब देखा कि वह दक्खिन पर काबू नहीं कर सकता तो उसने जल्दी दिल्ली लौटने का इरादा छोड़ कर भीमा के किनारे ब्रह्मपुरी पर अपनी स्थायी छावनी डाल दी, और शाहआलम को क़ैद से छोड़ कर उत्तर-पच्छिमी सीमान्त की रक्षा के लिए भेज दिया (१६६५ ई०)।

इसी वर्ष के अन्त में सन्ताजी बीजापुर ज़िले में और धनाजी भीमा पर प्रकट हुए; कई मराठे सरदार बराड़ और ख़ानदेश पर टूट पड़े। धनाजी ने भीमा से जिञ्जी पहुँच कर वहाँ का घेरा फिर उठवा दिया। सन्ताजी ने चीतलद्रुग ज़िले में एक फ़ौजदार को बड़ी सफ़ाई से पकड़ कर और दूसरे को मार कर उनकी फ़ौजों को कुचल दिया। मुग़ल फ़ौज में उसकी ऐसी धाक जम गयी कि जब कोई घोड़ा पानी पीने में अटकता तो उससे कहते—'क्या तुझे पानी में सन्ताजी दिखायी देता है ?'

दक्खिन में युद्ध की प्रगति का अब यह रूप हो गया था कि उसका आरम्भ हमेशा सन्ताजी की ओर से होता, और मुग़ल नेताओं को अपनी रक्षा का ढङ्ग सोचना पड़ता। ब्रह्मपुरी के पड़ोस तक उसके दल धावे मारते थे। अपनी इन विजयों के बाद सन्ताजी जिञ्जी गया, और उसने फिर सेनापति बनना चाहा। प्रह्लाद नीराजी अब मर चुका था। धनाजी और सन्ताजी में परस्पर लड़ाई हो गयी। राजाराम ने धनाजी का पक्ष लिया। धनाजी हार कर भागा; राजाराम को सन्ताजी ने पकड़ लिया और फिर उसके आगे हाथ जोड़ कर कहा, "मैं अब भी तुम्हारा सेवक हूँ!" दोनों नेताओं के महाराष्ट्र पहुँचने पर फिर घरेलू युद्ध हुआ। सन्ताजी के कठोर नियन्त्रण से तङ्ग आ कर उसकी सेना धनाजी से जा मिली; तब उसे अकेला भागना पड़ा। पीछे उसके एक शत्रु ने बदला चुकाने के लिए उसे मार डाला (१६९७ ई०)।

उसी साल जिञ्जी का घेरा फिर कसा गया। तब सात साल पीछे अन्त को ज़ुल्फ़िक़ार उसे ले पाया (१६९८ ई०)। इस विजय के उपहार में उसे नसरतजङ्ग का पद मिला। किन्तु राजाराम फिर निकल गया था और अब वह विशालगढ़ जा पहुँचा।

औरङ्गज़ेब ने अब महाराष्ट्र के गढ़ ले कर मराठों के दमन का अन्तिम यत्न शुरू किया। ब्रह्मपुरी में अपना बुङ्गा (आधार) रख कर वह मराठा गढ़ों को जीतने के लिए खुद रवाना हुआ (१६९९ ई०)। राजाराम ने बदले में बराड, खानदेश और नर्मदा पार चढ़ाई करना तय किया। देवगढ़ के गोंड राजा ने मुसलमान हो जाने के बावजूद एक तरफ़ राजाराम और दूसरी तरफ़ छत्रसाल को गोंडवाना आने का निमन्त्रण दिया। पर राजाराम ने गोदावरी काँठे और बराड पर चढ़ाई की। उसे कुछ सफलता न मिली, तो भी मराठे इस बार नर्मदा पार तक जा निकले, और उन्होंने मांडू और धामुनी को लूट लिया। उस धावे की थकान से बीमार हो कर राजाराम ने प्राण त्याग दिये (१७०० ई०)।

उसकी मृत्यु से स्वतन्त्रता-युद्ध में तिल भर फ़रक न पड़ा। उसकी स्त्री ताराबाई अपने नन्हें बच्चे को गद्दी पर बैठा कर राजकार्य चलाने लगी।

ताराबाई ने अपने पति से बढ़ कर पराक्रम और दृढ़ता दिखायी। औरङ्गज़ेब जब एक गढ़ को जा घेरता, तो गढ़ की मराठा सेना अरसे तक उसका मुकाबला करती। बाहर से मराठों के धावे शाही शिविर पर होते रहते; अन्त में गढ़ की सेना बादशाह से भरपूर इनाम पा कर, इज़्ज़त और सामान के साथ निकल जाने का वचन ले, क़िला छोड़ देती। तब बादशाह दूसरे क़िले पर चढ़ाई करता और मराठे दिये हुए क़िले को फिर ले लेने की ताक में रहते। यों साढ़े पाँच बरस में बारह क़िले बादशाह ने जीते; किन्तु महाराष्ट्र के मुख्य क़िले ले लेने पर भी वह मराठों की शक्ति न तोड़ सका। सन् १७०२ में नसरतजङ्ग को मराठा धावे मारने वालों के पीछे ६ हज़ार मील तक दौड़ना पड़ा। दूसरे बरस निमाजी शिन्दे नामक एक स्वतन्त्र मराठा सरदार ने बराड़ के फ़ौजदार को क़ैद कर लिया। फिर छत्रसाल का निमंत्रण पा उसने नर्मदा पार की, और दोनों ने मिल कर सिरोंज तथा मन्दसोर तक धावा मारा। नर्मदा के सब घाट रुक गये और बादशाह के पास हिन्दुस्तान की डाक का आना बन्द हो गया। फ़ीरोज़जङ्ग तब निमाजी के पीछे भेजा गया और निमाजी हार कर बुन्देलखण्ड के रास्ते वापस भाग आया।



औरङ्गज़ेब [भा० क० भ०, काशी]

अन्त में औरङ्गज़ेब ने दिल्ली लौटने का निश्चय किया (१७०५ ई०)। लौटती फ़ौज को घेरे हुए विजयोन्मत्त मराठा दल भी साथ-साथ बढ़ने लगा।

कभी-कभी तो वे बादशाह की पालकी तक आ पहुँचते थे ! बड़ी मुश्किलों से वह सवारी अहमदनगर पहुँची, जहाँ अठासी बरस बूढ़े औरङ्गज़ेब को अपनी 'यात्रा का अन्त' दिखायी पड़ने लगा। धनाजी ने तभी गुजरात पर चढ़ाई कर नर्मदा पर तीन मुग़ल फ़ौजों को बारी-बारी से तहस-नहस किया, और दक्खिनी गुजरात से चौथ वसूल की। दूसरे बरस अहमदनगर में अल्लाह का नाम जपते हुए औरङ्गज़ेब ने अन्तिम सांस ली (२०-२-१७०७ ई०)।

चौबीस बरस के दक्खिन के युद्ध में उसकी फ़ौज के एक लाख आदमी और तीन लाख जानवर सालाना मरते रहे। साम्राज्य की वार्षिक आमदनी शुरू में ही कम होने लगी थी, इसलिए दिल्ली और आगरे के पुराने ख़ज़ाने ख़ाली हो गये। अन्त में बङ्गाल की मालगुज़ारी का एकमात्र सहारा रह गया और फ़ौज की तनख़्वाह तीन साल पिछड़ने लगी। जब अन्त में वह दिल्ली लौटने लगा तब दक्खिन के खेतों और मैदानों में मीलों तक सफ़ेद हड्डियों के ढेर बरफ़ की तरह छाये हुए दिखायी पड़ते थे।

§१०. उत्तर भारत में हिन्दुओं का उठना (१६८१--१७०७ई०)—शिवाजी की सफलता ने दूसरे प्रान्तों में भी स्वाधीनता की भावनाएँ जगा दी थीं। शिवाजी की मृत्यु के समय तक छत्रसाल भी बुन्देलखण्ड के एक अंश में उसकी तरह अपना 'स्वराज्य' स्थापित कर चुका था और उस आधार से 'मुग़लाई' (मुग़ल साम्राज्य) पर धावे कर चौथ वसूल करता था।

भरतपुर के पास सिनसिनी और सोगर गाँवों के मुखिया राजाराम और रामचेहरा ने जाटों की सेना सङ्गठित की और गढ़ियाँ बना कर सिर उठाया (१६८५ ई०)। आगरे का सूबेदार उन्हें न दबा सका तब औरङ्गज़ेब ने दक्खिन से बहादुरखाँ को, जिसे अब खानेजहाँ का पद मिल चुका था, उनके दमन के लिए भेजा। आगरे में ख़ानेजहाँ के रहते हुए राजाराम ने सिकन्दरा पर चढ़ाई की, और अकबर के मकबरे से सारा कीमती माल लूट लिया (१६८८ ई०)। उसी वर्ष रेवाड़ी के पास मेवात के फौजदार से लड़ता हुआ वह मारा गया। तब उसका भाई भज्जा और भज्जा का बेटा चूड़ामन जाटों के नेता हुए। औरंगज़ेब ने रामसिंह कछवाहा के बेटे बिशनसिंह को, जिसने

सतनामियों को दबाने में भी भाग लिया था, मथुरा का फ़ौजदार बनाया। उसने सिनसिनी और सोगर की गढ़ियाँ छीन लीं (१६९०-९१ ई०)। तब चूड़ामन भाग कर गलों में जा छिपा।

जोधपुर रियासत में सन् १६८१ से १६८६ ई० तक मुग़लों और राठोड़ों की कशमकश चलती रही। जैसलमेर के भाटी भी राठोड़ों से मिल गये थे (१६८२ ई०)। "सूर्यास्त के बाद मुग़ल राज केवल थानों में रह जाता, और मैदान पर अजित का राज होता था।" अकबर को महाराष्ट्र से विदा कर दुर्गादास मारवाड़ लौटा (१६८७ ई०)। तब फिर युद्ध शुरू हुआ। उसने मारवाड़ के सब मुग़ल थाने उठा दिये, और रोहतक-रेवाड़ी पर धावा कर दिल्ली के करीब तक जा निकला। वहाँ उस समय राजाराम जाट भी बलवा किये हुए था। फिर उसने अजमेर पर धावा बोला (१६९० ई०)। मुग़ल सरकार ने राठोड़ों को राह-चुंगी की चौथ देना स्वीकार कर कुछ शान्त किया और सन्धि की बातें शुरू कीं जो बरसों तक चलती रहीं। अजित भी ढीला पड़ गया। दुर्गादास ने स्वयम् ब्रह्मपुरी पहुँच कर सन्धि की (१६९८ ई०)। उसे पाटन की फ़ौजदारी दी गयी, मगर अजित को राज नहीं मिला। शाहज़ादा आज़म के गुजरात के सूबेदार बनने पर दुर्गादास को दरबार में बुला धोखे से मारने का यत्न किया गया (१७०१ ई०); पर उसको इसका पता लग गया और वह भाग निकला। इसके बाद फिर विद्रोह छिड़ा, पर अजित के मतभेद से वह विफल हुआ। गुजरात की चढ़ाई में धनाजी जादव के जीतने की खबर मिलने पर मारवाड़ में भी फिर बलवा हुआ और औरंगज़ेब के मरते ही अजितसिंह ने जोधपुर ले लिया।

सन् १६८९ से १६९२ ई० तक मुग़ल साम्राज्य अपने चरम उत्कर्ष पर था। खुशालख़ाँ खटक, सम्भाजी और राजाराम जाट मारे जा चुके थे; छत्रसाल दबा हुआ था। महाराष्ट्र के ६-७ गढ़ों और जिंजी के सिवाय समूचा भारत मुग़लों के पैरों तले था। पर रामचन्द्र ने जब उस दशा में भी महाराष्ट्र से ३० हज़ार सेना खड़ी कर ली, और सन्ताजी ने उस सेना से जिंजी पर मुग़ल शक्ति तोड़ दी तो १६९३ ई० से पाँसा पलट गया।

सन्ताजी की विजयों की प्रतिध्वनि उत्तर भारत में भी हुई। जाट और बुन्देले फिर उठ खड़े हुए। पंजाब में सिक्खों ने भी शिवाजी के ढंग पर युद्ध छेड़ना चाहा। छत्रसाल ने धामुनी और कालञ्जर के क़िले ले लिये और भेलसा को लूटा। वह सारे मालवा पर भी धावे मारता रहता था। बराड़ में निमाजी शिन्दे और गोंडवाना का राजा बख़्तबुलन्द उसे सहयोग देते थे। १७०५ ई० में फ़ीरोज़जंग ने औरंगज़ेब से छत्रसाल की सन्धि करवा दी। जाटों के नये बलवे को दबाने के लिए शाहआलम आगरा का सूबेदार बनाया गया (१६६५ ई०)। चूड़ामन तब फिर जंगलों में भाग गया और नयी गढ़ियाँ बनाता रहा। १७०४ ई० में उसने सिनसिनी फिर वापिस ले ली, पर १७०५ और १७०७ ई० में उस पर चढ़ाई कर मुग़लों ने हज़ारों जाटों का संहार किया।

अपने पिता तेग़बहादुर की मृत्यु के बाद तरुण गुरु गोविन्द ने जमना और सतलुज के बीच शिवालक की दूनों में शरण ली और वहीं वह अपनी तैयारी करता रहा। पौराणिक इतिहास की वीर गाथाओं से वह बहुत प्रभावित हुआ। उसने स्वयम् वीर-रस-पूर्ण कविताएँ रचीं। उसने सिक्खों को एक सैनिक सम्प्रदाय बना दिया (१६६५ ई०), और प्रत्येक सिक्ख के लिए पाँच ककार—अर्थात् केश, कंघा, कृपाण, कड़ा और कच्छ—धारण करने तथा सिंह नाम रखने का नियम कर दिया; जात-पाँत का भेद भूल जाने को कहा और अपने पीछे ग्रन्थ को ही गुरु मानने तथा 'ख़ालसा' (सिक्ख जनता) की पंचायत के 'गुरमत' के अनुसार चलने का आदेश दिया। इसके बाद उसने शिवाजी के रास्ते पर क़दम रक्खा। उन्हीं पहाड़ों में दो तीन गढ़ियाँ बना कर उसने पहाड़ी राजाओं को अपने साथ मिलाना चाहा, परन्तु शिवाजी का मावलियों पर जैसा प्रभाव था, गुरु गोविन्दसिंह का इन पहाड़ियों पर वैसा कभी न हुआ। सभी सिक्ख अनुयायी पंजाब के मैदान के रहने वाले थे। राजाओं ने पहले गुरु की उपेक्षा की, फिर दबाव से साथ मिल कर मुग़लों को कर देना छोड़ दिया, और अन्त में मुग़लों से हार कर वे गुरु के शत्रु बन गये। इसी समय शाहआलम जाटों का विद्रोह दबा कर पंजाब को शान्त करने पहुँचा। गुरु गोविन्दसिंह

बिलासपुर रियासत में आनन्दपुर के गढ़ में घिर गये (१७०१ ई०) और अन्त में केवल ४५ साथी रह जाने पर वहाँ से निकल भागे। साथियों में से केवल ५ ही बच कर निकल सके, और भेस बदल कर छिपे रहे। गोविन्दसिंह के दो लड़के फ़तहसिंह और ज़ोरावरसिंह सरहिन्द के फ़ौजदार वज़ीरखाँ के हाथ पड़ गये, जिसने उन्हें मरवा डाला।

§११. **औरंगज़ेब के समय में फिरंगी व्यापारी और डकैत**—स्पेन से अलग होने के बाद पुर्तगाल ने इंग्लैण्ड से मैत्री रक्खी। पुर्तगाल की एक राजकुमारी अँगरेज़ राजा को ब्याही थी। उसके दहेज में पुर्तगाल के 'भारतीय उत्तरी प्रान्त' का मुम्बई द्वीप दिया गया (१६६१ ई०)। राजा ने वह द्वीप पीछे ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दे दिया। कम्पनी अपना मुख्य केन्द्र सूरत से हटा कर मुम्बई ले आयी। मुम्बई में अँगरेज़ों का व्यापार-केन्द्र बन जाने से बसई की अवनति होने लगी। औरंगज़ेब के समय में फ्रांसीसियों ने भी पूरबी तट पर चन्द्रनगर और मसुलीपट्टम में तथा जिंजी नदी के मुहाने पर पुद्दुचेरी (पांडिचेरी) में ज़मीनें खरीद कर अपनी बस्तियाँ बसा लीं (१६६६–७४ ई०)। अँगरेज़ों ने हुगली नदी में भी अपने जहाज़ चलाना शुरू किया (१६७६ ई०)।

जब ग़ैर-मुस्लिमों पर जज़िया लगाया गया, तब उसके बदले में फिरंगियों के व्यापार पर एक रुपया सैकड़ा चुंगी बढ़ाना तय हुआ। अँगरेज़ कम्पनी के लंदन के मुखिया जोशिया चाइल्ड ने यह बढ़ी हुई चुंगी न देने और साथ ही सूरत से सब कारबार हटा कर मुम्बई ले जाने का हुक्म दिया। उसने समुद्र में मुग़ल जहाज़ पकड़ कर बदला लेना चाहा। बंगाल के अँगरेज़ों को भी मुग़लों से बहुत सी "शिकायतें" थीं। बंगाल में शुजा ने अपनी सूबेदारी के समय में चुंगी के बदले एकमुश्त वार्षिक रकम लेना तय कर दिया था। अँगरेज़ चाहते थे कि बाद के सूबेदार भी वही रक़म लेते जाँय, यद्यपि उनका व्यापार १६६८ ई० से १६८० ई० तक ३४ हज़ार पौंड के बजाय डेढ़ लाख पौंड हो गया था, और यह भी सन्देह था कि वे अँगरेज़ झंडे के नीचे दूसरों का माल भी ले जाते हैं।

क़ासिमबाज़ार कोठी के मुखिया जौब चारनाक को हिन्दुस्तानी व्यापारियों का रुपया देना था। अदालत ने उसके खिलाफ़ फ़ैसला दिया, तब वह हुगली भाग गया और वहाँ की कोठी का मुखिया बनाया गया। उसके नेतृत्व में अँगरेज़ों ने हुगली शहर लूट लिया (१६८६ ई०), और वहाँ से अपना सब सामान समेट कर सुतनती गाँव (कलकत्ता) पर डेरा डाल दिया। फिर वहाँ से भी हट कर उन्होंने मेदिनीपुर के हिजली द्वीप पर दखल कर लिया और बालेश्वर का क़िला छीन लिया। इन दोनों स्थानों से निकाले जाने पर वे मद्रास चले गये। उधर मुम्बई का मुखिया जौन चाइल्ड सूरत से सब कारबार हटा कर मुम्बई ले जा चुका था और मुग़ल जहाज़ों को पकड़ने लगा था। इस पर औरङ्गज़ेब ने सब अँगरेज़ों की गिरफ्तारी का हुक्म दिया। तेलङ्गाना में बहुत से अँगरेज़ पकड़े गये। जञ्जीरा के सिद्दी ने मुम्बई द्वीप पर दखल कर वहाँ के अँगरेज़ों को क़िले में घेर लिया। तब जौन चाइल्ड ने सन्धि के लिए प्रार्थना की। औरङ्गज़ेब ने उनसे हरजाना ले कर उन्हें माफ़ कर दिया और कलकत्ता की ज़मीन ख़रीदने की इजाज़त दे दी (१६९० ई०)।

सन्ताजी घोरपडे की विजयों (१६९३--९६ ई०) से जब समूचे भारत में सनसनी मची, उसी समय बङ्गाल में दो विद्रोही ज़मींदारों ने बर्दवान, हुगली, माल्दा और राजमहल पर दखल कर लिया। उस खलबली में बङ्गाल के फिरङ्गियों को अपनी बस्तियों—कलकत्ता, चन्द्रनगर, चिंचुड़ा (चिन्सुरा)—की क़िलाबन्दी करने की इजाज़त मिल गयी। मुग़ल साम्राज्य में ये फिरङ्गियों के पहले क़िले थे।

भारतीय समुद्र में भी अब फिरङ्गी डकैतों का उत्पात क्रमशः बढ़ता गया। किसी जहाज़ में वे मुसाफ़िर या नौकर बन कर चढ़ जाते और राह में उसे छीन कर डकैती का साधन बना लेते। इस धन्धे में अँगरेज़ मुख्य थे। १६८९ ई० में अमेरिका से समुद्री डकैतों ने आ कर हिन्द महासागर को घेर लिया। कुछ मलबार तट पर घूमने लगे और कुछ ने ईरान की खाड़ी और लाल सागर के मुहाने को अपना केन्द्र बनाया। एक दल मोज़ाम्बीक जलग्रीवा में और एक सुमात्रा पर मँडराने लगा। ब्रिगमैन उर्फ़ एवोरी नामक अँगरेज़

ने एक जहाज़ छीन कर उसका नाम फ़ैन्सी रक्खा, और उससे कई मार्के की डकैतियाँ डालीं। सूरत के बन्दरगाह पर सब से बड़ा शाही जहाज़ गञ्ज-ए-सवाई था, जो हर साल हाजियों को मक्का ले जाता था। दमन और मुम्बई के बीच फ़ैन्सी ने उसका रास्ता रोका, उसकी तोपों को बेदम कर के उसे तीन दिन जी खोल कर लूटा, और मक्का से लौटी हुई अनेक सैयद स्त्रियों पर मनमाना अत्याचार किया (१६६५ ई०)। गञ्ज-ए-सवाई के सूरत पहुँचने पर सारे साम्राज्य में सनसनी मच गयी। बादशाह के हुक्म से सब अँगरेज़ क़ैद किये गये। फिरङ्गियों का व्यापार बन्द कर उनके शस्त्र और भण्डे छीन लिये गये, तोपों के चबूतरे ढा दिये गये, कोठियों की दीवारें नीची की गयीं और गिरजों में घण्टे बजना रोक दिया गया। औरङ्गज़ेब चाहता था कि फिरङ्गी व्यापारी मेहनताना ले कर अपने जङ्गी जहाज़ों द्वारा हाजी जहाज़ों की रखवाली करने का ज़िम्मा ले लें। सूरत की अँगरेज़ कोठी के मुखिया ऐनस्ले ने अन्त में बादशाह को इक़रारनामा लिख दिया, तब सब क़ैदी छोड़े गये (१६६६ ई०)।

दूसरे वर्ष किड और शिवर्स नामक दो 'महान् बदमाश' हिन्द महासागर में आये। इन में से एक अँगरेज़ था, दूसरा ओलन्देज़। अब तक डकैत लोग पराये जहाज़ छीन लेते थे; पर किड जिस जहाज़ का कप्तान था, उसे अँगरेज़ सरदारों की एक मण्डली ने इसी धन्धे के लिए तैयार करके भेजा था। किड का आधार मदगास्कर में था। उसके बेड़े पर १२० तोपें थीं। इन डाकुओं की करतूतों के कारण फिरङ्गी व्यापारियों को फिर क़ैद होना पड़ा और आगे से ओलन्देज़ों ने लाल सागर की, फ़्राँसीसियों ने ईरान की खाड़ी की तथा अङ्गरेज़ों ने दक्खिनी समुद्र की रखवाली करने का ज़िम्मा लिया (१६६८ ई०)।

परन्तु इतने पर भी समुद्री डकैती नहीं रुकी और औरङ्गज़ेब को अन्त में व्यापारियों का इक़रारनामा रद्द करना पड़ा, क्योंकि वह जानता था कि समुद्री डकैतों की पूरी रोक-थाम करना व्यापारी मण्डलियों के लिए असम्भव है। भारतीय समुद्र की रक्षा करना भारतवर्ष के सम्राट् का कर्त्तव्य था। विदेशी व्यापारियों पर उस की कोई ज़िम्मेदारी न थी। भारत-सम्राट् ने अपने को उस कर्त्तव्य-पालन में अशक्त देख कर स्वयम् उन व्यापारियों को जङ्गी बेड़े रखने को

उत्साहित किया। उन व्यापारियों के वंशजों ने भारत-सम्राट् के वंशजों को न केवल समुद्र की, प्रत्युत स्थल की भी रक्षा की चिन्ता से मुक्त कर दिया!

§१२. बहादुरशाह और उसकी सुलह की नीति—औरङ्गज़ेब यह वसीअत छोड़ गया था कि उसके तीनों बेटों में साम्राज्य बँट जाय। शाहआलम ने भी इस पर अमल करना चाहा, क्योंकि वह चाहता था कि 'ख़ुदा के बन्दों का ख़ून न बहे।' परन्तु आज़म को कुछ सूबों के राज्य से सन्तोष न था। उसने कहा, उसे चाहिए "तख़्त या तख़्ता।" धौलपुर के पास जाजौ पर लड़ाई हुई, जिसमें आज़म मारा गया और शाहआलम बहादुरशाह के नाम से हिन्दुस्तान का बादशाह हुआ।

दक्खिन से इस युद्ध के लिए चलते वक़्त आजम ने शाहू को इस शर्त पर भाग जाने दिया था कि वह बादशाह की अधीनता माने, पर उसकी माँ और भाई को नहीं छोड़ा था। बहादुरशाह ने वह स्थिति स्वीकार की। उसने गुरु गोविन्दसिंह को भी अपनी सेवा में ले लिया था। अब वह राजपूताना को शान्त करने चला। उसने आमेर के नये राजा सवाई जयसिंह की रियासत ज़ब्त की, क्योंकि जयसिंह ने आज़म का साथ दिया था। अजित को महाराजा बनाया, तो भी जोधपुर में क़ाज़ी और मुफ़्ती फिर रक्खे। इसी समय बीजापुर में कामबख़्श बादशाह बन बैठा। अजमेर से शाही सवारी सीधी दक्खिन की ओर बढ़ी और हैदराबाद के पास कामबख़्श का अन्त हुआ।

मेवाड़, मारवाड़ और आमेर के राजा पुष्कर में मिले (१७१० ई०)। उन्होंने प्रण किया कि अब से वे मुग़ल सम्राट् की अधीनता न मानेंगे, शाही ख़ानदान में अपनी बेटियाँ न देंगे और बादशाह यदि एक पर हमला करेगा तो दूसरे सब उसकी मदद करेंगे। इसके आधार पर उन्होंने आमेर और जोधपुर से मुग़लों को निकाल कर मेवात पर चढ़ाई की। बहादुरशाह ने दक्खिन से राजपूताना वापस आ कर राजाओं से फिर सन्धि की। वहीं उसने छत्रसाल और चूड़ामन को बुला कर अपनी सेवा में लिया। यों औरङ्गज़ेब के समय के सभी हिन्दू विद्रोहियों से समझौता हो गया। परन्तु इसी समय पञ्जाब से सिक्खों के नये विद्रोह की ख़बरें आने लगीं।

§१३. **बन्दा वैरागी और सिक्खों का विद्रोह** (१७१० ई०)—शाही फ़ौज के साथ हैदराबाद जाते हुए गोदावरी के तट पर गोविन्दसिंह का देहान्त हुआ। मृत्यु से पहले एक पञ्जाबी वैरागी माधोदास से उनकी भेंट हुई। गुरु ने उसे अपने अधूरे काम को आगे बढ़ाने के लिए अपनी तलवार दे कर पञ्जाब भेजा। माधोदास गुरु का 'बन्दा' बना। पूरबी पञ्जाब पहुँच कर बन्दा ने एक फ़ौज जमा की और सरहिन्द पर धावा बोल दिया। फ़ौजदार वज़ीरख़ाँ को मार कर सिक्खों ने गुरु गोविन्दसिंह के पुत्रों के क़त्ल का जी खोल कर बदला चुकाया। सरहिन्द से वे दक्खिन, पूरब और पच्छिम की ओर बढ़े। जमना और सतलुज के बीच उनका पूरा दख़ल हो गया। तब सहारनपुर लूट कर वे दोआब में बढ़े और सतलज पार कर द्वाबे में। जीते हुए इलाक़ों में वे सिक्ख फ़ौजदार नियत करते गये। बहादुरशाह अजमेर से सीधा बन्दा के दमन के लिए बढ़ा। उसके आने पर सिक्खों ने सरमौर के पहाड़ों में शरण ली, जहाँ वे लोहगढ़ नामक क़िले में घिर गये। गढ़ जीता गया, पर बन्दा भेस बदल कर निकल भागा।

उसी समय लाहौर में बहादुरशाह चल बसा और उसके चार बेटों में वहीं परस्पर लड़ाई हुई। सबसे बड़े बेटे की जीत हुई और वह जहाँदारशाह के नाम से गद्दी पर बैठा। बन्दा ने तब साधौरा और लोहगढ़ फिर ले लिये (१७१२ ई०)।

§१४. **फ़र्रुख़सियर और सैयद बन्धु**—जहाँदारशाह का भतीजा फ़र्रुख़सियर इस समय पटना में था। बिहार और इलाहाबाद के सूबेदार अब्दुल्ला और हुसेनअली दो सैयद भाई थे। उनकी मदद से फ़र्रुख़सियर ने आगरा के पास सामूगढ़ में जहाँदारशाह को हरा दिया। वह इस लड़ाई में पकड़ा गया और मारा गया। उसका वज़ीर ज़ुल्फ़िक़ारख़ाँ भी क़त्ल किया गया।

फ़र्रुख़सियर ने अब्दुल्ला को अपना वज़ीर और हुसेनअली को मीर-बख़्शी बनाया। उनकी प्रेरणा से उसने पहला फ़रमान जज़िया हटाने का निकाला (१७१३ ई०)। औरङ्गज़ेब के पिछले समय से हिन्दुस्तानी मुसलमानों और मुग़लों की स्पर्द्धा चली आती थी। 'मुग़लों' में ईरानी और तूरानी (तुर्क) सम्मिलित थे। ज़ुल्फ़िक़ार की हत्या से ईरानी दल टूट गया। तूरानियों के

अब दो मुख्य नेता थे—एक फ़ीरोज़जंग का बेटा ग़ाज़िउद्दीन फ़ीरोज़जंग (२य), जो बाद में निज़ामुल्मुल्क बना और जिसे हम सुविधा के लिए अभी से निज़ाम कहेंगे, तथा दूसरा निज़ाम का चचा मुहम्मद अमीन ख़ाँ। मुहम्मद अमीन अब दूसरा बख़्शी बनाया गया और दक्खिन की सूबेदारी निज़ाम को दी गयी। फ़र्रुख़सियर कृतघ्न और कमज़ोर था। उसने सैयदों से छुटकारा पाना चाहा; पर उसमें स्वयम् दृढ़ता न होने से तूरानी दल ने भी उसे सहयोग न दिया।



छत्रपति शाहू, शिकार खेलते हुए [भारत-इतिहास-संशोधक मण्डल, पूना]

§१८. मराठों का गृह-युद्ध (१७०८-१३ ई०)—शाहू के छूट आने पर ताराबाई ने कहा—वह सम्भाजी का बेटा नहीं, औरङ्गज़ेब का पाला हुआ नक़ली शाहू है! किन्तु ताराबाई का अपना बेटा भी पगला था और महाराष्ट्र को एक राजा की ज़रूरत थी। धनाजी जादव का एक विश्वस्त कर्मचारी बालाजी विश्वनाथ भट्ट था। उसने धनाजी को शाहू की असलियत की तसल्ली करा दी तो धनाजी ने शाहू का पक्ष लिया। सतारा का गढ़ शाहू के

हाथ आ गया। इन घटनाओं से महाराष्ट्र में घरेलू लड़ाई शुरू हुई। धनाजी १७१० ई० में मर गया, तो भी बालाजी ने धीरे-धीरे शाहू का पक्ष दृढ़ किया। अन्त में उसने ताराबाई की सौत रजसबाई से ताराबाई को क़ैद करा दिया (१७१२ ई०) और रजसबाई के बेटे सम्भाजी को कोल्हापुर में राजा बना रहने दिया। शाहू ने बालाजी को अपना पेशवा बनाया (१७१३ ई०)।

घरेलू युद्ध के कारण महाराष्ट्र में राजा की शक्ति खंडित होने से तथा मुग़ल बादशाहत की कमज़ोरी से लाभ उठा कर मराठे जागीरदार या सरंजामदार शक्तिशाली होते गये। बराड़ में कान्होजी भोंसले और दक्खिनी गुजरात में धनाजी के कर्मचारी खण्डेराव दाभाडे ने पैर जमा लिये। धनाजी के बाद खण्डेराव शाहू का सेनापति बना। कान्होजी आँग्रे ने कोंकण और समुद्र में अपनी शक्ति बना ली थी। वह शाहू का सरखेल अर्थात् जलसेनापति नियुक्त हुआ।

§१६. राजपूतों, सिक्खों और जाटों से युद्ध (१७१२--१८ ई०)— बहादुरशाह के मरते ही अजितसिंह ने मुग़ल हाकिमों को निकाल कर अजमेर ले लिया। तब हुसेन अली ने उस पर चढ़ाई की। अजित ने बिना लड़े ही सन्धि कर ली; अपने बेटे अभयसिंह को मुग़ल दरबार में भेजा और अपनी बेटी फ़र्रुख़सियर को ब्याह देना स्वीकार किया (१७१४ ई०)।

लाहौर और जम्मू का शासन मुहम्मद अमीन के सम्बन्धी अब्दुस्समद और उसके बेटे ज़करिया को सौंप कर उन्हें बन्दा के खिलाफ़ भेजा गया। साधौरा और लोहगढ़ उन्होंने ले लिये, लेकिन बन्दा फिर भाग गया। बाद में वह गुरदासपुर-मढ़ी के क़िले में घिर गया। मुग़ल समझते थे कि वह जादूगरी से निकल भागता है, इसलिए उन्होंने तम्बू से तम्बू सटा कर घेरा पूरा किया और चारों तरफ़ दीवार बना दी। इस प्रकार घिरी हुई सेना नौ मास तक वीरता से लड़ती रही। रसद ख़तम होने पर वे अपने जानवर खाते रहे। फिर उन्होंने घास-पत्ती खाना शुरू किया। जब यह सहारा भी न रहा तो हड्डियों का चूरा, और कहते हैं कि अन्त में अपनी जाँघों का माँस तक खा कर वे लड़ते रहे! बन्दा के ७४० साथी पकड़ कर पिंजरों में बन्द किये गये और दिल्ली लाये गये। वहाँ वे वीभत्स क्रूरता से मारे गये (१७१६ ई०)।

बन्दा ने सिक्ख सम्प्रदाय के दो-एक बाहरी चिन्हों पर ज़ोर न दिया था, इसीलिए कट्टर सिक्खों का एक दल, जो अपने को 'तत्व खालसा' कहता था उससे अलग हो गया। मुग़ल सरकार ने इस फूट से लाभ उठाया और अगले आठ बरस तक अब्दुस्समद ने सिक्खों का ज़ोर से दमन किया। सिक्खों को तब जंगलों के सिवाय और कहीं शरण न रही।

सामूगढ़ की लड़ाई में चूड़ामन जाट ने निष्पक्ष हो कर दोनों तरफ़ों को लूटा था। बाद में वह दरबार में हाज़िर हुआ और उसे दिल्ली से चम्बल तक के रास्तों की रक्षा का भार सौंपा गया (१७१३ ई०)। उसने इस इलाके पर पूरा अधिकार जमाना और आगे अपना इलाक़ा बढ़ाना शुरू किया। उसने बादशाह को कर देना भी छोड़ दिया तथा होडल के आगे जंगल में एक थूण गढ़ बना लिया। उस गढ़ को लेने के लिए सवाई जयसिंह भेजे गये। पर वज़ीर अब्दुल्ला दिल से चूड़ामन की तरफ़ था। पौने दो साल के घेरे के बाद गढ़ लेने के पहले ही अब्दुल्ला ने चूड़ामन से सन्धि करा दी (१७१८ ई०)।

§१७. हुसेनअली की दिल्ली पर चढ़ाई और फ़र्रुख़सियर का अन्त— फ़र्रुख़सियर और सैयदों का बिगाड़ बढ़ता गया। अन्त में समझौता हुआ, जिससे दक्खिन के सूबों का पूरा अधिकार हुसेन अली को मिला (१७१५ ई०)। फ़र्रुख़सियर ने मराठा सरदारों को गुप्त पत्र लिखे कि वे हुसेन से लड़ें, लेकिन इस खेल में हुसेन उससे बाज़ी ले गया। रामचन्द्र बावडेकर का सचिव शंकर मल्हार ताराबाई के समय में सन्यासी हो कर बनारस में रहने लगा था। वह हुसेन का मन्त्री बन कर अब उसके साथ दक्खिन को लौटा। शंकर मल्हार के द्वारा हुसेन अली ने मराठा दरबार से सन्धि की और उनकी सब माँगें पूरी कराने का वचन दिया।

उधर फ़र्रुख़सियर ने सैयद अब्दुल्ला को पकड़ने का विफल यत्न किया; फिर उसके विरोध के बावजूद जज़िया लगा दिया (१७१७ ई०)। थूण के मामले से विरोध और बढ़ा। फ़र्रुख़सियर ने अपना पक्ष दृढ़ करने को अजितसिंह को दिल्ली बुलाया, पर वह भी अब्दुल्ला की तरफ़ हो गया। फिर समझौता हुआ और गुजरात की सूबेदारी अजित को दी गयी।

अपने बेटे आलिम अली और शंकर मल्हार को दक्खिन में छोड़ कर हुसेन अली अब एक बड़ी फौज के साथ दिल्ली की ओर चला। पेशवा बालाजी विश्वनाथ और सेनापति खण्डेराव दाभाडे मराठा सेना सहित उसके साथ थे। दिल्ली पहुँच कर सैयद बन्धुओं ने अपने मित्रों की सब फौजें शहर और किले में रख लीं। मुग़ल नेता तटस्थ रहे। येसूबाई और मदनसिंह मराठों को सौंप दिये गये। तब फ़र्रुख़सियर को क़ैद कर बहादुरशाह के एक पोते को गद्दी पर बैठाया गया। जज़िया फिर हटा दिया गया। अजितसिंह को अजमेर की सूबेदारी दी गयी और उसकी बेटी—फ़र्रुख़सियर की विधवा—भी लौटा दी गयी। अजित ने उसे मारवाड़ ले जा कर फिर हिन्दू बना लिया। सवाई जयसिंह को सोरठ (काठियावाड़) और निज़ाम को मालवा का सूबा मिला। मराठों का शिवाजी के 'स्वराज्य' पर तथा समूचे दक्खिन की चौथ और सरदेशमुखी पर अधिकार माना गया।

अवसर अनुकूल देख कर छत्रसाल ने भी विद्रोह किया। बुन्देले आगरा, इलाहाबाद और मालवा सूबों की सीमाओं को लूटने लगे। इसी बीच बादशाह तपेदिक से मर गया था। उसका एक भाई बादशाह बना, पर वह भी उसी रोग का शिकार हुआ। तब सैयदों ने बहादुरशाह के एक और पोते को गद्दी दी और वह मुहम्मदशाह कहलाया।

§१८. निज़ाम का दक्खिन भागना और सैयदों का पतन (१७२० ई०)—निज़ाम मालवा जाते समय दिल्ली से अपना परिवार और सम्पत्ति सब साथ लेता गया। मालवा में उसने एक बड़ी फ़ौज खड़ी की। उसे मालवा से वापस आने का हुक्म दिया गया; किन्तु उसने उलटे दक्खिन की राह ली और असीरगढ़-बुरहानपुर के क़िलों पर अधिकार कर लिया। सैयद दिलावर-अली और भोपाल रियासत का संस्थापक दोस्त मुहम्मद रुहेला उसके पीछे भेजे गये और खण्डेराव दाभाडे के साथ आलिम अली औरङ्गाबाद से बढ़ा। ताप्ती के उत्तर और दक्खिन खण्डवा और बालापुर में दोनों फ़ौजों को निज़ाम ने बारी-बारी से हराया। दिलावर और आलिम अली मारे गये। 'बेदोस्त' रोहेला भाग गया और शंकर मल्हार क़ैद हुआ।

ये समाचार पा कर हुसेन अली बादशाह के साथ दक्खिन की तरफ़ बढ़ा। निज़ाम के चचा मुहम्मद अमीन ने रास्ते में उसका काम तमाम कर दिया। तब वह फ़ौज वापस लौटी। दिल्ली के पास लड़ाई में अब्दुल्ला भी क़ैद हुआ। उधर दिल्ली से लौट कर पेशवा बालाजी विश्वनाथ का भी उसी समय देहान्त हो गया।

§१९. **अङ्गरेज़ों की प्रमुख सामुद्रिक शक्ति** (१७०१–१८ ई०)—फ्रांस का राजा लुई चौदहवाँ (१६४३–१७१५ ई०) औरङ्गज़ेब का समकालीन था। दोनों का शासन भी बहुत कुछ एक सा था। लुई ने भी अपने पूर्वज का धार्मिक स्वतन्त्रता का फ़रमान रद् कर दिया था। १७०० ई० में स्पेन-सम्राट् का देहान्त हुआ था। उसके कोई सन्तान न थी। उसकी बहन लुई को ब्याही थी। इसलिए मृत्यु से पहले उसने वसीयत कर दी थी कि लुई का पोता उसका उत्तराधिकारी हो। इस प्रकार फ्रांस के साथ स्पेन भी लुई के कब्ज़े में आ जाता और अमेरिका में स्पेन का विशाल साम्राज्य फ्रांस को मिल जाता। इस पर युरोप के दूसरे अनेक देश गुट्ट बना कर लुई से लड़े। अन्त में लुई की हार हुई (१७१४ ई०) और स्पेन का बन्दरगाह जिब्राल्टर, जो रोम-सागर का द्वार है, इङ्गलैण्ड को मिला। उसके अलावा, इङ्गलैण्ड को स्पेन की अमेरिकन बस्तियों में आफ़्रिका से हब्शी गुलाम ले जा कर बेचने का ठेका भी मिला। वह बड़े नफ़े का व्यापार था; पहले वह फ्राँस के हाथ में था, और उससे पहले हालैण्ड के। इस प्रकार अब इङ्गलैण्ड समुद्री शक्ति में सब देशों से आगे बढ़ गया।

बङ्गाल के योग्य सूबेदार मुर्शिदकुली ख़ाँ ने अङ्गरेज़ों के व्यापार पर चुङ्गी बढ़ा दी थी। तब उनके दूत फ़रु़ख़सियर के पास गये। अजितसिंह की बेटी से फ़रु़ख़सियर का विवाह होने के समय अङ्गरेज़ डाक्टर हैमिल्टन ने फ़रु़ख़सियर की बवासीर की तकलीफ़ दूर कर दी (१७१५ ई०)। फ़रु़ख़सियर ने उसे इनाम देना चाहा, तब उसने स्वयम् कुछ लेने के बजाय यह प्रार्थना की कि बंगाल में अङ्गरेज़ जो विलायती माल लाँय उस पर चुंगी न ली जाय। इसी समय दक्खिन में मुम्बई के अङ्गरेज़ों ने कान्होजी आँग्रे को कुचलना चाहा। विजयदुर्ग और खंडेरी किलों पर उनके बेड़ों ने चढ़ाइयाँ कीं (१७१७–१९ ई०), पर वे दोनों जगह विफल हुए।

दसवाँ प्रकरण

मराठा प्रमुखता

(१७२०–१७६१ ई०)

अध्याय १

पेशवा बाजीराव

(१७२०–४० ई०)

§१. **मुहम्मदशाह—बुन्देलों, जाटों और राजपूतों से युद्ध (१७२०–२४ ई०)**—मुहम्मदशाह ने मुहम्मदअमीन को अपना वज़ीर बनाया और ख़ानेदौरान सम्सामुद्दौला नामक एक हिन्दुस्तानी मुसलमान को मीर बख़्शी। बुन्देलों का दूसरा स्वाधीनता-युद्ध अभी जारी था और छत्रसाल ने कालपी पर दख़ल कर लिया था (१७२० ई०)। उधर अजितसिंह ने विद्रोह किया और अजमेर में नये सूबेदार को न घुसने दिया। चूड़ामन जाट ने अजित और छत्रसाल दोनों को मदद भेजी। छत्रसाल को दबाने के लिए मुहम्मदख़ाँ बंगश पठान को इलाहाबाद की सूबेदारी सौंपी गयी। इसने हाल ही में अपने फ़िरके को फ़रुखाबाद के इलाके में बसाया था। बंगश ने कालपी से बुन्देलों को निकाल दिया। १७२१ ई० में मुहम्मदअमीन की मृत्यु हुई और महाराष्ट्र में खण्डेराव दाभाडे की। तब निज़ाम को दक्खिन से बुला कर वज़ारत सौंपी गयी। चूड़ामन के बेटे आपस में झगड़ते थे, उन्हें वह न मना सका तो उसने आत्मघात कर लिया। उसके भतीजे बदनसिंह ने तब सवाई जयसिंह की अधीनता मान ली (१७२२ ई०), पर उसका बेटा मारवाड़ भाग गया। तब सवाई जयसिंह और बंगश दोनों अजित के ख़िलाफ़ भेजे गये। उसने भी अधीनता मानी (१७२३ ई०)। दूसरे साल उसके छोटे बेटे बख़्तसिंह ने उसे मार डाला।

मारवाड़ से निपट कर बंगश ने जमना पार की (१७२४ ई०) और छः महीने में छत्रसाल को बाँदा के पास तक खदेड़ दिया।

मराठों को रोकने के लिए निज़ाम ने गुजरात और मालवा में अपने भाई सूबेदार नियुक्त किये। उसी समय ईरान से सफ़ावी राज्य के अन्त होने की खबर आयी। सन् १७०८ में कन्दहार के गिलज़ई अफ़ग़ान स्वतन्त्र हो गये थे। अब उन्होंने समूचा ईरान जीत लिया। इधर अब भारत का सीमान्त अरक्षित रहने लगा था। पठानों को 'सहायता' देने के लिए काबुल के सूबेदार को जो रक़म भेजी जाती थी, उसे अब ख़ानेदौरान हज़म कर लेता था। काबुल की सेना का वेतन ५-५ बरस तक पिछड़ने लगा था। निज़ाम इस कुशासन को ठीक न कर सका, तो छुट्टी ले कर दिल्ली से हट गया (१७२३ ई०)।



पेशवा बाजीराव [भा० इ० सं० मं०]

§२. बाजीराव की तैयारी (१७२०-२४ ई०)—बालाजी की मृत्यु पर शाहू ने उसके बेटे बाजीराव को पेशवा बनाया। मराठा राज्य की नीति अब क्या हो, इस पर शाहू की सभा में विचार हुआ। महाराष्ट्र में एक दक्खिनी दल था जिसका कहना था कि हम पहले अपने 'स्वराज्य' को सशक्त बना लें और समूचे दक्खिन को जीत लें, तब दिल्ली की तरफ बढ़ने की सोचें। बाजीराव का रुख़ दूसरा था। वह और उसका भाई चिमाजी अप्पा अपने पिता के साथ दिल्ली हो आये थे। उसने कहा, "मुग़ल साम्राज्य समृद्ध और क्षीण है; उसकी जड़ पर चोट करो तो शाखाएँ स्वयमू गिर पड़ेंगी। हमें भारत में हिन्दू साम्राज्य स्थापित करना है।

मेरी बात मानो तो मैं मराठा झण्डा अटक की दीवारों पर गाड़ दूँगा।" शाहू ने अनुमोदन करते हुए कहा, "उसे किन्नरखंड पर जा गाड़ो।"

अगले ७५ साल तक मराठा राज्य की यही नीति रही। मुग़ल साम्राज्य यद्यपि इस बीच में बना रहा, किन्तु बड़ी घटनाओं का आरम्भ अब मराठा दरबार से होता था और मुग़ल दरबार को अपने बचाव की चिन्ता करनी पड़ती थी। बाजीराव ने पहले अपनी सेना को सुसंगठित किया। मराठे सरदार अब काफ़ी शक्तिशाली थे; अपनी स्वतन्त्र जागीरें होने के कारण वे बहुत उच्छृंखल भी थे। उन्हें जागीरों से वञ्चित कर नियन्त्रित करना अब सम्भव न था। राजकीय सेनापति स्वयम् एक बड़ा जागीरदार था। उस पद पर खंडेराव का बेटा त्र्यम्बकराव नियुक्त हुआ। बाजीराव ने अपनी स्वतन्त्र सेना खड़ी की, जिसके बल से वह दूसरे सरदारों पर नियन्त्रण रख सके। उस सेना के मुख्य नेता रानोजी शिन्दे, मल्हार होल्कर और उदाजी पँवार आदि थे। बाद में इनके वंशज भी बड़े-बड़े जागीरदार बन गये।

सन् १७२३ ई० में बाजीराव ने मालवा की स्थिति का अन्दाज़ा करने के लिए एक चढ़ाई की।

तभी से पञ्जाब में भी सिक्ख जत्थे दिखायी देने लगे। उन्हें दबाने के लिए सूबेदार ज़करियाख़ाँ ने एक गश्ती सेना नियुक्त की।

§२. निज़ाम का स्वतन्त्र होना: **गुजरात, कर्णाटक, मालवा और बुन्देलखण्ड में युद्ध** (१७२४–२८ ई०)—निज़ाम फिर दक्खिन को भागा। बादशाह ने मुहम्मदअमीन के बेटे क़मरुद्दीन को वज़ीर बनाया और हैदराबाद के हाकिम मुबारिज़ख़ाँ को दक्खिन की सूबेदारी दे कर निज़ाम का मुक़ाबला करने को लिखा। छत्रसाल का बेटा कुंवरचन्द निज़ाम के साथ था। बाजीराव भी उससे जा मिला। शकरखेडा (बराड़) की लड़ाई में मुबारिज़ मारा गया (१७२४ ई०) और निज़ाम दक्खिन का बेताज बादशाह बन गया। मुहम्मद-शाह ने तब उसका रास्ता रोकने को गुजरात का सूबा उसके चचा हमीदख़ाँ के बजाय सरबुलन्दख़ाँ को तथा मालवा गिरिधरबहादुर नागर को सौंपा, और बंगश को बुन्देलखंड से बुला कर ग्वालियर भेजा।

हमीदखाँ ने गुजरात देने से इनकार किया, और दाभाडे के अधीन सरदार कन्ताजी कदम बन्दे तथा पिलाजी गायकवाड़ से मदद ली। उन्होंने सरबुलन्द के दो नायबों को मार डाला (१७२४-२५ ई०)। हमीदखाँ ने उन्हें गुजरात की चौथ दी। तब सरबुलन्द ने स्वयम् दिल्ली से आ कर हमीदखाँ को गुजरात की सूबेदारी से निकाला; पर उसे भी मराठों को चौथ देने की बात माननी पड़ी। पिलाजी ने बड़ोदा और दाभोई पर दखल कर लिया (१७२७ ई०)।

शकरखेडा की जीत के बाद निज़ाम और बाजीराव एक दूसरे का रुख देखते रहे। निज़ाम ने दक्खिन की तरफ़ अपनी शक्ति बढ़ायी और कई छोटे-छोटे सरदारों को दबाया। उसने शिवाजी के भतीजे तांजोर के राजा सर्फोजी से त्रिचनापल्ली छीन ली। सर्फोजी ने शाहू से मदद माँगी; तब दक्खिनी दल के नेताओं के साथ बाजीराव बेदनूर, गदग और श्रीरंगपटम् तक गया (१७२५-२६ ई०)। पर वह चढ़ाई विफल रही।

मालवा में गिरिधरबहादुर से बराबर मुठभेड़ जारी रही। बंगश के लौट आने से बुन्देलों को फिर छुट्टी मिली। छत्रसाल ने इस बीच में बिहार की सीमा तक का इलाक़ा जीत लिया। किन्तु १७२७ ई० के शुरू में बंगश और उसके बेटे कायमखाँ ने प्रयाग पर फिर जमना पार की, और दो साल तक बुन्देलों को दबाते हुए पूरबी बुन्देलखंड पूरा ले कर, महोबा, कुलपहाड़, जैतपुर तक छत्रसाल को ढकेल दिया। पच्छिम से जाटों की मदद आने के बावजूद भी १७२८ ई० के अन्त में जैतपुर भी छिन गया। तब छत्रसाल ने सन्धि की बातचीत से बंगश को बहकाना शुरू किया।

६४. बाजीराव की पहली विजयें (१७२८–३० ई०)—निज़ाम ने अब हैदराबाद को अपनी राजधानी बनाया और शाहू को चौथ देना बन्द कर दिया। बाजीराव झट सेना के साथ औरंगाबाद पर जा चढ़ा और उसने निज़ाम का पीछा करके दौलताबाद के २० मील पच्छिम पालखेड़ पर उसे घेर लिया। निज़ाम ने तब सन्धि-भिक्षा की और चौथ की सब बाक़ी रकम दे दी। यह गी-शेवगाँव की सन्धि कहलाती है (मार्च १७२८ ई०)।

मालवा के किसानों और ज़र्मीदारों ने मुग़ल सरकार के ज़ुल्म के खिलाफ सवाई जयसिंह से प्रार्थना की थी। जयसिंह ने कहा—बाजीराव को लिखो। इन्दौर के चौधरी नन्दलाल मंडलोई ने किसानों की एक सेना खड़ी कर ली और बाजीराव को बुलाया। चिमाजी खानदेश होकर और बाजी बराड़ के रास्ते मालवा की ओर बढ़ा। अमझरा पर चिमाजी अप्पा और उदाजी पँवार ने गिरिधरबहादुर और उसके भाई दयाबहादुर को घेर कर मार डाला (नव० १७२८ ई०)।

इसी समय बूढ़ा छत्रसाल जैतपुर के पास संकट में पड़ा था। कहते हैं कि उसने बाजीराव को लिखा—

जो गति ग्राह-गजेन्द्र की सो गति भई है आज !
बाजी जात बुन्देलों की, राखो बाजी लाज !

गढ़ा-मंडला के रास्ते बाजीराव बुन्देलखंड की ओर बढ़ा। अमझरा की जीत के तीन महीने बाद मराठों ने बंगश को घेर लिया, परन्तु बंगश बहादुरी से लड़ता रहा। चार महीने बाद उसके डेरे में अनाज सौ रुपये सेर भी न मिलता था। छत्रसाल ने तब उसे जाने दिया, पर उससे लिखवा लिया कि वह फिर जमना को पार न करेगा।

सरबुलन्दख़ाँ ने राजा शाहू को गुजरात की चौथ देना स्वीकार कर लिया, तो उसे सूबेदारी से हटा कर राजा अभयसिंह राठोड़ को उसकी जगह भेजा गया (१७३० ई०)। मालवा की सूबेदारी बंगश को सौंपी गयी। तीन मास के अन्दर बंगश ने अधिकांश मराठों को नर्मदा पार निकाल दिया। मल्हार होल्कर जयपुर भाग गया।

§५. गुजरात, मालवा, बुन्देलखण्ड में मराठों की स्थापना (१७३१-३३ ई०)—निज़ाम ने अब पेशवा के सब शत्रुओं का गुट्ट बनाया। गुजरात को त्र्यम्बकराव दाभाडे के आदमियों ने जीता था; बाजीराव के नियन्त्रण से वे असन्तुष्ट थे। दाभाडे ने कहा—बाजीराव ने राजा शाहू को कैदी बना रक्खा है, मैं उसे मुक्त करूँगा ! उसने अहमदनगर पर निज़ाम से मिल कर दक्खिन की ओर बढ़ना तय किया। उधर कोल्हापुर के सम्भाजी को निज़ाम ने अपनी

ओर मिला लिया। तब नर्मदा के घाट पर निज़ाम और बङ्गश मिले, और चौमुखा षड्यन्त्र पूर्ण हुआ। दो ठिकाने की चोटों से बाजीराव ने उसे तोड़ दिया।

सम्भाजी के खिलाफ़ दक्खिनी दल भेजा गया, जिसने उसे पूरी तरह हरा दिया। सम्भाजी ने आगे से शाहू के अधीन रहना मान लिया।

त्र्यम्बकराव के निज़ाम से मिलने पर उतारू हो जाने पर शाहू ने लाचार हो बाजीराव को उस पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। साथ ही आदेश दिया कि भरसक उसे मना लो या पकड़ लाओ। इससे पहले कि दाभाडे निज़ाम से मिल पाये, बाजीराव गुजरात पर टूट पड़ा। दाभोई पर दाभाडे बहादुरी से लड़ा। सफ़ेद झण्डा दिखा कर बाजीराव ने कहा, 'ऐसी वीरता महाराजा के शत्रुओं के विरुद्ध दिखानी चाहिए।' पर त्र्यम्बकराव ने एक न सुनी और उसे पकड़ने के यत्न विफल हुए। उसी की तरफ़ से उसके मामा ने उसकी पीठ में गोली मार दी। निज़ाम और बङ्गश के जुदा होने के चौथे दिन यों निज़ाम का षड्यन्त्र धूल में मिल गया। दाभोई से बाजीराव सीधा निज़ाम की ओर बढ़ा। निज़ाम ने तब उससे यह गुप्त सन्धि की कि वह उत्तर की तरफ़ बेरोकटोक बढ़े, निज़ाम उसे पीछे से न छेड़ेगा।

इस घरेलू युद्ध का धक्का समूचे महाराष्ट्र को लगा। त्र्यम्बकराव की माँ उमाबाई ने शाहू के पास आ कर बाजीराव से बदला लेने के लिए कहा। शाहू ने उमाबाई के गाँव में जा कर बाजीराव को उसके पैरों पर गिराया, और तब उमा के हाथ में तलवार दे कर उसे बाजीराव का सिर काटने को कहा! उमा ने बाजीराव को क्षमा किया। तब उसका छोटा बेटा यशवन्तराव सेनापति नियुक्त किया गया। पर वह शराबी था, उसकी शक्ति धीरे-धीरे गायकवाडों के हाथ चली गयी।

उसी वर्ष (१७३१ ई०) छत्रसाल परलोक सिधारा। बुन्देलखण्ड का पूर्वार्द्ध तब उसके हाथ आ चुका था। उसने बाजीराव को अपना बेटा बना कर तीन बेटों में अपना राज बाँट दिया। इस प्रकार हृदयशाह के हिस्से में पन्ना, जगतराज के हिस्से में जैतपुर और बाजीराव के हिस्से में सागर-दमोह आये। बाकी बेटों को जागीरें मिलीं। मराठों और बुन्देलों में पूरे सहयोग की सन्धि हुई।

राजा अभयसिंह ने पिलाजी गायकवाड़ से बड़ौदा छीन लिया और सन्धि की बात करने के बहाने पिलाजी को डाकोर तीर्थ में बुला कर धोखे से मार डाला (१७३२ ई०)। तब कोली आदि जातियाँ, जो मराठों के पक्ष में थीं, भड़क उठीं, और पिलाजी के बेटे दमाजी ने गुजरात का बड़ा अंश जीत कर अभय को जोधपुर भगा दिया।

अब बङ्गश बाकी रह गया। १७३१ ई० में उसने मराठों को निकाल दिया था, पर दूसरे वर्ष वे फिर दक्खिन और बुन्देलखण्ड से मालवा पर चढ़ आये। सिरोंज पर बङ्गश चारों तरफ़ से घिर गया। दिल्ली और निज़ाम से व्यर्थ मदद माँगने के बाद उसने मराठों से सन्धि कर ली। तब दिल्ली से हुक्म आया कि बङ्गश के बजाय सवाई जयसिंह मालवा का सूबेदार नियुक्त किया गया।

अगले वर्ष रानोजी शिन्दे और मल्हार होल्कर ने गुजरात में चाँपानेर जीतने के बाद मालवा आ कर जयसिंह को घेर लिया। उसने हार मानी और छः लाख रुपया तथा २८ परगने दे कर छुटकारा पाया।

इस प्रकार गुजरात, मालवा और बुन्देलखण्ड में मराठे स्थापित हो गये।

§६. **उत्तर भारत पर मराठों की चढ़ाई** (१७३४–३६ ई०)— जयसिंह ने बूँदी के राजा बुधसिंह हाड़ा से राज छीन कर अपने एक दामाद को दे दिया था। बुधसिंह की स्त्री ने मल्हार होल्कर के पास राखी भेज कर मदद माँगी। यों मराठों ने राजपूताने में पहलेपहल हस्तक्षेप किया। बादशाह ने खानेदौरान को उनके खिलाफ़ भेजा। जयसिंह और अभयसिंह भी उसके साथ बढ़े। मुकुन्दरा घाटी के आगे रामपुरा के इलाके में उन सब को मराठों ने घेर लिया और जयपुर जोधपुर के अरक्षित इलाक़ों पर हमले शुरू किये। जयसिंह और ख़ानेदौरान ने तब मराठों को मालवा की चौथ दिला देने का प्रस्ताव कर सन्धि की बात शुरू की, जिससे युद्ध रुक गया।

लेकिन बादशाह ने वह प्रस्ताव मंजूर नहीं किया और जयसिंह से आगरा और मालवा के सूबे ले कर वज़ीर कमरुद्दीन को दिये। इस पर बाजीराव ने जयसिंह का सन्देश पा कर फिर युद्ध जारी किया। चिमाजी अप्पा के नेतृत्व में मराठा सेना की हरावल ने राजपूताना, मालवा और बुन्देलखण्ड के रास्ते

एक साथ उत्तर भारत पर चढ़ाई की। खानेदौरान, कमरुद्दीन तथा बंगश को उनके खिलाफ़ भेजा गया। तो भी वे चम्बल तक बढ़ आये और उनकी एक टुकड़ी जमना पार कर इटावा के इलाके में घुसी।

पीछे से बाजीराव स्वयं चला आ रहा था। मेवाड़ की सीमा पर से महाराणा उसे उदयपुर लिवा ले गया और उसने वार्षिक कर देना स्वीकार किया। किशनगढ़ पहुँचने पर जयसिंह ने उससे भेंट की। इससे पहले खानेदौरान और बंगश भी सन्धि की प्रार्थना कर रहे थे। बाजीराव ने युद्ध रोक दिया और मालवा के रास्ते लौटते हुए सन्धि की बातचीत जारी रक्खी।

१७३५ ई० तक पञ्जाब में सिक्खों ने बूढ़ा दल और तरुण दल नाम से अपने दो दल खड़े कर लिये। उनका केन्द्र अमृतसर प्रदेश था।

§७. बाजीराव की दिल्ली पर चढ़ाई (१७३७-३८ ई०)—बाजीराव की पहली शर्तें ये थीं : (१) मालवा का सूबा किलों और पुरानी जागीरों के सिवाय उसे सौंप दिया जाय; तथा (२) दक्खिन के छः सूबों की मालगुज़ारी का ५% राजा शाहू को दिया जाय। मुहम्मदशाह ने इन पर "मंज़ूर" लिख दिया। लेकिन मुग़ल साम्राज्य को कमज़ोर पा कर बाजीराव ने अपनी शर्तें पीछे बहुत बढ़ा दीं। मुहम्मदशाह ने उनमें से कुछ मान लीं, पर सब मानने से इनकार किया। बाजीराव ने जयसिंह का गुप्त सन्देश पा कर फिर चढ़ाई की। जैतपुर के रास्ते वह आगरा के दक्खिन भदावर प्रदेश में जमना पर आ निकला। मल्हार होल्कर वहाँ से दोआब में घुस कर शिकोहाबाद आदि लूटता हुआ, जलेसर पर अवध के सूबेदार सआदतखाँ से हार कर, ग्वालियर पर बाजीराव से आ मिला। तीन मुग़ल सेनापति—खानेदौरान, बङ्गश और सआदतखाँ—मथुरा पर जमा हुए। इसी समय रेवाड़ी पर एक मराठा हमले की खबर सुन कर वज़ीर क़मरुद्दीन उधर बढ़ा, और उधर से मथुरा की ओर लौटने लगा।

बाजीराव चम्बल पार कर इन दोनों फ़ौजों को एक एक दिन की राह पर दाहिने बाएँ छोड़ता हुए एकाएक दिल्ली पर आ पहुँचा (६-४-१७३७ ई०)। सन्धि की बातचीत होने लगी, जिससे बाजीराव ने अपना इरादा बदल

दिया। "हम दिल्ली जलाना चाहते थे, परन्तु फिर देखा कि वैसा करने और बादशाह की गद्दी नष्ट करने में लाभ नहीं है। क्योंकि बादशाह और खाने-दौरान हमसे सन्धि करना चाहते हैं, पर मुग़ल नहीं करने देते। हमारी तरफ़ से कोई अत्याचार होने से राजनीति का सूत्र टूट जाता, इसलिए जलाने का इरादा छोड़ कर बादशाह और राजा बख़्तमल को पत्र भेजे।" इसी बीच दूसरे दिन दिल्ली की फ़ौज बाजीराव के मुकाबले को निकली और रिकाबगंज पर बुरी तरह हारी।

बाजीराव का दिल्ली पहुँचना सुन कर मुग़ल सेनापति 'खीझ की अंगुली शर्म के दाँत पर रक्खे हुए' एकाएक लौटे। बाजीराव ने भी जब देखा कि बड़ी-बड़ी सेनाएँ चली आ रही हैं तो वह पच्छिम की ओर हट कर अजमेर जा निकला। वहाँ से वह फिर दिल्ली पर चढ़ाई करने या अन्तर्वेद में घुसने का इरादा कर ग्वालियर लौटा। चिमाजी को उसने लिखा—"इधर किसी का डर नहीं है, उधर निज़ाम की एड़ियों में रस्से डाले रक्खो।" किन्तु बाजीराव के दिल्ली पहुँचने के तीन दिन पहले मराठों की बड़ी सेना कोंकण में पुर्त्तगालियों के खिलाफ़ बढ़ चुकी थी, और खानदेश की मराठा टुकड़ी को भगा कर निज़ाम नर्मदा पार निकल आया था, इसलिए बाजीराव को एकाएक लौटना और कोंकण जाना पड़ा।

मुग़ल दरबार में अब सब का यह मत था कि निज़ाम ही बाजीराव को रोक सकता है। इसलिए उसे फिर बुला कर वज़ीर बनाया गया। आगरा और मालवा के सूबे जयसिंह और बाजीराव के बजाय उसके बेटे ग़ाज़िउद्दीन को दिये गये। निज़ाम मालवा को वापस लेने चला। अपने दूसरे बेटे नासिरजंग को उसने लिखा कि वह बाजीराव को दक्खिन से न निकलने दे। पर बाजीराव नर्मदा पार कर आया, और उसने भोपाल पर निज़ाम का सामना किया। पालखेड और जैतपुर वाली बात दोहरायी गयी। निज़ाम पूरी तरह घिर गया, परन्तु तोपों के सहारे कुछ आगे बढ़ा। अन्त में उसने दुराहासराय पर सन्धि की प्रार्थना की। उसने नर्मदा से चम्बल तक के प्रान्त पर मराठा आधिपत्य मनवाने और उन्हें ५० लाख की खंडनी देने का वचन दिया (जनवरी १७३८ ई०)।

§८. **अँगरेज़ और आँग्रे ; पुर्तगालियों से युद्ध** (१७२१-३६ ई०)—अपने ही देश के डकैतों को दबाने तथा कान्होजी आँग्रे की जलशक्ति तोड़ने में अपने को अशक्त देख कर ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने बादशाह से मदद माँगी। तब इँगलैण्ड से एक जङ्गी बेड़ा इस प्रयोजन के लिए मुम्बई आया। गोवा और बसई के पुर्त्तगाली गवर्नरों ने भी उसका साथ दिया। पर आँग्रे के कोलाबा किले से वे सब हार कर लौटे (१७२२-२३ ई०)। दूसरे वर्ष विजयदुर्ग पर ओलन्देज़ भी वैसे ही हारे। १७२६ ई० में आँग्रे की मृत्यु हुई। तब उसके बेटे आपस में झगड़ने लगे और उन झगड़ों में पुर्तगाली भी दखल देने लगे। बाजीराव ने उधर ध्यान दिया और पुर्तगालियों को दबना पड़ा। किन्तु उसके बाद पुर्तगाली वाइसराय के अभिमानी भतीजे ने मराठा दूत के सामने बाजीराव को 'निगरा' (हब्शी) कह दिया। चिमाजी अप्पा के नेतृत्व में महाराष्ट्र ने तब अपनी सारी शक्ति पुर्तगालियों के खिलाफ़ लगा दी। दो वर्ष तक घोर युद्ध होता रहा (१७३७–३६ ई०); दुराहासराय से लौट कर बाजीराव की सारी सेना कोंकण चली आयी और पुर्तगालियों का समूचा 'उत्तरी प्रान्त' मराठों के हाथ आया। बहादुरशाह गुजराती और अकबर जो काम करने को तरसते रहे, वह दो शताब्दी बाद पूरा हुआ। पुर्तगालियों से बसई छीनने के लिए मराठों को भारी बलिदान करना पड़ा। चिमाजी का प्रस्ताव बसई के बाद मुम्बई लेने का था। इसलिए अँगरेजों ने चिमाजी और शाहू के पास अपने दूत भेजे। शाहू ने उनके साथ मैत्री रखना तय किया।

§९. **नादिरशाह की चढ़ाई** (१७३८–३६ ई०)—गिलज़ई पठानों का ईरान का राज्य दो वर्ष में टुकड़े-टुकड़े हो गया। अन्तिम सफ़ावी शाह के बेटे तहमास्प ने सिर उठाया; खुरासान में एक तुर्कमान सैनिक नादिरकुली ने उसका सेवक बन कर ईरान को स्वतन्त्र किया और उसे गद्दी पर बैठाया (१७२६ ई०)। किन्तु तहमास्प मूर्ख और दुर्बल था। जब सेना ने देखा कि वह अपने देश को फिर गँवा देगा तो उसने उसे हटा कर उसके बेटे को बादशाह बनाया। उसके मर जाने पर नादिरकुली नादिरशाह बना। उसने कन्दहार

के अफ़ग़ानों पर चढ़ाई की (१७३७ ई०), और मुहम्मदशाह को लिखा कि वह भगोड़ों को अपनी सीमा में न घुसने दे। किन्तु अफ़ग़ान जब कन्दहार से ग़ज़नी और काबुल भागने लगे, तब उस प्रान्त में उन्हें रोकने को कोई सेना न थी। नादिरशाह ने इसका जवाब तलब किया। दिल्ली से उसे साल भर तक कोई जवाब न मिला !

तब नादिर ने काबुल ले लिया (१७३८ ई०), और पेशावर ले कर वह पंजाब की ओर बढ़ा। दिल्ली से कमरुद्दीन, निज़ाम और खाने-दौरान को बढ़ने का हुक्म हुआ। शाहदरा जा कर वे एक महीना वहीं पड़े रहे। इस बीच में नादिर ने ज़करियाख़ाँ से लाहौर भी ले लिया और पंजाब में उसकी सेना ने अकथनीय अत्याचार किये। दिल्ली दरबार ने राजपूत राजाओं को मदद के लिए लिखा और बाजीराव से भी प्रार्थना की। जयसिंह आदि ने तो उसे टाल दिया; पर बाजीराव ने लिखा, "हमारे राज्य के लिए दिल्ली के बादशाह को ऐसे समय मदद देना बड़े गौरव की बात होगी। मल्हार होल्कर, रानोजी शिन्दे और उदाजी पँवार को भेजता हूँ।" किन्तु वे सब सेनानायक पुर्तगालियों के साथ उलझे हुए थे और किसी तरह कोंकण से न निकल सके। पानीपत पहुँच



नादिरशाह

[श्रीयुत शहाबुद्दीन खुदाबख्श के निजी संग्रह में से]

कर मुग़ल सेनापतियों ने बादशाह को बुलाया और उसके आने पर वे कर्नाल तक आगे बढ़े। वहाँ उन्होंने मोर्चाबन्दी कर अपने को दीवार से घेर लिया। चुस्त और सजग शत्रु ने चारों तरफ़ से उनके रास्ते बन्द कर दिये।

नादिर की सेना मुख्यतः सवारों की थी और वे जिज़ैल नामक लम्बी बन्दूकों से लड़ते थे। भारतीय सवारों के मुख्य शस्त्रास्त्र भाला, तलवार और तीर थे। इसके सिवाय नादिर की सेना में एक अच्छी संख्या ऊँट-सवारों की थी जो ज़म्बुरक अर्थात् हलकी लम्बी तोपों से लड़ते थे। इस 'दस्ती तोपख़ाने' के मुकाबले में भारतीयों के पास कुछ भी न था; उनका भारी 'जिन्सी तोपख़ाना' एक जगह टिका रहता था। नादिर के शब्दों में हिन्दुस्तानी मरना जानते थे, लड़ना नहीं।

सआदतख़ाँ पीछे से कुमुक ला रहा था, परन्तु वह ईरानियों के हाथ क़ैद हुआ। ख़ानदौरान उसकी मदद को गया और मारा गया। क़ैदी सआदत के द्वारा सन्धि की बातें शुरू हुईं; ५० लाख खंडनी तय हुई, जैसी एक बरस पहले बाजीराव के लिए हुई थी। उसी समय मुग़ल दरबार में यह प्रश्न उठा कि ख़ानदौरान की जगह मीर बख्शी कौन बने। इस प्रसंग में सआदत निज़ाम से रूठ बैठा। उसने नादिर से कहा, ५० लाख क्या लेते हो, दिल्ली चलो तो २० करोड़ मिलेंगे! नादिर ने निज़ाम, वज़ीर और मुहम्मदशाह को बातचीत के लिए बुला कर धोखे से पकड़ लिया। उन क़ैदियों के साथ ईरानी सेना दिल्ली की ओर बढ़ी। बिना नेताओं की हिन्दी सेना तितर-बितर हो गयी।

नादिरशाह के दिल्ली पहुँचने पर जनता ने विद्रोह किया। तब नादिर ने क़त्ले-आम का हुक्म दिया। एक दिन में २० हज़ार जानें ली गयीं। उसके बाद वह दो मास तक प्रजा और अमीरों को लाञ्छित करता और निचोड़ता रहा। उसने अजमेर-यात्रा की इच्छा प्रकट की तो जयसिंह आदि ने अपने परिवार उदयपुर भेज दिये। बाजीराव ने चम्बल के घाटों को अपने काबू में रखना तय किया। उसने लिखा, "पुर्त्तगाली युद्ध कुछ नहीं है; दक्खिन की सब शक्ति, हिन्दू और मुस्लिम, एक करनी होगी। मैं मराठों को नर्मदा से चम्बल तक फैला दूँगा।" पर बसई के गिरते ही (१४-५-१७३६)

जब होल्कर और शिन्दे बाजीराव से मिलने बुरहानपुर की तरफ़ बढ़े, तब नादिरशाह को दिल्ली से लौटे ६ दिन हो चुके थे।

दिल्ली से नादिरशाह कुल १५ करोड़ रुपये नक़द और ५० करोड़ के रत्नाभूषण और सामान, जिनमें तख्ते-ताउस भी शामिल था, ले गया। मुहम्मद-शाह को उसने उसकी जान और बादशाहत बख्शी, किन्तु ठठ्ठा (दक्खिनी सिन्ध) तथा सिन्ध नदी के पार के प्रान्त ले लिये और पञ्जाब में ज़करियाखाँ को अपनी ओर से नियुक्त किया। लौटते हुए नादिर का कुछ माल-असबाब दिल्ली के पास ही जाटों ने लूट लिया। पञ्जाब में सिक्खों ने रावी पर दुल्लेवाल क़िला बना लिया था। उन्होंने भी उसका बोझा कुछ हलका किया।

§१०. **बाजीराव का अन्त**—१७३६ ई० में बराड़ के रघुजी भोंसले ने गोंडवाना में देवगढ़ का राज्य जीत लिया। इसके बाद शाहू की प्रेरणा से उसने दक्खिनी प्रान्तों पर चढ़ाई की। तभी बाजीराव और चिमाजी दोनों भाइयों का बीमारी से देहान्त हो गया (१७४० ई०)। खबर पा कर रघुजी, जो पुदुचेरी में था, सतारा लौट आया, क्योंकि उसे पेशवा बनने की आशा थी।

तभी निज़ाम भी दक्खिन को लौट गया।



अध्याय २

पेशवा बालाजीराव

(१७४०-६१ ई०)

§१- तामिलनाड और बङ्गाल पर चढ़ाइयाँ (१७४०–४३ ई०)— बाजीराव की मृत्यु पर शाहू ने उसके नौजवान बेटे बालाजी को पेशवा बनाया और रघुजी भोंसले को, जो उसके विरोधी दक्खिनी दल का नेता था, फिर तामिलनाड की चढ़ाई पर भेजा।

राजाराम के जिन्जी छोड़ने के बाद से तामिल देश पर मुग़ल साम्राज्य का बराबर प्रभुत्व था। पहले जुल्फ़िक़ारखाँ ने, फिर फ़र्रुखसियर ने, सआदतुल्लाखाँ को 'कर्णाटक' का शासन सौंपा था। शकरखेड़ा-युद्ध के बाद निज़ाम ने भी उसे बना रहने दिया। लम्बे सुशासन के बाद १७३१ ई० में उसकी मृत्यु हुई। तब उसका भतीजा दोस्तअली 'कर्णाटक का नवाब' बना। अब वह दमलचेरी घाट पर रघुजी से लड़ता हुआ मारा गया। रघुजी तामिल मैदान की ओर बढ़ा। दोस्तअली का दामाद चन्दासाहेब त्रिचनापल्ली में लड़ता हुआ क़ैद हुआ (१७४१ ई०)। रघुजी ने उसे सतारा भेज दिया और कृष्णा के दक्खिन गुत्ती में बसे हुए मराठा सरदार मुरारीराव घोरपड़े को त्रिची का हाकिम बनाया। चन्दा ने अपना परिवार पुद्दुचेरी के फ्रांसीसी हाकिम द्यूमा (Dumas) के पास भेज दिया था।

रघुजी ने पुद्दुचेरी पहुँच कर द्यूमा से खिराज का बक़ाया और चन्दासाहब के परिवार को तलब किया। द्यूमा ने इनकार करते हुए कहला भेजा कि फ्रांसीसी जाति ने कभी किसी को खिराज नहीं दिया। रघुजी ने अपने दूत को यह देखने भेजा कि द्यूमा किस बूते पर ऐसा लिखता है। द्यूमा ने अपनी रसद, तोपें और क़वायद सीखे हुए सिपाही दिखाये। १२०० फ्रांसीसी सैनिकों के सिवाय वहाँ ५,००० भारतीय सिपाही फ्रांसीसी नियन्त्रण में क़वायद सीखे

हुए तैयार थे। उनसे प्रभावित हो कर रघुजी लौट गया। उसे लौटा देने के लिए निज़ाम ने बूमा को भेंट भेजी और मुहम्मदशाह ने उसे नवाब का पद दिया।

१८ वीं सदी में युरोप ने स्थल-युद्ध-कला में भी बड़ी उन्नति कर ली थी। बन्दूक का प्रयोग बढ़ जाने से अब वहाँ पैदल बन्दूकचियों की पाँतें तैयार हो गयीं थीं जो युद्ध का मुख्य साधन बन गयीं थीं। ये पाँतें एक साथ एक आदेश पर गोली दागतीं और इनकी सारी गति नेताओं के आदेशों पर नियमित रहती थी। इनके सामने ढीले अनुशासन पर चलने वाले रिसाले किसी काम के न थे। सेनाओं और युद्ध-शैली में केन्द्रीय नियन्त्रण बढ़ जाने से युरोप की शासनसंस्था में भी राजाओं का नियन्त्रण बढ़ गया, क्योंकि इन सुनियन्त्रित पैदल सेनाओं से राजाओं ने अपने उच्छृंखल सरदारों के कोटले ढहा कर उन्हें काबू में कर लिया। युरोप वाले यदि अब भारत में अपनी सेनाएँ ला सकते तो उसे आसानी से जीत लेते; पर इतनी दूर बड़ी फ़ौजें लाना सम्भव न था। इस दशा में बूमा ने भारतीय सिपाहियों को कवायद सिखा कर उन्हें नयी युद्ध-कला में दीक्षित किया। उसने यह अनुभव किया कि भारतवर्ष के लोगों में, एक पुरानी सभ्यता के वारिस होने के कारण, इतनी समझ और भौतिक वीरता है कि वे अच्छे सैनिक बन सकते हैं। आफ्रिका आदि की दूसरी जिन जातियों से युरोप वालों को वास्ता पड़ा था, वे ऐसी न थीं। साथ ही उसने देखा कि भारतवासियों में राष्ट्रीयता का इतना अभाव है कि उन्हें किसी के भी भाड़े के सैनिक बन कर अपने भाइयों पर गोली दागने में कोई ग्लानि नहीं होती। इसके अलावा वे महत्त्वाकांक्षा और जिज्ञासा से भी इतने शून्य हैं कि जितनी बातें उन्हें सिखा दी जायँ, उनसे आगे बढ़ कर उस समूचे ज्ञान को अपनाने की वह उत्कण्ठा उनमें नहीं जाग पाती जिससे वे दूसरों के हथियार बनने के बजाय स्वयम् वैसी सेनाएँ संघटित कर सकें। बूमा को जो यह नयी बात सूझी, इसे युरोप वाले "भारतीय सिपाही का आविष्कार" कहते हैं। १८ वीं सदी का यह सब से बड़ा सामरिक आविष्कार था। युरोप वालों के हाथ में इससे एक ऐसा साधन आ गया जिससे उन्होंने पृथ्वी का नक़्शा पलट दिया।

अठारहवीं सदी के शुरू में औरङ्गज़ेब ने मुर्शिदकुलीख़ाँ को बङ्गाल और उड़ीसा का नाज़िम और दीवान नियत किया था। उस के बाद उसका पद तथा बिहार की सूबेदारी भी उसके दामाद को मिली। अब अलीवर्दीख़ाँ ने उसके बेटे को मार कर वह पद छीन लिया और बादशाह से भी इसके लिए स्वीकृति ले ली (१७४० ई०)। दूसरे पक्ष के बुलाने से पहले रघुजी भोंसले के मन्त्री भास्कर कोल्हटकर ने और फिर खुद रघुजी ने रामगढ़ (आधुनिक हज़ारीबाग राज्य) और बाँकुड़ा के रास्ते बर्दवान पर चढ़ाई की और कटवा में छावनी डाल कर राजमहल से मेदिनीपुर तक जीत लिया।

दुराहासराय की सन्धि को पक्का कराने के लिए पेशवा बालाजीराव ग्वालियर तक बढ़ आया था। बादशाह की तरफ़ से सवाई जयसिंह धोलपुर में उससे मिला और उसने उसे मालवा का सूबा दे दिया। उसके बाद बादशाह ने उससे प्रार्थना की कि वह बङ्गाल से रघुजी को निकाल दे। तदनुसार फ़रवरी १७४३ ई० में बालाजी प्रयाग, बनारस, गया, मुंगेर, बीरभूम के रास्ते बङ्गाल की राजधानी मुर्शिदाबाद की तरफ़ बढ़ा। कटवा के उत्तर पलाशी गाँव पर अलीवर्दी उससे मिला और उसने बङ्गाल की चौथ देना स्वीकार किया। रघुजी बीरभूम की तरफ़ हट गया था; बालाजी ने पीछा कर उसे भगा दिया।

इसी समय तामिलनाड में भी रघुजी के किये कराये पर पानी फिर गया। निज़ाम ने वह प्रान्त फिर से जीत कर अनवरुद्दीन को नवाब नियत किया और मुरारीराव घोरपडे को भेंट-पूजा से खुश कर लौटा दिया। इस दशा में राजा शाहू ने बालाजी और रघुजी के बीच समझौता करा दिया (३१-८-१७४३)। मालवा, आगरा, इलाहाबाद के सूबे बालाजी के अधिकार-क्षेत्र माने गये तथा बिहार, बङ्गाल, उड़ीसा और अवध रघुजी के। इसके बाद तुरन्त ही रघुजी ने नागपुर के गोंड राज्य को जीत लिया।

§२. **उड़ीसा पर दखल, बङ्गाल-बिहार पर आधिपत्य**—सन् १७४४ में भास्कर पन्त ने फिर बङ्गाल पर चढ़ाई की। इस बार अलीवर्दीख़ाँ ने उसे सन्धि की बातचीत के बहाने बुला कर उसके २१ नायकों सहित कत्ल कर डाला (३१-३-१७४४)। अगले वर्ष अलीवर्दी के अफ़ग़ान सैनिकों ने, जो

दरभङ्गा में बसे हुए थे, विद्रोह किया। उनके बुलाने से रघुजी भोंसले ने फिर चढ़ाई की, उड़ीसा पर दखल कर लिया और पच्छिमी बङ्गाल में छावनियाँ डाल कर बिहार में अफ़गानों को मदद दी। बादशाह ने पेशवा से सन्धि करके बिहार की १० लाख चौथ पेशवा के लिए तथा बङ्गाल की २५ लाख बराड़ के भोंसले के लिए नियत कर दी। लेकिन बूढ़े अलीवर्दी ने भोंसले को चौथ देना स्वीकार न किया और वह आगे ५ वर्ष तक लड़ता रहा। अन्त में सन् १७५१ में उसने सन्धि की, जिसके अनुसार उसने उड़ीसा प्रान्त, मेदिनीपुर ज़िले के सिवाय, रघुजी को "जागीर के रूप में" दे दिया, और बङ्गाल की चौथ १२ लाख रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया।

§३. **राजपूताना और महाराष्ट्र के भीतरी झगड़े** (१७४३–५२ ई०)—सन् १७४३ में सवाई जयसिंह की मृत्यु हुई; उसी वर्ष राजा शाहू को असाध्य रोग हुआ और छः बरस बीमार रह कर वह परलोक सिधारा (१४-१२-१७४९)। ६-६-१७४७ को नादिरशाह कत्ल किया गया तथा १५-४-१७४८ को मुहम्मदशाह और २१-५-१७४८ को निज़ाम चल बसा। १७४९ ई० में मारवाड़ का राजा अभयसिंह मरा। इन सब मृत्युओं से उत्तराधिकार के अनेक झगड़े खड़े हुए।

जयसिंह का बड़ा बेटा ईश्वरीसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठा तो उसके छोटे भाई माधोसिंह ने राज्य का बड़ा हिस्सा माँगा। माधोसिंह के मामा उदयपुर के महाराणा जगतसिंह ने उसका पक्ष लिया। राजपूतों के कमीने झगड़ों में उलझ कर मराठा सरकार भी पथभ्रष्ट हो गयी। पहले वह ईश्वरीसिंह के पक्ष में थी, तो भी महाराणा ने मल्हार को अपने पक्ष में खींच लिया। बाद में मराठा सरकार ने भी माधोसिंह का पक्ष ले लिया। ईश्वरीसिंह ने पेशवा को याद दिलायी कि उसके पिता और बाजीराव की कैसी दाँतकाटी रोटी थी, लेकिन बालाजीराव ने एक न सुनी और १७४८ ई० में जयपुर राज्य पर चढ़ाई कर दी। ईश्वरीसिंह को झुकना पड़ा। दो बरस बाद वह हरजाने की रक़म न चुका सका और मराठों ने फिर चढ़ाई की तो उसने और उसकी रानियों ने आत्महत्या कर ली। इन घटनाओं से राजपूत मराठों के शत्रु बन गये। माधोसिंह जयपुर

का राजा बना, पर अब उसका रुख बदल गया, और समूचे राज्य में मराठों के विरुद्ध विद्रोह हुआ जो कठिनाई से दबाया गया।

अभयसिंह के मरने पर उसका भाई बख्तसिंह तथा उसका बेटा रामसिंह आपस में लड़ने लगे। बख्तसिंह ने १७५१ ई० में राज छीन लिया, पर अगले वर्ष वह मर गया और उसका बेटा विजयसिंह उत्तराधिकारी हुआ।

राजा शाहू के कोई सन्तान न थी। उसकी बीमारी के छः वर्षों में उत्तराधिकार के अनेक प्रस्ताव पेश हो कर रद्द होते रहे। ताराबाई ने कहला भेजा कि उसका एक पोता मौजूद है जिसे उसने रजसबाई से बचाने को छिपा दिया था। बड़ी जाँच-पड़ताल के बाद यह बात ठीक मानी गयी। शाहू की मृत्यु के बाद बालाजी और अन्य प्रधानों ने शाहू की इच्छानुसार ताराबाई के पोते रामराजा को सतारा की गद्दी दी। रघुजी भोंसले ने बालाजी का साथ दिया। किन्तु ताराबाई की आकांक्षा अपने पोते के नाम पर स्वयम् शासन करने की थी। उसने उमाबाई दाभाडे से मिल कर षड्यन्त्र रचा और अपने पोते को भी षड्यन्त्र में मिलाना चाहा, पर उसके न मानने पर सतारा का किला छीन कर उसे कैद कर लिया। यशवन्तराव दाभाडे और दमाजी गायकवाड़ ने महाराष्ट्र पर चढ़ाई कर दी। बालाजी तब हैदराबाद के इलाके में गया हुआ था। उसे एकाएक लौटना पड़ा (अप्रैल १७५१)। विद्रोह को कुचल कर उसने दाभाडे और गायकवाड़ को कैद कर लिया और सतारा का किला और रामराजा ताराबाई के हाथ में रहने दिये। दमाजी गायकवाड़



बालाजीराव पेशवा, दाहिने उसका पुत्र विश्वासराव, सामने नरो शङ्कर दानी (तीनों बैठे हुए)
[भा० इ० सं० मं०]

ने गुजरात के कर का पिछला सब बकाया और आगे से वार्षिक कर और सब विजयों का आधा हिस्सा देना तथा राजकीय सेवा में अपनी सेना भेजना स्वीकार किया। ताराबाई ने भी पेशवा से समझौता किया, पर उसका क़िला और क़ैदी उसके हाथ में रहने दिये गये।

गुजरात में अहमदाबाद और खम्भात में अब तक मुग़ल राज्य बना हुआ था। इस समझौते के बाद बालाजी के भाई रघुनाथराव (राघोबा) के नेतृत्त्व में सम्मिलित मराठा सेना ने समूचा गुजरात जीत लिया (१७५२-५३ ई०)।

§४. **उत्तर भारत में अफ़गान और मराठे** (१७४१–५२ ई०)— १७वीं शती के उत्तरार्ध और १८वीं के शुरू में प्राचीन पञ्चाल देश में अनेक अफ़गान आ बसे थे। फ़रुख़ाबाद और शाहजहाँपुर में तथा बरेली ज़िले में आँवला और बानगढ़ में उनकी ख़ास बस्तियाँ थीं। अफ़गानिस्तान में पहाड़ को रोह कहते हैं, इससे ये लोग रुहेले कहलाये। पुराने ज़मींदारों से छीन-खसोट कर रुहेलों ने बहुत सी जागीरें बना लीं। १७४१ ई० में उनके नेता अलीमुहम्मद ने कटहर के फ़ौजदार को मार डाला। कमज़ोर मुग़ल दरबार ने अलीमुहम्मद को ही फ़ौजदार बना दिया, और कटहर या सम्भल का इलाका (उत्तर पञ्चाल) अब रुहेलखण्ड कहलाने लगा। रुहेलों की छीनाखसोटी तब और भी बढ़ गयी। १७४५ में ख़ुद बादशाह ने बानगढ़ पर चढ़ाई की और अलीमुहम्मद को रुहेलखण्ड से हटा कर सरहिन्द का फ़ौजदार बना दिया।

उसी वर्ष पञ्जाब के ज़बर्दस्त सूबेदार ज़करियाख़ाँ की मृत्यु हुई और उसके बेटे आपस में लड़ने लगे। नादिरशाह के अधीन अहमद अब्दाली नामक पठान उसका सब से योग्य सेनापति था। नादिर के मारे जाने पर उसने मुकुट धारण किया और कन्दहार आ कर वह अफ़गानों का शाह बना। उसी साल जाड़े में उसने भारत पर चढ़ाई की। ज़करिया के बेटे से लाहौर छीन कर वह आगे बढ़ा। दिल्ली से वज़ीर कमरुद्दीन और शाहज़ादा अहमद उसके मुकाबले को चले। सरहिन्द के पास मानुपुर पर लड़ाई हुई जिसमें कमरुद्दीन तो मारा गया, पर उसके बेटे मुइनुल्मुल्क तथा सआदतख़ाँ के भतीजे अवध के सूबेदार सफ़दरजङ्ग ने अब्दाली को हरा कर लौटा दिया (११-३-१७४८)।

अब्दाली की इस चढ़ाई के समय उत्तर भारत के अफ़गान फिर से मुगल साम्राज्य के अन्त और अफ़गान साम्राज्य की स्थापना के सपने देखने लगे।



अहमदशाह दरबार में

बादशाह के बायें सब से आगे मुइनुल्मुल्क; दाहिने दूसरे गाज़ीउद्दीन

[दिल्ली म्यू०, भा० पु० वि०]

अलीमुहम्मद सरहिन्द से भाग आया और उसके रुहेलों ने रुहेलखण्ड पर दखल कर लिया।

मानुपुर की लड़ाई के एक मास बाद मुहम्मदशाह की मृत्यु हुई। उसका बेटा अहमदशाह दिल्ली की गद्दी पर बैठा। मुइनुल्मुल्क को पञ्जाब की सूबेदारी दी गयी थी; सफ़दरजङ्ग को अब वज़ीर का पद दिया गया।

तभी अलीमुहम्मद भी मर गया। उसके पीछे चार रुहेले सरदार मिल कर रुहेलखण्ड का शासन चलाने लगे। सफ़दरजङ्ग ने अपने इन लड़ाकू पड़ोसियों से छुटकारा पाने को उन्हें परस्पर लड़ाने की युक्ति सोची। इसीलिए उसने फ़र्रुखाबाद के कायमखाँ बंगश को रुहेलखण्ड का सूबेदार बना कर भेजा। कायमखाँ मारा गया, तब सफ़दर ने उसकी जागीर ज़ब्त कर ली!

सन् १७४६ के अन्त में अब्दाली ने फिर पञ्जाब पर चढ़ाई की। मुइन ने चनाब पर उसका सामना किया, पर उसे दिल्ली से कोई मदद न मिली और लाचार हो कर उसने अब्दाली को वार्षिक कर का वचन दे कर लौटाया।

कायमखाँ के भाई अहमद बंगश के नेतृत्व में फ़र्रुखाबाद के पठानों ने विद्रोह किया। उनसे लड़ता हुआ सफ़दरजङ्ग बुरी तरह हारा (१३-६-१७५०)। तब उसने मराठों और जाटों की मदद ली। मल्हार होल्कर और रानोजी शिन्दे (मृत्यु १७५० ई०) का बेटा जयप्पा शिन्दे जयपुर में थे। वहाँ से वे पेशवा की आज्ञा से दोआब आये। जाटों के नेता ठाकुर बदनसिंह ने जयपुर के सामन्त रूप में बड़ी शक्ति बना ली थी। सिनसिनी, थूण आदि पुराने किलों की जगह उसने अब भरतपुर, दीग और कुम्भेर आदि गढ़ बना लिये थे। बदनसिंह अब बूढ़ा था, और उसका दत्तक पुत्र—वास्तव में उसकी एक रखैल के पहले पति का बेटा—सूरजमल अब जाटों का नेता था।

मराठों और जाटों ने पठानों को हरा कर फ़र्रुखाबाद का क़िला फ़तहगढ़ ले लिया (१६-४-१७५१)। अहमद बंगश ने आँवला में शरण ली। तब मराठों ने रुहेलखण्ड पर चढ़ाई की और रुहेलों को कुमाऊँ की तराई तक ढकेल दिया। मार्च १७५२ में सन्धि हुई जिससे दोआब में इटावा आदि इलाके मराठों को मिले।

इधर दिसम्बर १७५१ में अब्दाली ने पञ्जाब पर फिर चढ़ाई की, क्योंकि मुइन ने उसके पास कर न भेजा था। मुइन का दीवान राजा कौड़ामल लड़ता

हुआ मारा गया (५-३-१७५२), तब मुइन को अब्दाली का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। बादशाह सफ़्दरजङ्ग को बुलाता रहा कि वह रुहेलों से सन्धि करके शीघ्र लौटे, पर सफ़्दर मुइन का नाश चाहता था इससे वह ढील डालता रहा। अब्दाली के लाहौर ले लेने पर सम्राट् ने उसे लिखा कि वह अब्दाली के खिलाफ़ मराठों की मदद लावे। इसलिए सफ़्दर ने मराठों से सन्धि की जिसकी मुख्य शर्तें ये थीं—पेशवा को दिल्ली साम्राज्य के सब भीतरी विद्रोहियों और बाहरी शत्रुओं के दमन का भार सौंपा गया, जिसके बदले में उसे अजमेर और आगरा की सूबेदारी, पञ्जाब और सिन्ध की चौथ, हिसार सम्भल मुरादाबाद बदाऊँ ज़िलों की जागीर तथा पञ्जाब के चार महालों की मालगुज़ारी दी गयी। मतलब यह कि अवध और इलाहाबाद के सिवाय समूचे भारत का आधिपत्य पेशवा को सौंप दिया गया। सफ़्दर मराठों की मदद से काबुल भी वापस लेने की बातें करने लगा।

लेकिन वह जब ढील डाल रहा था, तभी अब्दाली ने लाहौर से अपना दूत दिल्ली भेज कर पञ्जाब का मुतालबा किया था, और कमज़ोर बादशाह ने उसे पञ्जाब दे दिया था। सफ़्दर ने दिल्ली पहुँच कर जब यह सुना तो वह मराठों के साथ फ़ौरन पञ्जाब पर चढ़ाई करने को तैयार हो गया। लेकिन पेशवा मराठों को तभी दक्खिन आने को पुकार रहा था। घरेलू विद्रोह को तो वह दबा चुका था, पर एक और भयङ्कर शत्रु से उसे वास्ता पड़ा था।

जकरियाखाँ की मृत्यु के बाद से सिक्ख पञ्जाब में प्रबल होते जाते थे। अब्दाली की पिछली चढ़ाई के समय उन्होंने अमृतसर से पहाड़ों तक कब्ज़ा कर लिया था। मुइन ने अब्दाली के लौटने पर अदीना बेग को उन्हें दबाने भेजा। अदीना ने उन्हें हरा कर उनसे यह समझौता किया कि उनसे मालगुज़ारी नाम को ली जायगी और वे दूसरी प्रजा से चुंगी वसूल कर सकेंगे। उस वर्ष के अन्त में मुइन की मृत्यु हुई। उसकी विधवा मुगलानी बेगम पञ्जाब का शासन करने लगी।

६७. दक्खिन में फ्रांसीसी और अंग्रेज़ शक्ति का उदय (१७४४–५२ ई०)—सन् १७४४ में इङ्गलैण्ड और फ्रांस में युद्ध छिड़ा,

तब ब्रूमा के उत्तराधिकारी ड्यूप्ले ने चोलमंडल की मद्रास आदि सब अंग्रेजी बस्तियाँ छीन लीं। केवल एक देवनपटम् (फोर्ट सेंट डैविड) की बस्ती अँगरेज़ों के पास बची।

ड्यूप्ले ने नवाब अनवरुद्दीन से मदद ली थी और बदले में उसे मद्रास देने को कहा था। अब वह उस वचन को भूल गया। अनवरुद्दीन ने अपने बेटे को १० हज़ार फ़ौज के साथ मद्रास पर भेजा। २३० फ्रांसीसियों और ७०० भारतीय सिपाहियों की सेना ने अडयार नदी पर उस फ़ौज को हरा कर उसकी तोपें छीन लीं (१७४६ ई०)। इस लड़ाई से पहले-पहल यह प्रकट हुआ कि युरोपियन तरीके पर तैयार की हुई सेना के सामने भारतीय सेना किसी काम की न थी। इङ्गलैण्ड और फ्रांस ने १७४८ ई० में सन्धि करके एक दूसरे की बस्तियाँ लौटा दीं।

ड्यूप्ले ने अब ब्रूमा के इस नये हथियार के द्वारा भारतीय राजनीति में दखल दे कर फ्रांसीसी साम्राज्य खड़ा करना चाहा। चन्दासाहब का परिवार पुद्दुचेरी में ही था, ड्यूप्ले ने सोचा कि यदि वह चन्दा को क़ैद से छुड़ा कर तामिल देश का नवाब बना सके तो वह वहाँ का सर्वेसर्वा हो जाय। उसने राजा शाहू को सात लाख रुपया दे कर चन्दासाहब को छुड़ा लिया (१७४८ ई०)।

तभी निज़ामुल्मुल्क भी चल बसा और उसके दूसरे बेटे नासिरजङ्ग तथा उसके दोहते मुज़फ़्फ़रजङ्ग में युद्ध छिड़ा। नासिर ने मराठों से मदद पायी। चन्दासाहब मुज़फ़्फ़रजङ्ग से जा मिला तथा दोनों पहले तामिलनाड गये। सीमा पर पहुँचते ही फ्रांसीसी सेना उनसे आ मिली। नवाब अनवरुद्दीन ने तामिल देश की राजधानी आरकाट से ५० मील पच्छिम आम्बूर के पास दमलचेरी घाट पर उनका सामना किया। अनवरुद्दीन मारा गया और उसका बेटा मुहम्मद-अली बची-खुची सेना के साथ कावेरी पार त्रिचनापल्ली भाग गया।

ड्यूप्ले ने कहा कि फ़ौरन त्रिची पर चढ़ाई की जाय; लेकिन मुज़फ़्फ़र और चन्दासाहब ने महीनों जशन-जुलूसों में बिता दिये, और वे तांज़ोर तक ही पहुँचे कि नासिरजङ्ग एक बड़ी फ़ौज ले कर उनपर आ पड़ा (दिस० १७४६)। फ्रांसीसी सेना के अनेक अफ़सर तभी इस्तीफ़े दे कर चले गये थे। मुज़फ़्फ़र ने

अपने को मामा के हाथ सौंप दिया। चन्दासाहब पुद्दुचेरी भागा। द्यूप्ले ने भी सन्धि का सन्देश भेजा, पर साथ ही नासिरजङ्ग के पठान सरदारों से षड्यन्त्र शुरू किया। नासिर आरकाट जा कर ऐश में डूब गया।

तब द्यूप्ले अपनी ताकत परखने लगा। थोड़ी सी सेना समुद्र के रास्ते भेज उसने मसुलीपटम ले लिया। फिर तामिलनाड के सबसे मजबूत किले जिंजी पर एक टुकड़ी भेज कर एक रात में उसे छीन लिया! नासिर ने तब द्यूप्ले से सन्धि कर ली। लेकिन तब तक पठान सरदारों वाला षड्यन्त्र भी पक चुका था और एक सरदार की गोली से नासिरजङ्ग का काम तमाम हो गया (५-१२-१७५०)।

मुज़फ्फर क़ैद से छूट कर पुद्दुचेरी गया। उसने द्यूप्ले को कृष्णा से कन्याकुमारी तक का नाज़िम तथा चन्दासाहब को उसका नायब बनाया। मुहम्मद-अली फिर त्रिची भागा, और अङ्गरेज़ों, मराठों तथा मैसूर के राजा से मदद माँगने लगा। सेनापति बुसी मुज़फ्फरजङ्ग को दक्खिन के सूबेदार की गद्दी पर बिठाने गोलकुण्डा ले चला। रास्ते में एक बलवा दबाते हुए मुज़फ्फर मारा गया। उसके तीन मामा वहीं मौजूद थे। बुसी ने उनमें से बड़े, सलाबतजङ्ग, को सूबेदार बना कर प्रयाण जारी रक्खा।

नासिरजङ्ग की मृत्यु पर बादशाह ने पेशवा की प्रेरणा से उसके बड़े भाई गाज़िउद्दीन को, जो दिल्ली में ही था, दक्खिन की सूबेदारी दी। गाज़िउद्दीन ने पेशवा को अपना नायब नियत किया। सलाबतजङ्ग जब कृष्णा पर पहुँचा तो पेशवा वहाँ उसका रास्ता रोके खड़ा था। लेकिन तभी पेशवा को महाराष्ट्र के घरेलू विद्रोह की खबर मिली और अपनी कठिनाई का पता लगने दिये बिना वह सलाबत से एक बड़ी रक़म लेना ठीक करके लौट गया। बुसी ने सलाबतजङ्ग को औरङ्गाबाद पहुँचा कर सूबेदार घोषित किया (२०-६-१७५१)।

उधर चन्दासाहब ने त्रिची को घेर लिया था। अङ्गरेज़ों ने भी अब भारतीय सिपाहियों की सेना तैयार कर ली थी और यह समझ कर कि मुहम्मद-अली को बचाने में ही उनका बचाव है, वे उसकी मदद करने लगे थे। इस प्रसङ्ग में क्लाइव नामक एक अङ्गरेज़ ने यह प्रस्ताव किया कि आरकाट पर

हमला किया जाय तो चन्दा उसे बचाने के लिए त्रिची का घेरा खुद ढीला कर देगा। तदनुसार क्लाइव ने आरकाट ले लिया (११-६-१७५१)। परिणाम वही हुआ। चन्दासाहब ने अपने बेटे राजूसाहेब के साथ अपनी आधी सेना आरकाट भेजी। उधर मुहम्मदअली की मदद में मैसूरी सेनापति नन्दिराज तथा मुरारीराव घोरपडे भी आ गये थे। राजूसाहेब ने आरकाट को आ घेरा। उस फूटे कोटले में मुट्ठी भर सेना के साथ क्लाइव बहादुरी से डटा रहा। मुरारीराव उसकी मदद को आया; तब राजूसाहेब को घेरा उठाना पड़ा (२५-११-१७५१)। क्लाइव तब मैदान में निकल कर लड़ता रहा।

घर का विद्रोह दबा कर बालाजी ने फिर औरङ्गाबाद पर चढ़ाई की। इसपर बुसी गोलकुण्डा से बढ़ा और मराठों को हराता हुआ पूना से १६ मील कोरेगाँव तक आ पहुँचा (२८-११-१७५१) इस युद्ध में युरोपियन शैली की चुस्त और नियमित गोलाबारी को पहली बार देख कर मराठे दंग रह गये। तो भी उन्होंने जी-जान से मुकाबला किया और वे चारों तरफ़ छापे मार कर शत्रु को सताने लगे। उनके एक दल ने त्रिम्बक किला ले लिया; रघुजी भोंसले ने पेनगङ्गा और गोदावरी के बीच का निज़ाम का पूर्वी प्रदेश दबा लिया। सलाबतजङ्ग ने तब अहमदनगर लौट कर लड़ाई बन्द कर दी। पेशवा के बुलाने से उत्तर भारत की मराठा सेना गाज़िउद्दीन को साथ ले कर ४-५-१७५२ को दिल्ली से रवाना हुई। बुरहानपुर और औरङ्गाबाद के मुसलमान गाज़िउद्दीन के पक्ष में थे। उसने उनकी मदद से औरङ्गाबाद ले लिया।

इस बीच त्रिची के मोर्चे पर मुहम्मद अली का पलड़ा भारी होते देख ताञ्जोर के राजा ने भी उसकी मदद की। चन्दासाहब योग्य शासक था, वह सफल होता तो मैसूर ताञ्जोर आदि दक्खिन के सब छोटे राज्यों को जीतने की कोशिश करता। इसीसे वे उसके विरोधी थे। अन्त में चन्दासाहब और फ़्रांसीसी सेना को श्रीरङ्गम् द्वीप में हटना पड़ा, जहाँ वे खुद घिर गये। ताञ्जोरी सेनापति ने चन्दासाहब को धोखे से पकड़ कर मार डाला (जून १७५२)।

मुहम्मद अली ने मैसूरियों को त्रिचनापल्ली देने का वचन दिया था। अब उसने धोखा दिया और क़िले में अङ्गरेज़ी सेना डाल दी। इसप

नन्दिराज और मुरारीराव फिर घेरा डाल कर पड़े रहे और फ्रांसीसियों का पक्ष लेने लगे।

गाज़िउद्दीन की एक सौतेली माँ ने उसे ज़हर दे दिया (१६-१०-१७५२)। तब सलाबतजङ्ग के राज्य में झगड़ा खतम हुआ और उसने फ्रांसीसियों को बड़े पुरस्कार दिये। द्यूप्ले ने राजूसाहब को तामिलनाड का नवाब घोषित किया। गाज़िउद्दीन ने मराठों को बुरहानपुर, औरङ्गाबाद के इलाके देने को कहा था, पेशवा ने उनका मुतालबा न छोड़ा। अन्त में सलाबतजङ्ग ने भालकी पर पेशवा से सन्धि की (२५-११-१७५२), और बराड़ के पच्छिम के तासी-गोदावरी के बीच के प्रदेश दे दिये।

यों पाँच बरस के युद्ध का परिणाम यह निकला कि हैदराबाद में, जिसे मराठे अपने मुँह का कौर समझे हुए थे, फ्रांसीसी शक्ति स्थापित हो गयी, पर उसकी थोड़ी-बहुत रोकथाम पेशवा कर पाया। तामिलनाड में जिंजी फ्रांसीसियों के हाथ, और आरकाट और त्रिची अङ्गरेज़ों के हाथ चले गये, तथा मैदान में दोनों का युद्ध चलता रहा जिसमें मैसूरी और मुरारीराव अब फ्रांसीसियों का साथ दे रहे थे।

§६. उत्तर और दक्खिन भारत पर चढ़ाइयाँ (१७५३–५६ ई०)—भालकी की सन्धि के बाद पेशवा को फ़ुरसत थी। यदि वह परिस्थिति को ठीक समझ सकता तो वह देखता कि दक्खिन से समुद्र पार के विदेशियों को निकालना तथा उत्तर भारत को सरहद्दी लुटेरों से बचाना, ये दो उसके प्रमुख कर्त्तव्य थे। इन्हें वह निभा सकता तो भारत का साम्राज्य तो उसके हाथों में आया हुआ था। दक्खिन से युरोपियनों को निकालने के लिए वह मैसूर आदि छोटे राज्यों का सहयोग पा सकता था। उत्तर भारत की रक्षा के लिए राजपूतों, जाटों, सिक्खों का सहयोग लिया जा सकता था तथा मुग़ल साम्राज्य की बची-खुची शक्ति का उपयोग किया जा सकता था। लेकिन पेशवा अपने पुराने रास्ते पर ही चलता गया! उसकी दृष्टि में मुगल साम्राज्य की जड़ पर चोटें लग चुकीं थीं, और उसे गिरा कर उसकी शाखाएँ बटोरने का काम ही बाकी था। अब मराठा दरबार और सेना में यह मुख्य चर्चा थी कि सब से पहले समूचा दक्खिन मराठा

साम्राज्य में आ जाना चाहिए। और चूँकि फ्रांसीसी इस काम में आड़े आ गये थे, इसलिए उन्हें उखाड़ फेंकना बालाजी ने अपना मुख्य ध्येय मान लिया। उसने यह भी सोचा कि उन्हें निकालने के लिए वह अङ्गरेज़ों का उपयोग कर सकता है! वह स्वयम् दक्खिन में उलझा रहा और उत्तर भारत में अपने भाई रघुनाथराव (राघोबा) या अपने सेनापतियों को भेजता रहा।

अ. उत्तर भारत—इसी समय दिल्ली में बादशाह और सफ़्दरजङ्ग के बीच घरेलू युद्ध छिड़ गया। बादशाह ने कमरुद्दीन के बेटे इन्तिज़ामुद्दौला को वज़ीर बनाया। पिछले साल जब गाज़िउद्दीन की हत्या की ख़बर आयी थी तो उसके बेटे शिहाब ने सफ़्दर के पास फूट फूट कर रो कर कहा था कि मुझ अनाथ के तुम्हीं बाप हो! सफ़्दर का दिल पिघल गया और उस १५ साल के लड़के को उसने इमादुल्मुल्क का पद दे कर साम्राज्य का मीर बख़्शी बनवा दिया था। वही इमाद अब सफ़्दर का जानी दुश्मन हो गया। मराठे भी उसकी तरफ़ हो गये, लेकिन सूरजमल ने सफ़्दर का साथ दिया। नजीबख़ाँ रुहेला अपनी सेना के साथ शाही पक्ष में आ मिला। सफ़्दर की सेना धीरे धीरे दिल्ली से ढकेली गयी। पीछे बादशाह और इन्तिज़ाम इमाद से स्पर्धा और सफ़्दर से समझौते की बात करने लगे। समझौता होने पर सफ़्दर अवध चला गया। इस घरेलू युद्ध में दिल्ली सरकार दिवालिया हो गयी और उसकी रही-सही सैनिक शक्ति भी चूर चूर हो गयी।

पेशवा ने मुख्य मराठा सेना को तब तक रोके रक्खा जब तक दोनों पक्ष क्षीण न हो जाँय। जब रघुनाथ दादा के नेतृत्व में मराठा सेना उत्तर भारत पहुँची तो बादशाह और इमाद के बीच उसे अपनी अपनी तरफ़ मिलाने की होड़ लग गयी। मराठों ने इमाद का साथ दिया, क्योंकि एक तो उन्हें उसके द्वारा दक्खिन में सुविधाएँ पाने की आशा थी, दूसरे वे और इमाद दोनों जाट राजा को दबाना चाहते थे। परन्तु बादशाह और वज़ीर इस ख़्याल से जाटों का पक्ष करते थे कि इमाद प्रबल न होने पाय। राजपूताने से राघोबा सीधे सूरजमल के ख़िलाफ़ बढ़ा (जनवरी १७५४)। जाट राजा ने कुम्भेरगढ़ की शरण

ली। कुम्भेर के मुहासरे में मल्हार होल्कर का बेटा खण्डेराव मारा गया। मई में सूरजमल ने समझौता किया और अधीनता मानी।

इसी बीच बादशाह और इमाद में खुला झगड़ा हो गया। वज़ीर इन्तिज़ाम ने यह योजना बनायी कि मराठों और इमाद के खिलाफ़ सफ़्दरजङ्ग, जाटों और राजपूतों से मदद ली जाय। इस उद्देश से वह बादशाह को ले कर दिल्ली से सिकन्दराबाद तक आया। यहाँ सफ़्दर और सूरजमल को भी बुलाया गया था। परन्तु अब ख़बर मिली कि जाटों से सन्धि करके मराठे मथुरा आ पहुँचे थे। मल्हार और करीब आ गया था! बस अहमदशाह के डेरे में भगदड़ मच गयी। २६ मई को प्रातः दो बजे गहरे अँधेरे में सब लोग दिल्ली भागने लगे। शाही बेगमों की बड़ी दुर्गति हुई। उनमें से अधिकांश मराठों के हाथ पड़ीं, जिन्हें मल्हार ने इज्ज़त के साथ पहरे में रख दिया।

मल्हार ने जो कुछ कहा, अहमदशाह को सब मानना पड़ा। २-६-१७५४ को बादशाह ने इमाद को वज़ीर बनाया। इमाद ने कुरान हाथ में ले कर शपथ ली कि वह उससे कभी दगा न करेगा। दरबार से बाहर आ कर उसने शाह आलम बहादुरशाह के एक पोते को शाही महल की क़ैद से मँगवाया, उसे आलमगीर के नाम से गद्दी पर बिठाया, और अहमदशाह को क़ैद में डलवा दिया! तैमूरी वंश की बची खुची शक्ति और इज़्ज़त तो यों धूल में मिली ही, साथ ही मराठा सरकार की नीति भी राजपूताने के झगड़ों की तरह दिल्ली के झगड़ों के बीच केवल क्षणिक लाभ को देखने के कारण पथभ्रष्ट हो गयी। जाट भी मराठों से चिढ़ गये; और सफ़्दरजङ्ग के तजुरबे से लोगों को मालूम हो गया कि मराठा सरकार की मैत्री में कितना पानी है।

दिल्ली से राघोबा ने जयप्पा शिन्दे को मारवाड़ भेजा, जहाँ रामसिंह विजयसिंह के खिलाफ़ मदद माँग रहा था। जयप्पा से हार कर विजयसिंह ने नागोरगढ़ में शरण ली। जयप्पा ने घेरा डाल दिया। पेशवा का आदेश था कि विजयसिंह को बहुत न दबाया जाय। पर जयप्पा अड़ गया। इस बीच सफ़्दर-जङ्ग की मृत्यु हो गयी। पेशवा ने जयप्पा को फिर लिखा कि मारवाड़ का मामला निपटा कर अवध जाओ और प्रयाग-बनारस पाने की कोशिश करो। लेकिन

हठी जयप्पा रेगिस्तान में अटका रहा। उसके अभिमानी बर्ताव से चिढ़ कर राजपूतों ने उसे कत्ल कर दिया (२४-७-१७५५)। तब उसका भाई दत्ताजी उसकी जगह डट गया और उसने विजयसिंह को पूरी तरह हरा कर बीकानेर भगा दिया। फ़रवरी १७५६ में सन्धि हुई जिसके अनुसार अजमेर मराठों को मिला।

मुख्य मराठा सेना साल भर पहले दक्खिन चली गयी थी। इस बार पेशवा ने मल्हार को भी दक्खिन की चढ़ाई के लिए बुला लिया।

पंजाब में मुगलानी बेगम के शासन की अव्यवस्था हटाने के लिए अब्दाली ने अपना प्रतिनिधि भेज दिया था। इमाद ने अदीना बेग को भेज कर उसे भगा दिया (जनवरी १७५६)। पीछे उसने मुगलानी को भी पकड़ मँगाया और अपना सूबेदार लाहौर में रख दिया।

इ. **दक्खिन भारत**—भालकी की सन्धि से मराठों और निज़ाम के बीच शान्ति हुई, पर तामिलनाड में युद्ध जारी था और त्रिची का घेरा पड़ा हुआ था।

सलाबतजङ्ग के भाइयों और दीवान से षड्यन्त्र करके पेशवा ने बुसी की शक्ति तोड़नी चाही; पर सब व्यर्थ हुआ। सन् १७५३ के अन्त में सलाबत ने आन्ध्र तट के चार उत्तरी सरकार (ज़िले)—कोंडपल्ली, एलोर, राजमहेन्द्री, शिकाकोल—फ्रांसीसी कम्पनी को जागीर रूप में दे दिये।

दोनों पक्ष अब युद्ध से ऊब गये थे। फ्रांसीसी कम्पनी की आर्थिक दशा अँग्रेज़ी कम्पनी से बहुत कमज़ोर थी; उसमें जनता का उत्साहपूर्ण सहयोग न था, वह बहुत कुछ सरकारी सहायता से चलती थी और उस समय की फ्रांसीसी सरकार की तरह कुव्यवस्था का नमूना थी। उसके संचालकों ने अब दूप्ले को पदच्युत कर उसके स्थान में दूसरे व्यक्ति को भेजा (अगस्त १७५४), जिसने युद्ध रुकवा कर मुहम्मदअली को तामिलनाड का नवाब मान लिया। दोनों पक्षों ने एक आरज़ी सन्धि का मसविदा तैयार कर स्वीकृति के लिए विलायत भेजा। पर मैसूरियों ने मुहम्मदअली से युद्ध बन्द नहीं किया।

ठीक इसी समय बालाजीराव ने अपनी दक्खिन की चढ़ाई शुरू की। उसने सलाबतजङ्ग के दीवान को अपने साथ मिला कर यह प्रस्ताव किया कि मराठे और निज़ाम मिल कर मैसूर और अन्य छोटे दक्खिनी राज्यों को जीत लें। मैसूर की सेना त्रिचनापल्ली में अङ्गरेज़ों को घेरे हुए थी, तो भी बुसी को उनके देश पर चढ़ाई करनी पड़ी। पेशवा और सलाबत की सेना के श्रीरंगपट्टम् पहुँचने पर मैसूरी सेना को त्रिची से लौटना पड़ा, जिससे मुहम्मदअली और अङ्गरेज़ों को निजात मिली। मैसूर के साथ ही बेदनूर पर भी चढ़ाई की गयी। कृष्णा नदी के दक्खिन, मैसूर और तामिलनाड की उत्तरी सीमा पर सावनूर, कार्नूल और कडप के पठान सरदारों के तथा गुत्ती के सरदार मुरारीराव घोरपडे के इलाके थे। नासिरजङ्ग की मृत्यु के बाद से ये बहुत कुछ स्वतन्त्र हो गये थे। इनके इलाकों का बड़ा अंश ले कर इन्हें अधीन किया गया (मई १७५६)। निज़ाम की सेना इसके बाद लौट गयी, पर मराठों की दक्खिनी चढ़ाई अगले साल भर जारी रही।

इसी बीच महाराष्ट्र के भीतरी शासन में भी पेशवा ने एक भारी भूल की। कोंकण के आंग्रे भाइयों में से तुलाजी ने विद्रोह कर अनेक अत्याचार किये थे। बालाजी ने अपने उस प्रजाजन के खिलाफ़ विदेशी अङ्गरेज़ों से मदद ली! तुलाजी का सुवर्णदुर्ग छिन गया (एप्रिल १७५५) और वह विजयदुर्ग भाग गया। अङ्गरेज़ी बेड़ा लौट गया, पर मराठा सेना ने तुलाजी को घेर कर सन्धि के लिए विवश किया। इसी बीच अमेरिका में अङ्गरेज़ और फ्रांसीसी उपनिवेशों में युद्ध छिड़ गया था (१७५५ ई०)। इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री पिट ने वाटसन और क्लाइव को फ्रांसीसियों से लड़ने के लिए मुम्बई भेजा। उनका यह प्रस्ताव था कि अङ्गरेज़ मराठों के साथ मिल कर हैदराबाद पर चढ़ाई करें और बुसी को वहाँ से निकाल दें। ऐसा न हुआ तो क्लाइव और वाटसन ने विजयदुर्ग पर चढ़ाई करके तुलाजी का सब बेड़ा डुबा दिया (१२-४-१७५६)। तीस वर्ष पहले जिस आंग्रे से अङ्गरेज़ सदा हारते रहे, उसके मराठा बेड़े को मराठा सरकार ने उनसे स्वयं डुबवा दिया! क्लाइव और वाटसन वहाँ से मद्रास गये और क्लाइव मद्रास का गवर्नर नियत हुआ।

§७. अब्दाली की दिल्ली-मथुरा-चढ़ाई; अङ्गरेजों का बङ्गाल-बिहार तथा मराठों का पञ्जाब जीतना (१७५६–५८)—विजयदुर्ग पर अङ्गरेज़ी झण्डा फहराने के दो दिन पहले बंगाल में बूढ़े अलीवर्दी का देहान्त हुआ और उसका दोहता सिराजुद्दौला नवाब बना। अङ्गरेज़ अपना कलकत्ते वाला क़िला बढ़ाने लगे। वे पहले से ही नवाब के खिलाफ़ षड्यन्त्र कर रहे थे। सिराज ने हुक्म दिया कि बंगाल में कोई विदेशी युद्ध की तैयारी न करे। अङ्गरेज़ों के न मानने पर सिराज ने चढ़ाई कर कलकत्ता ले लिया, और बंगाल भर में अङ्गरेज़ों की कोठियों पर दखल कर लिया। अङ्गरेज़ कलकत्ते के दक्खिन फल्ता भाग गये। सिराज ने उन्हें वहाँ बना रहने दिया, क्योंकि वह उन्हें तुच्छ समझता था। उसके ख्याल से युरोप कोई छोटा सा टापू था, जिसके कुल बाशिन्दे १०-१२ हज़ार थे, जिनमें से चौथाई अङ्गरेज़ थे! चन्द्रनगर के फ्रांसीसी सिराज की मदद के लिए तैयार थे। बालाजी ने देखा कि बंगाल में भी फ्रांसीसी हैदराबाद की तरह सर्वेसर्वा हो जायेंगे, इसलिए उसने वहाँ के अङ्गरेज़ों के मुखिया ड्रेक को सन्देश भेजा कि नवाब से न दबो, वह मदद को मराठा सेना भेज सकता है। ड्रेक ने यह मदद न ली, तो भी बालाजी ने अपनी सारी शक्ति इस ओर लगा दी कि बुसी बंगाल न पहुँचने पाय। उसने आन्ध्र तट की फ्रांसीसी जागीर में बलवा करा दिया, जिसे दबाने में बुसी को तीन मास लग गये। इस बीच में वाटसन और क्लाइव ने मद्रास से जा कर कलकत्ता ले लिया (२-१-१७५७)।

इसी बीच पञ्जाब में भी भयङ्कर स्थिति पैदा हो गयी थी। इमाद का पञ्जाब लेना फ़कत अब्दाली को चिढ़ाना था। सन् १७५६ के जाड़े में अब्दाली ने पञ्जाब पर चढ़ाई की। जनवरी में वह दिल्ली की तरफ़ बढ़ा। इमाद को कुछ न सूझा कि क्या करे। गृह-युद्ध के बाद के दिवालियापन में दिल्ली की सेना तितर-बितर हो चुकी थी। मराठे दक्खिन चले गये थे। इमाद ने नजीब खाँ से, सूरजमल से और सफ़दर के बेटे शुजाउद्दौला से व्यर्थ मदद माँगी। ग्वालियर से अन्ताजी माणकेश्वर अपनी ३ हज़ार की टुकड़ी के साथ उसकी मदद को आया। अब्दाली के नज़दीक आने पर रुहेले उससे जा मिले।

कायर इमाद चुपके से दिल्ली से निकला; अब्दाली की छावनी में जाकर उसने आत्म-समर्पण कर दिया (१६-१-१७५७)। रुहेलों के बीच से मुश्किल से रास्ता काटते हुए अन्ताजी दिल्ली के दक्खिन फ़रीदाबाद तक हट गया।

अब्दाली ने दिल्ली में प्रवेश किया और नादिरशाह की तरह शहर के धन और इज़्ज़त की मुहल्लेवार बाकायदा लूट शुरू की। बड़े-बड़े अमीर-उमरावों को साधारण चोरों की तरह यातनाएँ दी गयीं।

२० हज़ार अफ़गान सवारों ने फ़रीदाबाद में अन्ताजी को एकाएक घेर लिया। दिन भर लड़ने और अपनी तिहाई सेना को कटाने के बाद वह घेरा तोड़ कर मथुरा में जा निकला। वहाँ उसने सूरजमल से कहा, आओ मिल कर मुकाबला करें। पर सूरज तैयार न हुआ, और जब २२ फरवरी को अब्दाली दिल्ली से दक्खिन को बढ़ा तो उसने कुम्भेरगढ़ में शरण ली। जाट इलाके में घुसते ही अब्दाली ने खुली लूट, कत्ले-आम और बलात्कार का हुक्म दे दिया। "सूरजमल ब्रज की यह बरबादी कुम्भेर से देखता रहा।" लेकिन उसके बेटे जवाहरसिंह ने कहा कि जाटों की लाशों के ऊपर से अफ़गान भले ही ब्रज में घुसें, ऐसे ही न घुस पायेंगे। १० हज़ार जवानों के साथ जवाहर ने मथुरा का रास्ता रोका। उस टुकड़ी के काटे जाने पर वह थोड़े से साथियों के साथ बच कर निकल गया और अफ़गानों ने मथुरा में प्रवेश किया। २१ मार्च को अफ़गान हरावल आगरे में घुसी, लेकिन वहाँ किले की तोपों ने मुकाबला किया। इस बीच सड़ती हुई लाशों के कारण अफ़गान सेना में ज़ोर का हैज़ा फैला, और अब्दाली ने एकाएक वापसी का हुक्म दिया। नजीब को दिल्ली में अपना प्रतिनिधि नियत कर, तथा पञ्जाब का शासन अपने बेटे तैमूर और अपने मुख्य सेनापति जहानखाँ को सौंप कर, कई करोड़ की लूट लिये वह वापस चला गया। वापसी में पटियाले के सिक्ख जाट आलासिंह तथा दूसरे सिक्खों ने उसकी लूट का बोझ कुछ हलका किया।

क्लाइव के कलकत्ता वापस लेने पर सिराज ने बुसी को मदद के लिए लिखा। लेकिन बुसी को तुरत न आते देख तथा अब्दाली के हमले का आतंक बङ्गाल तक पहुँच आने से उसने क्लाइव से समझौते की बात की। उसे

समझौते की बातों में रखते हुए क्लाइव ने चन्द्रनगर भी ले लिया (२३-३-१७५७) । उधर आन्ध्र ज़िलों का पूरा बन्दोबस्त कर बुसी गञ्जाम पहुँचा और समाचारों की राह देखने लगा। इतने में उसे चन्द्रनगर के पतन की खबर मिली। तब बङ्गाल जाना व्यर्थ समझ वह दक्खिन लौटा और आन्ध्र तट से अङ्गरेज़ी बस्तियों की एक-एक कर सफ़ाई करता गया।

तभी क्लाइव ने सिराज पर चढ़ाई कर दी। अलीवर्दी का बहनोई मीर-जाफ़र सिराज का सेनापति था। क्लाइव ने उसके साथ षड्यन्त्र रचा। सिराज मुर्शिदाबाद से बढ़ा। हुगली और मोर के संगम पर पलाशी गाँव में लड़ाई हुई (२३-६-१७५७)। लड़ाई के बीच में मीर जाफ़र शत्रु से जा मिला। सिराज की हार हुई और वह मारा गया। क्लाइव ने मीर जाफ़र को मुर्शिदा-बाद ले जा कर नवाब बनाया। मीर जाफ़र ने अङ्गरेज़ कम्पनी और उसके कर्मचारियों को प्रकट और गुप्त सन्धियों से करीब पौने तीन करोड़ रुपया हरजाने, भेंट और रिशवत के रूप में तथा चौबीस-परगना ज़िला जागीर के रूप में देना स्वीकार किया था। मुर्शिदाबाद के खजाने में कुल डेढ़ करोड़ रुपया था। इसलिए जवाहरातों और सामान को नीलाम कर और नकद मिला कर आधी रकम नावों में कलकत्ता भेजी गयी और बाकी को तीन सालाना किश्तों में देना तय हुआ।

उत्तर और पूरब भारत में जब ये घटनाएँ घट रही थीं तब पेशवा अपनी दक्खिनी चढ़ाई में उलझा था। अब्दाली का पञ्जाब लेना सुन कर उसने मल्हार और राघोबा को उत्तर की ओर भेजा, लेकिन स्वयम् कर्णाटक की तीसरी चढ़ाई जारी रक्खी। उस प्रसङ्ग में मैसूर राज्य के १४ ज़िले उसके हाथ आये। बलवन्तराव मेहन्देले को वहाँ छोड़ कर १६ जून को पेशवा पूना लौटा और उसके बाद सलाबतजङ्ग के राज्य में षड्यन्त्र करके बुसी को निकालने की कोशिश में उसने अपनी सारी ताकत लगा दी। लेकिन बुसी ने उसकी सब कोशिशें बेकार कर दीं (जनवरी १७५८)।

बलवन्तराव ने मैसूर के इलाकों पर काबू कर तथा कडप, कानूंल, सावनूर के नवाबों के गुट्ट को कुचल कर तामिल सीमा के घाटों तक अधिकार कर लिया और तब आरकाट के नवाब मुहम्मद अली से बकाया चौथ तलब

की। हम देख चुके हैं कि १७५५ ई० से अङ्गरेज़ों का रक्षित मुहम्मद अली वहाँ निर्विवाद स्थापित हो चुका था। बलवन्तराव अब भी तामिलनाड में नहीं आया; उसने केवल चौथ माँगी, जो अङ्गरेज़ों ने दे दी। लेकिन अब वहाँ फ्रांसीसियों ने भी फिर युद्ध जारी कर त्रिची को घेर लिया और पुद्दुचेरी और आरकाट के बीच वन्दिवाश तथा नौ और किले ले लिये। यों सन् १७५७ में जहाँ बङ्गाल-बिहार पर अङ्गरेज़ों और आन्ध्र तट पर फ्रांसीसियों का पूरा अधिकार हो गया, वहाँ तामिलनाड में फिर युद्ध जारी हो गया।

रघुनाथ १४ फरवरी को इन्दौर पहुँचा। लेकिन उसे सामान जुटाते समय लग गया। मई में मराठा हरावल ने आगरा पहुँच सूरजमल से समझौता किया। रुहेलों से दोआब वापिस ले कर उन्होंने दिल्ली को घेर लिया। नजीब ने सन्धि करके दिल्ली छोड़ दी (६-६-१७५७) और यह भी कहा, कहो तो मैं अब्दाली के पास जाऊँ और सीमाएँ निश्चित करके स्थायी सन्धि करा दूँ। लेकिन रघुनाथ ने इसपर ध्यान न दिया। मराठों के उभाड़ने से पञ्जाब में सिक्ख भी विद्रोह करने लगे। अन्त में २१ मार्च १७५८ को रघुनाथ ने सरहिन्द जीत लिया, तथा एक मास बाद लाहौर में प्रवेश किया। तैमूर और जहानखाँ अटक पार भाग गये; मुलतान में भी मराठा छावनी पड़ गयी। पञ्जाब का शासन अदीना बेग को सौंपा गया। इसके बाद रघुनाथ दक्खिन लौट गया।


रघुनाथराव [भा० इ० सं० मं०]

§८. फ्रांसीसी शक्ति का अन्त तथा निज़ामअली का पराभव (१७५८–६१ ई०)—सन् १७५६ में इङ्गलैण्ड से फिर युद्ध छिड़ने पर फ्रांसीसी सरकार ने लाली नामक सेनापति को भारत भेजा। वह एप्रिल १७५८ में चोल-मंडल पहुँचा। आते ही उसने देवनपटम को घेर लिया, और एक महीने बाद ले लिया। तब उसने बुसी को लिखा, "अब मद्रास लेते ही मेरा इरादा स्थल या समुद्र के रास्ते फ़ौरन गंगा पर पहुँचने का है।" लाली के आने से पहले बुसी आन्ध्र तट के ज़िलों का पक्का बन्दोबस्त कर चुका था और हैदराबाद में अपना पूरा प्रभुत्व स्थापित कर चुका था। लाली से वह बड़ी आशाएँ लगाये हुए था।

देवनपटम के बाद मद्रास की बारी थी। लेकिन पुद्दुचेरी का ख़ज़ाना ख़ाली था। रुपये के लिए लाली ने तांजोर पर चढ़ाई की, पर उसमें उसे विफलता हुई। वह था तो वीर और कुशल सेनापति था, लेकिन उतावला और किसी की न सुनने वाला। अब मद्रास पर हमला करने के लिए उसने त्रिची और मसुलीपटम वाली टुकड़ियों तथा बुसी को भी बुला लिया। बुसी ने उसे समझाना चाहा कि उसे हैदराबाद में रहने दिया जाय। लेकिन लाली ने कहा, "मुझे बादशाह और कम्पनी ने हिन्दुस्तान भेजा है अङ्गरेज़ों को मार भगाने के लिए।……मुझे इससे क्या मतलब कि अमुक अमुक राजा अमुक नवाबी के लिए लड़ रहे हैं?"

बुसी के चले आने पर आन्ध्र तट के एक पालयगार ने विजगापट्टम ले कर अङ्गरेज़ कम्पनी को अपनी फ़ौज भेजने को लिखा। क्लाइव ने बंगाल से कर्नल फ़ोर्ड को वहाँ भेज दिया। फ़ोर्ड ने बचे-खुचे फ्रांसीसियों के साथ सलाबत-जंग को भी मसुलीपटम पर हरा दिया। सलाबत ने आन्ध्र तट का ८० × २० मील इलाका अङ्गरेज़ों को दे दिया और आगे से फ्रांसीसियों से सम्बन्ध त्याग दिया। यों जिस ज़मीन से लाली को युद्ध का सारा ख़र्चा मिल सकता था, वह उसकी अपनी बेसमझी से अंगरेज़ों के हाथ चली गयी।

इस बीच में राजूसाहब ने आरकाट ले लिया और लाली ने मद्रास को आ घेरा। लेकिन ठीक संकट के समय अंगरेज़ी बेड़े के आ जाने से लाली को मद्रास से हटना पड़ा (१७-२-१७५९)।

सलाबत मसुलीपटम आया तो पीछे उसके भाई निज़ामअली ने हैदराबाद ले लिया। लौटने पर सलाबत को उसे अपना दीवान बनाना पड़ा और वह खुद नाम का सूबेदार रह गया।

सन् १७५६ के शुरू में पेशवा ने मैसूर में गोपालराव पटवर्धन को भेजा था। उसे पहले तो बराबर सफलता हुई, पर जब वह बेंगलूर को घेरे हुए था, तब हैदरअली नामक एक मैसूरी सेनापति ने बहादुरी से मुकाबला करके घेरा उठवा दिया। गोपालराव वहाँ से तामिलनाड गया, पर वहाँ उसे कुछ न सूझा कि क्या करे। हैदरअली इसके बाद श्रीरंगपट्टम जा कर उस राज्य का सर्वेसर्वा बन गया।

पेशवा अब अङ्गरेज़ों से आशङ्कित हो उठा था। सन् १७५८ में उसने उनसे जञ्जीरा के शिद्दी के खिलाफ़ मदद माँगी, जो उन्होंने नहीं दी। उन्हें डर था कि जञ्जीरा के बाद वह मुम्बई लेने की कोशिश न करे। फिर १७५६ ई० में अङ्गरेज़ों ने धोखे से सूरत का कोटला छीन लिया। पेशवा अब फ्रांसीसियों से मिल कर जञ्जीरा और मुम्बई पर चढ़ाई करने की सोचने लगा। लेकिन अक्तूबर १७५६ में अब्दाली के फिर चढ़ाई करने पर मराठे कठिनाई में पड़ गये, और ठीक उसी समय आयरकूट इङ्गलैण्ड से ताज़ी सेना के साथ मद्रास आ पहुँचा। उसने आते ही वन्दिवाश ले लिया। उस क़िले को वापस लेने की चेष्टा में लाली की हार हुई और बुसी क़ैद हुआ (२२-१२-१७५६)। इसके बाद मुरारीराव घोरपडे, जो अब तक फ्रांसीसियों की मदद कर रहा था, अपने दल के साथ तामिलनाड से चलता बना, और कूट ने आरकाट भी ले लिया।

निज़ामअली ने पेशवा के रोकने पर भी अँगरेज़ों से मैत्री की। इसलिए १७५६ ई० के अन्त में पेशवा ने चिमाजी अप्पा के पुत्र सदाशिवराव तथा अपने बेटे विश्वासराव को उसपर चढ़ाई के लिए भेजा। इब्राहीमखाँ गार्दी* नामक बुसी का सिखाया हुआ एक पदातिनायक उनकी सेवा में था। मांजरा नदी के काँठे में उद्‌गीर पर निज़ामअली हार गया, और उसा के कोटले में

* 'गार्दी' शब्द का मूल फ्रांसीसी 'गार्द' ही है।

घिर गया। चार दिन बाद उसने सन्धि की और असीरगढ़, दौलताबाद, बीजापुर, अहमदनगर और बुरहानपुर के क़िले तथा ६२ लाख आय का प्रदेश मराठों को दे दिया (जन० १७६०)। यों निज़ाम की शक्ति चूर-चूर हुई, और मराठे दो तीन वर्ष में समूचा दक्खिन जीत लेने के सपने देखने लगे।

सितम्बर १७६० में कूट ने पुद्दुचेरी को जा घेरा। लाली ने तब बालाजीराव से मदद माँगी। जिञ्जी का क़िला तब तक फ्रांसीसियों के हाथ में था, और पेशवा की मदद के बदले में लाली उसे देने को तैयार था। पेशवा के लिए तामिलनाड में दखल दे कर युरोपियन शक्ति को तोड़ देने का यह अच्छा मौका था, पर वह मोलभाव करता रह गया—शायद इस कारण कि उसकी सारी शक्ति तब उत्तर भारत में लगी हुई थी—और जनवरी १७६१ में कूट ने पुद्दुचेरी को ले लिया। बाद में जिञ्जी भी लिया गया। १७६३ ई० में पैरिस की सन्धि से फ्रान्स को उसकी पुरानी बस्तियाँ लौटा दी गयीं।

§९. **मराठा-अफ़गान-संघर्ष** (१७५९-६१)—सन् १७५८ के अन्त में पेशवा ने मल्हार होलकर के बजाय दत्ताजी शिन्दे को आगरा का सूबेदार बना कर भेजा। पञ्जाब पर अधिकार दृढ़ करना और बिहार को जीतना, ये दो कार्य उसे सौंपे गये थे। अदीना बेग मर चुका था; उसकी जगह दत्ताजी का छोटा भाई साबाजी लाहौर का सूबेदार नियत हुआ। पेशवा ने अब यह समझ लिया था कि इमाद झूठा और निकम्मा आदमी है। उसकी जगह शुजाउद्दौला को वज़ीर बनाने का प्रस्ताव था। इसके बदले में शुजा से प्रयाग और बनारस इस तरह ले लेना था कि दत्ताजी बादशाह और वज़ीर के साथ बिहार पर चढ़ाई करे और उसी समय रघुनाथदादा बुन्देलखण्ड के रास्ते प्रयाग पर उससे आ मिले।

बिहार की चढ़ाई के लिए नजीब से हो सके तो समझौता करना, अन्यथा उसे उखाड़ देना था, क्योंकि उत्तर भारत में मराठा नीति के मार्ग में वह एकमात्र काँटा था। दत्ताजी कोरा लड़ाका सैनिक था। इमाद तो उसके आगे झुक कर वज़ीर बना रहा, पर नजीब से समझौता न हो पाया। जून के अन्त में उससे लड़ाई छिड़ गयी। हरद्वार के ३२ मील दक्खिन गङ्गा

के खादर में शूक़रताल नामक नीची जगह थी। नजीब ने उसकी मोर्चाबन्दी कर और गङ्गा पर पुल बाँध कर वहाँ शरण ली। दत्ताजी ने उसका घेरा डाला। लेकिन शूक़रताल दूसरा नागोर बन गया और उसमें फँस कर दत्ताजी न तो बिहार पर चढ़ाई कर सका और न पञ्जाब को बचा सका। उसने गोविन्दपन्त बुन्देले* को हरद्वार के रास्ते नजीबाबाद पर हमला करने भेजा। वह हमला सफल न हुआ। गोविन्द तब शूक़रताल के पूरब तरफ़ पहुँचा; लेकिन वहाँ अवध की सेना रुहेलों की मदद को आ गयी, और उसके पीछे खुद शुजा भी आ गया।

इस बीच में अब्दाली ने पञ्जाब पर चढ़ाई कर दी थी। दत्ताजी की मदद न आती देख साबाजी को लाहौर छोड़ना पड़ा, और वह शूक़रताल पहुँचा (८-११-१७५९), परन्तु दत्ताजी इसके बाद भी वहीं अड़ा रहा।

नवम्बर बीतते-बीतते अब्दाली ने सरहिन्द ले लिया। इमाद ने यह सोच कर कि कहीं अब्दाली बादशाह का उपयोग न करे, आलमगीर २य को क़त्ल कर दिया और कामबख़्श के एक पोते को शाहजहाँ २य नाम से गद्दी दी। एक साल पहले उसने शाहज़ादा अली-गौहर को मारने की कोशिश की थी। अली-गौहर बच कर अवध भाग गया था और बिहार को फिर जीतने की विफल कोशिशें कर रहा था। उसने भी अब अपने को शाहआलम नाम से बादशाह घोषित किया।

८ दिसम्बर को दत्ताजी ने शूक़रताल का घेरा उठाया; जमना पार कर वह अब्दाली के मुक़ाबले को बढ़ा। तरावड़ी पर अफ़गान हरावल से उसकी मुठभेड़ हुई; पर अब्दाली जमना पार कर नजीब से जा मिला और दोआब के रास्ते दिल्ली की ओर बढ़ा। दत्ताजी यह देख फ़ौरन दिल्ली आ गया और जमना के घाटों पर सेना तैनात कर प्रतीक्षा करने लगा। ९ जनवरी १७६० को दिल्ली के सामने जमना के बीच टापू में अफ़गानों से लड़ता हुआ वह मारा गया। अब्दाली ने दिल्ली ले ली; इमाद भरतपुर भागा; जयप्पा

* गोविन्दपन्त का असल उपनाम खेर था, पर वह अपने को बुन्देला कहता था।

शिन्दे का बेटा जनकोजी बची-खुची मराठा सेना के साथ नारनोल की तरफ़ हट गया।

इसी बीच मल्हार ने तेज़ी से राजपूताने से आ कर नारनोल के पास मराठा सेना का नेतृत्व ले लिया। अब्दाली ने दिल्ली से दीग पर, जहाँ सूरजमल था, चढ़ाई की; पर मल्हार उसके पीछे दिल्ली की ओर बढ़ा। अब्दाली को पीछे हटना पड़ा और मल्हार इसी तरह उसे दिल्ली से दोआब वापस ले गया। सिकन्दराबाद के पास नजीब का खजाना लूटने के लिए मल्हार दो-चार दिन रुक गया; वहाँ जहानखाँ उस पर अचानक आ टूटा (४ मार्च)। मल्हार हार कर भरतपुर भागा; लेकिन उसकी दावपेंच की लड़ाई से इस बार जाटों का इलाका साफ़ बच गया।

दत्ताजी की मृत्यु से एक दिन पहले तक की खबरें पेशवा को उद्गीर की सन्धि से पहले मिल चुकी थीं। वह दक्खिन से एक बड़ी सेना भेज रहा था। इसलिए नजीब ने अब्दाली से प्रार्थना की कि वह गर्मियों में न लौटे। अब्दाली ने अनूपशहर में छावनी डाल दी। पेशवा ने भी अपनी सेना शीघ्र भेज दी। सदाशिवराव भाऊ, जिसने दक्खिन के युद्धों में योग्यता दिखायी थी, इस सेना का नेता था। ३० मई को वह ग्वालियर आ पहुँचा। उत्तर भारत की मराठा सेना जाटों के राज्य में थी, उसका कुछ अंश गोविन्द बुन्देले के अधीन इटावा में था। भाऊ ने मल्हार और गोविन्द को लिखा था कि राजपूताना-बुन्देलखण्ड में मित्र ढूँढें और शुजा को अपनी तरफ़ मिलायें। उसने बुन्देले को इटावा पर नावें तैयार रखने को भी लिखा था, जिससे वह आते ही जमना पार कर अवध और रुहेलखण्ड के बीच अपनी सेना का पच्चर घुसेड़ दे। पर उस साल जल्दी बरसात शुरू हुई, और जमना में भारी बाढ़ आ गयी थी। सदाशिवराव ने राजपूत राजाओं को मनाने की बड़ी कोशिशें कीं, पर उन लोगों ने तटस्थ रहना ही तय किया*, और जुलाई में शुजा भी अब्दाली से जा मिला। शुजा

* यह प्रचलित विश्वास है कि भाऊ के अभिमानी बर्ताव से खीझ कर राजपूत और जाट अलग हो गये। समकालीन कागजों की नयी खोज से यह बिलकुल गलत साबित हुआ है।

ने सोचा कि अब्दाली जीत गया तो भी वापस चला जायगा, पर मराठे जीत गये तो उसे अधीन करेंगे। यदि सफ़्दरजंग की १७५२ वाली सन्धि के समय से मराठा सरकार किसी टिकाऊ और दूरदर्शितापूर्ण नीति पर चली होती तो इस समय ऐसी असहाय दशा न होती।

१४ जुलाई को भाऊ आगरा आया। तब भी जमना में बाढ़ देख कर उसने दोआब में घुसने का इरादा छोड़ दिया। मल्हार और सूरजमल उत्तर भारत के अनुभवी योद्धा थे। उन्होंने सलाह दी कि भरतपुर गढ़ को आधार बना कर तोपखाने, पैदल सेना, स्त्रियों और भारी सामान को वहाँ छोड़ दिया जाय और हलके सवारों के साथ शत्रु से मुठभेड़ की जाय। पर सदाशिव फ्रांसीसी शैली से लड़ने वाले अपने गार्दियों का अचूक प्रभाव देख चुका था, उसने उनकी सलाह न मानी। इससे सूरजमल का जी ऊब गया।



सदाशिवराव [भा० इ० सं० मं०]

२ अगस्त को भाऊ ने दिल्ली ले ली। इससे उसे कोई वास्तविक लाभ न था, तो भी शत्रु पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा, और सन्धि की चर्चा जारी हो गयी। सन्धि की बात शुरू होते ही सूरजमल रूठ कर चला गया। उसे अलग होने का कोई बहाना चाहिए था। मराठे और अफ़गान दोनों पर उसे भरोसा न था; वे दोनों लड़ मरें तो अच्छा, इसीसे उसे अब सन्धि होना पसन्द न था। मराठे यदि पंजाब पर दावा छोड़ दें और रुहेलों को न सताने का वचन दें तो अब्दाली अब लौटने को उत्सुक था। परन्तु पेशवा की पंजाब के लिए ज़िद थी और भाऊ को भी दिल्ली लेने के बाद अपनी शक्ति का मिथ्याभिमान हो गया था। यों सन्धि की बातें विफल हुईं।

अक्तूबर में शाहआलम को बादशाह तथा शुजाउद्दौला को वज़ीर घोषित कर सदाशिव पंजाब की तरफ़ बढ़ा। उसका उद्देश सरहिन्द ले कर अब्दाली का आधार काट देना था। उसने जमना के तट पर कुंजपुरा ले लिया, जहाँ अफ़गानों की १६ लाख की नक़दी और माल उसके हाथ लगा और सरहिन्द का फ़ौजदार मारा गया। इससे सिक्खों के भी हौसले बढ़े और उन्होंने लाहौर और स्यालकोट घेर लिये। सदाशिव की यह योजना बहुत अच्छी होती यदि वह अगस्त में ही पंजाब की ओर बढ़ता, जब कि जमना में बाढ़ थी, और यदि वह पुरानी मराठा शैली से लड़ता होता। लेकिन भारी सामान, तोपखाने और पैदल सेना को लिये हुए अपने आधार से अटूट सम्बन्ध रक्खे बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता, युरोपियन शैली के इस सिद्धान्त को वह बिलकुल समझा न था। उसने अपना आधार भरतपुर क्या दिल्ली में भी न रक्खा था, वह सब कुछ साथ लिये फिरता था। जब वह कुंजपुरा से आगे कुरुक्षेत्र जा रहा था, तभी खबर मिली कि नीचे बागपत पर जमना पार कर अब्दाली उसके और दिल्ली के बीच आ गया। सदाशिव पीछे लौटा। १ नवम्बर को पानीपत पर दोनों सेनाएँ आमने-सामने हुईं, और मोर्चाबन्दी कर जम गयीं।

दो मास तक चपावलें (झपटा-झपटी) होती रहीं। शुरू में मराठों ने मैदान पर काबू रखा। लेकिन ७ दिसम्बर को रात की एक चपावल में बलवन्त-

राव मेहन्देले, जो भाऊ का मानों दाहिना हाथ था, मारा गया। तब से मराठा पक्ष दबने लगा। अफ़गान सवारों ने चौगिर्द इलाके पर काबू कर पटियाले के आलासिंह से मराठों का सम्बन्ध तोड़ दिया। भाऊ ने गोविन्द बुन्देले को लिखा था कि वह रुहेलों और अवध के इलाके पर छापे मारे। यदि वह मुज़फ़्फ़रनगर तक पहुँच जाता तो दिल्ली के बजाय दूसरा रास्ता भाऊ के लिए खुल जाता। वह इटावा से गाज़ियाबाद तक बढ़ा, और वहाँ मारा गया (१७ दिसम्बर)। इसके बाद मराठा सेना पूरी तरह घिर गयी। अन्त में १४ जनवरी को सवेरे वह निराश हो कर लड़ने के लिए निकली।

अब्दाली की ६० हज़ार सेना के मुकाबले में भाऊ की कुल ४५ हज़ार ही थी। उसका बायाँ पहलू इब्राहीम गार्दी के तिलंगे बन्दूकचियों का था; मध्य में खुद भाऊ और सब से पच्छिम तरफ़ मल्हार था। व्यूह-रचना में भी भाऊ ने फ्रांसीसी शैली को समझा न था। पैदल बन्दूकचियों की पाँत के पीछे पीछे बराबर सवारों को रखना ज़रूरी था, जिससे बन्दूकची जब एक बार शत्रु को पछाड़ें तभी सवार हमला कर के उसे कुचल दें। लेकिन भाऊ के पदाति एक तरफ़ थे और सवार दूसरी तरफ़। पदातियों की बन्दूकों के सिवाय दोनों सेनाओं की शस्त्र-सज्जा में भी वही अन्तर था जो नादिरशाह की चढ़ाई के समय। अफ़गान रिसाला जिज़ैलों से लड़ता था, मराठे सवार भालों-तलवारों से। अफ़गानों की ऊँटों पर लदी दस्ती ज़म्बुरकों के मुकाबले में मराठों का भारी और अचल तोपखाना था!

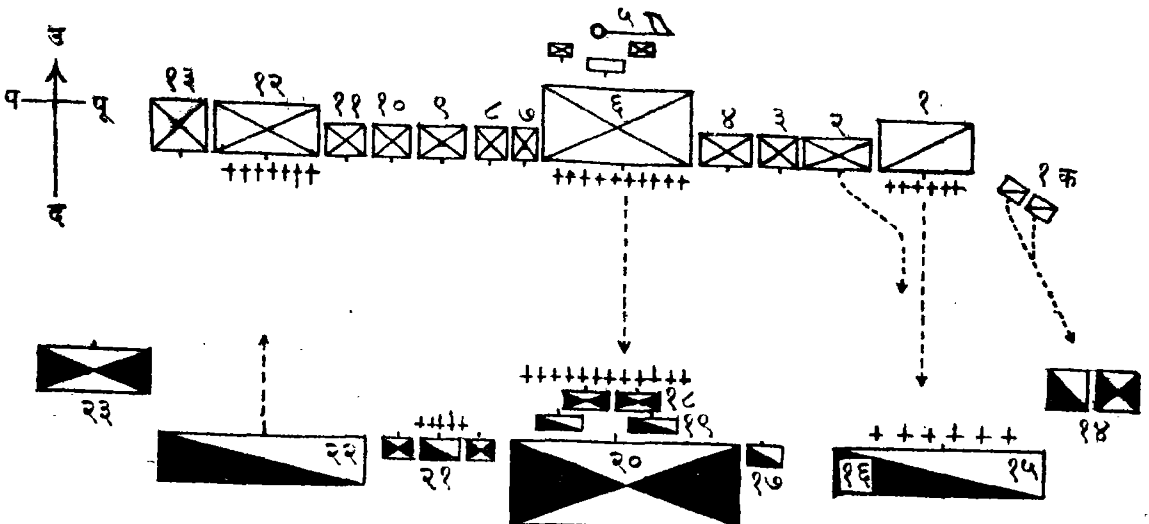
इब्राहीम गार्दी के तिलंगों ने रुहेलों को पछाड़ दिया, पर उनके पीछे से कोई दत्ताजी शिन्दे जैसा रिसाले का नेता नहीं बढ़ा। भाऊ ने अफ़गान-मध्य को पीछे धकेल दिया, लेकिन अब्दाली ने अपने भगोड़ों को घेर कर वापस लौटाया। मराठा दाहिना पहलू लड़ा ही नहीं। मल्हार के सामने नजीब था, जिसे मल्हार अपना बेटा कहा करता था; उन्होंने आपस में समझौता कर लिया। दो बजे के बाद विश्वासराव के माथे में गोली लगी; उसे दो घाव पहले लग चुके थे। भाऊ का वह प्रिय भतीजा अपने दादा की तरह अत्यन्त सुन्दर और होनहार था। उसके शव को हाथी पर लेटवा कर भाऊ ने एक बार

पानीपत की तीसरी लड़ाई

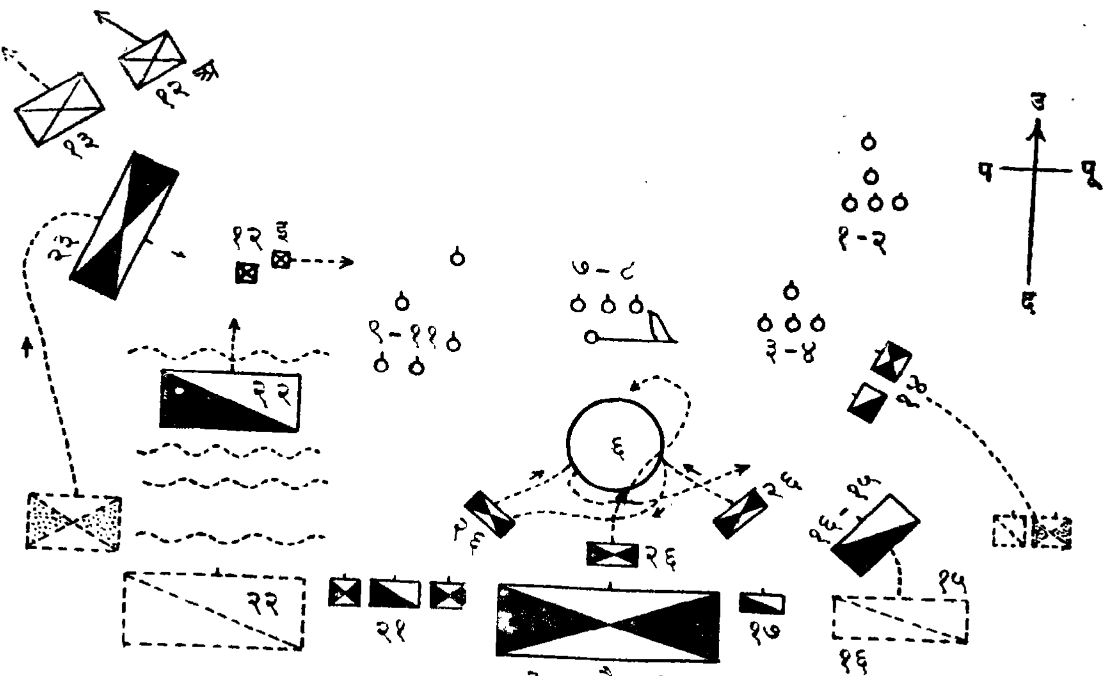
(१७६१ ई०)

व्याख्या

मराठी सेना		अब्दाली की सेना	
१—इब्राहीम गार्दी	(८,०००)	१४—बरखुरदार और अमीर बेग	(३,०००)
२—दमाजी गायकवाड	(२,५००)	१५—१६—रुहेले सरदार	(१४,०००)
३—विट्ठल शिवदेव	(१,५००)	१७—अहमद बंगश	(१,०००)
४—छोटे सरदार	(२,०००)	१८—ऊँट सवार ज़म्बुरक लिये हुए	(१,०००×२)
५—भाऊ का झंडा		१९—काबुली पैदल सेना	(१,०००)
६—केन्द्र	(१३,५०००)	२०—केन्द्र, शाह वली	(१५,०००)
७—अन्ताजी माणकेश्वर	(१,०००)	२१—शुजा	(३,०००)
८—पिलाजी जादव के बेटे	(१,५००)	२२—नजीब	(१५,०००)
९—छोटे सरदार	(२,०००)	२३—शाह पसन्द	(५,०००)
१०—जसवन्त पँवार	(१,५००)	२४—रक्षित सेना (नसरुल्ला)	
११—शमशेर बहादुर	(१,५००)	२५—मुल्की हाकिम आदि	
१२—जनकोजी शिन्दे	(७,०००)	२६—शरीर रक्षक गुलामों का दल	(३,०००)
१३—मलहार होलकर	(३,०००)	२७—अब्दाली का खेमा	



पानीपत की लड़ाई— १० बजे प्रातः



पानीपत की लड़ाई —ढाई बजे मध्याह्न

निहारा, और फिर सेनापति का कर्त्तव्य भूल वह घमसान में कूद पड़ा। बिना नेता की मराठा सेना में अब हर किसी ने अपनी समझ से काम लिया। मल्हार अपने दल को पच्छिम भगा कर शत्रु की पाँत के किनारे से घूम कर भाग निकला। बाक़ी सैनिकों और असैनिकों में से बहुत थोड़े बच कर निकल पाये। शुजा ने कुछ को बचाने में मदद की। सूरजमल के यहाँ उन सब को शरण मिली।

पेशवा मालवा तक आ गया था, जब उसे ये ख़बरें मिलीं। पछार पर उसे पानीपत से बचे हुए लोग मिले। इस चोट ने उसे असाध्य रोगी बना दिया।

अब्दाली की सेना का भी भारी संहार हुआ। उसने दिल्ली में प्रवेश किया और राजपूत राजाओं से कर तलब किया। तब जयपुर के माधोसिंह ने पेशवा से, जो मालवा में था, बूँदी आने की मिन्नत की और लिखा कि सब राजपूत राजा सेना सहित वहाँ आ मिलेंगे। पेशवा ने उसे डाँट कर लिखा—"पहले आप विजयसिंह के साथ अजमेर आइये। भाऊ ने सब अपराधों को माफ़ कर पिछली बातें भूलने को कहा था......राजपूतों को कुछ होश आना चाहिए। हमें विदेशियों ने हरा दिया तो नर्मदा पार चले जायेंगे। मुझे अब अब्दाली का डर नहीं है।" लेकिन अब्दाली की सेना भी बकाया वेतन के लिए विद्रोही हो रही थी और अब शिया-सुन्नी आपस में लड़ रहे थे। दिल्ली को नजीब के हाथ सौंप कर वह २० मार्च को विदा हुआ; पेशवा भी तब मालवा से पूना को रवाना हुआ। रास्ते से अब्दाली ने पेशवा को मनाने तथा उसके पुत्र और भाऊ की मृत्यु के लिए शोक प्रकट करने को अपना दूत भेजा। वह दूत मथुरा में सूरजमल, इमाद तथा मराठा प्रतिनिधियों से मिला। उन लोगों ने उसे वहीं रोक लिया, क्योंकि पेशवा अब मौत के मुँह में था। लाहौर में आबिदख़ाँ को सूबेदार नियत कर अब्दाली वापिस चला गया!

मथुरा की शान्ति-सभा में रुहेलों, बंगश और शुजा के प्रतिनिधि भी शामिल हुए, पर फल कुछ न निकला। कारण यह था कि सूरजमल को अब शान्ति पसन्द न थी; मराठे और अफ़गान दोनों पस्त हो गये थे; अब उसके लिए मौका था कि वह अपना राज बढ़ा ले। शान्ति-सभा के उठते ही उसने आगरे का क़िला ले लिया (१२-६-१७६१)।

शाहआलम को सब ने बादशाह माना था; पर वह नजीब के डर से दिल्ली न आया और अवध में ही रहा। २३-६-१७६१ को बालाजीराव की मृत्यु हुई।

बालाजीराव शासन-प्रबन्ध में अपने पिता से अधिक योग्य था। उसने महाराष्ट्र की कर-प्रणाली और न्याय-प्रणाली को बहुत नियमित कर दिया, और सेना की ख़ुराक और साज-सामान में भी बड़ी उन्नति की। किन्तु बाजीराव का सा महापुरुषत्व और दूरदर्शिता बालाजी में न थी। जिस दूरदर्शिता से हमारा देश स्वाधीन रह सकता, वह तब शायद किसी भी भारतवासी में न थी।

अध्याय ३

पेशवा माधवराव

(१७६१–७३ ई०)

§१. **मराठा साम्राज्य की कठिनाइयाँ** (१७६१–६३ ई०)—बालाजीराव की मृत्यु पर उसका दूसरा बेटा माधवराव, १६ वर्ष की उमर में, पेशवा बना, और राघोबा उसके नाम पर शासन करने लगा। सब तरफ़ मराठा साम्राज्य के सामन्त और पड़ोसी महाराष्ट्र की विपत्ति से लाभ उठाने की कोशिश कर रहे थे। राजपूतों ने अब्दाली के हटते ही विद्रोह किया। मल्हार होल्कर ने इन्दौर से उनपर चढ़ाई कर बानगङ्गा के किनारे माँगरोल पर जयपुर की सेना को हराया (२६-११-१७६१)। लेकिन उसके बाद तुरन्त ही शुजा ने बुन्देलखण्ड पर चढ़ाई कर कालपी और झाँसी जीत ली। उसी समय निज़ाम अली अपने भाई को क़ैद में डाल पूना की ओर बढ़ा। उसे तो राघोबा ने मार भगाया, पर हैदर अली ने उसके बाद शिरा, गुत्ति, हरपनहल्ली, और चितलद्रुग आदि पर दखल कर लिया।

सन् १७६२ में माधवराव ने शासन अपने हाथ में ले लिया। इस पर राघोबा बिगड़ गया। माधवराव ने जिन व्यक्तियों को अपना सहायक बनाया था, उनमें से उसके मन्त्री बालाजी जनार्दन भानु उर्फ़ नाना फडनीस और हरि बल्लाल फडके तथा न्यायाधीश रामशास्त्री प्रभुखे आगे चल कर बहुत प्रसिद्ध हुए। राघोबा ने निज़ाम से मिल कर पूना पर चढ़ाई की। घरेलू युद्ध से शत्रु का लाभ होता देख कर माधवराव ने अपने को राघोबा के हाथ सौंप दिया और राघोबा फिर पेशवा के नाम से शासन करने लगा। परन्तु उसने अपने अन्यायपूर्ण शासन से अनेक सरदारों और नेताओं को विरोधी बना लिया और

वे अब उसके देशद्रोह के दृष्टान्त का अनुसरण करने लगे। निज़ाम ने फिर युद्ध छेड़ा। गोदावरी के किनारे पैठन के पास राक्षसभुवन पर राघोबा को शत्रु ने घेर लिया। उसकी सेना भाग खड़ी हुई। माधवराव ने, जो मराठा सेना की चन्दावल में क़ैद था, भागती हुई सेना को लौटा कर उस पराजय को विजय में परिणत कर दिया और राघोबा को बचा लिया (१०-८-१७६३)। तब राघोबा को उसे शासन में भाग देना पड़ा। माधवराव के सुशासन से महाराष्ट्र में शीघ्र शान्ति स्थापित हो गयी।

§७. **पठानों तथा सिक्खों-जाटों का संघर्ष; सिक्ख राज्य की स्थापना (१७६१–६७)**—अब्दाली के जाते ही पञ्जाब में चारों तरफ़ सिक्ख गढ़ियाँ बनने लगीं। आबिदख़ाँ ने गुजरांवाला पर, जहाँ चड़तसिंह नामक एक नेता ने गढ़ी बना ली थी, चढ़ाई की। सिक्खों ने आबिद को हरा कर भगा दिया। तब उन्होंने जलन्धर दोआबे पर हमला किया और सरहिन्द से पेशावर का रास्ता बन्द कर दिया। अब्दाली फिर लौट कर आया। सिक्ख सतलज पार भाग गये। अढ़ाई दिन में लाहौर से लुधियाना पहुँच वह उनपर एकाएक टूट पड़ा और उनका संहार किया (५-२-१७६२)। यह लड़ाई 'घुल्लू घेरा' नाम से प्रसिद्ध हुई। अब्दाली इस साल लाहौर में ही ठहर गया। उसने दिल्ली से पेशवा के वकील तथा नजीब को बुलाया, और अपना दूत पेशवा को मनाने के लिए पूना भेजा। इस बार उसने जम्मू के राजा रणजीतदेव की मदद से कश्मीर भी जीत लिया। वहाँ अब तक दिल्ली की ओर से दीवान सुखजीवनराम शासन कर रहा था। दिसम्बर में अब्दाली लौट गया।

सूरजमल ने आगरा लेने के बाद मेवात पर भी दख़ल कर लिया था। अब वह हरियाना (गुड़गाँव-रोहतक) की तरफ़ बढ़ने लगा। इसपर उसकी नजीब से ठन गयी और वह गाज़ियाबाद के पास लड़ता हुआ मारा गया (२५-११-१७६३)। नवम्बर १७६३ में सिक्खों ने फिर विद्रोह किया, कसूर और मालेरकोटला की पठान बस्तियों को उजाड़ डाला, और सरहिन्द को जीत कर सारा इलाका आपस में बाँट लिया। जहानख़ाँ ने अटक पार से उन पर चढ़ाई की; लेकिन चिनाब पर उनके दूसरे दल ने उसे हरा दिया, और

फिर लाहौर पर हमला कर आबिदख़ाँ को मार डाला। नजीब जाट-राज्य की विपत्ति से लाभ उठाता, पर सिक्खों ने जमना पार कर उसके सहारनपुर और शामली कसबे लूट लिये। इस दशा में अब्दाली ख़ुद आया (मार्च १७६४)। सिक्ख मैदान से हट गये और वह काबुलीमल नामक एक अफ़गान ब्राह्मण को लाहौर का शासन सौंप कर वापिस चला गया। उसके पीठ फेरते ही लहनासिंह, गुज्जरसिंह और शोभासिंह ने काबुलीमल से लाहौर का क़िला छीन कर गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह के नाम का सिक्का चलाया। दूसरे सिक्ख दलों ने जेहलम तक जीत लिया। लहनासिंह अपने सुशासन के लिए शीघ्र प्रसिद्ध हो गया। जमना से जेहलम तक सिक्ख दलों के छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये।

नवम्बर १७६४ में नये जाट राजा जवाहरसिंह ने दिल्ली को आ घेरा। उसने मराठों और सिक्खों से भी सहायता ली। पेशवा की आज्ञा से मल्हार उसकी मदद को गया। तीन महीने तक दिल्ली घिरी रही; लेकिन मल्हार ने नजीब से भीतर-भीतर समझौता कर लिया, और जवाहर के सरदार, जो उसके छोटे भाई को गद्दी देना चाहते थे, विश्वासघात करते रहे। जयपुर का राजा माधोसिंह भी नजीब को मदद देता रहा। अन्त में घेरा उठ गया। उसके बाद से जवाहर ने मराठों, माधोसिंह तथा अपने भाई और सरदारों से बदला लेना ही अपना कार्य मान लिया।

सन् १७६७ के शुरू में अब्दाली अन्तिम बार भारत आया। सिक्ख एक हार के बाद मैदान से हट गये। अब्दाली ने आलासिंह के पोते अमरसिंह को सरहिन्द का फ़ौजदार बनाया, पर वह दूसरे सिक्ख दलों का पीछा करता रहा। लेकिन अब उसके सैनिक खुल्लमखुल्ला बलवा करके अफ़गानिस्तान चल दिये। उनके हटते ही सिक्खों के एक दल ने रोहतासगढ़ ले कर सिक्ख राज्य को अटक तक पहुँचा दिया।

इस प्रकार सारा पञ्जाब सिक्ख दलों के छोटे-छोटे बारह राज्यों में बँट गया। वे राज्य 'मिसल' कहलाते थे। ये मिसलें वास्तव में सैनिक और पान्थिक सिक्ख पन्थ की) पंचायतें थीं, जिनके मुखिया सिक्ख सैनिकों के दलों द्वारा

चुने जाते थे। प्रायः प्रत्येक सिक्ख सैनिक था और उन सैनिकों में से अधिकांश जाट कृषक थे। जिन सैनिकों में युद्ध में नेतृत्त्व करने की योग्यता थी, वे दलों के नेता बनते गये और अब उन दलों के छोटे-छोटे राज बन गये। नेताओं को चुनने की रस्म ज़रूर की जाती थी, भले ही बाप के बाद बेटा चुना जाता। साधारण सैनिक मिसल की ज़मीन में या तो मुखिया के 'पत्तीदार' होते थे या (सैनिक सेवा की शर्त पर ज़मीन पाने वाले) 'मिसलदार'; किन्तु ये मिसलदार चाहे जब एक मिसल को छोड़ कर दूसरी की सेवा में जा सकते थे। उनके अतिरिक्त दूसरे लोग 'ताबेदार' या 'जागीरदार' के रूप में भी ज़मीन पाते थे, पर उनपर मिसल के सरदार का पूरा निजी अधिकार रहता था। जो इलाके सिक्खों के संरक्षण में, पर उनके सीधे नियन्त्रण में न होते, उनसे 'राखी' कर लिया जाता था, और अपने इलाकों से 'मालिया' (मालगुज़ारी)। कृषक जनता कहीं इतनी सुखी न थी जितनी इन कृषक-सैनिकों के राज में। सिक्खों ने यह शीघ्र समझ लिया कि व्यापार पर भारी चुङ्गी होने से उन्हें हानि होती है, इसलिए उन्होंने चुङ्गी बहुत कम कर दी। उनका दण्ड-विधान भी कठोर न था। आपस की छीन-झपट से मिसलों की सीमाएँ प्रायः बदलती रहती थीं, तो भी सामूहिक विपत्ति के समय सब सरदार मिल जाते थे। हर साल दशहरे पर अमृतसर में सब सरदारों की संगत लगती थी, जहाँ सामूहिक कार्यों का निश्चय किया जाता था। अमृतसर का मन्दिर अकाली लोगों के हाथ में रहा जो किसी मिसल में शामिल न थे। उस नगरी में कई मिसलों के सरदारों ने अपनी अलग-अलग गढ़ियाँ भी बना लीं।

§३. **बङ्गाल-बिहार, आन्ध्रतट और तामिलनाड में अँगरेज़ी राज्य की स्थापना** (१७६०–६७)—मीर जाफ़र को शासन चलाने की कतई तमीज़ न थी और न वह अङ्गरेज़ों की रकमें चुका पाया। इसलिए सन् १७६० में कलकत्ता कौंसिल ने उसे हटा कर उसके दामाद मीर कासिम को नवाब बनाया। कौंसिल ने उससे कम्पनी के लिए वर्दवान, मिदनापुर, चटगाँव ज़िलों की मालगुज़ारी और ५ लाख रुपया तथा अपने लिए २० लाख रुपये की रिशवतें लीं। मीर कासिम ने अपने दरबार का खर्च घटा कर अङ्गरेज़ों की

बाकी रकमें और अपनी सेना की बकाया तनख्वाहें शीघ्र चुका दीं। वह अपनी राजधानी मुँगेर ले गया। वहाँ उसने बन्दूकें बनाने का कारखाना खोला और सिपाहियों को क़वायद सिखा कर नये ढंग की सेना तैयार की। शासन को हर पहलू से उसने व्यवस्थित करना चाहा, लेकिन अङ्गरेज़ों ने उसे वैसा करने न दिया।

ई० इं० कम्पनी बङ्गाल-बिहार में आयात-निर्यात का जो व्यापार करती थी, उसपर फ़रुखसियर ने चुङ्गी माफ़ कर दी थी। कम्पनी के नौकर ख़ानगी तौर पर भीतरी व्यापार भी करने लगे थे और पलाशी की विजय के बाद से वे उसपर भी नवाब के अधिकारियों को चुङ्गी न देते थे। आयात-निर्यात वाले माल को प्रमाणित करने के लिए कम्पनी के मुखिया "दस्तक" दिया करते थे। वैसे "दस्तक" लिये हुए और नावों पर अङ्गरेज़ी झण्डे उड़ाते हुए अङ्गरेज़ों के गुमाश्ते अब जनता के रोज़मर्रा के बरतने की हर चीज़ का व्यापार करते फिरते और नवाब के अधिकारी यदि उन्हें कहीं टोकते तो वे उनकी मुश्कें बँधवा कर उन्हें पिटवाते थे। यही नहीं, वे जनता से मनमाने दामों पर खरीदने के नाम से माल छीन लेते, और उसी प्रकार मुँह-माँगे दामों पर ज़बरदस्ती उसे "बेचते" थे। जो लोग लेने देने से इनकार करते, उन्हें वे कोड़ों से पिटवाते और क़ैद की सज़ा देते थे। हर गुमाश्ता जहाँ कहीं अपनी "कचहरी" लगा लेता, छोटे बड़े सब पर हुक्म चलाता और चौकी बैठा कर लोगों के मकानों की तलाशियाँ ले कर जुरमाने वसूल करता था। यह तो ख़ानगी "व्यापार" था। कम्पनी के निर्यात "व्यापार" का ढङ्ग यह था कि गुमाश्ता किसी भी औरङ्ग (कारीगरों की बस्ती) में जा कर "कचहरी" लगा देता। हरकारों को भेज कर वह दलालों और जुलाहों को वहाँ बुलवाता, और कुछ पेशगी दे कर उनसे यह मुचलका लिखवा लेता कि अमुक दाम पर अमुक दिन इतना माल देना होगा। जुलाहों की स्वीकृति का कोई प्रश्न न था। यदि वे पेशगी लेने से इनकार करते तो कोड़ों से मरम्मत की जाती थी। जिन जुलाहों के नाम गुमाश्ते की बही में चढ़ जाते, वे किसी दूसरे का काम न कर पाते थे। इन ज़ुल्मों से बचने के लिए अनेक नागोड (रेशम के कारीगर) अपने अँगूठे काट लेते थे।

मीर कासिम ने जब देखा कि वह इन लुटेरों से प्रजा के व्यापार-व्यवसाय को बचा नहीं सकता, तो उसने अपनी आमदनी की परवाह न कर कुल व्यापार से चुङ्गी उठा दी। इस पर कलकत्ता कौंसिल ने युद्ध छेड़ दिया और



नवाब मीर कासिम [खुदाबख्श पुस्तकालय, पटना]

मीरजाफ़र से ५० लाख घूंस ले कर उसे फिर नवाब बनाया (दिसम्बर १७६३)। कासिम ने नागपुर के जनोजी भोंसले से मदद माँगी। जनोजी के कटक के हाकिम ने १७६०-६१ में बङ्गाल की चौथ के लिए चढ़ाई की थी और उसके

विफल होने पर नागपुर का दूत कलकत्ते आ कर चौथ माँग रहा था। अङ्गरेज़ों ने अब उससे कहा कि हम चौथ देंगे, पर कासिम को मदद न देना। घेरिया पर तथा राजमहल के दक्खिन उधुआ नाला पर मीर कासिम की सेना वीरता से लड़ी, पर अन्त में हारी। क़ासिम और उसका स्विस सेनापति समरू, पटना में दो सौ अँगरेज़ क़ैदियों को क़त्ल करके अवध की ओर भागे। फिर शुजा और शाहआलम को साथ ले कर उन्होंने बिहार पर चढ़ाई की। मेजर मुनरो ने बक्सर पर उन्हें हरा दिया (२३-१०-१७६४)। शाहआलम तब अङ्गरेजों की शरण में आ गया। कर्मनाशा पार कर वे अवध के सूबे में घुसे। उन्होंने चुनार का क़िला घेरा, पर उसे ले न सके, तो भी इलाहाबाद और लखनऊ ले लिये। शुजा ने रुहेलों और मराठों की मदद ली। वह मराठों से बुन्देलखण्ड छीन चुका था, तो भी मल्हार उसकी मदद को आया। कोरा* की लड़ाई में अँगरेज़ी तोपों के सामने उसे भागना पड़ा (३-५-१७६५)। शुजा ने तब आत्म-समर्पण कर दिया। उसी वर्ष क्लाइव फिर बंगाल में कम्पनी का मुखिया बन कर आया। उसने बनारस पहुँच कर शुजाउद्दौला से और इलाहाबाद में शाहआलम से अलग-अलग सन्धियाँ कीं।

शुजा ने अँगरेज़ों को ५० लाख रुपया हर्जाना दिया, तथा काशी के राजा को, एक तरह से, अँगरेज़ों की रक्षा में सौंप दिया। इसके अलावा उसने अङ्गरेज़ों के शत्रुओं को अपना शत्रु माना तथा अपने राज्य की रक्षा के लिए उन पर निर्भर रहना मंज़ूर किया।

शाह आलम ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बंगाल-बिहार और उड़ीसा की दीवानी दे दी। उड़ीसा का केवल मेदिनीपुर ज़िला अँगरेज़ों के हाथ में था। इसके अतिरिक्त आन्ध्र तट के ज़िलों पर भी बादशाह ने अँगरेज़ों का सीधा अधिकार मान लिया। "कर्णाटक" अर्थात् तामिलनाड की नवाबी मुहम्मदअली को दी गयी और वह निज़ामअली से स्वतन्त्र माना गया। बंगाल की आमदनी में से २६ लाख रुपया कम्पनी ने बादशाह को देना स्वीकार किया तथा कोरा

---

* फ़तहपुर ज़िले में एक क़स्बा। उन दिनों ज़िले का नाम इसी से पड़ता था।

और कड़ा* जिले बादशाह के खर्च के लिए अवध से दिला दिये। शाह-आलम इलाहाबाद में अँगरेज़ों की रक्षा में रहने लगा। इस बीच में मीर जाफ़र मर चुका था। कलकत्ता कौंसिल ने फिर २३ लाख रुपया घूस ले कर उसके बेटे को गद्दी पर बैठाया, पर उसे केवल नाम का नवाब रहने दिया।

कोरा से लौट कर मल्हार ने झाँसी वापिस ले ली, परन्तु कुछ समय बाद वह चल बसा (२०-५-१७६६)। इस बीच में राघोबा फिर उत्तर भारत आया था। मराठों को फिर आया देख क्लाइव ने छपरा में एक "कांग्रेस" बुलायी (जुलाई १७६६), जिसमें शुजा खुद तथा जाटों और रुहेलों के दूत आये और सब ने मराठों के खिलाफ़ गुट्ट बनाने की कोशिश की। बंगाल-बिहार की आमदनी में से खर्चा निकाल कर सवा करोड़ रुपया वार्षिक कम्पनी को बचने लगा, जो अब हर साल भारत से इंग्लैण्ड को जाने लगा। कम्पनी के नौकरों की निजी लूट इससे अलग थी। डाइरेक्टरों ने क्लाइव को तीसरी बार इसीलिए भेजा था कि वह "भेंट" और खानगी "व्यापार" के नाम से होने वाली इस लूट को बन्द कर दे। पलाशी युद्ध के बाद से नौ साल में बङ्गाल-बिहार से कम्पनी के नौकरों ने प्रायः ६ करोड़ रुपया निजी तौर से भेंट या हरजाने के नाम से लिया था। 'भेंट' लेने की अब सख्त मनाही की गयी। खानगी व्यापार को बन्द करने के बजाय क्लाइव ने उसे शृंखलाबद्ध कर दिया। सब अङ्गरेज़ अफ़सरों की, पद के अनुसार, पत्ती डाल कर एक साझेदारी बना दी गयी जिसके हाथ में बङ्गाल-बिहार के नमक, सुपारी और अफ़ीम के व्यापार का एकाधिकार दे दिया गया। ये सुधार करके सन् १७६७ के शुरू में क्लाइव लौट गया। डाइरेक्टरों ने इस नये खानगी व्यापार को भी रोक दिया, परन्तु नमक और अफ़ीम का एकाधिकार खुद ले लिया।

मुहम्मदअली तामिलनाड का नवाब बना, पर अङ्गरेज़ों ने बीस बरस के युद्ध का सारा खर्च उसपर डाल दिया। आगे के लिए भी देश की रक्षा

* इलाहाबाद ज़िले में कड़ा मानिकपुर का क़स्बा है; ज़िले का नाम पहले उसी से पड़ता था।

उसने कम्पनी को सौंप दी और उसके लिए कई ज़िलों की मालगुज़ारी उन्हें दे दी। युद्ध के खर्च को वह चुका न सका और उस पर वह कर्ज़ लद गया। कम्पनी के उस क़र्ज़ या उसके सूद को चुकाने के लिए वह कम्पनी के नौकरों से उधार लेने लगा! धीरे-धीरे तामिल देश के तमाम खेतों की खड़ी फसलें तक उन सूदखोरों के हाथ में गिरवी रक्खी जाने लगीं!

§४. हैदरअली (१७६१–६६ ई०)—सन् १७६३ में हैदर बेदनूर, सावनूर और धारवार ले कर कृष्णा के करीब तक आ पहुँचा। घरेलू झगड़ों से छुट्टी पा कर मई १७६४ में माधवराव ने कृष्णा पार की। साल भर युद्ध चलता रहा जिसके अन्त में हैदर ने सावनूर, गुत्ति, अनन्तपुर आदि इलाके छोड़ दिये और बड़ा हरजाना दिया।

सन् १७६६ में हैदर ने मलबार पर चढ़ाई कर पूरा दखल कर लिया। पर १७६७ ई० के शुरू में पेशवा ने फिर उसपर चढ़ाई की और शिरा का इलाका ले लिया। उसी समय निज़ामअली और अङ्गरेज़ों ने भी उस पर चढ़ाई कर दी थी और अङ्गरेज़ बारामहाल (सेलम, कृष्णगिरि) में घुस आये थे। हैदर ने पेशवा से शरण माँगी और वे सब इलाके लौटा दिये जिन्हें बालाजी ले चुका था। तब उसने अङ्गरेज़ों के उस बेड़े को नष्ट कर दिया जो मुम्बई से कनाड़ा पर चढ़ाई करने आया था। वह पूरब की तरफ़ बढ़ा तो निज़ाम अङ्गरेज़ों का साथ छोड़ उससे मिल गया। अङ्गरेज़ सेनापति ने तिरुवण्णामलै किले की शरण ली। छः मास के युद्ध के बाद निज़ाम ने अङ्गरेज़ों से सन्धि कर ली और वे नवाब मुहम्मदअली को साथ ले मैसूर जीतने को निकले। जवाब में हैदर ने सारे तामिलनाड पर छापे मारना शुरू किया, और एकाएक मद्रास पर पहुँच कर वहाँ अङ्गरेज़ों से सन्धि की शर्तें लिखवायीं (४-४-१७६६)। वे शर्तें ये थीं कि एक दूसरे को इलाके लौटा देंगे तथा आगे से यदि एक पर शत्रु हमला करे तो दूसरा मदद करेगा।

§५. नेपाल में गोरखा राज्य की स्थापना—जब पञ्जाब में सिक्ख राज्य की स्थापना हो रही थी, ठीक उसी समय नेपाल में एक नया और मज़बूत हिन्दू राज्य स्थापित हुआ। अलाउद्दीन खिलजी ने जब मेवाड़ जीता था, तब

वहाँ के राजवंश की एक शाखा दक्खिन चली गयी थी, जिसमें शिवाजी पैदा हुआ था, और एक शाखा कुमाऊँ के पहाड़ों में चली आयी थी। कुमाऊँ से ये लोग और पूरब बढ़े और काली गंडक की दून में पालपा और गोरखा की बस्तियों में जा बसे। ठेठ नेपाल की दून अर्थात् काठमांडू, भातगाँव और पाटन की बस्तियों में वहाँ के मूल निवासी नेवारों* के, जिनमें मिथिला के लिच्छिवियों का ख़ून मिल चुका था, तीन सरदार राज करते थे। गोरखा के ठाकुर पृथ्वीनारायण ने नेपाल पर चढ़ाई कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। पराजित नेवारों ने अङ्गरेज़ों से मदद माँगी। बेतिया से मेजर किनलोच तराई के पहाड़ों में घुसा, पर परास्त हो कर लौटा (१७६७ ई०)। गोरखा बस्ती से आने के कारण पृथ्वीनारायण और उसके वंशज गोरखा कहलाने लगे।

§६. **साम्राज्य-स्थापना का पुनः प्रयत्न** (१७६६–७२ ई०)—उत्तर भारत से लौट कर राघोबा ने फिर षड्यन्त्र शुरू किये। माधवराव ने उसे बड़ी जागीर देनी चाही, पर वह आधा राज्य माँगता था। इसी समय मुम्बई के अँगरेज़ों ने अपना एक कारिन्दा उसके पास षड्यन्त्र करने भेजा। माधवराव ने तब उसे एकाएक नासिक के पास कैद करके पूना ला कर महल में नजर-बन्द कर दिया (१७६८ ई०)। हैदरअली ने अँगरेज़ों की नयी सन्धि के भरोसे पेशवा को सालाना कर न भेजा और सावनूर पर हमला किया। इसलिए माधवराव ने उसके राज्य पर तीसरी चढ़ाई की (१७६६ ई०) और जीते हुए ज़िलों पर पूरा दखल और बन्दोबस्त करता हुआ वह बेंगलूर तक जा पहुँचा। हैदर ने तब बेंगलूर के पूरब का सब इलाका दे कर सन्धि की (जून १७७२)। इस प्रकार मैसूर राज्य पहले से भी छोटा रह गया और पूरी तरह मराठों का सामन्त बन गया।

१७६६ ई० में पेशवा ने एक सेना रामचन्द्र गणेश के नेतृत्व में हिन्दुस्तान भी भेजी। रामचन्द्र के साथ विसाजी कृष्ण पण्डित, रानोजी शिन्दे का छोटा बेटा महादजी और मल्हार होल्कर की उत्तराधिकारिणी—खण्डेराव की

---

* नेवारों की भाषा तिब्बती से मिलती है और गोरखों की भाषा गोरखाली या परबतिया राजस्थानी से निकली है।

विधवा—अहल्याबाई का सेनापति तुकोजी होल्कर भी गये। मराठों के आने से एक साल पहले जाट राजा जवाहरसिंह अपने एक सैनिक के हाथों मारा जा चुका था और नजीब अपने बेटे ज़ाबिता को दिल्ली में छोड़ नजीबाबाद चला गया था। जवाहर की हत्या से जाटों की शक्ति टूट गयी थी। नजीब मराठों से मिलने आया और ज़ाबिता का हाथ तुकोजी के हाथ में देते हुए उसने कहा कि इस पर वैसी ही दया रखना जैसे मल्हार ने मुझपर रक्खी थी। इसके बाद वह शीघ्र ही चल बसा। उत्तर भारत में मराठों की पहले सी स्थिति हो जाने पर शाहआलम ने अङ्गरेज़ों के बजाय उनकी शरण ली और मराठा सेना के साथ दिल्ली में प्रवेश किया (६-१-१७७२)। मराठों ने बादशाह की तरफ़ से रुहेलखंड को अधीन किया। शुजा ने घबरा कर अङ्गरेज़ों से मदद माँगी और वह अङ्गरेज़ी सेना के साथ रुहेलखंड की सीमा पर पहरा देता रहा। मराठों ने कोरा और इलाहाबाद भी लेने चाहे।

अब मराठों और अङ्गरेज़ों का मुक़ाबला आ पड़ा। माधवराव ने हैदरअली से सन्धि करते समय उसके साथ मिल कर मद्रास पर चढ़ाई करने का गुप्त प्रस्ताव किया। वह एक साथ उत्तर और दक्खिन में अङ्गरेज़ों पर आक्रमण करना चाहता था। हैदर का हित मराठों के साथ रहने में था; किन्तु उसने भोलेपन में, इस आशा से कि अङ्गरेज़ उसे मराठों के विरुद्ध मदद देंगे, वह प्रस्ताव अँगरेज़ों के आगे खोल दिया। अँगरेज़ों ने तब अपने दूत मोस्टिन को पूना भेजा। पर इसी बीच में महाराष्ट्र का सब से योग्य पेशवा मृत्युशय्या पर पड़ गया था और वह शीघ्र ही परलोक सिधार गया (१८-११-१७७२)।

पेशवा माधवराव को युद्धों से जो फ़ुरसत मिली, वह उसने राष्ट्र का शासन-प्रबन्ध ठीक करने में लगा दी। उसमें अपने पिता की सी प्रबन्ध-योग्यता और अपने दादा की सी समर-नायकता और महापुरुषता थी। उसकी अकाल मृत्यु से महाराष्ट्र को पानीपत की हार से भी अधिक सदमा पहुँचा।

§६. बिहार और बङ्गाल में दुराज और दुर्भिक्ष; रेग्युलेटिंग ऐक्ट (१७६७–७३ ई०)—बिहार-बङ्गाल की सेना और कोष अब अङ्गरेज़ों के हाथ में आ गये थे। शासन और न्याय का काम अभी तक नवाब के

हाकिम चलाते, जिन्हें अङ्गरेज़ों के कारिन्दे आसानी से अपनी कठपुतली बना लेते थे। मालगुजारी की वसूली भी पुराने हाकिमों द्वारा होती, पर उनके ऊपर हर ज़िले में अङ्गरेज़ हाकिमों की एक कौंसिल बना दी गयी थी। यह एक तरह का दुराज था।

सन् १७५७ और ६० में कम्पनी के हाथ में जो ज़िले आये थे, उनमें मालगुज़ारी नीलाम करके सख़्ती से वसूली शुरू की गयी थी। अब सारे बिहार-बङ्गाल और आन्ध्र-तट में वही होने लगा। हर ज़िले में अङ्गरेज़ मुखिया और कौंसिलें नियुक्त कर दी गयीं। वे ऊँची से ऊँची बोली देने वाले को मालगुज़ारी की वसूली सौंप देते थे। इस प्रकार पुराने जागीरदारों की जगह, जिन्हें सैनिक सेवा के बदले में मालगुज़ारी सौंपी गयी थी और जो परम्परा से बँधी दरों से कर वसूल करते थे, अब कलकत्ते के दलाल और अङ्गरेज़ों के तुच्छ गुमाश्ते और पिछलग्गू मालगुज़ारी का ठेका ले कर किसानों पर अकथनीय ज़ुल्म करने लगे। कम्पनी को तो केवल अपने नफ़े से मतलब था। सन् १७६५ से ७१ ई० तक छः बरस में कम्पनी को बंगाल और बिहार की मालगुज़ारी में से साढ़े चालीस लाख पौंड (लगभग ३ करोड़ रु०) का मुनाफ़ा हुआ। कम्पनी के नौकर भीतरी व्यापार से जो निजी लाभ उठाते, या तनख़्वाहें आदि पाते थे, सो अलग था। सन् १७६६ से ले कर अगले तीन बरसों में इन प्रान्तों में विलायत से जो माल आया, उससे क़रीब ४३३ लाख रु० का अधिक माल विलायत गया। यह वास्तव में खिराज था जो अब भारत से बाहर जाने लगा था! विलायत से डाइरेक्टरों ने हुक्म भेजा कि बिहार और बंगाल में रेशम के कपड़े न बनें, केवल कच्चा रेशम तैयार हो, और रेशम अटेरने वाले केवल कम्पनी की कोठियों ही में उसे अटेरें। (इस हुक्म के कारण पर हम आगे विचार करेंगे)। इस तरह उद्योग-धन्धों का नाश होने लगा। उद्योग-धन्धों का नाश, धन की सालाना निकासी और दुराज से उन प्रान्तों की बड़ी दुर्गति हो गयी। १७७० ई० में बिहार-बंगाल में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। कम्पनी के नौकरों ने तब अन्न के व्यापार पर एकाधिकार कर जनता का कष्ट और बढ़ा दिया। तीन करोड़ आबादी में से १ करोड़ जनता उस दुर्भिक्ष में मर गयी।

इङ्गलैण्ड के लोगों के सामने यह प्रश्न आया कि उनके देश के कुछ व्यापारियों ने जो एक नया देश जीत लिया, वह किसका है ? उन व्यापारियों का या अङ्गरेज़ी राष्ट्र का ? स्वभावतः वहाँ यह सिद्धान्त स्थापित हुआ कि राष्ट्र का कोई व्यक्ति जो भूमि जीतता है, वह राष्ट्र के लिए जीतता है। इन व्यापारियों को भारत में व्यापार करने का एकाधिकार ब्रिटिश राष्ट्र से ही तो मिला था। इसलिए सन् १७६७ में अङ्गरेज़ी पार्लिमेण्ट ने एक कानून द्वारा कम्पनी के मुनाफ़े की दर नियत कर दी और यह तय किया कि कम्पनी ब्रिटिश सरकार के कोष में ४ लाख पौंड वार्षिक दिया करे। कुछ बरस बाद जब कम्पनी यह रकम न दे सकी तो उसके कार्य को नियमित करने के लिए एक 'रेग्युलेटिंग ऐक्ट' या नियामक कानून बनाया गया (१७७३ ई०)। इन कारवाइयों को समझने के लिए इंग्लैंड की राज्यसंस्था के विषय में कुछ जानना आवश्यक है।

अँगरेज़ जाति के पुरखा मुख्यतः ऐंग्लो-सैक्सन कबीलों के थे जो प्राचीन जर्मनी से इंग्लैंड में जा बसे थे। वे आर्य वंश की जर्मन या त्यूतन शाखा के थे। प्राचीन आर्य क़बीलों में यह रिवाज था कि राजा सरदारों की सलाह से शासन करता था। उत्तर भारत को जब तुर्कों ने जीता, तभी इंग्लैण्ड को फ्रांस के नौर्मन क़बीले ने फ़तह किया। नौर्मन राजाओं ने जब प्रजा के पुराने अधिकार कुचलने चाहे, तब प्रजा ने उन्हें बाधित किया कि वे सरदारों की सभा या 'पार्लिमेण्ट' की सलाह से ही शासन करें। धीरे-धीरे पार्लिमेण्ट में सरदारों के अतिरिक्त नगरों के नेता भी शामिल होने लगे। यह रिवाज बराबर जारी रहा। इंग्लैंड के राजा जो कर लगाते वह पार्लिमेंट की स्वीकृति ले कर लगाते थे। जहाँगीर और शाहजहाँ के समकालीन इंग्लैंड के राजा जेम्स प्रथम और चार्ल्स प्रथम थे। उन्होंने निरंकुश होना चाहा; तब प्रजा ने कर देना बन्द कर विद्रोह किया और चार्ल्स को क़ैद कर फाँसी दे दी (१६४६ ई०—शिवाजी के उत्थान का वर्ष)। कुछ वर्ष प्रजा के मुखिया क्रामवेल के शासन के बाद चार्ल्स के बेटे फिर बुलाये गये। किन्तु प्रजा ने उन्हें फिर निकाल कर हालैंड के एक राजकुमार को, जिसने स्पेन के खिलाफ़ विद्रोह में प्रमुख भाग लिया

था, इस शर्त के साथ अपने देश की गद्दी दी कि वह प्रजा के अधिकार स्वीकृत करे (१६८८-८६ ई०—सम्भाजी के पतन का वर्ष)।

इस क्रान्ति से प्रजा के अनेक बुनियादी अधिकार स्थापित हो गये। पार्लिमेंट की स्वीकृति बिना राजा कोई भी कर नहीं लगा सकता और न कहीं से रुपया उधार ले सकता था। पहले करों की स्वीकृति राजा को आयु भर के लिए दी जाती थी, अब वार्षिक आय-व्यय की स्वीकृति दी जाने लगी। इसका अर्थ राज-कर्मचारियों के वेतन को काबू में करना था। व्यय की स्वीकृति देने से पहले पार्लिमेंट उनके कार्यों की पूरी जाँच-पड़ताल करती। सेना की संख्या नियत करना, कानून बनाना और राजा का उत्तराधिकारी नियत करना भी पार्लिमेंट के ही हाथ में आ गया। पार्लिमेंट के सदस्यों को भाषण और विचार-विवाद की पूरी स्वतन्त्रता दी गयी। किसी व्यक्ति को अकारण और बेकायदा कैद करने का अधिकार राजा को न रहा। पार्लिमेंट में सरदारों के बजाय क्रमशः प्रजा के प्रतिनिधियों का पद बढ़ता गया; इस प्रकार समूचा शासन वास्तव में प्रजा के अपने हाथों में आ गया। पार्लिमेंट के हाथ में सब शक्ति आ जाने से राजा के लिए यह आवश्यक हो गया कि पार्लिमेंट में जो बहुपक्ष हो, उसी के नेताओं को अपना मन्त्री चुने। समय-समय पर पार्लिमेंट का नया चुनाव होने से प्रजा के रुझान के अनुसार उसका बहुपक्ष बनने लगा। अठारहवीं सदी के मध्य तक इंग्लैंड की यह राज्यसंस्था पूरी तरह स्थापित हो गयी। तब से राजा केवल नाम और प्रभाव के लिए रह गया। प्रबन्ध-सम्बन्धी और गोपनीय कार्य मन्त्रि-मण्डल द्वारा होते हैं; किन्तु पार्लिमेंट बाद में उनकी सफ़ाई माँग सकती है। इस राज्यसंस्था में प्रजा का योग्यतम आदमी सुगमता से राष्ट्र का नेता बन जाता है और आन्तरिक उलझनों में राष्ट्र की कम से कम शक्ति का नाश होता है। अठारहवीं सदी में फ्रांस भारत और अमेरिका में अपने लोगों को सहारा न दे सका, या योग्य आदमी न भेज सका, उस का कारण यही था कि तब फ्रांस का आन्तरिक शासन ख़राब था। फ्रांस की प्रजा ने इंग्लैंड से १०० वर्ष पीछे अपना घर सँभाला, तब तक अँगरेज़ी साम्राज्य की नींव गहरी पड़ चुकी थी।

भारत की प्रजा अपने घर का जो प्रबन्ध स्वयम् न कर सकी, सो इंग्लैंड की प्रजा अब इतनी दूर से करने लगी। रेग्युलेटिंग ऐक्ट के अनुसार, कलकत्ते में बंगाल-बिहार के मुल्की और फ़ौजी शासन के लिए एक गवर्नर-जनरल ४ सदस्यों की एक कौन्सिल के साथ, तथा न्याय के लिए एक सुप्रीम कोर्ट नियत किया गया। सुप्रीम कोर्ट की नियुक्ति ब्रिटिश सरकार द्वारा होती थी। पहले पाँच वर्ष के लिए गवर्नर-जनरल और कौन्सिल की नियुक्ति भी ब्रिटिश सरकार ने की। मद्रास और बम्बई की 'प्रेसिडेन्सियों' पर गवर्नर-जनरल का निरीक्षण और नियन्त्रण रक्खा गया। गवर्नर-जनरल और कौन्सिल को रेग्युलेशन (नियम) बनाने का अधिकार दिया गया। वे रेग्युलेशन सुप्रीम कोर्ट में प्रकाशित होने से कानून बन जाते थे; किन्तु ब्रिटिश सरकार उन्हें रद्द कर सकती थी। अपने कार्यों के लिए गवर्नर-जनरल और कौन्सिल पार्लिमेंट के सामने जवाबदेह बनाये गये। डायरेक्टरों के लिए भारत की मालगुजारी तथा मुल्की और फ़ौजी शासन सम्बन्धी सब कागज़ात ब्रिटिश सरकार के सामने पेश करना आवश्यक कर दिया गया।

अध्याय ४

नाना फडनीस

(१७७३–१७९९ ई०)

§१. *बिहार-बङ्गाल में अङ्गरेज़ी शासन की स्थापना*—सन् १७७२ से बङ्गाल का गवर्नर वारन हेस्टिंग्स था। रेग्युलेटिंग ऐक्ट के अनुसार वही पहला गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। उसने दुराज का अन्त कर बिहार और बंगाल में सीधे ब्रिटिश शासन की स्थापना की। कलकत्ते में एक बोर्ड आव रेविन्यू स्थापित कर उसके अधीन हर ज़िले में एक अंगरेज़ कलक्टर नियत किया गया। एक सदर दीवानी और एक सदर निज़ामत अदालत कलकत्ते में बैठा कर उन की देखरेख में कलक्टरों को ज़िलों में दीवानी मामले और पुराने देशी अधिकारियों को फ़ौजदारी मामले सुनना सौंपा गया। ये अदालतें किस कानून के अनुसार चलें, यह एक बड़ा प्रश्न था। हेस्टिंग्स ने हिन्दू और मुस्लिम विद्वानों द्वारा उनके कानून का संकलन करा के एक 'कोड' या स्मृति बनवायी। भारतवर्ष और पूरबी देशों के विषय में जानकारी प्राप्त करने और ज्ञान का संग्रह और खोज करने के लिए सर विलियम जोन्स ने वारन हेस्टिंग्स के प्रोत्साहन और संरक्षण में 'एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल' की स्थापना की (१७८४ ई०)।

मालगुज़ारी का बन्दोबस्त नीलामी द्वारा ही होता रहा। उसके कारण पुरानी जागीरें कलकत्ते के दलालों और गुमाश्तों के हाथ बिकती गयीं। इनके ज़ुल्मों से प्रजा में त्राहि त्राहि की पुकार मच गयी। कहीं कहीं पुराने ज़मींदारों ने प्रजा को बचाने की कोशिश की—रानी भवानी नाम की राजशाही की एक ज़मींदारिन का नाम इस प्रसङ्ग में प्रसिद्ध है। किन्तु इन्हें सफलता न हुई। कई जगह किसान खेत छोड़ कर भागे; तब उन्हें अङ्गरेज़ी फ़ौज ने घेर कर वापिस ढकेल दिया।

तामिलनाड के नवाब मुहम्मदअली से कर्ज़ चुकाते न बना तो उसने अपने उत्तमर्णों से कहा कि ताञ्जोर के राजा को लूट कर वसूल कर लें इस प्रकार

१७७१ ई० में अङ्गरेज़ी फ़ौज ने ताञ्जोर पर चढ़ाई कर ४० लाख रुपया वसूल किया था। १७७३ ई० में फिर चढ़ाई करके उन्होंने राजा को क़ैद किया और उसका इलाका मुहम्मदअली ने उन सूदखोरों के हाथ रहन रख दिया। दक्खिन भारत का वह बाग़ तब वीरान हो गया।

सन् १७७५ में लार्ड पिगोट को मद्रास का गवर्नर बना कर इस उद्देश से भेजा गया कि वह नौकरों के खानगी कर्ज़ से पहले कम्पनी का कर्ज़ वसूल करने का प्रबन्ध करे। पिगोट ने ताञ्जोर के राजा को छोड़ दिया, लेकिन मद्रास के कौंसिलरों ने पिगोट को ही क़ैद कर लिया! वारन हेस्टिंग्स ने उसकी सुधि न ली और वह क़ैद में ही मरा। मुहम्मदअली के कर्ज़ बढ़ते ही गये; उनका कोई लिखित हिसाब भी न था! उसे भी क्या परवा थी, कर्ज़ चुकाने वाले तो तामिल किसान थे। १७८३ ई० में उस प्रान्त में भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ा।

वारन हेस्टिंग्स को अपनी कौन्सिल के कारण सदा दिक्कत रही। बहुमत के अनुसार कानून और बजट बनाना आदि ठीक होता है, किन्तु शासन-प्रबन्ध कभी बहुमत से नहीं चल सकता। ५ में से ३ सदस्यों के मत से यदि युद्ध शुरू कर दिया जाता, तो कुमुक भेजने का मौका आने पर एक सदस्य अपना मत बदल लेता। इससे यह तजुरबा हुआ कि शासन-समितियों का काम केवल सलाह देना होना चाहिए, और शासन का अन्तिम दायित्व सदा एक व्यक्ति पर रहना चाहिए। यदि वह अपने दायित्व का दुरुपयोग करे तो पीछे उससे पार्लिमेंट सफ़ाई माँग सकती है।

§२. पेशवा नारायणराव और राघोबा; बारा भाई की समिति (१७७२–७५ ई०)—माधवराव के बाद उसका छोटा भाई नारायणराव पेशवा बना। माधव ने मृत्यु से पहले राघोबा से समझौता करके उसे छोड़ दिया था। नारायणराव ने उसे फिर क़ैद कर लिया। अँगरेज़ दूत मोस्टिन से राघोबा का विशेष मेलजोल था। राघोबा ने नारायण को क़ैद कर स्वयम् छूटने का षड्यन्त्र किया, जिसका फल यह हुआ कि महल के रक्षक 'गार्दियों' ने नारायणराव की हत्या कर डाली (३०-८-१७७३ ई०)। राघोबा ने अपने को निर्दोष कह कर राज-काज अपने अधिकार में कर लिया; किन्तु नारायण

की तिलांजलि के दिन नाना फडनीस, हरि बल्लाल फडके आदि बारह नेताओं ने शपथ ली कि वे उस हत्यारे को देश का शासन न करने देंगे।

इसी समय निज़ाम और हैदरअली ने महाराष्ट्र की इस विपत्ति से लाभ उठा कर अपने छिने हुए इलाके वापिस लेने की कोशिश की। राघोबा उनकी तरफ़ बढ़ा। पीछे उन बारह नेताओं या "बारा भाई" की समिति ने नारायण की विधवा गंगाबाई और उसके गर्भस्थ बालक के नाम पर शासन अपने हाथ में ले लिया। राघोबा हैदरअली की सीमा से लौटा; किन्तु उसे पूना में घुसने की हिम्मत न हुई। उसने मुम्बई के अँगरेज़ों से बातचीत शुरू की और नर्मदा पार कर गुजरात जा पहुँचा। तभी गंगाबाई के पुत्र हुआ (१८-४-१७७४ ई०)। चालीसवें दिन उस सवाई माधवराव को पेशवाई के वस्त्र मिले। हरि फडके, महादजी शिन्दे और तुकोजी होल्कर ने राघोबा का पीछा किया। तब वह परेशान हो कर अँगरेज़ों की शरण में सूरत पहुँचा।

पलाशी और बक्सर की विजयों से अँगरेज़ों के दिलों में भारत में साम्राज्य बनाने की जो आकांक्षा जग गयी थी, पेशवा माधवराव के चरित्र ने उसे बहुत कुछ ठंडा कर दिया था। माधवराव की मृत्यु से वह आकांक्षा फिर भड़क उठी, और नारायणराव की हत्या से उसका रास्ता साफ़ हो गया। मोस्टिन से इस हत्या की ख़बर पाते ही वारन हेस्टिंग्स बनारस पहुँचा और शुजा से सन्धि कर अवध-रुहेलखंड को अपने शिकंजे में कस लिया। अब राघोबा से बात छिड़ते ही अँगरेज़ों ने साष्टी द्वीप दबा लिया। सूरत पहुँच कर राघोबा ने उनसे पूरी सन्धि की। उसी वर्ष नेल्सन, जो बाद में इंग्लैंड का प्रसिद्ध नाविक हुआ, मुम्बई आया था।

§३. अवध और रुहेलखण्ड पर ब्रिटिश आधिपत्य (१७७४–७५ ई०)—बनारस की नयी सन्धि के अनुसार शुजाउद्दौला ने कोरा और कड़ा* ज़िले अङ्गरेज़ों से ५० लाख रुपये में खरीद लिये तथा उनकी सेना के खर्च का एक हिस्सा देते रहना स्वीकार किया। अङ्गरेज़ों ने और ४० लाख

* इलाहाबाद ज़िले में कड़ा-माणिकपुर का कस्बा है। ज़िले का नाम पहले उसी से पड़ता था।

रुपया ले कर उसे रुहेलखण्ड जीतने के लिए सैनिक सहायता देना स्वीकार किया। अब से उन्होंने बादशाह को २६ लाख वार्षिक देना भी बन्द कर दिया।

अङ्गरेज़ी सेना ने शुजा के साथ रुहेलखण्ड पर चढ़ाई की। मीरनपुर-कटरा के पास बबूल नाले में रुहेले वीरता से लड़े, पर हार गये। शुजा ने तब रुहेलखण्ड को बुरी तरह लूटा और रुहेलों का संहार किया। अन्त में एक रुहेले सरदार की बेटी ने उसे मार डाला। उसके बेटे आसफुद्दौला को हेस्टिंग्स ने अपने राज्य में अधिक ब्रिटिश फ़ौज रखने के लिए बाधित किया, और उस फौज के खर्चे के लिए गोरखपुर बहराइच जिलों की मालगुज़ारी ले ली। यों अवध अब पूरी तरह अङ्गरेज़ों का रक्षित राज्य बन गया। इसके अतिरिक्त उसने अब बनारस राज्य अङ्गरेज़ों को दे दिया। गोरखपुर-बहराइच में बङ्गाल-बिहार की तरह मालगुजारी की नीलामी के साथ प्रजा पर घोर ज़ुल्म होने लगे। लगान न दे सकने वाले किसानों को पिंजरे में बन्द कर धूप में छोड़ देना अङ्गरेज़ी कारिन्दों का एक साधारण तरीका था। इन ज़िलों में भी बङ्गाल-बिहार की तरह विद्रोह हुआ और कुचला गया।

§४. पहला अँगरेज़-मराठा-युद्ध (१७७५-८४ ई०) [अ] पुरन्दर की सन्धि तक—मुम्बई से कर्नल कीटिंग राघोबा की मदद के लिए खम्भात भेजा गया। उसे पूना पर चढ़ाई करने का हुक्म मिला था, पर वह नर्मदा पार न कर सका। उधर राघोबा और मॉस्टिन की प्रेरणा से गुजरात के फतेसिंह गायकवाड ने भरुच अँगरेज़ों को दे दिया। कलकत्ते की बड़ी कौन्सिल ने इस युद्ध को रोक कर अपने प्रतिनिधि उप्टन को बारह भाइयों से सन्धि करने के लिए पुरन्दर भेजा। १-३-१७७६ को सन्धि हुई जिसकी शर्तें ये थीं कि (१) साष्टी और भरुच अँगरेजों के पास रहें, और (२) राघोबा पेन्शन ले कर महाराष्ट्र में रहे। परन्तु सन्धि के बावजूद भी मुम्बई सरकार ने राघोबा को मराठों के हाथ न सौंपा।

कलकत्ता और मुम्बई की कौंसिलों की तरह अब तक महाराष्ट्र में भी "बारह भाइयों" की समिति शासन चला रही थी। किन्तु इस बीच में धीरे-धीरे उसका अन्त हो कर एक ही अधिनायक का शासन स्थापित हो गया।

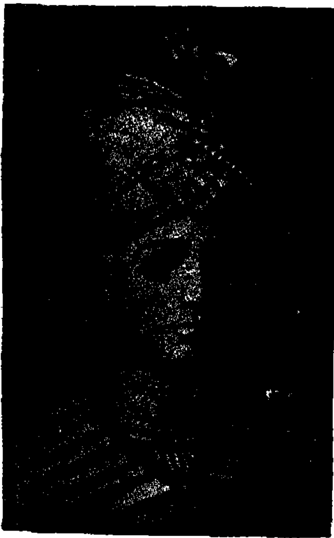
[इ] वडगाँव का ठहराव और गौडर्ड का प्रयाण—इंग्लैंड की साम्राज्य-आकांक्षा को फिर एक भारी धक्का लगा। अमेरिका की अँगरेज़ बस्तियों पर ब्रिटिश पार्लिमेंट ने कुछ टैक्स लगाने चाहे; परन्तु उन लोगों ने कहा कि हमारे प्रतिनिधि ही हम पर टैक्स लगा सकते हैं, और विद्रोह कर अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी (१७७६ ई०)। आठ वर्ष तक उन बस्तियों के साथ इंग्लैंड ने विफल युद्ध किया। यों साम्राज्य पर संकट आने से भारत में भी अँगरेज़ सतर्क हो गये।

वारन हेस्टिंग्स ने नागपुर के राजा मुधोजी भोंसले को मराठा संघ में से फोड़ लेने की कोशिश की और कर्नल लेस्ली को प्रयाग की तरफ़ से मराठा साम्राज्य में घुसने को भेजा। मुम्बई सरकार ने राघोबा के साथ पूना पर चढ़ाई की फ़ौज भेजी (नव० १७७८ ई०)। सागर के हाकिम बालाजी गोविन्द बुन्देला ने लेस्ली को रोके रक्खा, जो वहीं बीमार हो कर मर गया। राघोबा के साथ वाली अँगरेज़ी सेना बड़ी परेशानी के बाद पूना से १८ मील तक पहुँच गयी। तब एक मराठा टुकड़ी ने कोंकण उतर कर उनका मुम्बई से सम्बन्ध तोड़ दिया। अपनी तोपें एक तालाब में फेंक कर वे वहीं से लौटने लगे; मगर दो दिन बाद वडगाँव में चारों तरफ़ से घिर कर उन्होंने सन्धि के लिए प्रार्थना की। राघोबा ने महादजी शिन्दे को आत्म-समर्पण कर दिया और अँगरेज़ों ने वह ठहराव किया कि १७७३ ई० के बाद उन्होंने कोंकण में जो कुछ जीता है सब लौटा देंगे, भरुच महादजी को देंगे, और बंगाल से आती हुई कुमुक को रोक देंगे।

सन्धि की शर्तें पूरी कराये बिना मराठों ने उस क़ैदी सेना को जाने दिया। उसके मुम्बई पहुँचते ही अँगरेज़ों ने सन्धि तोड़ दी। डेढ़ मास बाद लेस्ली का उत्तराधिकारी जनरल गौडर्ड भोपाल के नवाब के सहयोग और मुधोजी भोंसले की चश्मपोशी से लाभ उठा कर, "मराठा साम्राज्य को सूखे बाँस की तरह बीचोंबीच से चीरता हुआ" सूरत जा पहुँचा। इधर राघोबा को जब झांसी में नज़रबन्द रखने भेजा जा रहा था तब वह भी नर्मदा के घाट से भाग कर भरुच जा पहुँचा।

[उ] **अन्तिम संगठित युद्ध** (१७८०-८१ ई०)—गौडर्ड ने गुजरात में युद्ध छेड़ना तय किया, क्योंकि वहाँ फतेसिंह गायकवाड की मदद मिल रही थी। उन दोनों ने गुजरात में पेशवा के इलाकों पर चढ़ाई की और दाभोई और अहमदाबाद ले लिये। महादजी शिन्दे और तुकोजी होल्कर गौडर्ड के खिलाफ़ भेजे गये। वे उसे लुभा कर आगे-आगे बढ़ाने लगे। पीछे से एक मराठा टुकड़ी ने कोंकण से आ कर उसे सूरत के आधार से काटना चाहा। कोंकण में एक अँगरेज़ टुकड़ी काट डाली गयी।

नाना ने अब अँगरेज़ों की तीनों प्रेसिडेन्सियों पर एक साथ हमला करना तय किया। मुधोजी भोंसले को सीधा करके उसने हैदर और निज़ाम के साथ सन्धियाँ कीं। निज़ाम से कुछ न बन पड़ा। मुधोजी को ३० हज़ार सेना बंगाल पर भेजने का हुक्म हुआ; परन्तु वह टालता रहा और उधर हेस्टिंग्स को पता दे दिया कि उसे यह सेना भेजनी पड़ेगी। हैदरअली के मराठों से मिल जाने की सूचना अँगरेजों को मद्रास के पास के जलते हुए गाँव देख कर मिली। मद्रास को घेर कर उसने तामिलनाड में जहाँ-तहाँ अँगरेज़ी फ़ौज को खोज-खोज कर क़ैद किया।



हैदरअली

[विक्टोरिया मिमोरियल, इ०म्यू०, कलकत्ता; श्री० सुन्दरलालजी के सौजन्य से]

उत्तरी रणांगण में अँगरेज़ों ने गोहाद के राणा को फोड़ लिया और उसकी मदद से कप्तान पौफम ने ग्वालियर ले लिया। शिन्दे को गौडर्ड का पीछा छोड़ कर उधर लौटना पड़ा। गौडर्ड तब कोंकण में हारती हुई अँगरेज़ी फ़ौज की मदद को गया। हैदरअली के खिलाफ़ गुण्टूर से बेली और

मुनरो दो फ़ौजें ले कर चले। उन्हें मिलने न दे कर हैदर ने बेली की सारी फ़ौज क़ैद कर ली या काट डाली। भारत में अँगरेज़ों की वैसी हार कभी न हुई थी। और मुनरो—बक्सर के मैदान का विजेता—अपनी तोपें काञ्जीवरम के तालाब में फेंक लस्टमपस्टम मद्रास भागा।

उधर गौडर्ड ने बसई को ले लिया। हेस्टिंग्स ने तब सन्धि का प्रस्ताव किया, परन्तु नाना और हरि फडके ने कोई उत्तर न दिया। गौडर्ड ने अरनाला द्वीप ले कर फिर सन्धि का प्रस्ताव भेजा। जवाब में नाना ने परशुराम भाऊ पटवर्धन और हरि फडके को सेना के साथ भेजा। उन्होंने गौडर्ड को पूरी तरह हरा कर कोंकण को अँगरेज़ी फ़ौज से साफ़ कर दिया।



सवाई माधवराव पेशवा

सामने हरिपन्त फडके (उजले कपड़े पहने) और महादजी शिन्दे

[भा० इ० सं० मं०]

किन्तु तभी मालवा में कर्नाक सिपरी ले कर सिरोंज तक बढ़ आया था।

युद्ध के खर्चे के लिए भी वारन हेस्टिंग्ज को परेशान होना पड़ रहा था। काशी के राजा चेतसिंह पर दबाव डाल कर वह सन् १७७८ से कर तथा सेना के खर्च के अलावा ५ लाख रुपये वार्षिक ले रहा था। १७८१ में उसने और

रक़म माँगी। चेतसिंह ने इनकार किया और मराठों से बात की; तब हेस्टिंग्स ने बनारस पहुँच कर उसे क़ैद कर लिया। इसपर प्रजा भड़क उठी और हेस्टिंग्स को घेर लिया। मुधोजी भोंसले के दूत उसके साथ थे। उन्होंने उसे बचा कर गंगा पार उसकी छावनी में पहुँचा दिया। अवध के आसफुद्दौला पर दबाव डाल कर हेस्टिंग्स ने उसकी माँ और दादी से एक करोड़ रुपया निकलवा लिया। बनारस का राज्य हेस्टिंग्स ने चेतसिंह के भानजे को दिया और उसकी शक्ति बहुत परिमित कर दी।

सन् १७७८ में फ्रान्स ने और उसके बाद स्पेन और हॉलैण्ड ने भी अमेरिका का पक्ष ले कर इङ्गलैण्ड से युद्ध-घोषणा कर दी थी। फ्रांसीसी एक ज़बरदस्त जङ्गी बेड़ा भारत भेजने को तैयार कर रहे थे। इस दशा में हेस्टिंग्स ने बूढ़े आयरकूट को मद्रास भेजा। इसके साथ ही उसने मुधोजी भोंसले को ५० लाख रु० रिशवत दे कर न केवल बङ्गाल पर चढ़ाई करने से रोक दिया, प्रत्युत बङ्गाल से उसके इलाके द्वारा पहलेपहल स्थल के रास्ते एक सेना मद्रास को कूट की कुमुक में भेजी। कूट ने हैदर की रोकथाम की और जगह-जगह घिरी हुई अँगरेज़ी फ़ौजों को छुड़ाया (जुलाई–सितम्बर १७८१), तो भी वह उसे तामिलनाड से निकाल न सका। फ्रांसीसी बेड़ा भी तब भारतीय समुद्र में पहुँचने वाला था। नाना ने निश्चय किया कि उस साल जाड़े में बङ्गाल के साथ-साथ मुम्बई पर भी चढ़ाई की जाय। लेकिन बरसात में कर्नाक ने महादजी के इलाके बुरी तरह उजाड़े थे; इसी से महादजी शिन्दे ने अब हिम्मत हार कर तटस्थ रहना और नाना से भी समझौता करा देना मान लिया (१३-१०-१७८१)।

[अ] साल्बाई और मंगलूर की सन्धियाँ (१७८२–८४ ई०)— महादजी की मध्यस्थता से ग्वालियर के पास साल्बाई में सन्धि हुई (१७-५-१७८२ ई०)। अँगरेज़ों ने राघोबा को मराठों के हाथ सौंप दिया और पुरन्दर की सन्धि के बाद जो इलाक़ा जीता था सब लौटा दिया। भरुच शिन्दे को और अहमदाबाद आदि गायकवाड को इस शर्त पर दिये गये कि वे नियम से पूना को कर भेजते रहेंगे। पेशवा ने हैदरअली से तामिल प्रदेश लौटवा ने

का ज़िम्मा लिया। अँगरेज़ों ने राघोबा द्वारा मराठा साम्राज्य में वही खेल खेलना चाहा था जो मीर जाफ़र द्वारा बंगाल में खेला था; पर वे पूरी तरह विफल हुए। इसी तरह गायकवाड और भोंसले को उन्होंने मराठा संघ से तोड़ना चाहा था, उसमें भी उन्होंने हार मानी। राघोबा गोदावरी के तट पर कोपरगाँव में आ रहा और दो वर्ष बाद मर गया।

हैदर ने युद्ध बन्द न किया था। सिंहल द्वीप का विशाल बन्दरगाह त्रिंकोमलै अँगरेज़ों ने हालैंड से छीन लिया था (जन० १७८२ ई०), पर तभी हैदर के बेटे टीपू ने ताञ्जोर पर एक ब्रिटिश टुकड़ी की पूरी सफ़ाई कर दी और फ्रान्स के श्रेष्ठ नाविक सूफ्राँ ने २००० फ्रांसीसी सेना तट पर उतार दी। उनकी मदद से हैदर ने कुड्डलूर जीत लिया और सूफ्राँ ने त्रिंकोमलै भी वापिस छीन लिया। किन्तु युद्ध के बीच ही हैदरअली की मृत्यु हुई (७-१२-१७८२)। वह पहला स्वतन्त्र हिन्दुस्तानी शासक था जिसने अपनी सेना को युरोपियन क़वायद सिखा कर तैयार किया था। उसका शासन दृढ़ और निष्पक्ष था। मजहबी तअस्सुब उसे छू तक न गया था।

उसके बेटे टीपू ने युद्ध जारी रक्खा। फ्रान्स से बुसी भी फिर भारत आया, पर उसके आने के बाद शीघ्र ही फ्रान्स-इंग्लैण्ड की सन्धि हो गयी। टीपू तब अकेला लड़ता रहा। अँगरेज़ों ने पच्छिम तट से उसके राज्य पर हमला किया, इसलिए उसे उधर जाना पड़ा। मार्च १७८४ में उसने मंगलूर में अँगरेज़ों से नफ़े के साथ सन्धि की।

§५. **पिट का इण्डिया ऐक्ट तथा कार्नवालिस का शासन**—वारन हेस्टिंग्स के शासन-काल के तजुरबे से ब्रिटिश भारत के शासन-विधान को बदलने की जरूरत मालूम हुई; इससे प्रधान-मन्त्री (छोटे) पिट ने पार्लिमेण्ट से एक नया विधान-कानून पास कराया (१७८४ ई०)। इस कानून का सार यह था कि ब्रिटिश सरकार ६ व्यक्तियों का एक नियन्त्रण-वर्ग (बोर्ड आव कण्ट्रोल) नियत करे, तथा कम्पनी के डाइरेक्टर भारत के शासन और माल-गुज़ारी-विषयक तमाम कागजात उसके पास भेजा करें, और वर्ग उनपर जो आज्ञा दे उसे वे भारत में अपने कर्मचारियों के पास पहुँचा दें; डाइरेक्टर

कोई सीधी आज्ञा भारत में अपने कर्मचारियों को न दें; वर्ग के जो आदेश युद्ध आदि गोपनीय विषयों से सम्बन्ध रखते हों वे डाइरेक्टरों की समूची सभा के बजाय उस सभा के सदस्यों की गुप्त समिति द्वारा भारत भेजे जाँय; गवर्नरों और प्रधान सेनापतियों के सिवाय बाकी सब कर्मचारियों की नियुक्ति कम्पनी करे; कलकत्ता कौन्सिल में ३ सदस्य हों; भारत के गवर्नर कोई युद्ध या युद्धपरक सन्धि गुप्त समिति की आज्ञा बिना न करें। इस कानून से कम्पनी का शासन-सम्बन्धी सब कार्य ब्रिटिश सरकार के पूरे नियन्त्रण में चला गया। कम्पनी का काम केवल बोर्ड के आगे प्रस्ताव रखना और उस की आज्ञाओं को भारत में पहुँचाना रह गया। हाँ, नियुक्ति का अधिकार कम्पनी के हाथ में बना रहा। ब्रिटिश भारत के शासन-विधान में बाद में चाहे जो परिवर्तन होते रहे, परन्तु उस विधान का ढाँचा बराबर वही रहा जो छोटे पिट ने खड़ा किया था। १७८६ ई० के एक संशोधन से गवर्नर-जनरल को अपनी कौन्सिल के बहुमत को भी न मानने का अधिकार दिया गया।

इस विधान-क़ानून के साथ-साथ नवाब मुहम्मदअली के कर्ज़ों का प्रश्न भी पार्लिमेंट के सामने आया। उस ज़माने में इंग्लैण्ड के निर्वाचकमण्डल बड़े भ्रष्ट थे। मुहम्मदअली के अँगरेज़ उत्तमर्णों ने लूट के रुपये से उनकी वोटें खरीद कर अपने प्रतिनिधि पार्लिमेंट में भी भर लिये थे। मन्त्रिमण्डल को उन प्रतिनिधियों की वोटों की ज़रूरत थी, इसलिए पार्लिमेंट ने उनके सब असली और फ़र्ज़ी कर्ज़ों को स्वीकार कर लिया—अर्थात् तामिल किसानों की लूट पर अपनी मुहर लगा दी। तब गोरे सूदखोरों का एक नया दल, गिद्धों के झुण्ड की तरह, तामिल भूमि पर आ मँडराने लगा और मुहम्मदअली के कर्ज़ और बढ़ते ही गये।

वारन हेस्टिंग्स के उत्तराधिकारी लार्ड कार्नवालिस (१७८६–९३ ई०) ने अपना ध्यान मुख्यतः सुशासन की स्थापना पर लगाया। उसने पुलिस का संगठन किया, कलक्टरों के पास केवल वसूली का काम रहने दिया, और न्याय-कार्य के लिए अलग जज नियत किये। बंगाल-बिहार-बनारस में उसने ज़मीन का "स्थायी बन्दोबस्त" किया (१७९३ ई०), पर आन्ध्र तट के ज़िलों

में पहले की सी नीलामी चलती रहने दी। पुराने जागीरदारों को सैनिक सेवा तथा स्थानीय शासन के कार्य के बदले में मालगुज़ारी सौंपी जाती थी। ब्रिटिश शासन में उनका सैनिक और शासन-सम्बन्धी कार्य कुछ नहीं बचा, और पिछले २८ वर्षों (१७६५–९३ ई०) में उन जागीरदारों का स्थान प्रायः नये ठेकेदारों ने ले लिया था। कार्नवालिस ने नीलामी की प्रथा हटा कर इन ठेकेदारों को मालगुज़ारी वसूल करने का काम स्थायी रूप से दे दिया, और उस समय की मालगुज़ारी का ९० फ़ी सदी अंश जितना होता था उतना स्थायी रूप से राज्य का अंश नियत कर दिया। बाद में इन ठेकेदारों का अंश बढ़ता गया और धीरे-धीरे वे ज़मीन के मालिक बन बैठे।

§६. **नेपालियों का पहाड़ी साम्राज्य** (१७७८–९२ ई०) नेपाल में पृथ्वी-नारायण ने ७ वर्ष और उसके बेटे प्रतापसाह ने पौने तीन वर्ष राज किया। प्रताप के बाद उसकी विधवा राजेन्द्रलक्ष्मी अपने बेटे रणबहादुर के नाम पर ६ वर्ष राज करती रही। उसके शासन-काल में गोरखों ने ठेठ नेपाल के पच्छिम का सप्तगण्डकी प्रदेश (गण्डक की धाराओं का प्रस्रवणक्षेत्र) तथा पूरब का सप्तकौशिकी प्रदेश (कोसी का प्रस्रवणक्षेत्र) जीत लिया। राजेन्द्रलक्ष्मी के बाद रणबहादुर के नाम पर उसके चचा बहादुरसाह ने ५ वर्ष राज किया (१७८७–९२ ई०)। उस समय पच्छिम तरफ़ घाघरा का प्रस्रवणक्षेत्र तथा कुमाऊँ जीते गये। नेपालियों ने तिब्बत पर भी चढ़ाई की, जिसके बदले में ल्हासा की चीनी सेना ने नेपाल पर चढ़ाई कर उन्हें बुरी तरह हराया (१७९२ ई०)।

§७. **उत्तर भारत में महादजी शिन्दे** (१७८२–९२ ई०)—पिछले तजुरबे से महादजी ने यह समझ लिया कि मराठों को पुरानी समर-शैली छोड़ कर पच्छिमी क़वायद अपनानी होगी। उसने फ्रांसीसी अफ़सर अपने यहाँ रख कर उनसे पैदल बन्दूकची सेना तैयार करायी। उन अफ़सरों में द-ब्वाञ और पेरों बहुत प्रसिद्ध हुए।

पेशवा नारायणराव ने १७७३ ई० में मराठा सेना को दिल्ली से वापिस बुला लिया था। उसका विचार था कि पहले सारी शक्ति लगा कर तामिलनाड को जीता जाय। उसी वर्ष अहमदशाह अब्दाली की मृत्यु हुई। उसके बेटे

तैमूरशाह ने सिक्खों से मुलतान वापिस ले लिया (१७७६ ई०); सिन्ध पर अब्दालियों का अधिकार बना ही था। महादजी अब फिर दिल्ली पहुँचा (१७८२ ई०)। बादशाह ने उसे सब शक्ति दे दी और पेशवा को अपना वकीले-मुतलक् अर्थात् एकमात्र प्रतिनिधि बना दिया। महादजी ने सिक्खों के साथ अवध जीतने के लिए सन्धि की। किन्तु वह जैसा योग्य सेनापति था, शासन-प्रबन्ध में वैसा ही निकम्मा था। अनेक विरोधी पैदा हो जाने से उसे दिल्ली से भागना पड़ा (१७८५ ई०)। नजीबुद्दौला के पोते गुलाम-क़ादिर ने तब दिल्ली पर अधिकार कर लिया। उसने शाहआलम की आँखें अपने हाथ से निकालीं, उसे बेतों से मारा, और शाही परिवार पर घृणित अत्याचार किये (१७८८ ई०)। महादजी उस समय नाना फड़नीस की मदद पा कर दिल्ली वापिस आया और बादशाह की रक्षा कर गुलाम-क़ादिर को उचित पुरस्कार दिया।



महादजी शिन्दे [भा० इ० सं० मं०]

द-ब्वाञ को राजपूताना भेजा (१७९० ई०)। पाटन और मेड़ताँ में राजपूतों से दो घोर युद्ध हुए। अजमेर, जोधपुर, जयपुर, मेवाड़, सभी ने मराठों की अधीनता मानी। बादशाह ने पेशवा के वंश में वकीले-मुतलक् पद स्थायी कर महादजी को अपना "फ़रज़न्द जिगरबन्द" कहा और सारे साम्राज्य में गोहत्या बन्द करने का फ़रमान निकाला। पेशवा को वह पद सौंपने के लिए महादजी ने पूना की यात्रा की (१७९२ ई०)।



सवाई माधवराव पेशवा के दरबार में कार्नवालिस का दूत मैलेट, टीपू के खिलाफ़ सन्धि करते हुए। पेशवा के पास नाना फडनीस बैठे हैं।

[गणेशखिण्ड महल, पूना में लगा चित्र; श्री पिंपलखरे द्वारा प्रतिलिपि; भा० इ० सं० मं० पूना के सौजन्य से]

§८. टीपू से युद्ध (१७८५-९२ ई०)—टीपू कई बातों में अपने पिता से उलटा था। वह धर्मान्ध था। नाना ने हैदर का सहयोग लेने के लिए उसे जो इलाके सौंपे थे, उन्हीं में अब टीपू के अत्याचारों से ऊब कर दो हज़ार हिन्दुओं ने आत्मघात कर लिया। मराठों और निज़ामअली ने मिल कर तब उस पर चढ़ाई की (१७८६ ई०)। एक वर्ष बाद टीपू ने उनसे सन्धि की। १७८९-९० में उसने त्रावंकोर पर चढ़ाई की। तब नाना फडनीस, निज़ामअली और लार्ड कार्नवालिस ने उसके खिलाफ़ सन्धि कर तीनों ने एक साथ चढ़ाई की। परशुरामभाऊ पटवर्धन और हरिपन्त फडके धारवार और शिरा से दक्खिन की ओर बढ़े। अङ्गरेज़ों ने मलबार से मैसूरी फ़ौज को निकाल दिया। मद्रास की तरफ़ से जनरल मीडोज़ आगे बढ़ा, पर उसे टीपू ने हरा दिया। तब खुद कार्नवालिस ने उधर आ कर बेङ्गलूर लेते हुए श्रीरङ्गपट्टम् आ घेरा। टीपू ने उसका सम्बन्ध चारों तरफ़ से काट कर उसे लौटने को बाधित किया। उस दशा में उसे एक सेना दिखायी दी जिसे शत्रु जान वह मरने को तैयार हुआ। किन्तु वह सेना मराठों की निकली। तीनों सेनाओं ने मिल कर फिर से श्रीरङ्गपट्टम् घेर लिया। टीपू ने सन्धि-भिक्षा की। कार्नवालिस टीपू के राज्य का अन्त करना, पर नाना उसे बनाये रखना चाहता था। इसलिए तीन करोड़ रुपया और आधा राज्य टीपू ने विजेताओं को दिया (१७९३ ई०)। उत्तरपच्छिमी और उत्तरपूरबी जिले क्रमशः मराठों और निजामअली को तथा कोडगु (कुर्ग), मलबार, दिन्दिगुल और बारामहाल (सेलम, कृष्णागिरि) अँगरेज़ों को मिले।

§९. मराठों की अन्तिम सफलता (१७९२-९५ ई०)—शाही खिलत और फ़रमान ले कर महादजी के पूना आने पर भारी समारोह किया गया। वह बादशाह की तरफ़ से यह सन्देश लाया था कि टीपू से युद्ध करना बड़ी भूल थी, इस समय अँगरेज़ों के खिलाफ़ उससे मिलना चाहिए। दिल्ली में भी इस बात की चर्चा थी। अँगरेज़ों ने तब अपने दूत मराठा राज्यों में भेज कर बड़ी सतर्कता से कोशिश की कि वैसा गुट्ट न बन पाय। डेढ़ वर्ष बाद पूना में ही महादजी का देहान्त हुआ। तभी हरिपन्त फडके और अहल्याबाई भी चल बसीं।

निज़ामअली कई बरस से चौथ न दे रहा था। उसने भी रेमों नामक फ्रांसीसी को अपनी सेना को क़वायद सिखाने के लिए रख लिया था, और उसके भरोसे पर उसके दीवान ने पूना को जलाने की डींग मारनी शुरू कर दी थी। नाना फड़नीस ने युद्ध की तैयारी की। निज़ामअली ने अँगरेज़ गवर्नर-जनरल सर जौन शोर से मदद माँगी। शोर ने मराठों से लड़ना उचित न समझा। निज़ामअली अकेला बिदर से आगे बढ़ा। परशुरामभाऊ के नेतृत्व में मराठे पूना से बढ़े। एक लड़ाई के बाद निज़ामअली एकाएक भाग निकला और खर्दा के कोटले में शरण ली। दौलताबाद का किला, ताप्ती से परिन्दा क़िले तक का सारा प्रदेश और ३ करोड़ रुपया उसने पेशवा को तथा उसी हिसाब से भूमि और रुपया मुधोजी भोंसले के बेटे रघुजी को दिया, और अपने दीवान को पेशवा के हाथ सौंप कर मराठों से सन्धि की (१७६५ ई०)।

इस विजय से मराठा संघ की धाक बँध गयी। नाना फड़नीस तब सारे भारत में प्रमुख पुरुष गिना जाने लगा। किन्तु उसी साल पेशवा सवाई माधव-राव की एकाएक मृत्यु हुई। उसके कोई सन्तान न थी। उसके वंश का एकमात्र पुरुष राघोबा का बेटा बाजीराव (२य) बाकी था। इसलिए वह उसे अपना उत्तराधिकारी बनाने को कह गया।

कार्नवालिस के बाद सर जौन शोर १७६३ से ६८ ई० तक ब्रिटिश भारत का गवर्नर रहा। उसने कोई नया प्रदेश नहीं जीता, पर रुहेलखण्ड, अवध और आरकाट की रियासतों पर अपना शिकंजा और कसा।

§१०. मराठा साम्राज्य की दुर्दशा (१७६५–६६ ई०)—बाजीराव २य सुन्दर और मधुरभाषी, किन्तु क्रूर, कायर और मूर्ख था। नाना ने चाहा सवाई माधवराव की विधवा किसी को गोद ले ले, पर महादजी के उत्तरा-धिकारी—उसके भाई के पोते—दौलतराव शिन्दे और उसके मन्त्री बालोबा ने इसका विरोध किया। तब नाना को बाजीराव को क़ैद से छोड़ कर पेशवाई देनी पड़ी। बाजीराव ने नाना को अपना प्रधान मन्त्री बनाया। इस पर दौलतराव और बालोबा ने पूना पर चढ़ाई की। उन्होंने बाजीराव को क़ैद कर लिया और उसके भाई चिमाजी को ज़बरदस्ती पेशवा बनाया। नाना

इस समय भाग गया था। कुछ मास बाद उसने दौलतराव को समझा कर बाजीराव को छुड़ा लिया।

मराठा सङ्घ की इस अव्यवस्था को अँगरेज़ सतर्कता से देख रहे थे। सन् १७९६ में प्रसिद्ध अँगरेज् नेता टामस मुनरो ने लिखा—"अपने शासन की एकसूत्रता और अपनी महान् सामरिक शक्ति के कारण हम देसी राज्यों से आसानी से बाज़ी ले सकते हैं, और यदि हम केवल मौकों की ताक में ही रहें तो भी निकट भविष्य में बिना विशेष खटके और खर्च के अपना राज्य सारे भारत पर फैला सकते हैं।"

१७९७ ई० में तुकोजी होल्कर की मृत्यु हुई। उसके बेटों के झगड़ों में दौलतराव शिन्दे ने दखल दे कर एक को मार डाला और दो को भगा दिया। उसके बाद बाजीराव ने दौलतराव द्वारा नाना को क़ैद करा लिया। पूना दरबार में यों दौलतराव सर्वेसर्वा हो गया। उसकी कृपा के बदले में बाजीराव को दो करोड़ रुपया देना था। जब वह दे न सका तो उसने उसे पूना लूटने की छुट्टी दे दी! बाजीराव अब दौलतराव के खिलाफ़ तैयारी करने लगा तो दौलत ने नाना को छोड़ दिया और नाना फिर मन्त्री बना (१५-१०-१७९८)। पर इस बीच साम्राज्य में अराजकता मच चुकी थी।

इसी बीच अँगरेज़ों ने दो तरफ़ बाज़ी मार ली। उन्होंने निज़ामअली से सन्धि करके हैदराबाद में ब्रिटिश "आश्रित" सेना रख दी (१७९८ ई०)। खर्दा की विजय के बाद मराठे निज़ामअली को अपना सामन्त माने हुए थे; अब वह अँगरेज़ों का रक्षित हो गया। इसके बाद उन्होंने टीपू के राज्य पर चढ़ाई की। श्रीरंगपट्टम् के घेरे में टीपू लड़ता हुआ मारा गया (४-५-१७९९ ई०)। उसके राज्य का बड़ा अंश अँगरेज़ों और निज़ामअली ने बाँट लिया, तथा बाकी मैसूर के उस राजा के पोते को दे दिया जिसे हैदर ने पदच्युत किया था। वह राजा भी अँगरेज़ों का रक्षित बना। टीपू की मृत्यु की खबर मराठा दरबार पर गाज सी गिरी। हैदराबाद और मैसूर में ब्रिटिश आधिपत्य स्थापित हो जाने से अँगरेज़ों का पलड़ा एकाएक भारी हो गया। वे महाराष्ट्र की ठीक सीमा पर पहुँच गये। अगले वर्ष नाना फड़नीस चल बसा। "उसके साथ मराठा राज्य का सब सयानापन विदा हो गया।"

अध्याय ५

अठारहवीं शती का भारतीय समाज

§१. **हिन्दू पुनरुत्थान**—१७वीं-१८वीं सदियों में मराठों, बुन्देलों, जाटों, सिक्खों और गोरखों ने जो राजनीतिक सचेष्टता और अग्रसर प्रवृत्ति दिखायी, वह स्पष्ट ही एक पुनरुत्थान था, जो बहुत अंशों में १५वीं-१६वीं सदियों के धार्मिक सुधार से उत्पन्न हुआ था। गंगा के काँठे, सिन्ध, गुजरात, आन्ध्र और तामिल मैदानों में—अर्थात् भारतवर्ष के सब से उपजाऊ प्रान्तों में—वह पुनरुत्थान प्रकट नहीं हुआ और इन्हीं प्रान्तों में अँगरेज़ों को पहले-पहल पैर जमाने का अवसर मिला।

बाबर, अकबर और उनके साथियों में जो विशाल महत्वाकांक्षा थी, वह औरंगज़ेब के बाद उनके वंशजों में क्षीण और नष्ट हो गयी। जिन प्रान्तों में पुनरुत्थान नहीं हुआ, वहाँ मुग़ल साम्राज्य के टुकड़े कुछ समय पीछे तक बचे रहे। यदि फ्रांसीसी और अँगरेज़ बीच में न आ पड़ते, तो वे भी मराठों या सिक्खों के हाथ आने को थे। वैभव के शिखर पर पहुँच कर और महत्वाकांक्षा के मिट जाने पर जो ऐशपसन्दी आ जाती है, पिछले मुग़लों में वह घृणित रूप से प्रकट हुई।

§२. **साहित्य और कला**—मुग़ल साम्राज्य के विस्तार और पतन तथा हिन्दुओं के पुनरुत्थान का प्रभाव सामाजिक जीवन पर भी हुआ। पंचाल (रुहेलखण्ड और कनौज) और शूरसेन (ब्रज) की बोलियों में से कोई एक सदा भारत की राष्ट्रभाषा बनती रही है—वे बोलियाँ तमाम आर्यावर्त्ती भाषाओं की केन्द्रवर्त्ती हैं। इस बार मुग़ल साम्राज्य के सहारे उत्तर पंचाल की 'खड़ी बोली' भारत भर में समझी जाने लगी। मुग़ल साम्राज्य के अन्तिम विस्तार के साथ उसमें एक नयी शैली की कविता प्रकट हुई जिसे हम उर्दू कविता कहते हैं। फ़ारसी लिपि में लिखी खड़ी बोली का नाम ही उर्दू है। सब से पहले उर्दू कवियों में औरंगाबाद के वली (१६६८—१७४४ ई०) का नाम प्रसिद्ध है।

हिन्दू पुनरुत्थान का साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा। भूषण और लाल कवि ने शिवाजी और छत्रसाल के विषय में हिन्दी में कविताएँ कीं, पर उनका दर्जा भटैती से बहुत ऊँचा नहीं है। मराठी पोवाडे अर्थात् गाथाएँ, जो मराठा इतिहास की घटनाओं पर निर्भर हैं, काफ़ी जानदार हैं। पंजाबी कवि वारिस-शाह के 'हीर-राँझा' में ग्राम्य जीवन का चित्र है, और पश्तो कवि अकमल की रचनाएँ भी सुन्दर हैं। पिछले मुग़लों और उनके प्रान्तीय दरबारों का



घृसणेश्वर, वेरुल [निज़ाम हैदरा० पु० वि०]

साहित्य कृत्रिम, अतिरंजित और विषयैषणापूर्ण है। मराठी के सिवाय भारतवर्ष की विद्यमान भाषाओं में तब गद्य नहीं के बराबर था। महाराष्ट्र में शिवाजी के अभिषेक के बाद से राज्य-कार्य के लिए गद्य का विकास हुआ। वहाँ अनेक 'बखर' अर्थात् ऐतिहासिक वृत्तान्त भी लिखे गये; किन्तु वे कहानियों से भरे हुए और अप्रामाणिक हैं। साहित्य और इतिहास की दृष्टि से उनसे कहीं

अधिक महत्त्व के वे सैकड़ों फुटकर पत्र हैं जिनमें समकालीन घटनाओं का वर्णन है। उनकी भाषा नपी-तुली और अर्थपूर्ण तथा शैली विशद और सजीव है; उनमें ऊँचे दर्जे की प्रतिभा झलकती है।

जहाँ-जहाँ मराठों का राज्य पहुँचा, उन्होंने हिन्दू मन्दिरों और तीर्थों का पुनरुद्धार किया, और सार्वजनिक उपयोगिता के घाट, बगीचे, धर्मशालाएँ आदि बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया। उज्जैन का महाकाल, काशी का



अहमदशाह अब्दाली का मकबरा, कन्दहार [फ़ादर हेरस के सौजन्य से]

विश्वनाथ मन्दिर, और अजमेर का दौलतबाग़ आदि इसके नमूने हैं। इस सम्बन्ध में अहल्याबाई होल्कर का नाम उल्लेखयोग्य है। वेरूल ('इलोरा') के पास उसका घृसणेश्वर मन्दिर, पन्ना में छत्रसाल और कमलावती की समाधि, अमृतसर का 'दरबार-साहब', कन्दहार में अहमदशाह अब्दाली का मकबरा, पूना में नाना फड़नीस का बेलबाग़ आदि इस युग की स्थापत्य-कला के सुन्दर

नमूने हैं। उज्जैन, जयपुर, बनारस और दिल्ली में जयपुर के संस्थापक सवाई जयसिंह की बनवायी वेधशालाएँ इस युग की मनोरञ्जक रचनाएँ हैं। उनकी अब खाली इमारतें बची हैं, यंत्र सब गायब हो चुके हैं। वे सूचित करती हैं कि हिन्दुओं का पुराना ज्योतिष का ज्ञान इस युग में भी बना हुआ था तथा उनमें नये ज्ञान को अपनाने की शक्ति भी सर्वथा लुप्त न हो गयी थी। जयसिंह स्वयम् बड़ा ज्योतिषी था; उसने ज्योतिष की अनेक नयी तालिकाएँ तैयार की थीं। जब उसे मालूम हुआ कि युरोप में ज्योतिष की नयी खोजें हुई हैं तो उसने बड़ा खर्च कर जर्मन ज्योतिषियों को बुलाया और उनकी तालिकाओं को जाँचा-समझा।



जन्तरमन्तर (= यन्त्रमन्दिर), दिल्ली, का एक अंश

§२. जनता का सुख-दु:ख, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन—अठारहवीं सदी के राजविप्लवों के बीच भी कृषक, कारीगर और व्यापारी जनता प्राय: ख़ुशहाल और सुखी रही। परिवर्तन-काल में कुछ कष्ट ज़रूर होता था। पञ्जाब की सिक्ख मिसलें राज्य-संस्था का बड़ा अस्थिर नमूना थीं, तो भी उनके अधीन कृषक, शिल्पी और व्यापारी कितने ख़ुशहाल थे, वह हम देख चुके हैं।

पठानों की अपने शत्रुओं के प्रति खूंख्वारी और दग़ाबाजी प्रसिद्ध है; तो भी रुहेलों की अपनी हिन्दू प्रजा उनके शासन में सुखी, सुरक्षित और समृद्ध थी। कश्मीर के अफ़गान शासकों के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती।

मराठा शासन के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। उन्नीसवीं शती के शुरू में जिन अङ्गरेज़ों ने मराठों को हरा कर दक्खिन और विन्ध्य-मेखला में अङ्गरेज़ी शासन खड़ा किया, उनमें सर जौन मालकम से अधिक योग्य व्यक्ति कोई नहीं हुआ। उसके जीवन का मुख्य भाग महाराष्ट्र और मालवा में बीता। मालकम का कहना था कि उसने "सन् १८०३ में दक्खिनी मराठा ज़िलों को जैसा पाया उससे अधिक धन-धान्य-पूरित प्रदेश कभी कहीं नहीं देखे।" "पेशवा की राजधानी पूना बड़ी धनी और फूलती-फलती नगरी थी।" "मालवा में······मैंने आश्चर्य से देखा कि उज्जैन में व्यापारियों के बड़ी रकमों के लेन-देन बराबर चलते थे; ऊँची हैसियत और साख वाले साहूकार बड़ी समृद्ध दशा में थे; न केवल बड़ी तादाद में माल का आना-जाना बराबर जारी था, प्रत्युत वहाँ के बीमे के दफ़्तरों ने, जो उस सारे इलाके में फैले हैं,···कभी अपना कारबार बन्द नहीं किया था।" "कृष्णा-तट के ज़िलों के समान कृषि और व्यापार की समृद्धि भारत के किसी और प्रान्त में न थी। मेरे विचार में इसके कारण थे—(एक तो) उनकी शासनपद्धति जो कभी-कभी ज़्यादतियाँ करने के बावजूद भी नरम है···, (दूसरे) हिन्दुओं की कृषि के विषय में पूरी जानकारी और भक्ति; (तीसरे) हमारी अपेक्षा उनका शासन के कई पहलुओं को, ख़ास कर गाँवों और नगरों को समृद्ध बनाने के उपायों को, अच्छा समझना,······और सब से बढ़ कर जागीरदारों का अपनी जागीरों पर रहना तथा उन प्रान्तों का ऊँचे दर्जे के ऐसे आदमियों द्वारा शासन होना जिनका जीना और मरना उसी ज़मीन के साथ है।······किन्तु इन सब से भी बढ़ कर समृद्धि का कारण यह था कि गाँवों की पञ्चायतों और अन्य स्थानीय संस्थाओं को सदा बढ़ावा दिया जाता था।"

भारतीय कारीगरों ने अपनी पुरानी योग्यता इस युग में भी बनाये रक्खी और यदि किसी नयी बात पर उनका ध्यान चला जाता तो वे उसे शीघ्र अपना लेते, बल्कि उससे भी अच्छा नमूना तैयार कर देते थे। सूरत के बन्दरगाह में जो जहाज़ बनते थे, उन्हें युरोपियन लोग खरीद ले जाते थे। उधुआ नाला की लड़ाई में मीरकासिम ने अपने कारखाने की जो बन्दूकें बरती थीं, वे अङ्गरेज़ी

बन्दूकों से अच्छी पायी गयी थीं। पर इस युग के भारतीय कारीगरों में प्रगति का भाव न था, और वह जागरूकता न थी कि वे दुनियाँ की प्रगति का पता रख सकें। अधिकांश कारीगर महाजनों के काबू में थे। वे उनसे अगाऊ रकम ले कर उसका हिसाब चुकाने को अपना तैयार माल देते रहते थे। महाजनों के इसी मार्ग से अङ्गरेज़ी ईस्ट इंडिया कम्पनी ने हमारे कारीगरों को अपने क़ब्ज़े में करके तबाह कर दिया। हमने देखा है कि सातवाहन और गुप्त युगों में कारीगरों की श्रेणियों की इतनी हैसियत थी कि राजा लोग अपनी स्थायी धरोहर उनके पास जमा करते थे*। लेकिन मध्य काल में उनकी शक्ति टूट गयी, और उनकी श्रेणियाँ पथरा कर जातें बन गयीं जिनका काम केवल अपने सदस्यों पर तुच्छ और व्यर्थ के सामाजिक बन्धन लगाना रह गया। जैसे किसानों पर जागीरदारों ने अपना प्रभुत्व जमा लिया, वैसे ही कारीगरों पर महाजनों ने काबू कर लिया। यह परिवर्तन ठीक-ठीक कब और कैसे हुआ, इसकी खोज अभी तक नहीं हुई।

मराठों के उत्तर भारत जीतने से, उत्तर और दक्खिन के बीच आदान-प्रदान खूब बढ़ा। उत्तर भारत के अनेक रस्म-रिवाज और आराम-आसाइश के सामान दक्खिन में पहुँचे। संस्कृत के हस्त-लिखित ग्रन्थ बड़ी संख्या में उत्तर से दक्खिन में जाते थे।

महाराष्ट्र और बुन्देलखण्ड ने इस युग में अनेक महान् स्त्रियाँ भी पैदा कीं। इस युग की प्रायः प्रत्येक मराठा और बुन्देला युवती को घुड़सवारी का अच्छा अभ्यास रहता था। लेकिन दूसरे प्रान्तों में स्त्रियों की हैसियत गिरी हुई थी। अधिक स्त्रियाँ रखना बड़प्पन का चिन्ह समझा जाता था। धार्मिक संशोधन और राजनीतिक पुनरुत्थान से हिन्दुओं की सामाजिक संकीर्णता कुछ कम ज़रूर हुई, तो भी बहुत कुछ बनी रही। इसी का यह फल है कि भारतीय हिन्दू और मुस्लिम के रोज़मर्रा के जीवन में आज भी एक अस्वाभाविक अन्तर बराबर बना हुआ है। इस युग का धार्मिक संशोधन इतना गहरा नहीं हुआ कि उस अन्तर को मिटा देता। इसका कारण हम अभी देखेंगे।

* पृ० १२७-१२६, १६२-१६४।

मराठों और बुन्देलों को एक बात का विशेष श्रेय है। महाराष्ट्र, चेदि, उड़ीसा और आन्ध्र की सीमा पर गोंडवाना में तथा महाराष्ट्र, गुजरात और मालवा के बीच खानदेश में जो जंगली जातियाँ थीं, उन्होंने उन्हें सभ्य बनाया। दक्खिनी गोंडवाना—नागपुर, चाँदा और भांडारा—में मराठी इसी युग में फैली और उत्तरी गोंडवाना—जबलपुर तथा मंडला—बुन्देली भाषा के क्षेत्र में इसी युग में आ गया।

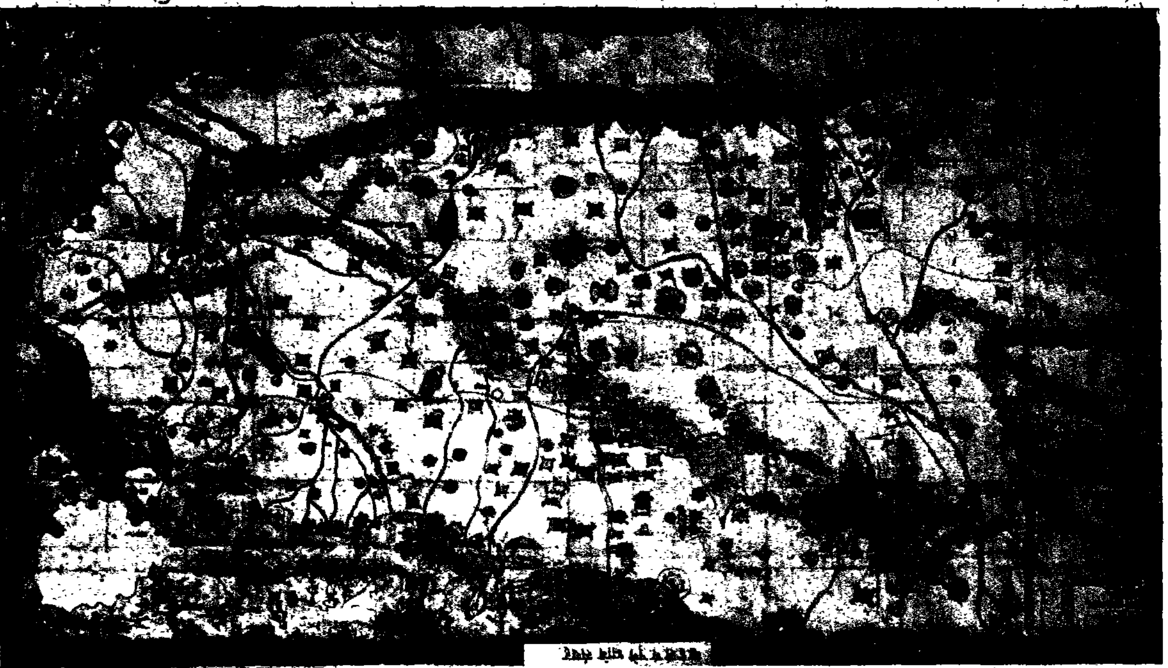
§४. **ज्ञान-जागृति का अभाव**—भारतवर्ष का यह पुनरुत्थान अन्त में सफल न हुआ। मराठे और सिक्ख अङ्गरेज़ों के मुकाबले में न ठहर सके। इसके दो कारण हमने देखे हैं। एक तो यह कि जल और स्थल के शस्त्रास्त्रों और समरकला में भारतवासी युरोपियनों से पिछड़ गये थे। दूसरे, हमारा राष्ट्रीय सङ्गठन अङ्गरेज़ों के मुकाबले में अत्यन्त शिथिल और अशक्त था। राष्ट्रीयता का भाव महाराष्ट्र में काफ़ी था। तो भी महाराष्ट्र की राष्ट्रीयता इतनी गहरी न थी कि वह मराठों को अपने समूचे राष्ट्र-सङ्गठन को विचार-पूर्वक ऐसा ढाल लेने को प्रेरित करती कि जिससे राष्ट्र का अधिकतम हित हो सकता। अँगरेज़ों में एक योग्य नेता के हटने पर दूसरा उसका स्थान झट ले लेता था। इधर यह दशा थी कि बाजीराव २य सा पतित व्यक्ति केवल इसलिए राष्ट्र का मुखिया बन गया कि वह बाजीराव १म का पोता था। अच्छा राष्ट्र-सङ्गठन वह है जहाँ राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता का अधिकतम विकास करने का अवसर मिले और उसकी योग्यता से राष्ट्र को अधिकतम लाभ पहुँच सके।

लेकिन, हमारे पुरखों ने अपनी इन त्रुटियों को पहचान कर सुधार क्यों नहीं लिया? अकबर, शाहजहाँ, औरंगज़ेब, शिवाजी, बाजीराव, बालाजीराव जैसे हमारे योग्य शासक बराबर यह देखते रहे कि पच्छिमी लोग जहाज़रानी में, तोपों-बन्दूकों को बनाने और बरतने में तथा समरकला में हमसे आगे निकलते जाते हैं; किन्तु इनमें से किसी को भी यह न सूझा कि पच्छिम के उस ज्ञान को प्राप्त कर लें। अठारहवीं शती के शुरू में कोल्हापुर के अमात्य रामचन्द्र पन्त ने "आज्ञापत्र" नामक राजनीति का एक ग्रन्थ लिखा। उसमें

उसने यह बात तो दर्ज की कि युरोपियन लोग जहाजरानी में और तोप-बन्दूक, गोला-बारूद बनाने में दक्ष हैं, पर न तो उसने यह सोचा कि वे क्यों इन बातों में बढ़े हुए हैं और न उसे यह सूझा कि उनसे ये शिल्प हमें ले लेने चाहिएँ। उसे केवल यह सूझा कि वे लोग इन शिल्पों के कारण खतरनाक हैं, उन्हें भारत में बसने न देना चाहिए।

औरंगज़ेब को युरोपियन समुद्री डाकुओं की समस्या से कितना परेशान होना पड़ा! उस जैसा योग्य और शक्त सम्राट् यदि अपना ध्यान उस समस्या को जड़ से सुलझाने में लगा देता तो भारतवर्ष की वह कमज़ोरी शायद उसके शासन-काल में ही दूर हो जाती। अन्तिम सङ्कट आ जाने पर मीर क़ासिम, हैदर-अली और महादजी शिन्दे ने जब पाश्चात्य युद्ध-शैली अपनायी भी तो केवल कामचलाऊ ढङ्ग से। उन्होंने युरोपियन अफ़सर ज़रूर रख लिये; परन्तु ऐसा उपाय उन्होंने न किया कि अगर वे अफ़सर कभी धोखा दें तब हम स्वयम् ज्ञानपूर्वक उनका स्थान ले सकें। नाना फड़नीस को अँगरेज़ों की मुम्बई और कलकत्ता कौंसिलों की गुप्ततम कार्रवाइयों का पता तुरत मिल जाता था; उनकी पूरी कार्यप्रणाली उसकी आँखों के सामने रहती थी; तो भी नाना को यह कभी न सूझा कि महाराष्ट्र में भी उसी नमूने पर बाराभाई-समिति को एक सुसंगठित और स्थिर संस्था बना दिया जाय। गोवा में पुर्त्तगाली १६वीं सदी से पुस्तकें छापने लगे थे। यदि मराठों का ध्यान उनकी मुद्रणकला को अपनाने की ओर चला जाता तो उनके देश में भी कैसी जाग्रति हो सकती थी! बसई जीत लेने पर पुर्त्तगालियों के जहाज़ी कारखाने मराठों के हाथ आ गये; किन्तु उनका उपयोग उन्होंने नहीं किया।

इन उदाहरणों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि १६वीं से १८वीं सदी तक हमारे पुरखों में जागरूकता और जिज्ञासा न थी; उनके ज्ञान-नेत्र बन्द थे; वे मानो घोर मोह-निद्रा में थे। वे अपने बँधे हुए मार्ग पर ही चले जा रहे थे, किन्तु अपने चारों तरफ़ की दुनिया की प्रगति के विषय में कुछ भी सतर्क न रहते थे। और तो और, उनके अपने देश के विषय में भी पच्छिमी लोगों की जिज्ञासा उनसे अधिक थी। 'हिन्दुस्तानी' (उर्दू) का सबसे पहला व्याकरण किसी भारतवासी



पेशवाई जमाने का दक्खिन भारत का मराठा नक्शा [भा० इ० सं० मं०]



ईस्ट इण्डिया कम्पनी की प्रेरणा से रेनल नामक एक अँगरेज ने यह नक्शा १८वीं शती में बनाया था

ने नहीं, प्रत्युत काटलर नामी एक ओलन्देज़ ने लिखा था। यह ओलन्देज़ दूतों के साथ बहादुरशाह के दरबार में लाहौर आया था (१७१२ ई०)। पेशवाई ज़माने का दक्खिन भारत का मराठा नक्शा मौजूद है; उसी शताब्दी का रेनल नामक अँगरेज़ का ई० इं० कम्पनी की प्रेरणा से तैयार किया हुआ नक्शा भी है। इन दोनों की तुलना से साफ़ मालूम हो जायगा कि भारतवर्ष के विषय में मराठों का ज्ञान कैसा था और अँगरेज़ों का कैसा। पेशवा बालाजीराव ने अपनी परिस्थिति को न समझ कर कैसी भूलें कीं, सो हम देख चुके हैं।

एक-दो उदाहरण इस मोहनिद्रा के अपवाद-रूप भी हैं। सन् १७५६ में अँगरेज़ों के विजयदुर्ग छीनने के समय हरि दामोदर नामक व्यक्ति वहाँ उपस्थित था। उसी वर्ष वह झाँसी का सूबेदार नियत हो कर आया और १७६५ ई० में अपनी मृत्यु के समय तक उस पद पर रहा। उसका बेटा रघुनाथ बराबर उसके साथ था। पानीपत के बाद मल्हार होल्कर के नेतृत्व में उत्तर भारत में मराठा साम्राज्य को पुनः स्थापित करने में इन पिता-पुत्र ने विशेष भाग लिया। सन् १७६५ से ६४ ई० तक रघुनाथ हरि झाँसी का सूबेदार रहा। इलाहाबाद के अँगरेज़ों से उसे प्रायः वास्ता पड़ता था। रघुनाथ ने यह समझ लिया कि पश्चिम के नये ज्ञान को अपनाये बिना भारतवासियों का बचाव नहीं है। इस विचार से उसने अँगरेज़ी सीखी और अँगरेज़ी विश्वकोष (इन्साईक्लोपीडिया ब्रिटानिका) का दूसरा संस्करण, जो तब प्रचलित था, मँगाया। उसके द्वारा उसने भौतिकी (फ़िज़िक्स), रासायनी (केमिस्ट्री) आदि विज्ञान पढ़े। उसने झाँसी में एक विशाल पुस्तकालय, परीक्षणालय (लैबोरेटरी) और वेधशाला स्थापित कीं। किन्तु रघुनाथ हरि उस युग के भारत में एक अपवाद-रूप व्यक्ति था। क्या ही अच्छा होता यदि भारतीय शिक्षित समाज में साधारण रूप से वह जागृति हो गयी होती जो रघुनाथ हरि के विचार में हुई थी!

१७वीं-१८वीं सदी के राजनीतिक पुनरुत्थान में भारतवासियों की कर्म-चेष्टा ही पुनर्जीवित हुई; ज्ञान और जिज्ञासा पुनर्जीवित नहीं हुई। नानक ने पंजाबियों को पाखंड और ढोंग के बदले शुद्ध भक्ति सिखायी थी; अर्जुन, गोविन्दसिंह

और बन्दा ने भक्ति से सरल बने हृदयों में कर्मवीरता जगा दी; पर ज्ञान की ज्योति ने उन सच्चे और सचेष्ट सिक्खों को जागरूक न बनाया। १५वीं-१६वीं सदी के धार्मिक संशोधन ने मध्य काल की हिन्दुओं की शिथिलता और निष्क्रियता बहुत कुछ दूर की; ढोंग-ढकोसले को बहुत कुछ हटा कर सामाजिक अन्यायों को दूर किया; किन्तु वह सुधार की लहर इतनी गहरी न थी कि ज्ञान पाने के लिए बेचैनी पैदा करती और प्रत्येक वस्तु को विचारपूर्वक समझने और सुधारने की प्रवृत्ति भी जगा देती। १५वीं-१६वीं सदी की सुधार की लहर प्राचीन भारत के ज्ञान और जीवन का पुनरुद्धार नहीं कर सकी। वह पुनरुद्धार आज युरोपियन आर्य जातियों के संसर्ग से हो रहा है।

हम अचरज करते हैं कि औरङ्गज़ेब और बाजीराव जैसे महापुरुषों ने जागरूकता क्यों न दिखायी? हमारा यह अचरज अपनी आज की स्थिति पर विचार करने से दूर हो सकता है। क्या आज सवा सौ बरस के ब्रिटिश शासन के बाद भी हममें सच्ची जिज्ञासा जाग गयी है? हम आवश्यकता से बाधित हो कर आज अँगरेज़ी सीख लेते हैं; पर क्या संसार के उस ज्ञान को हमने आज भी अपनाने का यत्न किया है जो सारी शक्ति का स्रोत है?

§१. इङ्गलैंड में व्यावसायिक क्रान्ति—और हम लोग जब मोह-निद्रा में पड़े थे, तभी युरोप वाले एक और मैदान मारते जा रहे थे। वे अपनी शिल्प-व्यवसाय की प्रक्रियाओं में विचारपूर्वक सुधार और उन्नति करने लगे थे जिससे वहाँ—सबसे पहले इंग्लैंड में और फिर अन्य देशों में—एक "व्यावसायिक क्रान्ति" हो गयी।

युरोप में बहुत से शिल्प मध्य काल में भारत, चीन आदि पूर्वी देशों से ही गये थे। चर्खा वहाँ मध्य काल में पहुँच चुका था। इटली वाले चीन से रेशम का कीड़ा चुरा ले गये थे। इंग्लैंड में तो सत्रहवीं सदी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ही सूती कपड़ा पहनने का प्रचार किया। तब तक वहाँ ऊनी कपड़ा ही बनता था। सूती कपड़े के व्यवसाय का दुनियाँ भर का केन्द्र ५वीं शताब्दी ई० पू० से १८वीं शताब्दी ई० तक भारतवर्ष ही था। लेकिन हम लोग जहाँ अपनी

परम्परागत अवस्था से सन्तुष्ट बैठे थे, वहाँ इंग्लैंड की प्रजा और राष्ट्र के नेताओं को अपने शिल्पों को आगे बढ़ाने का बराबर ध्यान था।

१६वीं सदी में ही युरोप में पैर से चलने वाला एक चरखा चल पड़ा था। सन् १६०७ में इटली में रेशम का डोरा बटने और अटेरने के लिए पनचक्क का प्रयोग होने लगा था। भारतवर्ष की छींट इंग्लैंड में बहुत पसन्द की जाती थी। पर ब्रिटिश पार्लिमेंट ने अपने ऊनी कपड़े के कारबार को बचाने के लिए सन् १७०० और १७२१ में भारतीय छींट का इंग्लैंड में लाना और पहरना या बरतना भी रोक दिया। ई० इं० कम्पनी तब वह कपड़ा युरोप के दूसरे देश में ले जाती थी। एक जर्मन अर्थशास्त्री के शब्दों में "भारत के नफ़ीस सस्ते कपड़े इंग्लैंड ख़ुद नहीं लेता, वह अपने मोटे मँहगे से सन्तोष कर लेता है। पर युरोपियन राष्ट्रों को वह ख़ुशी से सस्ता नफ़ीस माल देता है।"

सन् १७३३ में जौन के नामक अङ्गरेज़ ने "उड़ती ढरकी" (फ़्लाई-शटल) की ईजाद की, जिससे ताने में बाना जल्दी डाला जाने लगा और कपड़े की उपज दूनी होने लगी। सन् १७६७ में हार्ग्रीव्स ने एक ऐसा चरखा निकाला जिसमें आठ तकुए एक ही पहिये से चलते थे और चिमटियों से पूनियाँ पकड़ी जातीं थीं जिन्हें एक ही आदमी सँभाल सकता था इस चरखे को उसने अपनी स्त्री के नाम से "जेनी" कहा। बाद में उसने ऐसी जेनी बनायी जो १०० धागे एक साथ निकाल सकती थी। १७६९ ई० में आर्कराइट नामक नाई ने कातने का एक नया यन्त्र बनवाया जिसमें बेलनों के बीच से रेशे निकलते और घूमते तकुओं द्वारा काते जाते थे। यह "बेलन-ढाँचा" पनचक्की से चलता था। १७७९ ई० में क्राम्प्टन ने जेनी और बेलन-ढाँचे को मिला कर एक नया यन्त्र बनाया जिसे उसने मिश्रित होने के कारण "खच्चर" (म्यूल) कहा। इन ईजादों से इंग्लैंड में इतना सूत पैदा होने लगा कि उसे हाथ के करघे पूरा बुन न पाते थे। उस दशा में १७८५ ई० में कार्टराइट ने शक्ति-करघा (पावर-लूम) निकाला जो पहले घोड़ों से चलाया जाता था, पर १७८९ ई० से भाप की शक्ति से चलने लगा। इसी अरसे में बेलने, धुनने, रँगने, छापने आदि के भी नये यन्त्र और तरीके निकल रहे थे।

इनके कारण १८वीं सदी के अन्त तक इंग्लैंड में कपड़े का एक नया व्यवसाय उठ खड़ा हुआ।

किन्तु इन ईजादों के बावजूद भी इंग्लैंड का यह व्यवसाय भारत के अढाई हज़ार वर्ष पुराने व्यवसाय का मुक़ाबला न कर सकता था। इस दशा में इङ्गलैंड ने अपनी नई राजनीतिक शक्ति से लाभ उठाया। हम देख चुके हैं कि पलाशी के बाद बङ्गाल-बिहार के जुलाहों पर कैसे ज़ुल्म ढाये गये तथा रेशमी कपड़ा बुनने का काम कैसे जबरदस्ती रोका गया। सन् १७६३ में मांचेस्टर और ग्लासगो के नये व्यवसायियों ने पार्लिमेंट द्वारा यह कोशिश की कि भारत से कुल कपड़े का आयात बन्द किया जाय तथा कातने-बुनने के नये यन्त्र भारत में न जाने पायँ। लेकिन भारत में इन यन्त्रों की नकल करने का होश ही किसे था? और यदि होता तो क्या भारत के बड़े भाग में, जो तब तक मराठों और सिक्खों के अधीन था, अङ्गरेज़ उन यन्त्रों का खड़ा होना रोक सकते थे?

कपड़े के शिल्प के साथ-साथ धातु-शिल्प में तथा प्रकृति की शक्तियों से काम लेने के तरीकों में युरोप वाले जो उन्नति कर रहे थे, वह भी उल्लेखनीय है।

भाप की शक्ति से काम लेने का विचार बहुत पुराना था। सन् १६०१ में पोर्ता नामक इटालियन ने एक भद्दा सा भाप-एञ्जिन बना डाला था। १६२० ई० में एक और इटालियन ब्रांका ने उसमें सुधार किया। सत्रहवीं सदी के उत्तरार्ध में कई अङ्गरेज़ों ने उसमें और उन्नति की। अन्त में १७१२ ई० में न्यूकोमन नामी अङ्गरेज़ ने एक ऐसा भाप-एञ्जिन बना दिखाया जो खानों के भीतर से पानी उठाने वाले पिचकारों (पम्पों) को बखूबी चला सकता था।

लोहे की धात से लोहा निकालने की भट्टियों में पनचक्की द्वारा हथौड़े और धौंकनियाँ चलाने का तरीका जर्मनी में १७वीं सदी में ही जारी हो गया था। इंग्लैंड में तब खानों से पत्थर-कोयला भी निकाला जाता था। १७०६ ई० में डार्बी नामक अङ्गरेज़ और उसके बेटे ने जले हुए पत्थर-कोयले के 'कोक' के साथ जला कर लोहा साफ़ कर दिखाया। छोटे डार्बी ने अपनी भट्ठी में

न्यूकोमन-एञ्जिन का प्रयोग किया। इसके बाद १७६० ई० में स्मीटन नामक अङ्गरेज़ ने चमड़े की धौंकनी के बजाय चार बेलनों वाला हवा का पिचकारा ईजाद किया, और १७६६ ई० में जेम्स वाट ने नया भाप-एञ्जिन तैयार किया।

प्रायः इसी समय गाल्वानी और वोल्ता नामक इटालियन बिजली की शक्ति पर परीक्षण कर रहे थे।

आवाजाही के साधनों में भी उन्नति की जा रही थी। खानों से बन्दरगाहों तक कोयला-गाड़ियों को खींचने के लिए तख्तों से मढ़ी सड़कें इंग्लैंड में १७वीं सदी में ही बन चुकी थीं। सन् १७७६ में उनके किनारे पर लोहे की पटरी (रेल) गाड़ देने का तरीका निकला। तब से एञ्जिनों से गाड़ी खींचने की बात लोग सोचने लगे। १७८१ ई० में जेम्स वाट ने एक ऐसा तरीका निकाला जिससे एञ्जिन के नल के भीतर चकिया (पिस्टन) की गति, जो ऊपर-नीचे ही होती थी, चक्करदार भी हो सके। इससे अनेक यन्त्रों का एञ्जिन से चलना सम्भव हो गया। १७८४ ई० में कोर्ट ने लोहा कमाने की नई प्रक्रियाएँ निकालीं, और दस बरस बाद मौडस्ले ने नई खराद निकाली जिससे यन्त्रों के औज़ार शुद्धता से बनने लगे। १८०० ई० में अकेले इंग्लैंड की लोहे और कोयले की उपज दुनियाँ के और सब देशों के बराबर थी। भारत में भी ईस्ट इंडिया कम्पनी लोहे का माल काफ़ी लाती थी; यहाँ तक कि मराठी कागज़ों में हमें लोहे की कील के लिए 'इंग्रज' शब्द मिलता है।

यह व्यावसायिक क्रान्ति उन्नीसवीं सदी में भी जारी रही। १८३० ई० तक बहुत सी बड़ी-बड़ी ईजादें हो गयीं। सन् १८०० तक कपड़े और धातु-शिल्प की नयी ईजादों में सम्बन्ध जुड़ गया, और चरखे और करघे सब लोहे के बनने लगे और भाप से चलने लगे।

युरोपियन लोग जब यों शिल्प-व्यवसाय के नये तरीके निकाल रहे थे, तब भारतवासी अपने पुराने रास्ते पर ही चले जा रहे थे!

परिशिष्ट १

ंस्कृत	अहम् अद्य आत्मनो [मम] गृहं गच्छामि [व्रजामि, यामि]	एकस्य पितुर् द्वौ पुत्राव् आस्ताम्
पाली	अहं अज्ज मम घरं गच्छामि	एकस्स पितुनो द्वे बाला आहेसुं
हिन्दी	में आज अपने घर जाता हूँ	एक बापं [पिता] के दो बेटे [पुत्र] थे
गुजराती	हुँ आजे मारे घर जाउँछुं	एक बापने बे बेटा हता
पहाड़ी (परबतिया)	आज म आफ्नो घर जान्छु	यौटा बाबु को दुइटा छोरा थिये
बंगला	आमि आज आमार बाड़ी याइतेछि	एक पितार दुइ पुत्र छिल
आसमिया	मैं आजि मोर घरलै जाम	एजन पितेकर दुजन पुतेक आछिल
उड़िया	मुं आजि आपणा घरकु जाउछि	एक पितांकर दुइटि पुत्र थिले
मराठी	मी आज आपल्या घरीं जात आहे	एका पित्यास दोन पुत्र होते
सिंहली	मम अद मगे गेदर यमि	एक पियेकुट पुत्रयो देदेनेक वूह

[अ]

पजाबी	मैं अज आपणे घर जांदा हा	इक प्योदे दो पुत्तर सन
हिन्दकी (पच्छिमी पंजाबी)	मैं अज आपणे घर वैंदाँ	हिक पिउदे डू पुत्र हन
सिन्धी	मां अजु पहिंजे घरि वञां थो	हिक पीउ जा ब पुट हुआ
कश्मीरी	ब छुस अज़ पनुन गर गछान	अकिस मालिस आस्य ज़ न्यचिव्य
पश्तो	ज़ें निन अख़पुला कोर ते [ला] ज़ूँम [मैं हूँ आज अपने घर जाता]	यवो पिलार द्वा ज़मन अवूः [एक बाप के थे दो बेटे]
कन्नड	इवत्तु नातु [नन्न] मनेगे होगुरेने [आज मैं मेरे घर जाता हूँ]	ओब्ब तन्देगे इब्बरु मक्कलिद्दरु
तेलुगु	नेनु ईरोजना माइंटिकि वेल्लु चुन्नानु	वोक तंड्रिकी इद्दरु कोडुकुलु उंडिरि
तामिल	नान इनूरु एनुडैय वीट्टिकुं पोकिरेन	ओरु तकप्पानारुक्कु इरण्डु कुमारर्कल इरुन्दनर
मलयालम्	ञान् इन्नु स्वगृहत्तिल् पोकुन्नु	ओरु पिताविन्नु रण्डु पुत्रन्मार उण्टायिरुन्नु